हिन्दी कोश साहित्य

[सन् १५००—१८०० ई०]

एक विवेचनात्मक और तुलनात्मक अध्ययन

(प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा सन् १९६१ ई० में डी० फ़िल्० उपाधि के लिए स्वीकृत शोध-प्रबन्ध)

लेखक

डॉ० अचलानन्द जखमोला एम० ए०, डी० फ़िल्०

हिन्दी परिषद् प्रकाशन
प्रयाग विश्वविद्यालय
१९६४

श्रद्धेय गुरुवर
पंडित उमाशंकर जी शुक्ल
को
सादर समर्पित

प्राक्कथन

भाषा-साहित्य के लिए कोशों की विशद महत्ता एवं उपादेयता को दृष्टि में रखते हुए अन्य साहित्योपांगों के साथ साथ कोश-रचना की प्रगति मध्यकालीन हिन्दी में व्यापक रूप से हुई, परन्तु अभी तक वे कोश-रत्न, साहित्य के इतिहास-निर्माताओं, आलोचकों, या अनुसंधित्सुओं का ध्यान समुचित रूप से आकर्षित न कर सके। संस्कृत के प्राचीन कोशों का इतिहास लिखते समय इंगित किया गया है कि मध्यकालीन हिन्दी में इस प्रकार के वर्गानुसारी पद्धति पर संकलित समानार्थी या अनेकार्थी कोश सामान्यतः नहीं मिलते हैं[2]। जहाँ उपलब्ध भी हुए, वहाँ इन कोश-ग्रन्थों को साहित्य की दृष्टि से महत्त्वहीन घोषित कर धर्म शास्त्रों से भी निम्न स्थान दिया गया है[3]।

विद्वानों की मध्यकालीन हिन्दी कोश-विषयक धारणा का समुचित रूप से मूल्यांकन करने के उद्देश्य से ही शोध प्रबन्ध का विषय इन पंक्तियों के लेखक को प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा दिसम्बर १९५८ई० में स्वीकृत किया गया था, जिस पर विश्वविद्यालय ने १९६१ ई० में डी० फिल्० उपाधि प्रदान की। प्रस्तुत ग्रंथ शोध-प्रबन्ध का प्रकाशित रूप है।

आधार सामग्री और उसका संकलन

कार्यारम्भ की प्राथमिक अवस्था में पर्याप्त आधार-सामग्री के विषय में सामान्यतः सशंकित सा दृष्टिकोण रहा। उसका कारण भी यही था कि नन्ददास के दो कोशों के अतिरिक्त किसी भी अन्य प्रकाशित कोश की सूचना अधिकांश विद्वानों को न थी। परन्तु कालान्तर में खोज-विवरण, विभिन्न स्थानों में स्थित हस्तलिखित पोथियों के भण्डार, स्वदेशी एवं विदेशी ग्रन्थागारों के केटालॉग, हिन्दी साहित्य के प्राचीनतम से नवीनतम इतिहास, पुस्तकालयों की पुस्तक सूचियों का समवेत अध्ययन करते ही सामग्री की न्यूनता या अभाव विषयक भ्रान्त धारणा का तत्काल निरसन हो गया। पूर्णतः विश्वस्त होकर सामग्री एकत्र करने का उपक्रम बनाया गया। सामग्री अधिकांशतः हस्तलिखित रूप में ही थी। अतः उनके संरक्षकों को प्रयाग विश्वविद्यालय के पुस्तकालयाध्यक्ष के माध्यम से पत्र-व्यवहार कर कुछ समय के लिए वे प्रतियाँ माँगी

---

१. दे० आगे भूमिका में 'कोशों का प्रयोग, महत्त्व एवं उपादेयता'।
२. डॉ० एम० एम० पाटकर : ए हिस्ट्री आव् संस्कृत लेक्सिकाग्राफी, (बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा स्वीकृत अप्रकाशित थीसिस), पृ० १८७।
३. डा० रामरतन भटनागर : नन्ददासः एक अध्ययन, पृ० ७३।

गईं, परन्तु पूर्णतः सुरक्षा का उत्तरदायित्व लेने पर भी, इण्डिया ऑफिस लाइब्रेरी, लन्दन, के अतिरिक्त किसी भी अन्य ग्रन्थागार ने अल्पसमय के लिए भी मूल प्रति देना उपयुक्त न समझा। फलस्वरूप विभिन्न ग्रन्थागारों में स्वयं जाकर सम्बन्धित ग्रन्थ की प्रतिलिपि की गई। इसके परिणामस्वरूप छत्तीस[1] छोटे-बड़े विवेच्यकालीन कोशों की मूल या प्रतिलिपित, मुद्रित, हस्तलिखित, या लिप्यन्तरित प्रतियों का संग्रह सम्पन्न हुआ।

हस्तलिखित प्रतियों को उपलब्ध करने या उनके अध्ययन में जो सामान्य कठिनाइयाँ आती हैं उनका उल्लेख यहाँ करना व्यर्थ है। परन्तु एक असाध्य समस्या जो विवेच्य कोशों में सर्वश्रेष्ठ कोशरत्न मिर्ज़ा जी विरचित हिन्दी-फ़ारसी कोश 'तुहफ़तुल-हिन्द' ने प्रस्तुत की उसका प्रसंग मात्र देना आवश्यक प्रतीत होता है। इस अनुपम कोश की एक हस्तलिखित प्रति इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन, से पर्याप्त व्यवधानों के अनन्तर उपलब्ध हुई जो नस्ता'लीक़ लिपि में है। परन्तु दुर्भाग्यवश यह इतने अशुद्ध एवं भ्रामक रूप से प्रतिलिपित की गयी है कि इसको शुद्ध रूप से पढ़ाकर लिप्यन्तरण करना अत्यन्त दुष्कर हो गया। भाषा भी इसकी १७वीं शती ई० की फ़ारसी है, जिसमें केवल २४ ध्वनियाँ उपयोग में लाई गई हैं। पुनः इसमें नुक़्ते तो इतने ग़ायब हैं कि एक ही शब्द को कई रूपों में पढ़ा जा सकता है। उदाहरण के लिए पृष्ठ २२६ पीठ पर अंकित 'शलीखः' शब्द को शलीख, शलीजः, सलीज, सलीखा सलजा, सलनख इत्यादि कई रूपों में पढ़ा जा सकता है। इस घनघोर व्यतिक्रम एवं अस्तव्यस्तता के फलस्वरूप आवश्यकता से अधिक समय नष्ट करना पड़ा। लगभग दस फ़ारसी-दाँ विद्वानों से समग्र कोश अंश पढ़ाये जाने के उपरान्त भी पूर्ण सन्तोष न हो पाया।

विषय का निरूपण

सामग्री का संकलन तो हो गया, परन्तु उसके निरूपण का प्रश्न और भी विकट लगा। ऐसा एक भी आदर्श ग्रन्थ सम्मुख न था जिसकी विवेचन-शैली के अनुकरण पर प्रस्तुत अध्ययन को आधारित बनाया जा सकता। लगभग सात मास पत्र-व्यवहार करने के पश्चात् डकन कालेज के डा० पाटकर का अप्रकाशित प्रबन्ध 'ए हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लैक्सिकॉग्राफ़ी' देखने का सुअवसर मिला परन्तु इसमें तुलनात्मक एवं आलोचनात्मक अध्ययन के लिए कोई गुन्जाइश न होने से कुछ भी दिशाएँ स्पष्ट न हो सकीं। कोश-विज्ञान के शिल्प-विधान (टेकनीक) के विषय में सामान्य भाषा-वैज्ञानिकों

---

१. इन सभी कोशों का कालानुक्रम में 'आधारित सामग्री' शीर्षक से प्रबन्ध के परिशिष्ट १ में पूर्ण विवरण प्रस्तुत किया गया है।

से यथासम्भव परामर्श किया गया परन्तु फिर भी विशेष लाभ न हुआ। सब दिशाओं से निराश होकर इस क्षेत्र में भी पूर्णतः अन्तर्मुखी और व्यक्तिगत दृष्टिकोण ही अपनाना पड़ा।

तुलनात्मक अध्ययन को दृष्टि में रखते हुए पहले समस्त कोशों की शब्दावली की अनुसूची (इन्डेक्सिंग) बनाना प्रारम्भ किया गया परन्तु कालान्तर में ज्ञात हुआ कि यह कार्य बौद्धिक न होकर समयसाध्य ही अधिक था। क्योंकि उपलब्ध कोशों की समस्त शब्दावली की अनुसूची बनाने में लगभग ३-४ वर्ष व्यतीत होते। पुनः 'तुहफतुल-हिन्द' और टेलर की डिक्शनरी जैसे कोशों में शब्द कम, और उनके अर्थ व व्याख्याएँ ही अधिक दी गई हैं, जिसका अध्ययन उक्त शैली से होना सम्भव न था। फलस्वरूप इस पद्धति को त्याग कर उदाहरण स्वरूप पर्याप्त शब्द ले लिए गए और अन्तिम रूप से प्रबन्ध का निरूपण निम्नांकित छः अध्यायों के माध्यम से किया गया :

प्रथम अध्याय में मध्यकालीन ८२ हिन्दी कोशों का काल-क्रमानुगत विवरण दिया गया है, जिनके आधार काशी नागरी प्रचारिणी सभा, राजस्थान तथा बिहार राष्ट्र भाषा परिषद की खोज-रिपोर्ट, स्वदेशी तथा विदेशी विभिन्न पुस्तकालयों के कैटलॉग, हस्तलिखित पोथियों के ग्रन्थागार, साहित्य के विभिन्न इतिहास, प्रकाशित कोशों की भूमिकायें, ऐतिहासिक ग्रन्थ तथा अनेक पत्र-पत्रिकायें हैं। इन प्रकीर्ण सूचनाओं को संकलित करते हुए आवश्यकतानुसार निजी अन्वेषण का भी यथा-स्थान उपयोग किया गया है। उपलब्ध व अनुपलब्ध तथा मुद्रित या हस्तलिखित सभी प्रकार के कोश ग्रन्थ उनकी प्रामाणिकता, रचनातिथि और प्रणेताओं का निर्णय करते हुए समस्त यथा-सम्भव प्राप्त सामग्री कालानुक्रम में नियोजित है।

द्वितीय अध्याय में इन कोशों का वर्गीकरण किया गया है। वर्गीकरण के तीन आधार माने गये हैं—शब्दों की संकलन-प्रणाली, भाषा तथा अर्थ व अन्य उक्तियाँ। प्रत्येक के भेदोपभेद देकर विषय को सर्वांगीण बनाने का यथासम्भव प्रयास किया गया है। आवश्यकतानुसार तुलनायें देकर कोशों की वर्गात्मक सामान्य विशेषतायें अधिक स्पष्ट करने की भी चेष्टा की गई है। इसी अध्याय के अन्त में कुछ ऐसे विशिष्ट कोशों का भी निर्देश है जिनका विवरण प्रथम अध्याय के अन्तर्गत नहीं दिया गया था।

तृतीय अध्याय में कोशों की शब्दावली का अध्ययन किया गया है। शब्द से तात्पर्य यहाँ मूल आधारित एवं अभिधेय शब्द से है। शब्दों का स्रोत देने के उपरान्त सभी सम्भव आधारों पर वर्गीकरण करके समस्त शब्दावली का वाह्य रूप अभ्युपगत करने का प्रयास किया गया है, फिर भी इसमें कोशों की सम्पूर्ण शब्दावली का निःशेषण (एग्जॉस्शन) सम्भव नहीं था। उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत सभी शब्द अकारादि-

क्रम में नियोजित हैं। इसी अध्याय के उत्तरार्द्ध में विदेशी कोशकारों द्वारा प्रयुक्त अनुलेखन तथा लिप्यन्तरण (ट्रांसलिटरेशन) पद्धति का भी परिचय दिया गया है।

चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत उन समस्त प्रक्रियाओं का अध्ययन किया गया है जिनके माध्यम द्वारा आलोच्यकालीन कोशकारों ने शब्दों का संकलन एवं उनका नियोजन किया या कोश-विज्ञान से सम्बद्ध अन्य आवश्यक तत्वों के प्रस्तुतीकरण की प्रणालियाँ अपनाईं।

पंचम अध्याय अर्थ सम्बन्धी है। इस अध्याय का महत्त्व कई दृष्टियों से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। इस के द्वारा उन समस्त पूर्ण एवं आंशिक प्रक्रियाओं के अध्ययन का प्रयास किया गया है जिनके माध्यम से आलोच्यकालीन कोशकारों ने शब्दों के अर्थ समझाने, उनके भावों को व्यक्त करने एवं स्वानुभूत प्रभावों को पाठकों तक पहुँचाने की तनिक भी चेष्टा की थी। इन कोशों पर 'शाब्दिकी' (glossary) मात्र का 'लेबिल' लगाते हुए अर्थ की दृष्टि से इन्हें महत्त्वहीन समझने वाले विद्वानों के मत परिष्कृत करने की पर्याप्त सामग्री इस अध्याय में प्रस्तुत की गई है।

षष्ठ अध्याय में सांस्कृतिक सन्दर्भों का उल्लेख है। कोश जैसे शुष्क विषय में सांस्कृतिक तत्त्वों को ढूँढ़ने का प्रयास प्रस्तुत अध्ययन के उपयोगार्थ ही नहीं, वरंच साहित्यिक समालोचना के क्षेत्र में भी एक नवीन देन कही जा सकती है। विषय को अधिक रोचक और व्यावहारिक बनाने की दृष्टि से अधिकांश उदाहरण विदेशी कोशकारों की कृतियों से ही प्रस्तुत किए गए हैं, क्योंकि अपनी संस्कृति से सम्बद्ध तत्वों को विदेशी चश्मे से देखना शोध के अतिरिक्त एक विशेष मनोरंजन एवं उत्सुकता की प्रतीति भी कराता है।

'उपसंहार' में कोशों के उद्देश्य को दृष्टिपथ में रखते हुए उनपर समग्रतः कुछ निर्णय देने की चेष्टा की गई है। इन कोशों का मौलिक योगदान एवं इसी प्रकार का अन्य क्षेत्रीय मूल्यांकन कर विषय को समाप्त किया गया है।

सर्वप्रथम 'कोश-विज्ञान' से सम्बद्ध आधारिक विवरण को भी प्रबन्ध के आरम्भिक अंश में एक भिन्न अध्याय के अन्तर्गत रखने की योजना बनाई गई थी परन्तु उसका मुख्य विषय से सीधा और प्रत्यक्ष सम्बन्ध न देखते हुए उन समस्त आवश्यक उल्लेखों का संक्षेपीकरण 'भूमिका' में कर दिया गया। इसी प्रकार विवेच्य मध्यकालीन कोशों की सुदृढ़ पृष्ठभूमि का यथार्थ पर्यवेक्षण करने की दृष्टि से भारतीय प्राचीन कोश विषयक ऐतिहासिक विवरण भी मुख्य विषय से प्रत्यक्ष सम्बन्ध न रखने के कारण भूमिका में ही समाविष्ट किये गये हैं। इनके अन्तर्गत क्रमशः संस्कृत, पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंश कोशों का उल्लेख देने के उपरान्त उनकी सामान्य तुलनात्मक विशेषतायें भी प्रस्तुत हैं।

कोश को प्रस्तुत अध्ययन में संस्कृत परिभाषा 'कोशः शब्दस्य संग्रहः' के रूप में ही माना गया है, जिसके अन्तर्गत शब्द-रूपों को किसी सुनिश्चित आधार पर संकलन करने वाले सभी ग्रन्थ समाविष्ट हैं। कोशों में आवश्यक उपादानों को दृष्टि में रखते हुए कुछ आधुनिक कोशकार सम्भवतः विवेच्य सामग्री में से कई ग्रन्थों को कोश मानने में एकमत न होंगे। परन्तु एक सुनिश्चित परिपाटी, परम्परा एवं सुमान्य विद्वानों द्वारा कोश माने गये ग्रन्थों द्वारा ही प्रस्तुत अध्ययन की आधार-भित्ति निर्मित की गई है।

प्रबन्ध का अध्ययन मूलतः विवेचनात्मक और तुलनात्मक आधार पर संयोजित किया गया है। परन्तु विवरण ही तुलना और विवेचना का आधार होता है, इसीलिए सम्भव है कुछ स्थलों पर विवरणात्मक अंश अधिक विस्तार से और आलोचनात्मक तथा तुलनात्मक अंश अपेक्षाकृत संक्षेप में निरूपित हों। इसका एक प्रत्यक्ष कारण यह भी है कि यह तुलनात्मक अध्ययन समग्रतः संश्लेषित और संगठित रूप में न संचालित कर विश्लेषण के माध्यम से वर्गात्मक और खण्डात्मक शैली में विशिष्टताओं को दृष्टिपथ में रखते हुये स्वतंत्र शीर्षकों द्वारा किया गया है। स्थल विशेष पर एक शीर्षक या वर्ग का वर्ण्य-विषय आंशिक कोशों से ही मुख्यतः सम्बद्ध होने के कारण अन्य कोशों में उसकी अवस्थिति न होना ही तुलनात्मक आधार माना गया है। अतएव उद्देश्य मूलतः और अन्ततः विवेचनात्मक तुलना और तुलनात्मक विवेचन ही है।

आधुनिक वैज्ञानिक प्रणाली के अनुसरण पर अधिक स्पष्टता की दृष्टि से प्रबन्ध के समस्त अध्याय, उनके मुख्य वर्ग तथा शीर्षक क्रमशः अंकित किए गए हैं। अध्यायान्तर्गत इन समस्त भेदोपभेदों और वर्गोपवर्गों का स्पष्ट उल्लेख प्रत्येक अध्याय तथा उसके वर्ग, उपवर्ग या शीर्षक के प्रारम्भ में कर दिया गया है।

प्रबन्ध का निर्धारित समय सन् १५००-१८०० ई० तक सीमित होते हुए भी इसके अन्तर्गत कुछ ऐसे कोशों का भी विवेचन समाविष्ट करना आवश्यक समझा गया जिनकी रचना-तिथि समय की उक्त क्षेत्र-सीमा में विशुद्ध रूप से न आकर अल्पांश में बाहर पड़ जाती हैं। परन्तु ऐसे कोशों की कुछ विशिष्टता, महत्ता या उपादेयता को सम्मुख रखते हुए ही इन्हें अध्ययन का आधार बना लेना अत्यन्त आवश्यक प्रतीत हुआ जिनके बिना प्रस्तुत अध्ययन के एकांगी होने तथा अपूर्ण छूट जाने का भय था।

प्रसंगों के लिये मुख्यतः छन्द-संख्या ही चुनी गई है, परन्तु इसके अतिरिक्त कुछ प्रकाशित कोशों तथा तुहफ़त, कर्णाभरण और अनेकार्थ (विनय सागर) जैसी

कुछ हस्तलिखित प्रतियों के पृष्ठ या पत्र-संख्या को भी संकेत का माध्यम बनाना पड़ा। नाममाला (नन्ददास), अनेकार्थ (नन्ददास), ख़ालिकबारी और अल्लाख़ुदाई से पंक्ति और उमरावकोश तथा अमरकोश से क्रमिक कांड, वर्ग और श्लोक संख्या निर्दिष्ट हैं। शुद्ध अकारादिक्रम में नियोजित कोशों के प्रसंग केवल अत्यावश्यक स्थलों पर ही दिए गए हैं, अन्यत्र नहीं।

समस्त कोश अधिकांशतः हस्तलिखित रूपों में हैं। जो मुद्रित हैं उनके पाठ भी अत्यन्त अशुद्ध एवं भ्रामक हैं, जिनके पाठालोचन की समस्या अभी उलझी पड़ी है। अतएव स्थान-स्थान पर पाठ-निर्धारण में कठिनाई का सामना करना पड़ा, फिर भी प्रयास किया गया है कि भ्रामक तथा त्रुटित अंशों को उदाहरणस्वरूप न प्रस्तुत किया जाय। हिन्दी-फ़ारसी कोशों और विशेषतः 'तुहफ़तुलहिन्द' से दृष्टान्त स्वरूप दिए गए उदाहरणों में मूलस्वरूप को ही यथावत् रखने की पूर्ण चेष्टा की गई है, फिर भी शुद्धता एवं एकरूपता के लिये समस्त उद्धृत फ़ारसी शब्दों के रूप मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ाँ 'मद्दाह' कृत 'उर्दू हिन्दी कोश' (प्रकाशन शाखा, सूचना विभाग उत्तर प्रदेश, लखनऊ, सन् १९५९ ई०) के अनुसार अंकित किए गए हैं।

प्रबन्ध की मौलिकता

यद्यपि अनुच्छेदों में प्रस्तुत प्रबन्ध की मौलिकता विषयक कुछ संकेत मिल सकते हैं, फिर भी अधिक स्पष्टता के लिये यहाँ मौलिकता के दो पक्ष निर्दिष्ट किए जा सकते हैं—विषय-वस्तु सम्बन्धी एवं वर्ण्य-विवेचन विषयक।

यह अवश्य है कि इन कोशों में से अधिकांश की सूचनाएँ खोज विवरण, केटलॉग और कुछ साहित्य के इतिहासों में सांकेतिक और संदर्भ रूप से बिखरी पड़ी हैं, परन्तु वे सब सूचनायें नितान्त अपूर्ण हैं जिनमें से भी अधिकांश के विषय में नामांकन के अतिरिक्त कोई अन्य विवरण नहीं उपलब्ध होता। परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध के अन्तर्गत सब को साहित्यिक शोध के माध्यम द्वारा प्रथम बार प्रकाश में लाकर उनकी प्रामाणिकता, काल निर्णय, निर्माता विषयवस्तु आदि विषयों पर यथासम्भव विवेचन देकर कालानुक्रम में नियोजित करते हुए सर्व प्रथम ऐतिहासिक तारतम्य में बांधा गया है। ऐसे कई कोशों का प्रामाणिक विवरण प्रस्तुत प्रबन्ध में मिलेगा, जिनका उल्लेख किसी भी अन्य स्रोत से उपलब्ध होना सम्भव नहीं।

मध्यकालीन हिन्दी कोश के परिचय सम्बन्धी केवल दो लेख मिलते हैं—जवाहरलाल चतुर्वेदी का 'ब्रजभाषा के कोष ग्रन्थ'[1] और डॉ० हरदेव बाहरी

१. **जवाहरलाल चतुर्वेदी : ब्रजभाषा के कोष ग्रन्थ (पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ)।**

का लेख 'कंट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकाग्राफ़ी'[१]। प्रथम में खोज विवरणों को आधार मान कर कुछ ब्रजभाषा कोशों के नामोल्लेख मात्र कर दिए गए हैं। सूचनाओं का आधार भी प्रसंगों में नहीं दिया गया है और न उन पर कोई विस्तृत विवेचना ही है। द्वितीय लेख मुख्यतः आधुनिक कोशों से सम्बद्ध है। ऐतिहासिक क्रम बाँधने के लिए ही विद्वान् लेखक ने कुछ मध्यकालीन कोशों का नामांकन मात्र कर विषय को आगे बढ़ा दिया है। परन्तु प्रस्तुत प्रबन्ध के प्रथम अध्याय में पहली बार प्रत्येक सम्भव स्रोत का समन्वय कर अपने विश्लेषण और विवेचन के माध्यम से ८२ से अधिक कोशों तथा कोशकारों के विवरण द्वारा मध्यकालीन कोश साहित्य की आधार-शिला को सुदृढ़ बनाया गया है। प्रथम बार मध्यकालीन कोश-रत्न 'तुहफ़तुलहिन्द' का लिप्यन्तरण और अनुवाद विद्वानों के सम्मुख रखते हुए अधिक गहन क्षेत्र में प्रविष्ट होने का संकेत दिया गया है। द्वितीय अध्याय के उत्तरार्द्ध में मिर्ज़ा ख़ाँ विरचित 'तुहफ़तुल-हिन्द' में प्रयुक्त (ब्रजभाषा) हिन्दी-ध्वनियों की नस्ता' लीक़ लिपि और फ़ारसी भाषा के माध्यम द्वारा प्रस्तुत विशिष्ट तथा व्यापक लिप्यन्तरण पद्धति के यथासम्भव विश्लेषण द्वारा डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी की उस आकांक्षा को भी यथाशक्ति पूर्ण करने का प्रयास किया गया है जो उन्होंने 'ए ग्रामर आव् ब्रजभाखा' पुस्तक के भूमिका भाग में व्यक्त की थी।[२]

मौलिकता का दूसरा पक्ष वर्ण्य-विषयक है। कोशों का तुलनात्मक एवं विवेचनात्मक अध्ययन हिन्दी शोध व आलोचना के क्षेत्र में अभी तक नहीं हुआ। श्री रामचन्द्र वर्मा कृत 'कोशकला' केवल आधुनिक हिन्दी कोशों के सम्बन्ध में ही प्रारम्भिक वक्तव्य सा है, जिसमें कोश-विज्ञान के सिद्धान्तों की अपेक्षा अनुभवी कोशकार ने अपने 'हिन्दी-शब्द -सागर' सम्बन्धी व्यक्तिगत अनुभव ही अधिक दिए हैं। संस्कृत में डॉ० पाटकर का अप्रकाशित प्रबन्ध ऐतिहासिक सूचनाओं पर ही आधारित बनाया गया है, विवेचनात्मक या तुलनात्मक अध्ययन इस प्रबन्ध के क्षेत्र से बाहर था। विदेशी भाषाओं के कोशों के भूमिका-अंश में कुछ प्रारम्भिक वक्तव्य, उन कोश-विशेषों की नियोजन प्रणाली तक ही सीमित है। आलोच्यकालीन हिन्दी कोश से सम्बद्धविवेचना के लिए उन्होंने कोई दिशा सूचित न की। इसके फलस्वरूप अध्ययन की विवेचन प्रक्रिया भी पूर्णतः व्यक्तिगत एवम् सर्वथा मौलिक है।

---

१. **डॉ० हरदेव बाहरी : 'कण्ट्रीबूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्रॉफी' (प्रोसीडिग्ज़ आव् दि आल् इण्डिया ओरियंटल कान्फ़ेंस, बनारस १९४३—४४)।**

२. " . . . . Mirza's analysis of the sound is well worth a careful study and it is to be hoped that this portion of his Tuhfat will be made available to the students of phoneties and Indo Aryan Languages . . . "

-डॉ० सुनीति कुमार चटर्जी : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाषा, भूमिका, पृ० १९०।

निष्कर्ष यह है कि यदि अहं भाव न समझा जाय तो प्रस्तुत प्रबन्ध विषय वस्तु एवं उसके निरूपण की दृष्टि से नितान्त नवीन एवं सर्वांशतः मौलिक घोषित किया जा सकता है।

आभार

प्रस्तुत प्रबन्ध प्रयाग विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के प्राध्यापक गुरुवर पण्डित उमाशंकर जी शुक्ल के सुयोग्य निर्देशन में पूर्ण किया गया है। विषय में दक्षता, प्रगाढ़ औत्सुक्य एवं तत्परता सहित आपने जिस वात्सल्य स्नेह, अनवरत प्रोत्साहन, तथा गुरुवत औदार्य एवं सुचारुता से इस कार्य को सम्पन्न कराया, उसके लिए कृतज्ञता ज्ञापन कोरी औपचारिकता मात्र होगी।

प्रबन्ध के शैशवकाल में आदरणीय डा० माताप्रसाद गुप्त, तथा किशोरावस्था में माननीय डा० हरदेव बाहरी से यथासमय और यथास्थल लालन, ताड़न और पोषण् मिला है। परमादरणीय डा० धीरेन्द्र वर्मा ने अपना बहुमूल्य समय निकालकर प्रबन्ध की अन्तिम पाण्डुलिपियों को आद्यन्त पढ़ने के उपरान्त जो अत्यावश्यक बहु-मूल्य सुझाव दिए उनके लिए हार्दिक कृतज्ञता समर्पित करना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ। प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राध्यापक पूज्य डा० पारसनाथ तिवारी ने कृपापूर्वक समस्त प्रबन्ध को अक्षरशः पढ़कर उसमें आवश्यक परिष्करण द्वारा उपकृत किया है। श्रद्धेय डा० उदयनारायण तिवारी तथा प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डा० सुनीतिकुमार चैटर्जी और डकन कालेज पूना के डा० पाटकर ने भी समय समय पर संबल और गति प्रदान की है। एतदर्थ इन सभी विद्वज्जनों के प्रति मैं हार्दिक कृतज्ञता प्रकाशित करता हूँ।

नस्ता'लीक़ लिपि में बद्ध हिन्दी-फ़ारसी कोश और विशेषरूप से 'तुहफ़तुलहिन्द' को देवनागरी में लिप्यंतरित कराने तथा कठिन स्थलों को बोधगम्य बनाने में अरबी-फ़ारसी विभाग के प्राध्यापकगण श्री अहमद रफ़ीक़ तथा हाफ़िज़ गुलाम मुर्तज़ा साहब ने विशेष कृपा की है। फारसी के शोध-छात्र श्री अब्दुल वहाब तथा सय्यद मुहिब्बुल हसन रिज़वी और स्थानीय 'स्टेट आर्काइव्ज़' के श्री जलालुद्दीन जैसे पर हितैषी विद्वानों के कष्ट-साध्य श्रम का कभी विस्मरण नहीं किया जा सकता।

हस्तलिखित अलभ्य सामग्री को उपलब्ध कराने में प्रयाग विश्वविद्यालय पुस्तकालय के श्री सत्यनारायण पाण्डेय के अतिरिक्त श्री अगरचन्द नाहटा बीकानेर, डा० नारायणदास खन्ना, लखनऊ, डा० पारसनाथ तिवारी तथा अपने साथी शोध छात्र (अब डाक्टर) लक्ष्मीधर मालवीय ने विशेष सहायता की है। इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन के क्यूरेटर महोदय ने 'तुहफ़तुलहिन्द' और 'अनेकार्थ' की

दो हस्तलिखित प्रतियाँ, तथा आदम और टॉमसन कृत कोशों की अलभ्य प्रकाशित प्रतियाँ कुछ समय के लिए भेजकर अत्यन्त कृपा की है।

प्रस्तुत अध्ययन में प्रयाग विश्वविद्यालय, स्थानीय साहित्य सम्मेलन एवं भारती-भवन, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, आगरा विश्वविद्यालय तथा के० एम्० इन्स्टीट्यूट आँव हिन्दी एण्ड लिंग्विटिक्स् स्टडीज़, आगरा, अभय जैन ग्रन्थालय तथा अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर, प्राच्य-विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर तथा भण्डारकर, ओरियंटल रिसर्च इन्स्टीट्युट, पूना के पुस्तकालयों व हस्तलिखित ग्रन्थागारों की आवश्यक सामग्री का उपयोग किया गया है। इन समस्त विद्या-संस्थानों के अधिकारी वर्ग एवं कर्मचारियों के प्रति मैं अनुग्रहीत हूँ।

प्रयाग **अचलानन्द जखमोला**
सितम्बर १९, १९६१ ई०

भूमिका

कोश-विज्ञान विषयक सामान्य परिचय

'कोश' शब्द देवनागरी लिपि में दो प्रकार[1] से लिखा जाता है—कोष (मूर्धन्य 'ष' में) यथा—'उर्दू हिन्दी कोष' या 'डिंगल कोष' और कोश (तालव्य 'श' में) उदाहरण के लिये 'हिन्दी साहित्य कोश' या 'वृहत् हिन्दी कोश'। प्राचीन संस्कृत कोशों में 'ष' की प्रधानता होते हुये भी आधुनिक विद्वान् शब्द-कोश (डिक्शनरी) के लिये 'कोश' और खजाना (ट्रैज़र) के लिये 'कोष' का ही प्रयोग अधिक युक्तिसंगत मानते हैं।[2] कुछ लोग इन दोनों रूपों के अर्थों में भी प्रभेद करते हैं—उनके मत के अनुसार विशेष अर्थों में मूर्धन्य 'ष' और अन्य अर्थों में 'श' प्रयुक्त किया जाना चाहिये। पुनः कहीं 'कोष' को केवल पुँल्लिग और 'कोश' को तीनों लिंगों में व्यवहृत बताया गया है,। परन्तु इस प्रकार के प्रभेद अधिक तात्त्विक नहीं। शब्द कल्पद्रुम में इस शब्द के दोनों रूपों की व्युत्पत्तियाँ इस प्रकार दी गई हैं :

कोश :—पु० कुश्यते संश्लिष्यते। कुश् संश्लेषणे+
घञकर्तरि चेति अधिकरणादौ घञ्।

कोष :—पु० क्ली, कुष्यन्ते आकृष्यन्ते फलपुष्योत्पादकमधुमयपरागादयो यस्मिन्।
कुष् ग निष्कर्षे+घञ्कर्त्तरि चेति अधिकरणे घञ्।

यह शब्द दोनों रूपों में अनेकानेक अर्थों में प्रयुक्त होता है—कलिका, म्यान, धन-समुदाय, जातिकोष[3], भंडार[4], शोंपान[5], दिव्य[6], योनि शिम्बा, पानपात्रचषक (हेमचन्द)

---

१. 'कोषो मूर्द्धन्यान्तः तालव्यान्त इत्यन्ये'—हलायुधकोश, पृ० २५०।
२. यह अभिमत 'हिन्दी विश्वकोश' के प्रधानसंपादक और प्रसिद्ध भाषा वैज्ञानिक डॉ० धीरेन्द्रवर्मा का है। संस्कृत कोशों में 'ष' वर्ण की प्रधानता देखते हुये पहले प्रस्तुत प्रबन्ध में भी 'ष' का ही प्रयोग किया गया था, जिसको बाद में संशोधित करना पड़ा। एकरूपता रखने के लिये समस्त ग्रंथ में 'श' वर्ण ही अपनाया गया है, भले ही भूल से कहीं 'ष' रह गया हो।
३. पात्र पेसीदिव्य कलिका म्यान धन समुदाय।
जातिकोश र वादि संग्रह आठ कोष गनाय —नामप्रकाश, पृ० ३५४।
४. 'कोश कहत भण्डार कुं कलेश मेटन पक्ष'। अनेकार्थ, विनयसागर, छन्द १४०।
५. 'कोष कृपा शोंपान ज्या कोष शास्त्र भंडारू' —अनेकार्थ, चन्दनराम, पृ० २६।
६. ततो निक्षिप्य चरणं रक्ताबते मेषचर्मणि।
कोषं चक्रतुरन्योऽन्यं सखंगौ नृपडामरौ। —राज तरंगिणी ५।३३५।

धनसंहिति[१], अण्ड, आवास-गृह, शरीर, पुस्तकागार[२], खान से निकाला गया ताजा सोना या चाँदी[३], आवरण विशेष,[४] वीजकोष,[५] मुकुल[६], शपथ, ग्रहों सम्बन्धी एक दिन, लिंग[७], परिवार[८], अण्डा, घाव पर बाँधने की एक पट्टी, रेशम का कोया, मद्य-पात्र, दिव्यपात्र या एक ऐसा पात्र जिसका प्रयोग प्राचीन काल में दो राजाओं के बीच सन्धि स्थिर करने में होता था[९], अर्थ-समूह[१०], शब्दादि संग्रह[११] इत्यादि । वेदान्ती लोग मनुष्य में पाँच कोषों की कल्पना करते हैं—अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय एवं आनंदमय ।[१२]

उपरोक्त समस्त गौण प्रयोगों के अतिरिक्त 'कोश' शब्द का सर्व प्रचलित प्रमुख एवं अभिधेय अर्थ है—वह ग्रन्थ जिसमें अर्थ व पर्याय सहित शब्द एकत्र किये गये हों । उसका अतिव्यापक, सर्व-प्रसिद्ध, लोकप्रिय एवं मूलभूत लक्षण 'शब्दों का संग्रह'[१३] करना है । शब्द अनेक प्रकार के होते हैं और उनको भिन्न-भिन्न दृष्टियों से और शैलियों पर संग्रहीत किया जाता है । अतएव कोश मुख्यतः एक वर्गवाची शब्द[१४] है । परन्तु सामान्य अर्थों में कोश का तात्पर्य शब्दों के एक ऐसे संग्रह से है जिसमें उनके (शब्दों के) प्रचलित एवं शुद्ध रूप एवं अर्थ और व्याख्यायें दी हुई हों ।

---

१. 'कोषो बलंचापहृतं तत्रापि स्वपुरे ततः—मार्कण्डेयपुराण, देवीमाहात्म्य ।
२. कोशोऽस्त्री कुड्मलेऽर्थाघे गुह्येऽण्डे शास्त्रदिव्ययोः ।
   गृहे देहे पुस्तकौघे पेश्यामसि पिधानके ॥ —नानार्थरत्नमाला, पृ० ५७ ।
३. 'स्यात्कोशश्च हिरण्यं च हेमरूप्ये कृताकृते'—अमरकोश २।९।९१ ।
४. 'अव्यक्तमाहुर्हृदयं मनश्च स चन्द्रमाः सर्व्व विकार कोशः'—भागवत, २।१।३४ ।
५. 'वीजकोस जामें कमल गट्टा रहे हैं'—कर्णाभरण, पत्र २१ पीठ ।
   'यीवा अयं द्वीपः कुवलयकमलकोषाभ्यन्तरकोशः'—भागवत, ५।१६।६ ।
६. तिरश्चकार भ्रमराभिलीनयोः । सुजातयोः पंकजकोशयोः श्रियम् ॥ रघुवंश ३।८ ।
७. कोशोऽस्त्री मुकुले दिव्ये शस्त्रार्थौघे गृहे तिथौ ।
   शिश्ने जातिफले खड्गपिधाने योनि वित्तयो : ॥ नानार्थमंजरी (राघव)
८. कोशो दिव्येवने पेश्यां परिवारे च कुड्मले ।
   जातीकोषे धनागारे चषके योनि शम्बयो ॥—अनेकार्थ तिलक (महिप), २।५५ ।
९. वही, ६।५ ।
१०. तमध्वरे विश्वजिति क्षितीशं । निः शेष विश्राणित कोष जातम् ॥ रघुवंश ५।१ ।
११. मेदिनी कोश ।
१२. विवेक चूड़ामणि ।
१३. कोषो दिव्य धनेऽपि स्यात् कुड्मलासिपिधानयोः
   पनस्यादिफलस्यान्तः कोषः शब्दस्य संग्रहः—'त्रिकाण्ड चिन्तामणि,' पृ० ६४ ।
१४. रामचन्द्र वर्मा : शब्द साधना, पृ० ७१ ।

कोश की ही भाँति 'कोशकार' भी दोनों रूपों में लिखा जाता है। 'शब्द कल्पद्रुम' में दोनों रूपों की व्युत्पत्ति सामान्यतः एक ही प्रकार से दी गई है।[1] इसका अर्थ ईक्षु, ऊख या कुसियार विशेष भी होता है।[2] यह गुरु, शीत, रक्त पित्त तथा क्षयनाशक है।[3] कोशकार मूल व मध्य में मधुर होता है।[4] यह एक प्रकार का कीड़ा भी होता है जिसकी आकृति तथा कर्म रेशमी कीड़े के ही सदृश है।[5] वह एक जनपद विशेष भी था जहाँ पहले तन्तुकोट उत्पन्न होते थे।[6] यह कोशकार भूमि आसाम राज्य के उत्तर स्थित चीन देश जैसी अनुमित होती है। भौगोलिक टॉलेमि ने 'सेरिके' नाम से इसी भूभाग को अभिहित किया है। रामायण में भी उत्तरवर्त्ती जनपदों में कोशकार जनपद का उल्लेख[7] मिलता है। परन्तु ये सभी प्रयोग गौण तथा अप्रचलित हैं। बहुप्रचलित, मुख्य तथा मूलभूत रूप से अर्थ सहित (या रहित) शब्दों का संग्रह करने वाला या अभिधानकर्ता ही 'कोशकार' है :

'कोषं अर्थ सहित शब्द संयोजन रूपं ग्रन्थ विशेषं करोति'

कोश एवं शब्द का सम्बन्ध शरीर तथा आत्मा का सा है। अतएव शब्द के जन्म, विकास, परिवर्तन व परिवर्द्धन के साथ ही कोश के मूलभूत उपादान एवं सामान्य लक्षण विषयक धारणायें भी समय की अवधि के साथ-साथ परिवर्तित होती गईं। आज कोश में 'शब्द संग्रह' ही नहीं, उनका 'सम्यक् वर्ण-विन्यास, अर्थ, प्रयोग, पर्याय आदि'[8] का देना भी आवश्यक माना गया है।

'कोश, शब्द अंग्रेज़ी के 'डिक्शनरी' शब्द का समानार्थी है। यह सर्व प्रथम अंग्रेज़ी विद्वान् जॉन गारलैण्ड[9] द्वारा सन् १२२५ ई० में 'शब्दों की एक सूची' (डिक्शनैरियस—डिक्शनरी) अर्थ में लैटिन शब्दों को कंठाग्र करने के लिये निर्मित एक पांडुलिपि के शीर्षक के लिये प्रयुक्त किया गया था, जिनमें शब्द अकारादिक्रम में संयोजित न होकर

---

१. कोशं (कोषं) करोति त्वक्पत्रादिभिरात्मानमाच्छादयति। कोश (कोष) +कृ +अण' —शब्दकल्पद्रुम, खण्ड २, भाग १, पृ २०५—२०६।

२. शब्दरत्नावली। ३. राजवल्लभ। ४. भावप्रकाश।

५. 'कोषं स्ववेष्टनं स्वमुखनिः सृतलालारूपतन्तुभिः करोतीति' —सुश्रुत।

६. अलं परिग्रहेणेह दोषवान् हि परिग्रहः।
कृमिर्हि कोषकारस्तु बध्यते स्वपरि ग्रहात्॥— महाभारत १२।३२९।२९।

७. मागधांश्च महाग्रामान् पुण्ड्रस्तंगा तथैव च।
भूमिञ्चकोषकाराणां भूमिञ्च रजताकरम्॥—रामायण, किष्किन्धाकाण्ड ४०।३३।

८. 'बृहत हिन्दी कोश' में देखिये 'कोष' शब्द।

९. Jonnes De Garlandia कृत 'Dictionaris' —दे० नेलसन्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड ३, पृ० २०८।

वर्गानुसारी पद्धति में संकलित थे ।[1] अंग्रेज़ी भाषा का दूसरा शब्द 'लेक्सिकन' भी 'डिक्शनरी' का ही पर्याय है[2] यद्यपि बहुत से विद्वान् 'लेक्सिकन' को मृत-भाषाओं, यथा पुरानी ग्रीक, हिब्रू या अरबी आदि का कोश कहना ही अधिक श्रेयस्कर समझेंगे[3] ।

संस्कृत तथा उसी के अनुकरण पर हिन्दी में 'कोश' के लिए नाममाला, माला, शब्द-माला, शब्दरत्नमाला, शब्दसिन्धु, शब्दार्णव, शब्दरत्नसमुच्चय, निघण्टु, अभिधानसंग्रह, नाम चिन्तामणि, वर्णरत्नाकर इत्यादि नाम व्यवहृत हुए हैं । फ़ारसी का 'लुग़त' शब्द भी कोश का ही द्योतक है । अंग्रेज़ी में 'डिक्शनरी' तथा 'लेक्सिकन' के अतिरिक्त ortus या hortus ('वाटिका', यथा wynkyn de worde द्वारा रचित ortusvocbularium), promptorium (भाण्डार, यथा Galfridus Grammaticus द्वारा रचित Promptorium parvulorium —१४४० ई०) और Alvearie (मधुमक्खी का छत्ता, जैसे John Baret द्वारा निर्मित Alvearie—१५७३ ई०) शब्द प्रयुक्त हुए हैं ।

कोशों के कार्य

कोशों की वर्ण्य-विषय सम्बन्धी धारणायें भी कालान्तर में परिवर्द्धित होती गईं । मूल रूप से 'शब्दों का संग्रह' मात्र तक उद्देश्य रखने वाले कोशों का क्षेत्र अद्यावधि प्राविधिक एवं अन्य इतर विषयों तक भी बढ़ गया है ।[4] शब्दों की उसी या किसी अन्य भाषा में मुख्य रूप से व्याख्याएँ भी देने[5] के अतिरिक्त वर्तमान कोशों में किसी भाषा या उसके अंग-विशेष के भिन्न-भिन्न शब्दों का वर्ण-क्रम, उच्चारण, अर्थ, प्रयोग, निरुक्ति और व्याकरणिक रूपों का भी यथासम्भव निर्देश रहता है । विस्तृत कोशों में शब्द सम्बन्धी सूचना साहित्यिक उद्धरणों द्वारा भी पुष्ट की जाती है ।[6] मूल रूप

१. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, १४वां संस्करण, खण्ड ७, पृ० ३३८ ।
२. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, ११ वां संस्करण, खण्ड १५, पृ० ५२६ ।
३. एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी, खण्ड ३, पृ० ३२ ।
४. "......The modern use of the term dictionary is not limited to a simple compilation but has been extended to technical and other subjects."—एनसाइक्लोपीडियाअमेरिकाना, खण्ड ९, पृ० ८८ ।
५. "......a List of all or most of the words in a language with explanation of their meanings, pronunciation and origin of their equivalents.—नेलसन्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड ३ पृ० २०८ ।
६. " . . . . . A book dealing with the individual words of language (or certain specified classes of them) so as to set for their orthography, pronunciation, signification, and use, their synonyms, derivation and history or at least some of these facts ...... in larger dictionaries the information given is illustrated by quotation from literature . . . . "
—ए न्यू इंग्लिश डिक्शनरी ऑन हिस्टारिकल प्रिन्सिपल्स, खण्ड ३, पृ० ३३१

से कोश 'शब्दावली का निर्माता'[१] होते हुए यथास्थान शब्दों से सम्बद्ध अनेकानेक सूचनायें भी संगृहीत करता है। एक आदर्श कोश में उपर्युक्त तत्त्व ही नहीं, भाषा का इतिहास, शब्दों के पर्याय, संक्षिप्त रूप, विदेशी मुहावरे, गद्य या काव्य में प्रचलित प्रसिद्ध व्यक्तितत्त्व, बेतार के तारों सम्बन्धी चिह्न, नाप तौल की तालिका, प्रत्यय और उपसर्गों का संग्रह, सामान्य बोलचाल या लेखों में मान्य व्यक्तियों को सम्बोधित करने की पद्धतियाँ, बर्तनी की कठिनाइयाँ[२], जीवनी-कोश, भौगोलिक कोश, विशिष्ट चिह्न एवं संकेत, देश विशेष के संविधान, तथा व्यापार और वाणिज्य विषयक शब्दावली[३] का भी संकलन रहता है। कोशों के विषय सम्बन्धी इस विस्तार के कारण लाक्षणिक अर्थों में 'ज्ञान के भण्डार'[४] को भी 'कोश' नाम से अभिहित किया जाता है।[५]

शब्दों की संग्रह-प्रणाली में भी कालान्तर में अनेकानेक परिवर्तन आ गये। आजकल कोश मूलतः 'संदर्भ-ग्रंथ' माने जाते हैं, अतएव इनमें संकलित शब्दों को आसानी से ढूँढ़ने के लिए[६] अकारादिक्रम या किसी अन्य सुनिश्चित पद्धति का आश्रय लेना पड़ता है।[७] कुछ विद्वानों के मतानुसार कोशों को संदर्भ-ग्रंथ बनाने के लिये अकारादिक्रम के अतिरिक्त अन्य कोई भी पद्धति सहनीय नहीं, परन्तु कोशों में अर्थ की उपयोगिता को देखते हुए वर्गात्मक शैली पर शब्दों की नियोजना को भी वरेण्य माना गया है।[८]

कोशों के प्रकार

विस्तृत अर्थ में यदि कोश का तात्पर्य मुख्यतया 'संदर्भ-ग्रन्थ' माना जाय तो कोशों के अनेक भेदोपभेद किये जा सकते हैं। 'निघण्टु' में वैदिक शब्दावली मात्र दी हुई है, जिसकी व्याख्या यास्ककृत 'निरुक्त' में हुई। पाश्चात्य विद्वान् 'निघण्टु' शब्द को केवल वैदिक कोश का पर्याय मानते आये हैं[१०], परन्तु 'निघण्टु' शब्द परवर्ती कोश-

१. हाट्र्म्फुस वाकेबुलेरीज़, भूमिका, पृ० ७।
२. दि वेस्टमिनिस्टर डिक्शनरी, पृ० ११४७-१२०३।
३. वेब्स्टर्स ट्वेंटियथ् सेंचुरी डिक्शनरी, सप्लीमेण्ट, पृ० १–१५७।
४-५. ए न्यू इंग्लिश डिक्शनरी ऑन हिस्टारिकल प्रिन्सिपल्स, खण्ड ३, पृ० ३३१।
६. नेलसन्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड ३, पृ० २०८।
७. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, ११ वां संस्करण, खण्ड ८, पृ० १८६।
८. एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड ९, पृ० ८७।
९. डार्लिंग बक : ए डिक्शनरी आव सेलेक्टेड सिनानिम्ज़ इन दि प्रिन्सिपल इण्डो यूरोपियन लैंग्वेजेज़, भूमिका, पृ० १२।
१०. 'यातयामो जीर्णे भुक्तोच्छिष्टेऽपि च इति निघण्टौ' पाठ पर मैकडानेल ने लिखा है—'Not in Yaska's Nighantu' परन्तु यह उक्ति वैजयन्ती कोश में उपलब्ध है।

कारों द्वारा अपने कोशों के लिये प्रयुक्त हुआ है और वैद्यक शब्दों के कोशों के लिये तो प्रायः 'निघण्टु' नाम ही दिया गया। नाम-कोश (नामेन्क्लेचर) में नाम वाचक शब्दों अर्थात् जातिवाचक संज्ञाओं की ही प्रधानता रहती है। ऐसे कोशों में विशिष्ट नामों के अन्यान्य पर्यायवाची या उसी अर्थ या भाव के बोधक शब्दों का संकलन एक स्थान पर रहता है। आजकल के नामकोशों में व्यक्तिवाचक संज्ञाओं को ही प्राथमिकता दी जाती है[१]। 'पर्यायिकी' (सिनानिमी) में एक दूसरे के पर्याय माने जाने वाले शब्दों में अर्थ व प्रयोग सम्बन्धी पारस्परिक सूक्ष्म अन्तर की विवेचना, शब्द का उचित अनुचित प्रयोग तथा आवश्यकतानुसार विपर्याय भी निर्देशित कर दिये जाते हैं।[२] किसी विषय से सम्बन्धित शब्दों का सीमित संख्या में व्याख्या रहित या आंशिक व्याख्या वाला क्षेत्र-विशेष में प्रयुक्त शब्दों का क्रमबद्ध संकलन 'शब्दावली' (वाकेबुलेरी) कहलाता है।[३] किसी कोश, लेखक, विभाषा व कला के आंशिक अंग के कठिन, विदेशी, असाधारण, पारिभाषिक व गत-प्रयोग शब्दों की व्याख्या सूची को 'शब्दार्थी' (ग्लॉस्सेरी) कहते हैं।[४] शब्दार्थी को 'व्याख्यात्मक शब्दावली भी कहा जा सकता है।[५] पुनः उपभाषा के शब्द-कोशों को भी साधारणतः शब्दार्थी नाम दे दिया जाता है।

किसी कृति या ग्रन्थकार द्वारा प्रयुक्त शब्दों का अपने पूर्वस्थान को इंगित करते हुये अकारादिक्रम नियोजन को 'अनुसूची' कहते हैं। प्रतिष्ठित रचनाओं में प्रयुक्त विदेशी शब्दों का पाठकों की भाषा में अकारादिक्रम से अनुवाद भी 'अनुसूची' में ही किया जाता है। यदि प्रत्येक शब्द के उसी शब्द युक्त मुहावरों को प्रसंगों में जोड़ा गया हो तो वह 'कॉनकार्डेन्स' कहलाता है।[६] 'जीवनीकोश' में विभिन्न देशीय व्यक्तियों के व्यवसाय, चरित्र, वास्तविक, काल्पनिक, सामान्य एवं विशिष्ट दृष्टिकोण से अंकित होते हैं। भूगोल शास्त्र का कोश भौगोलिकी (गैज़ेटियर) कहलाता है।[७] इसमें समस्त विश्व, महाद्वीप, विशिष्ट देश, भूखण्ड, कस्बे, गाँव, गगनचुम्बी अट्टालिका, मठ, नगर, पर्वत तथा नदियों के सम्बन्ध में मुख्य बातें निर्देशित की जाती हैं। उन्नत देशों की सरकारें ऐसी 'भौगोलिकी' स्वयं निर्मित करवाती हैं जिनमें प्रत्येक नगर या बस्ती का प्राचीन इतिहास और उसके निवासियों, उद्योग-धन्धों आदि का विवेचन या

---

१. क्रैब : इंग्लिश सिनानिम्स।
२. रामचन्द्र वर्मा : शब्द साधना, पृ० ७१।
३. एनसाइक्लोपोडिया डिक्शनरी, खण्ड ३, पृ० ३२।
५. चेम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड ४, पृ० ४९९।
६. एनसाइक्लोपोडिया ब्रिटानिका, ११वां संस्करण, खण्ड ८, पृ० १८६।
७. सेंचुरी डिक्शनरी में देखिये 'डिक्शनरी' शब्द।

परिचय रहता है। दर्शन, विज्ञान, गणित शास्त्र, प्राकृतिक इतिहास, प्राणिशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, पक्षी, पेड़, पौधे, फूल, रसायन शास्त्र, भूगर्भ शास्त्र, धातु विज्ञान, भवन निर्माण कला, रंगसाजी तथा संगीत, भैषज, शल्यचिकित्सा तथा शरीर-विज्ञान, राजनीति, कूटनीति, विधि तथा सामाजिक शास्त्र, कृषि, ग्रामीण अर्थशास्त्र और बागवानी, वाणिज्य, समुद्री विज्ञान, घुड़साजी, युद्धकला कौर कल इत्यादि विषयों के लिये विभिन्न कोश वर्तमान समय में निर्मित हो गये हैं। प्राचीन कालीन विषयों, इतिहास और घटनानुक्रम, तिथि, वंशक्रम, कूटनीति-शास्त्र, संक्षेपीकरण, रसीद और यहाँ तक कि दूषित पदार्थों के मिश्रण जैसे विषयों तक के भी कोश भी अद्यावधि निर्मित हो चुके हैं[1]; धातु कोश, मुहावराकोश, कहावतों तथा लोकोक्तियों जैसे विषयों के कोश, विभिन्न लेखक और कवियों द्वारा प्रयुक्त शब्दावली के कोश यथा 'प्रसाद कोश' 'तुलसी कोश एवं' 'सूर कोश' भी आजकल उपलब्ध होते हैं।

पदावली (फ्रेजियालोजी) किसी विशिष्ट वैज्ञानिक विषय के पारिभाषिक शब्दों तथा पदों की सूची होती है, जिसमें आवश्यकतानुसार व्याख्यायें भी दी जा सकती हैं, उदाहरण के लिये संविधानिक पदावली।

कोश एवं विश्वकोश

विश्वकोश (एन्साइक्लोपीडिया) में विश्व के समस्त मुख्य-मुख्य विषय सम्बन्धी विस्तृत विवेचन करने वाले ऐसे सुदीर्घ निबन्ध या लेख होते हैं, जिनसे उस विषय से सम्बद्ध सभी ज्ञातव्य तथ्यों का परिचय उपलब्ध हो सके। 'एन्साइक्लोपीडिया' शब्द का प्रारंभिक अर्थ ज्ञान की प्रत्येक शाखा के समस्त 'वृत्त' से होता था, जिन तक प्राचीनों की उदार शिक्षा की पहुँच थी।[2] विश्वकोश में 'उपकरणों का वर्णन' और शब्द-कोश में 'शब्दों का विश्लेषण' ही प्रमुख ध्येय होता है। इनमें से प्रथम वस्तुओं का और द्वितीय शब्दों का कोश है।[3] शब्दों की परिभाषा तथा वर्ण-परिवर्तन रूप-भेद, प्रयोग, स्वीकरण आदि शब्दकोश के विषय हैं परन्तु वस्तुओं की प्रकृति और प्रगुण, निर्माण-विधि, प्रयोग-विधि तथा शक्ति का विवरण करना विश्वकोश का विषय क्षेत्र है। इसमें कला और विज्ञान के प्रत्येक अंग का सामान्य परिचय ही नहीं, उनके सूक्ष्मतम एवं प्राविधिक प्रक्रियाओं तक पहुँचने का प्रयास भी किया जाता है। 'शब्दकोश' में भी वस्तुओं के वर्णन रहते हैं परन्तु ये वर्णन केवल सम्बन्धित शब्द का प्रयोग एवं सार्थकता के प्रतिपादन के लिये ही[4] माध्यम रूप से रहते हैं, पुनः इसका

१. **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (११वां संस्करण), खण्ड ८, पृ० १८६।**
२. **एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड १०, पृ० ३१६।**
३. **चैम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड ४, पृ० ४९९।**
४. **एनसाइक्लोपीडिक डिक्शनरी, खण्ड ३, पृ० ३२।**

क्षेत्र प्रायः समान और सीमित होता है। 'विश्वकोश' की शब्दावली अधिकांशतः संज्ञा तक ही सीमित होती है—उनमें वस्तुओं के नाम, विवरण एवं विधा या निर्माण-प्रक्रिया ही मुख्य अभिधेय होता है। आधुनिक कोशों में केवल संज्ञा ही नहीं भाषा के सभी प्रचलित शब्द-भेद संकलित होंगे। इसी दृष्टि वैभिन्य के फलस्वरूप 'भाव', 'यदि', 'मैं', 'करना' जैसे शब्द केवल शब्द-कोश में तथा 'फोटोग्राफी' एवं 'पुस्तक-बन्धन' (बुकबाइंडिंग) जैसे विषय केवल विश्वकोश में ही मिलेंगे।[1] पुनः न्यू इंग्लिश डिक्शनरी जैसे अपवादों को छोड़कर प्रायः सभी शब्दकोशों का संकलन या संपादन एक व्यक्ति भी करता या कर सकता है, परन्तु एक विश्वकोश के लिये अपेक्षित ज्ञान की विशिष्टता, व्यापकता एवं अनेक-रूपता को देखते हुए अलग अलग विषयों के लेख विशेषज्ञ विद्वानों द्वारा ही लिखवाये जाते हैं।[2] विश्वकोश सम्पादन की आधुनिक प्रणाली के अनुसार विशेषज्ञों का एक दल सम्पादक तथा संकलनकर्ता के रूप में नियुक्त किया जाता है। वस्तुस्थिति तो यह है कि ऐतिहासिकों, वैज्ञानिकों, धर्मशास्त्रियों, विधि-वेत्ताओं आदि विशेषज्ञों के दल के बिना विश्वकोश का सम्पादन करना अत्यन्त दुष्कर यहाँ तक कि असम्भव सा ही है। विश्वकोश का प्राथमिक उद्देश्य ही तत्कालीन विशिष्ट ज्ञान को एकत्र कर इस प्रकार सँजोना है कि वह विशेषज्ञों को मान्य हो।[3] पुनः चित्रात्मक निदर्शन, रेखाचित्र तथा कलात्मक आकृतियों का प्रयोग प्राचीन विश्वकोशों के समान सीमित न होकर अब पर्याप्त रूप से विस्तृत तथा परिष्कृत हो गया है।

कोशों की मौलिकता

कोशों का निर्माण करना एक मौलिक कला है या नहीं यह भी एक विचारणीय प्रश्न है। संस्कृत कोशों में अमरसिंह का अमरकोश सर्वश्रेष्ठ एवं सर्वोत्कृष्ट कोश रत्न माना जाता है।[4] संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार करने के लिये इस कोश का सम्यक् अध्ययन परमावश्यक बताया गया है। परन्तु इस कोश-मणि की संकलन-प्रणाली भी अमरसिंह के प्रतिज्ञाश्लोक के अनुसार अन्य कोशों के 'समाहार' एवं 'संक्षेप' तथा 'प्रतिसंस्करण' और 'वर्ग विभाजन' द्वारा की गई है।[5] अपने से पूर्व रचित कोशों का पूर्णतः समाहार करने के फलस्वरूप ही प्रस्तुत कोश पर्याप्त मात्रा में

---

१. ए न्यू इंग्लिश डिक्शनरी ऑन हिस्टॉरिकल प्रिन्सिपल्स, खण्ड १-२, भूमिका।
२. क्रैब : इंग्लिश सिनानिम।
३. एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड १०, पृ० ३१७।
४. राघवान् : अमरमण्डन, भूमिका, पृ० १६।
५. समाहृत्यान्यतन्त्राणि संक्षिप्तैः प्रतिसंस्कृतैः।
सम्पूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिंगानुशासनम्॥ —अमरकोश १।१।२।

मान्य तथा समग्रतः पूर्ण समझा जाता है।[1] अन्य 'तन्त्रों' के प्रति अमरसिंह पर्याप्त ऋणी थे, इतने अधिक कि उनके द्वारा स्पष्ट शब्दों में कृतज्ञता प्रदर्शित करने के उपरान्त भी उनपर चोरी का आरोप लगाया गया है।[2]

परन्तु कोश विषय की अन्तःस्थिति में प्रवेश करने के पश्चात् इस आरोप का निराकरण बहुत आसानी से हो सकता है। अमरकोश ही क्या, संस्कृत के[3] या किसी भी दूसरी भाषा के उत्तरोत्तर कोशों पर दृक्पात करें तो यह तथ्य स्पष्ट सामने आ जायेगा कि उत्तरवर्ती कोश सामान्यतः किसी पूर्ववर्ती कोश का परिष्कृत, परिवर्द्धित या संक्षिप्त रूप हैं। कई कोशों में तो नाम, शीर्षक एवं आंशिक हेर-फेर के अलावा शेष कुछ भी नवीनता नहीं। इसीलिये यह भी उचित ही कहा गया है कि पारस्परिक निर्भरता भाषा-विज्ञान का एक मूलभूत सिद्धान्त है।[4] यह उक्ति कोशों पर और भी अधिक मात्रा में लागू होती है।

सच बात तो यह है कि न तो शब्द और न ही अर्थ संकलनकर्ता की अपनी निजी सम्पत्ति होती है। परन्तु कोश में शब्द और अर्थों से भी अधिक उनकी नियोजन-प्रणाली का महत्त्व है, जिसमें कोई भी कोशकार अपनी मौलिकता का उपयोग कर सकता है।[5] निष्कर्ष यह है कि यद्यपि कोशों की निर्माण-पद्धति को हम साहित्य की अन्य विधा—उपन्यास, नाटक व काव्य—के समान एक मौलिक रचना नहीं कह सकते, फिर भी इसमें मौलिकता दिखाने एवं स्वविवेक तथा ज्ञान-बुद्धि का उपयोग करने के लिये पर्याप्त क्षेत्र है।

---

१. **'अन्यतन्त्राणि व्याडिवररुचिप्रभृतीनां तन्त्राणि समाहृत्य एकीकृत्य। अतएव सम्पूर्णमिदं यतस्त्रिकाण्डोत्पलिन्यादीनि नाममात्र तन्त्राणि, व्याडिवररुच्यादि-प्रणीतानि तु लिंगमात्रतन्त्राणि' —सर्वानन्द, अमरकोश टीका, प्रथम भाग, पृ० २–४।**

२. **'अमरसिंहस्तु पापीयान् सर्वभाष्यमचूचुरत्,' (लोकप्रचलित)।**

३. **रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश, भूमिका, पृ० ४–५३।**

४. " ..... Interdependence is of course the keynote of philology. Without it little could be done ..... "
—रॉबर्ट कॉलिन्स : डिक्शनरीज ऑव फ़ारेन लैंग्वेजेज, भूमिका, पृ० १६।

५. " ..... The words and meanings of the words of a dictionary can scarcely be proved by its compilers to belong exclusively to themselves. It is not the mere aggregation of words and meanings but the method of dealing with them and arranging them, which gives a dictionary the best right to be called an original production."
—मोनियर विलियम्स : संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, भूमिका, पृ० ५।

कला अथवा विज्ञान

कोश संपादन एक कला है या विज्ञान, यह प्रश्न भी विचारणीय है। कला का अर्थ सामान्यतः उत्कृष्ट कलाओं से लिया जाता है, जिनमें कल्पना का प्रमुख हाथ रहता है। कला विषयगत कम और विषयीगत अधिक होती है। और यह विषयीगत माध्यम ही कला के लिये अधिक लाभदायी बताया गया है, जिसके फलस्वरूप उत्कृष्ट कलाकृतियों की उद्भावना होती है।[1] वैज्ञानिक-विधि इससे भिन्न है। वह प्रयोग, पर्यवेक्षण, विश्लेषण, संश्लेषण, आंशिक कल्पना, निष्कर्ष, तुलना, वर्गीकरण आदि पर अधिक निर्भर रहती है। विकासात्मक, गणनात्मक तथा निगमन और आगमन शैलियों पर वैज्ञानिक अध्ययन अधिक आधारित रहता है।[2]

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के पश्चात् जब हम कोशों की रचना-प्रणाली का अध्ययन करते हैं, तो समस्या अधिक सुलझती नहीं दिखाई देती। एक शैली विशेष पर निर्मित समानार्थी या अनेकार्थी कोशों की रचना-प्रक्रिया को 'कला' ही कहना अधिक उपयुक्त है। सम्भवतः इसीलिये श्री रामचन्द्र वर्मा कोश-रचना का अन्तर्भाव 'कला में ही मानते हैं।[3] परन्तु डॉ० हेमचन्द जोशी एवं डॉ० हरदेव बाहरी कोश-रचना को कला की अपेक्षा एक विज्ञान ही कहना अधिक उपयुक्त समझते हैं। वास्तव में यदि अंग्रेजी के सेंचुरी, ऑक्सफ़ोर्ड या वेब्स्टर्स कोशों या हिन्दी के शब्दसागर जैसे कोशों की रचनाविधि का सम्यक् अध्ययन किया जाय तो यह पद्धति कलात्मक कम और वैज्ञानिक ही अधिक प्रतीत होगी। अतएव आदर्श कोशों की रचनाप्रक्रिया को 'कला' न कहकर 'विज्ञान' कहना ही औचित्यपूर्ण है।

कोश एवं अन्य साहित्योपांगों का पारस्परिक सम्बन्ध

जैसे पिछले अनुच्छेदों में स्पष्ट किया गया है कि विस्तृत अर्थों में कोश समग्रतः ज्ञान के भाण्डार के लिये कहा जाता है। स्पष्ट है कि ज्ञान-भाण्डार के इस शास्त्र का प्रत्येक अन्य विषय से कुछ न कुछ मात्रा में सम्बन्ध अवश्य होगा। यह सम्बन्ध वास्तव में किन दिशाओं में अधिक घनिष्ठ और कहाँ धूमिल है, यह निश्चित करना अत्यन्त दुष्कर है, फिर संदर्भ-ग्रन्थों के प्रतिनिधि आधुनिक कोशों का किस शास्त्र या विज्ञान से सम्बन्ध नहीं है, यह बताना भी असम्भव ही है। तत्ववेत्ता (मेटाफिज़िशियन्स) इस तथ्य पर एकमत हैं कि कोई भी बौद्धिक क्रिया शब्दों के माध्यम बिना सम्पन्न नहीं हो

---

१. एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड, पृ० ३३६, व ४४०-४४२।
२. दे० एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, १४ वां संस्करण, खण्ड २०, पृ० १२५–१३१ में 'दि साइंटिफिक मेथेड्स' लेख।
३. रामचन्द्र वर्मा : कोशकला (नम्र निवेदन) पृ० ३।

सकती है। अतएव ज्ञान की प्रत्येक शाखा के क्षेत्र में कोशों का पारस्परिक योगदान असंदिग्ध है।[1]

कोश और इतिहास— राजनीतिक, धार्मिक तथा सामाजिक, सभी प्रकार के इतिहास से कोशों का सम्बन्ध होता है। आजकल के हिन्दी कोशों में प्रचुर मात्रा में अरबी, फ़ारसी, तुर्की और अंग्रेज़ी के शब्द संकलित रहते हैं, जो हमारी पिछली आठ नौ सौ वर्षों की दासता का परिचायक है। संस्कृत के कोशों में 'विधवा' शब्द का अस्तित्व, तथा जिसकी पत्नी का देहान्त हो चुका हो उस अभागे पुरुष के लिए किसी विशेष शब्द का अभाव संभवतः इस बात का सूचक है कि प्राचीन आर्यों के समाज में पत्नी के देहान्त पर पुनर्विवाह का अधिकार पुरुष ने अक्षुण्ण रखा था जो स्त्री को नहीं दिया गया था। इधर प्रथम और द्वितीय महायुद्ध के फलस्वरूप नवीन आविष्कार ओर तद्विषयक शब्दावली का आधुनिक कोशों में संकलन किया जाने लगा है। अंग्रेज़ी कोशों में blackout, evacuation, fifth column, lend-lease, paratroops, underground movement आदि शब्द संकलित किए जाने लगे हैं। प्राविधिक प्रगति ने रेडार, साइक्लोट्रोन, एटम और हाइड्रोजन बम, आइरन-लंग्ज़, जोप, नाइलोन, पेनिसिलिन् इत्यादि शब्द आज से एक सौ वर्ष पूर्व के कोशों में उपलब्ध न होंगे।[2]

कोश एवं समाजशास्त्र—समाज-विशेष के वक्ताओं को ध्यान में रखते हुए हो कोशों का निर्माण सामान्यतः किया जाता है। सामाजिक संस्थाओं, विचारों परिपाटियों तथा धारणाओं को ठीक रूप से समझे बिना कोई भी कोशकार अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सकता। मिर्ज़ा खाँ ने अपने 'तुहफ़तुलहिन्द' में इस प्रकार की शब्दावली और पद्धतियों का पर्याप्त संग्रह और विवेचन किया है जो भारतीय समाज एवं संस्कृति पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैं। 'ऊँट' और 'रेत' तथा 'डूंगर' शब्द डिंगल कोशों में ही क्यों संकलित किए गए हैं और अन्यों में नहीं, यह प्रश्न कोश और समाजशास्त्र का पारस्परिक सम्बन्ध स्पष्ट कर देता है।

कोश तथा मनोविज्ञान—मनोविज्ञान का शब्दों के अर्थ इत्यादि पर पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। शब्दों का कलात्मक प्रयोग आदि विषय मनोविज्ञान के क्षेत्र से सम्बन्धित हैं। कोशों में इन अर्थों का उचित मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि में देना परम आवश्यक होता है।

---

१. **पी० एम० राजेट : दि इण्टरनेशनल थेसारस, भूमिका, पृ० ९।**
२. **डॉ० पॉल सी० बर्ग : 'ए डिक्शनरी ऑव् न्यू वर्ड्स', भूमिका, पृ० ११।**

कोश और काव्य—मम्मट तथा भामह ने अर्थ सहित शब्द को ही काव्य माना है ।[1] शब्द एवं उनके अनेकानेक प्रचलित अर्थों के लिए कोश की उपादेयता असंदिग्ध है । संस्कृत तथा विवेच्यकालीन अनेक हिन्दी कोश मूलतः कवियों तथा काव्यप्रेमियों के उपयोगार्थ निर्मित किए गए थे । अनेकार्थी और पर्याय कोशों का मुख्य ध्येय तो श्लेष और उपमाप्रिय काव्यकारों की ही सहायता करना था । इन कोशों की शब्दावली भी प्रायः काव्यों में प्रचलित ही है । पुनः अधिकांश कोशकार स्वयं कवि भी थे और उन्होंने इन कोशों को छन्द में रचकर छन्दशास्त्र के ज्ञान का भी अच्छा परिचय दिया । 'ऑक्सफ़ोर्ड' या 'शब्दसागर' जैसे कोशों में अनेक कवियों की रचनाएं उद्धरण रूप में दे दी गई हैं ।

कोश तथा भाषाविज्ञान—किसी भी भाषा के विकास-क्रम को उचित रूप से समझने के लिए उस भाषा के बहुत बड़े शब्द-समूह पर कई दृष्टियों से विचार करना आवश्यक हो जाता है । शब्दों के रूप में कब और कैसे परिवर्तन हुए, इसका अध्ययन करने के लिए समय समय पर होने वाले शब्दों के रूप-भेद की पूरी जाँच करनी होती है, तभी शब्दों के रूप-परिवर्तन में बरते जाने वाले नियमों का भी स्पष्टीकरण हो पाता है । इस क्षेत्र में ऐतिहासिक क्रम में निर्मित कोश बहुत सहायक सिद्ध हो सकते हैं । पुनः किसी भाषा के शब्दकोश को उठाकर अर्थ और प्रयोग की दृष्टि से अध्ययन करना भी भाषा-विज्ञान के ही अन्तर्गत समझना चाहिए ।[2]

भाषा का ऐतिहासिक उद्भव प्रस्तुत करना भी कोशों के मुख्य कार्यों में से है । बिना शब्दों की उत्पत्ति, उनका रूपात्मक एवं प्राविधिक प्रयोग के कारण रूपपरिवर्तन का सांगोपांग विवेचन किए कोई भी शब्दकोश अपने कर्त्तव्य का उचित पालन नहीं कर सकता ।

प्रत्येक शब्द में अन्तर्निहित भाव का एक दूसरे भाव से सम्बन्ध होता है । अर्थ-विज्ञान एक शब्द के विभिन्न भावों का ऐतिहासिक सम्बन्ध प्रदर्शित करता है परन्तु एक सामान्य कोश में वे सभी भाव या अर्थ एक क्रमहीन अवस्था में संकलित किए जाते हैं, परन्तु सुदृढ़ वैज्ञानिक पद्धतियों पर आधारित ऐतिहासिक कोश में ये विभिन्न अर्थ शुद्ध ऐतिहासिक क्रम में नियोजित रहते हैं । अर्थ-विज्ञान के सम्यक् अध्ययन बिना आदर्श कोशकार उचित रूप से कार्य नहीं कर सकता ।[3] कोश-विज्ञान केवल शब्दों का

१. **'तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलंकृती पुनः क्वापि' मम्मट, काव्य प्रकाश, 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्'—भामह, काव्यालंकार १:१६ ।**
२. **डॉ० बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० २९ ।**
३. **'ब्राह्मणेन निष्कारणो धर्म्मा : षडंगो वेदो अध्येयो ज्ञेयश्च'**
—महाभाष्य १, पृ० ६ ।

जन्म बताने वाले व्युत्पत्तिशास्त्र मात्र पर निर्भर नहीं रह सकता। परवर्तीकाल में शब्दों के अर्थ परिवर्तित होते रहते हैं, और इन परवर्ती अर्थों का विकासानुक्रम अर्थ-विज्ञान की सहायता से ही बताया जा सकता है। पुनः अनेकार्थी शब्दों को केवल व्युत्पत्ति-शास्त्र की सहायता मात्र से नहीं समझाया जा सकता। इसके अतिरिक्त अर्थ-क्रम के सम्बन्ध में भी निरुक्त अधिक सहायक नहीं। इन सभी दिशाओं में अर्थविज्ञान ही एक मात्र पथ-प्रदर्शक है, और पर्यायों के अध्ययन के लिये तो अर्थविज्ञान निस्सन्देह एक परमोपयोगी शास्त्र है।[1]

कोश एवं व्याकरण—इन दोनों शास्त्रों का पारस्परिक अन्योन्य सम्बन्ध अनादि-काल से ही चला आ रहा है। इन दो शास्त्रों के द्वारा उपयुक्त शब्दभाण्डार की सृष्टि तथा उसके चयन एवं समीचीन प्रयोग की शक्ति आती है अतएव कोश और व्याकरण का अध्ययन साथ ही साथ किया जाता रहा जिनसे हीन मानव 'अन्धा' और 'बहरा' समझा जाता था।[2]

व्याकरण सत्य और असत्य, साधु और असाधु का विवेचन[3] करता है। विस्तृत अर्थ में द्रव्य और आकृति, जाति और व्यक्ति, सत् और असत्, भाव और अभाव, प्रकृति और प्रत्यय, उपसर्ग और अपवाद, सामान्य और विशेष, स्फोट और ध्वनि, सन्धि और विग्रह, समास और व्यास, समष्टि और व्यष्टि, पदार्थ और वाक्यार्थ आदि का विवेचन और विश्लेषण व्याकरण करता है।[4]

जब हम इन दोनों शास्त्रों के पारस्परिक सम्बन्ध पर विचार करते हैं तो इनके मध्य की एक विभाजक रेखा स्पष्ट हो जाती है। अंग्रेज़ी भाषाशास्त्री स्वीट के मता-नुसार व्याकरण 'सामान्य तथ्य' (जेनरल फ़ैक्ट्स) और कोश 'विशिष्ट तथ्यों' (स्पेशल फ़ैक्ट्स) का प्रतिपादन करता है।[5] 'दास' शब्द पर 'तो' या 'त्व' जोड़ने से भाववाचक संज्ञा 'दासत्व' या 'दासता' बनती है। यह एक 'सामान्य' तथ्य है, जिसको इसी प्रकार के अन्य शब्दों पर भी लागू किया जा सकता है—यह व्याकरण का विषय है। परन्तु 'दास' शब्द विशेष एक पुँल्लिंग संज्ञा है, जिसका अर्थ सेवक-नौकर या भृत्य होता है। यह एक 'विशिष्ट तथ्य' है—जिसका अंकन करना ही कोश का एकमात्र कार्य होता है।

---

१. डॉ० हरदेव बाहरी : हिन्दी सेमेण्टिक्स, भूमिका पृ० ९।
२. 'अवैयाकरणस्त्वन्धो बधिरः कोषवर्जितः'—(लोक प्रचलित)।
३. 'साधुत्वज्ञानविषया सैषा व्याकरणस्मृतिः' —वाक्यपदीय।
४. डॉ० कपिलदेव आचार्य : अर्थ विज्ञान और व्याकरणदर्शन, पृ० २३।
५. आट्टो जेस्पर्सन : दि फ़िलॉसॉफ़ी ऑव् ग्रामर, पृ० ३१–३३ से उद्धृत।

व्याकरण में शब्दों के रूप एवं शुद्धता-अशुद्धता सम्बन्धी सिद्धान्तों का निरूपण रहता है। उसमें प्रत्येक शब्द का अलग अलग शब्द-भेद नहीं बताया जा सकता। वहाँ शब्द-भेदों के सम्बन्ध में मूल नियम मात्र का अंकन कर उदाहरण स्वरूप थोड़े से शब्द दे दिये जाते हैं। प्रत्येक शब्द का ठीक शब्द-भेद निर्देशित करने का सम्पूर्ण उत्तरदायित्व तो आधुनिक कोशकार पर ही मुख्यतः होता है।[१] इसके अतिरिक्त अर्थ का अनुशासन केवल कोशों में होता है, व्याकरण में नहीं।

व्याकरण और कोश की पारस्परिक प्रामाणिकता का प्रश्न भी विचारणीय है। व्याकरण से कोश के विरोध होने पर कोश प्रामाण्य को ही कुछ व्याख्याकार अधिक बलवान समझते हैं। जिस शब्द की सिद्धि किसी भी शब्द-शास्त्रीय वचन से नहीं होती, उसका साधुत्व केवल कोश-बल से ही अभ्युपगत होता है। अकारान्त 'मरुत' शब्द इसका एक उदाहरण है। किसी भी व्याकरण के उणादि सूत्रों से इसकी सिद्धि नहीं होती, पर इसको साधु माना जाता रहा है क्योंकि विक्रमादित्य कोश में इसका पाठ है—"मरुतः स्पर्शनः प्राणः समीरो मारुतो मरुत्"। जब तक इस कोश-वचन का ज्ञान न था, तब तक 'मरुत' शब्द को असाधु माना जाता था और वह मनो-भाव इतना प्रबल था कि कविराज कृत मरुत-शब्द-घटित एक श्लोक का पाठान्तर भी प्रचलित हो गया था, पर पूर्वोक्त कोश से ज्ञात होता है कि यह धारणा भ्रान्त है।[२]

कोशों का महत्त्व

शास्त्रों ने 'शब्द' को ही साक्षात् ब्रह्म कहा है। शब्द अथवा अनाहत-नाद के रूप में प्राणियों ने ब्रह्म का साक्षात्कार किया है। पतंजलि श्रुतिवचन उद्धृत करते हुए कहते हैं कि एक शब्द का ठीक-ठीक ज्ञान करने और शास्त्रों के विधि-विधान के अनुसार शास्त्रों के शुद्ध प्रयोग करने पर समस्त कामनाओं की सिद्धि होती है, उसी के ज्ञान और प्रयोग से अर्थज्ञान और अर्थ-सिद्धि होती है।[३] ऋग्वेद में शब्द-तत्व को हरि अर्थात् विष्णु बताते हुये कहा गया है कि वह सहस्रों धाराओं वाला है और उन सहस्रों धाराओं (भाषा-उपभाषाओं) से वह सिक्त होता रहता है, अर्थात् समृद्ध किया जाता है। वह वाक्‌तत्व को पवित्र करता है।[४] यजुर्वेद में वाक् तत्त्व के विभिन्न गुणों पर प्रकाश

१. रामचन्द्र वर्मा : कोश कला, पृ० ८७।

२. रामशंकर भट्टाचार्य : संस्कृत भाषा में कोष प्रामाण्य, (हिन्दी अनुशीलन पौष-फाल्गुन २०१०), पृ० २१–२६।

३. 'एकः शब्दः सम्यग्ज्ञातः शास्त्रन्वितः सुप्रयुक्तः स्वर्गे लोके कामधुग् भवति'—महाभाष्य, ६।१।८४।

४. 'सहस्रधारः परिषिच्यते हरि पुनानो वाचम्'—ऋग्वेद ९।८६।३३।

डाला गया है। इसके अनुसार वाक्तत्व समुद्र है, अर्थात् समुद्रवत् अक्षयभण्डार, अगाध और दुर्बोध है। वह सर्वव्यापक है, वह अनादि और अक्षर है, वह एक तत्त्व है। वह ऐन्द्र अर्थात् इन्द्र शक्ति से सम्पन्न है। वह सदस् और आधारभूत है, और उसके कारण मनुष्य में सदस्यता, सभ्यता, शिष्टता आदि की स्थिति है। वह देवयानमार्ग, राजयोगमार्ग एवं सन्मार्ग पर चलने वालों के मार्ग का रक्षक तथा विघ्न निवारक है।[1] यह वाक्तत्व ही है, जिसके आश्रय से सारा संसार मनन करता है और जिसकी सत्ता से मननशक्ति की सत्ता है।[2]

मानव-जीवन में शब्द तथा उसके अववोध एवं अनुभूति की महत्ता तथा उपयोगिता की कल्पना सहज ही की जा सकती है। पशु और मानव-बर्बरता और सभ्यता-में अन्तर लाने वाले व्यक्त व्युत्पन्न और सार्थक शब्द ही हैं। इसीलिये हमारे आचार्यों ने कहा कि यदि एक भी वर्ण, एक भी शब्द सम्यग्ज्ञात तथा सप्रयुक्त हुआ तो इहलोक तथा परलोक में मनोवांच्छित फल देने वाला होता है।

शब्दों के सम्बन्ध में पूर्ण जानकारी देने के लिये 'कोश' ही एकमात्र एवं अत्याज्य[3] साधन है। कोई भी बौद्धिक कार्य शब्दों के माध्यम बिना असम्भव है, और उससे भी अधिक असम्भव है कोश या व्याकरण के बिना शब्दों का उचित ज्ञान प्राप्त करना।

आग्डन ने अपनी पुस्तक 'दि मीनिंग ऑव़ मीनिंग' में उचित ही कहा है कि ग़लतफ़हमी या शब्दों का ठीक अर्थ न समझना ही विश्वव्यापक युद्धों का कारण रहा है।[4] राजेट ने भी शब्दों का उचित भाव, अर्थ प्रयोग व रूप न समझने का यही भयंकर दुष्परिणाम बताया है।[5] इन विध्वंसकारी कृत्यों का एकमात्र निराकरण शब्दों के

१. समुद्रोऽसि विश्वव्यचा अजोऽस्येक पादहिरसि वुध्न्यो वागस्येन्द्रमसि सदोऽस्यृतस्य द्वारौ —यजुर्वेद ५।३३।

२. 'वाग्वै मतिः। वाचा हीदं सर्व मनुते' —शतपथ ८।१।२७।

३. A dictionary is thought of a vocabulary builder. Actually it is a tool an indispensable tool of the person who needs to know an exact word and its meanings"
—डॉ० रॉस टेलरः हाट्म्पिस वाकेबुलेरी, भूमिका, पृ० ७।

४. आग्डन और रिचार्ड्स : दि मीनिंग ऑव् मीनिंग, भूमिका।

५. "... A misapplied or misapprehended term is sufficient to give rise to fierce and interminable disputes; a misnomer has turned the tide of popular opinion: a verbal sophism has decided a party question, an artful watch word, thrown among combustible materials has kindled the flame of deadly warfare and changed the destiny of an empire. ."
—डॉ० पी० एम० राजेट : पॉकेट थेसारस, (१९५२ ई०), पृ० ६।

ज्ञान द्वारा ही संभव है, जो शब्द कोशों के उचित अध्ययन द्वारा सुगमता से प्राप्त हो सकता है।

किसी भाषा के शब्दकोश उसके साहित्य की सर्वांगीण उन्नति में वही स्थान रखते हैं, जो किसी राज्य की उन्नति और विकास में उसका आर्थिक विभाग रखता है। जिस प्रकार किसी राज्य की सुदृढ़ता उसके प्रत्येक विभाग की स्वास्थ्यपूर्ण प्रगति, शक्ति और आधार बहुत कुछ उसके आर्थिक कोश की अवस्था पर अवलम्बित है, उसी प्रकार किसी भाषा का विकास कर निर्माण, उसके समस्त अंगों की ताज़गी, सुडौलपन, चिरकाल स्थिरता और विस्तार बहुत कुछ उसके शब्द-भाण्डारों या शब्द कोशों पर ही निर्भर करता है। किसी भाषा की वास्तविक स्थिति और उन्नति जितनी पूर्णता से एक शब्दकोश में प्रतिबिम्बित होती है, उतनी भाषा के किसी अन्य क्षेत्र में नहीं। समस्त प्रकाशमय ज्ञान शब्दरूप ही है, और किसी भाषा के समस्त शब्दों के रूप का परिचय उसके कोशों द्वारा ही मिलता है। इसीलिये किसी भाषा के स्वरूप का ज्ञान जितनी सुगमता से एक कोश द्वारा हो सकता है उतना ही किसी अन्य साधन द्वारा नहीं।

कोश विचार-शक्ति को संकुचित सीमा से उठाकर विकासमय विस्तीर्ण धरातल पर अवस्थित करने के भी सुदृढ़ माध्यम हैं, विशेषकर द्विभाषीय या बहुभाषीय कोशों ने इस क्षेत्र में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसीलिये आज कोशों को स्थिति स्थानिक, प्रान्तीय या एकदेशीय न होकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुँच गई है।[१]

प्राचीन भारतीय कोश साहित्य का परिचय

संस्कृत में कोश ग्रंथ

भारत में कोशों का अस्तित्व छब्बीस सौ वर्ष से अधिक काल से मिलता है।[२] कोशों को संस्कृत साहित्य में व्यावहारिक साहित्य का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अंग माना गया है तथा इसी उपादेयता को दृष्टिगत रखते हुये ही संस्कृत में कोशों का प्रणयन हुआ।[३]

यास्क द्वारा विवेचित 'निघण्टु' सब से प्राचीन कोश ग्रंथ है, जिसमें वैदिक शब्दावली का संग्रह किया गया है। पाँच अध्यायों में विभाजित, वर्तमान काल में उपलब्ध

१. कॉलिन्स : डिक्शनरी ऑव् फ़ॉरेन लैंग्वेजेज़, भूमिका, पृ० १४, १८।
२. डॉ० हेमचन्द्र जोशी : सरस्वती, अक्टूबर १९६०, पृ० २३१।
३. डॉ० मधुकर मंगेशपाटकर : ए हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लेक्सिकॉग्रॉफी (अप्रकाशित थीसिस, भूमिका।

निघण्टु के रचयिता के विषय में अभी तक मतभेद है। इसके प्रथम तीन काण्डों में पृथ्वी आदि बोधक समानार्थी शब्दों का संकलन किया गया है। चतुर्थ में अव्युत्पन्न तथा गूढ़ार्थक शब्दों का, और पंचम कांड में भिन्न-भिन्न देवताओं के रूप तथा स्थान का विस्तार से विवेचन है। यद्यपि शब्दों का अर्थ न होने से आधुनिक अर्थों में निघण्टु को कोश नहीं कहा जा सकता फिर भी शब्दों का विभाजन निश्चित वर्गों में होने से इसका अनुकरण परवर्ती कोशकारों ने भी पर्याप्त मात्रा में किया है, अतएव निघण्टु को संस्कृत कोश-साहित्य का आरम्भ विन्दु मान लिया जाना चाहिये।[1]

निघण्टु की व्याख्या होते हुये भी यास्ककृत 'निरुक्त' एक अत्यन्त उपयोगी भाषा-शास्त्रीय तथा देवता विषयक सामग्री से मण्डित वेदार्थ की मीमांसा करने वाला अनुपम ग्रंथ है, जिसमें वेदार्थ विषयक पूर्वधारणा, कल्पना एवं व्याख्यादि का भी स्थान स्थान पर प्रामाणिक विवेचन किया गया है। वैदिक पदों की मौलिक व्युत्पत्ति, व्युत्पत्ति-शास्त्र ही नहीं प्रत्युत भाषा-विज्ञान की भी अपूर्व संपत्ति है। वैदिक मंत्रों की पूर्ण सार्थकता बतलाने के अतिरिक्त निरुक्त समस्त शब्दों को धातु से ही व्युत्पन्न घोषित करता है (सर्वधातुजमाह निरुक्ते)। यास्काचार्य ने एक प्रकार से कोश-शास्त्र और कोश-कला की नींव डाली। इस तथ्य के सम्मुख विश्व के भाषा वैज्ञानिक नतमस्तक हो गये हैं।[2]

विवेचन की सुविधा के लिये यदि अमरकोश को संस्कृत कोशों का मणि-विन्दु मान लिया जाय तो विक्रम के आरम्भ से लेकर आज तक प्रणीत समस्त संस्कृत कोशों को इतिहास के तीन सुस्पष्ट कालों में विभाजित किया जा सकता है—(१) अमरकोश पूर्वकाल, (२) अमरकोश काल तथा (३) अमरकोशोत्तर काल।

अमरकोश पूर्वकाल—अमरसिंह के पूर्व कोशकारों के विवरण तथा उनके कोश उपलब्ध नहीं हैं, केवल उनका प्रसंग मात्र मिलता है। सर्वानन्द ने अमरकोश की टीका में व्याडि, वररुचि के कोश तथा त्रिकाण्ड एवं उत्पलिनी का उल्लेख किया है।[3] क्षीरस्वामी ने धन्वन्तरि[4], भागुरि तथा रत्नकोश एवं माला का उल्लेख किया है।[5]

---

१. **बलदेव उपाध्याय : संस्कृत में कोशविद्या का इतिहास (हिन्दुस्तानी, अप्रैल-जून, १९५८ ई०), पृ० ५७।**
२. **डॉ० हेमचन्द्र जोशी : सरस्वती, अक्टूबर १९६०, पृ० २३१।**
३. **'अन्यतन्त्राणि व्याडिवररुचिप्रभृतीनां तन्त्राणि, समाहृत्य एकीकृत्य। अतएव सम्पूर्णमिदं, यदस्त्रिकाण्डो त्पलिन्यादीनि नाममात्र तन्त्राणि, व्याडि वररुच्यादि-प्रणीतानि तु लिंगमात्रतन्त्राणि'—सर्वानन्द, अमरकोश टीका, प्रथम भाग, पृ० २-४।**
४. ५. **क्षीरस्वामी : अमरकोश टीका (सं० के० जी० ओक), पृ० १४८ व ६२।**

परवर्ती कोशकारों—पुरुषोत्तमदेव, महेश्वर तथा हेमचन्द्र ने कात्यायन एवं वाचस्पति को भी अमरसिंह का पूर्ववर्ती कोशकार बताया है।

व्याडि का कोश अमरकोश की ही तरह समानार्थी पद्धति पर नियोजित प्रतीत होता है, जिसमें एक अनुच्छेद के अन्तर्गत अनेकार्थी का चयन भी था। कात्य की 'नाममाला' भी समानार्थी तथा अनेकार्थी पद्धति पर संकलित थी। भागुरि के कोश का नाम 'त्रिकाण्ड' था जिसमें अनुष्टुप छन्द के अन्तर्गत समानार्थी शब्द नियोजित किये गये थे। रत्नकोश लिंग के आधार पर खण्डों में विभाजित किया गया था। 'माला' व इसके रचयिता के सम्बन्ध में विवाद है। वाचस्पति का 'शब्दार्णव' अनुष्टुप् छन्दों में विरचित समानार्थी शब्दों का एक विशाल कोश ग्रंथ बताया जाता है जिसमें शब्दों के वर्णविन्यास तथा विभिन्न शब्द रूप भी उल्लिखित हैं। धन्वन्तरि ने सम्भवतः किसी वैदिक कोश की रचना की थी।[1]

अमरसिंह एवं उनके समकालीन कोशकार—पण्डितों में प्रकाण्ड अमरसिंह विरचित 'अमरकोश' को यदि अमरभाषा (संस्कृत) साहित्य का अमरकोश (अक्षय-निधि) कहा जाय तो लेशमात्र भी अत्युक्ति न होगी। समस्त संस्कृत कोशों में यह अत्यन्त लोकप्रिय तथा प्रचलित कोश माना जाता है। इससे पूर्व कोशों में या तो नामानुशासन ही था या लिंगानुशासन मात्र। वे इतने असम्बद्ध तथा क्रमहीन थे कि उनके समुचित उपयोग में कठिनाई पड़ती थी। अमरसिंह ने अपने से पूर्व समस्त कोशों का उपयोग कर उनका समाहार अपने कोश में किया। इस कोश की डॉ० आफ्रेश द्वारा केटॉलागस कैटॉलागम् में दी गई चालीस टीकायें ही इसकी लोकप्रियता पर पर्याप्ति प्रकाश डालती हैं।

अमरकोश में नामानुशासन, लिंगानुशान, अव्यय तथा अन्य शब्दों का समवेत समावेश कर गागर में सागर भरने का स्तुत्य प्रयास किया गया है। समस्त कोश तीन कांडों में विभाजित है। प्रथम कांड में—स्वर्ग, व्योम, दिक्, काल, धी, शब्दादि, नाट्य, पाताल, नर्क तथा वारि; द्वितीय कांड में भूमि, पुर, शैल, बनौषधि, सिंहादि, नृ, ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र; तृतीय कांड में विशेष्यनिघन, संकीर्ण, नानार्थ, अव्यय एवं लिंगादिसंग्रह के द्योतक पाँच वर्ग हैं। शब्दों का चयन व नियोजन अधिकांश भाग में समानार्थी पद्धति पर हुआ है केवल अनेकार्थ वर्ग के २२५ अनुष्टुप अन्त्यवर्ण के क्रम पर नियोजित हैं। इतना सब कुछ होने पर भी शब्द विशेष की

---

१. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० १–१६।

स्थिति ढूंढना अत्यन्त दुष्कर है।[1] आधुनिक अध्येताओं के लिय तो बिना अनुसूची के इस कोश की कोई उपादेयता नहीं।

अमरकोश का दूसरा नाम 'लिंगानुशासन' या 'त्रिकाण्ड' भी है क्योंकि इसमें लिंगद्योतन प्रक्रिया पर भी प्रकाश डाला गया है और यह तीन कांडों में विभक्त है।

वैसे तो अमरकोश की चालीस टीकाओं का उल्लेख केटॉलागस केटालॉगम् में मिलता है परन्तु उनमें से सर्वानन्दकृत टीकासर्वस्व, रायमुकुट की पदचन्द्रिका टीका, भानु जो दीक्षितकृत रामाश्रमी, रमानाथ विद्यावाचस्पतिकृत त्रिकांड-विवेक, भरतसेन की टीका, रघुनाथकृत त्रिकांडचिन्तामणि एवं महेश्वर द्वारा विरचित अमरविवेक अधिक प्रसिद्ध हैं।[2]

अमरकोशोत्तर काल—अमरसिंह के परवर्ती कोशकारों ने अत्यन्त परिश्रम व व्यापक दृष्टिकोण के साथ शब्दों का संकलन किया। नानार्थ कोश, वैद्यक निघण्टु व पालि प्राकृत तथा देशी शब्दों के कोशों की रचना भी इस युग में हुई जिसके कारण यह काल इस दृष्टि से अधिक व्यापक एवं समुन्नत है।

शाश्वतकृत 'अनेकार्थ समुच्चय' में शब्दों के नानार्थ दिये गये हैं। परन्तु कोश का विन्यास स्पष्ट व क्रमबद्ध नहीं है। पुरुषोतम देव ने तीन कोश निर्मित किये, (१) त्रिकाण्डकोश नित्य व्यवहार में आने वाले परन्तु अमरकोश में अनुपलब्ध शब्दों का सविस्तार चयन है, अतएव इस दृष्टि से अमरकोश का पूरक कहा जा सकता है।[3] (२) 'हारावली' में लेखक ने प्रण किया है कि वह केवल अप्रचलित शब्दों का ही संकलन करेगा।[4] (३) तृतीय कृति 'वर्ण देशना' अक्षर-विन्यास की दृष्टि से महत्त्व-पूर्ण है। हलायुध भट्ट की 'अभिधानरत्नमाला' मुख्यतया अमरकोश व आंशिक रूप से वररुचि, भागुरि तथा वोपालित के कोशों से प्रभावित है।[5] इसमें कुल पाँच कांड हैं। प्रथम चार कांडों में क्रमशः स्वर्ग, भूमि, पाताल, एवं सामान्य विषयक तथा पंचम कांड में अव्यय व अनेकार्थी शब्द संकलित हैं। लिंगनिर्देशन, रूप-भेद

---

१. डॉ० एम० एम० पाटकर : ए हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लेक्सिकॉग्रॉफ़ी (अप्रकाशित थीसिस), पृ० २२।
२. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश, भूमिका, पृ० १८–२१।
३. वही, पृ० २२।
४. हारावली, १।५।
५. इयमरदत्तवररुचि भागुरि वोपालितादिशास्त्रेभ्यः।
अभिधानरत्नमाला कविकण्ठविभूषणार्थमुद्धृयते ॥
—हलायुध, भूमिकाण्ड, छन्द २।

के द्वारा किया गया है। हलायुध का समय दसवीं शती ई० का उत्तरार्द्ध माना गया है।[1]

संस्कृत कोशों के इतिहास में यादव प्रकाशकृत वैजयन्तीकोश (११ वीं शती ई०) का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसमें दो खण्ड हैं: प्रथम खंड समानार्थी है, जिसमें पाँच कांड हैं—स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूमि, पाताल तथा सामान्य। द्वितीय खंड नानार्थी है। इसमें भी तीन कांड हैं—द्वयाक्षर, त्र्यक्षर तथा शेष। कोश के दोनों खंड अमरकोश से अधिक विस्तृत एवं पूर्ण हैं। अनेकार्थ अंश में शब्द आदि वर्णक्रम पर नियोजित हैं। परन्तु यह क्रम प्रारम्भिक अक्षर तक ही निभाया गया है। यही नहीं, यह खंड पुनः दो, तीन या इससे अधिक अक्षर (सिलेबल्) के आधार पर भी विभाजित है। शब्दों के इस प्रकार वैज्ञानिक विभाजन की दृष्टि से यह प्रयास मौलिक अतएव स्तुत्य है।[2]

महेश्वर द्वारा विरचित 'विश्वप्रकाश' एक नानार्थी कोश है, जिसका नियोजन शब्द के अन्तिम वर्ण के आधार पर किया गया है। इसमें रूप-भेद द्वारा ही लिंग का निर्देश है। कोश की रचना सन् ११११ ई० में हुई थी।[3] मेदिनी का नानार्थशब्द-कोश सन् १२००-१२७५ ई० के मध्य रचा गया था। विश्वप्रकाश की ही भाँति यह अनेकार्थी कोश है जिसमें अन्तिम वर्ण के अनुसार शब्दों का चयन किया गया है। कोश के अन्त में अव्यय भी दिये गये हैं। लेखकों व टीकाकारों द्वारा अधिकांश उद्धृत यह कोश पर्याप्त महत्त्वपूर्ण तथा उपादेय है।[4] मंख द्वारा विरचित अनेकार्थ-कोश, भागुरि, कात्य, हलायुध, हुग्ग, अमरसिंह शाश्वत तथा धन्वन्तरि के कोशों पर आधारित है।[5] 'विश्वप्रकाश' के ही अनुकरण पर इसमें शब्द-नियोजना हुई है, इसी लिये 'क्ष' को 'ह' के पश्चात् रखा गया। परन्तु कोश का कांड या वर्गों में विभाजन नहीं किया गया है और समस्त १००७ छन्द अंत्य वर्णक्रम के अनुसार बिना किसी अवरोध के एक साथ निबद्ध हैं।[6]

---

१. इंडिश्चे वोर्टम्बूकर (Die Indischen Wörterbücher by Th. Zacharie Strassburg, 1897); पृ० २६।

२. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत में कोश विद्या का इतिहास —हिन्दुस्तानी, अप्रैल-जून, १९५८), पृ० ६३।

३. रामानल व्योमरूपैः शककालेऽभिलक्षिते।
कोषं विश्वप्रकाशाख्यं निरमाच्छ्री महेश्वरः॥ —अन्तिम छन्द।

४. बलदेव उपाध्याय : हिन्दुस्तानी, अप्रैल-जून, १९५८, पृ० ६४।

५ भागुरिकात्यहलायुधहुग्गामरसिंहशाश्वतादिकृतान्।
कोशान्निरीक्ष्य निपुणं धन्वन्तरिनिर्मितं निघंटुं च॥—अनेकार्थ कोश, छन्द २।

६. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश (केशव), प्रथम भाग, भूमिका, पृ० २९।

ग्यारहवीं-बारहवीं शती ई० के अन्य कोशकारों में अजयपाल, तारपाल, दुर्ग, धनंजय, धरणि, धर्म, मुनि, रन्तिदेव, रभसपाल, रुद्र विश्वरूप, वोपालित तथा धनंजय की नाममाला ही अधिक प्रसिद्ध हैं, जिनको परवर्ती कोशकारों ने प्रायः उद्धृत किया है।

सुप्रसिद्ध जैन विद्वान् हेमचन्द्र (१०८८-११७५ ई०) ने चार कोशों की रचना द्वारा संस्कृत के कोशसाहित्य के भाण्डार की अभिवृद्धि में महान् योगदान दिया। (१) 'अभिधानचिन्तामणि' में ६ कांड हैं—देवाधिदेव, देव, मर्त्य, भूमि, नर्क और सामान्य। इसमें कुल १५४२ विविध छन्द हैं। इस कोश की टीका हेमचन्द्र ने स्वयं की जिसमें पूर्ववर्ती अनेक कोशकारों के मतों का भी उल्लेख किया गया है, (२) 'अनेकार्थसंग्रह' में १८२९२ श्लोक हैं, जो ६ कांडों में विभक्त है। एकस्वर कांड, द्विस्वर कांड, त्रिस्वर कांड, चतुस्वर कांड, पंचम स्वर कांड एवं षट् स्वर कांड। प्रत्येक कांड में शब्दों का संकलन द्विविध—आद्य तथा अन्त्य—वर्ण क्रम पर आधारित है, (३) देशीनाममाला तथा (४) निघंटुकोश। हेमचन्द्र के दो अन्य कोश-ग्रन्थ हैं।

केशव स्वामीकृत नानार्थार्णव संक्षेप में लगभग ५८०० श्लोक हैं। अनेकार्थी शब्दों का यह सबसे बड़ा कोश है। यह कोश अक्षरों की गणना के आधार पर ६ कांडों में विभक्त है। शब्द-नियोजन व अन्य पद्धतियों में यह कोश पूर्णतः 'वैजयन्ती कोश' पर आधारित है, यहाँ तक कि वैदिक शब्दावली भी इसमें उसी प्रकार अधिक संख्या में मिलती है। कोश की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि लगभग तीस आचार्यों, कवियों, कोशकारों तथा वैदिक ग्रन्थकारों के मत कोश के अन्तर्गत ही श्लोकों में निबद्ध हैं। इसका रचनाकाल १२वीं या १३वीं शती ई० के आसपास माना गया है।[1]

अन्य कोशकारों तथा कोशों में शब्दरत्नप्रदीपिका, अपवर्गनाममाला, शब्द-रत्नाकर (महिप), भूरिप्रयोग, शब्दमाला, नानार्थरत्नमाला, अभिधान रत्नमाला, अनेकार्थ (दुर्गसिंह), रूपमंजरी, नाममाला आदि का संदर्भ यत्रतत्र मिलता है।[2]

केशव द्वारा विरचित कपल्द्रुकोश ज्ञात पर्याय कोशों में सबसे बड़ा है। इसमें लगभग ४००० श्लोक हैं। शब्दों के पर्याय सबसे अधिक संख्या में दिये गये हैं। उदाहरण के लिये भूमि के ६४ तथा अग्नि के ११४ नाम प्रस्तुत कोश में मिलते हैं। भूमि, भुवः तथा स्वर्ग तीन 'स्कन्धों' में विभाजित कल्पद्रुकोश अनेक मौलिक उद्भाव-

१. गणपति शास्त्री : नानार्थार्णव, भूमिका, पृ० १–२।
२. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश (केशव), भूमिका, पृ० ४१–४२।

नाओं एवं नवीनताओं से परिपूर्ण है। केशव ने अपने पूर्ववर्ती कोशकारों, विशेष रूप से कात्य, वाचस्पति, व्याडि, भागुरि, अमर, मंगल (१) साहसांक, महेश तथा जिन (हेमचन्द्र?) के कोशों से पूर्ण सहायता ली है।[१] कोश का रचनाकाल सन् १६६० ई० माना गया है।[२]

तंजौर के शाहजी महाराज द्वारा निर्मित शब्दरत्नसमन्वय कोश एक नानार्थी कोश है। सामान्य दृष्टि से शब्दों के अन्तिम वर्ण के आधार पर शब्द-संग्रह किया गया है, परन्तु इसमें वर्ग के भीतर अक्षर-क्रम से शब्दों का विन्यास भी है। यह विशेषता संस्कृत के बहुत कम कोशों में पायी जाती है। इस कोश में शब्द-संकलन विशद, व्यापक तथा प्रामाणिक आधार पर किया गया है, जिसमें एक शब्द की विभिन्न वर्तनी देने का भी प्रयास है।

राजा राधाकान्तदेवकृत शब्दकल्पद्रुम सन् १८२२-१८५८ ई० पर्यन्त क्रमशः प्रकाशित हुआ। संस्कृत कोशकला को आधुनिक प्रणाली में संवेष्टित करने का यह सर्वप्रथम प्रयास है। विशुद्ध रूप से देवनागरी वर्णक्रम पर नियोजित प्रस्तुत कोश-ग्रंथ में संस्कृत साहित्य की अनेक विधाओं से उद्धरण लिये गये हैं, अतएव इसको एक विश्वकोश की संज्ञा देना उपयुक्त ही है।[४] इसमें अधिक ज्ञात तथा प्रचलित शब्द के अन्तर्गत उस शब्द के पर्याय तथा अनेकार्थ दिये गये हैं। धातु रूप भी, जिनकी अन्य कोशों में पूर्ण अवहेलना की गयी, इस विशाल कोश में संकलित हैं।

द्विभाषीय कोश—मुग़ल काल में संस्कृत शब्दों का फ़ारसी अथवा फ़ारसी शब्दों का संस्कृत में अनुवाद करने की दृष्टि से अनेक द्विभाषीय कोशों की रचना हुई जिनमें से कुछ अधिक प्रसिद्ध हैं। अकबर के राज्यकाल में कृष्णदास द्वारा निर्मित पारसी प्रकाश में फ़ारसी शब्दों का संस्कृत में अर्थ मिलता है। वेदांगरायकृत 'पारसी प्रकाश' सन् १६४७ ई० में निर्मित हुआ था जिसमें फ़ारसी तथा अरबी शब्दों के संस्कृत रूप दिये गये हैं।[५] ब्रजभूषणकृत 'पारसी विनोद' भी इस युग की रचना है।[६] फारसी शब्दों की व्यापकता एवं व्यावहारिकता की दृष्टि से छत्रपति शिवाजी ने 'राज व्यवहार

१. कात्यवाचस्पतिव्याडिभागुर्यमरमंगलाः।
साहशांक महेशाद्या विजयन्ते जिनान्तिमाः॥ —कल्पद्रुकोश, छन्द २।
२. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश (केशव), भूमिका पृ० ४४।
३. बलदेव उपाध्याय : संस्कृत में कोश विद्या का इतिहास
—हिन्दुस्तानी, अप्रैल-जून, १९५८, पृ० ६६।
४. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश (केशव), भूमिका, पृ० ४६।
५. गार्सां द तासी : इस्त्वार द ला लितेरात्यूर ऐंदुई ऐंदुस्तान, प्रथम भाग, पृ० ५१९।
६. इण्डिश्चे वोर्टम्बूकर, पृ० ३९।

कोश' का संकलन किसी दरबारी पंडित से करवाया। प्रशासन में प्रयुक्त फ़ारसी शब्दों के मराठी तथा संस्कृत में अर्थ दिये गये हैं। महाकवि क्षेमेन्द्रकृत 'लोक प्रकाश' में फ़ारसी तथा संस्कृत शब्दों के अर्थ आंशिक रूप से आये हैं। केवल शब्दों के अर्थ ही नहीं, प्रत्युत दैनिक जीवन की उपयोगी वस्तुओं का भी वर्णन होने से यह ग्रंथ कोश ही नहीं, अर्थशास्त्र भी है।[1]

पालि के कोश ग्रंथ

बौद्ध ग्रंथों में प्रयुक्त शब्दावली सम्बन्धी अनेक कोश हैं, परन्तु ये, रचना-प्रक्रिया में, संस्कृत कोशों की अपेक्षा वैद्यक निघण्टुओं के अधिक समीप हैं। इनकी रचना छन्दों में न हो कर गद्य में हुई और उनका सीधा सम्बन्ध बौद्ध ग्रंथों से ही रहा है। ऐसे कोशों में अतिप्रसिद्ध महाव्युत्पत्ति नामक कोश है, जिसके २८४ अध्यायों में लगभग ९००० शब्दों का वर्गबद्ध संकलन है। इसका उद्देश्य केवलमात्र बौद्ध-धर्म के पारिभाषिक शब्दों के ही अर्थ देना नहीं, वरंच पशुओं, वनस्पतियों तथा रोगों आदि का भी वर्णन करना है। कोश में पर्यायवाची शब्दों के अतिरिक्त मुहावरे, धातुरूप यहाँ तक कि वाक्य भी संगृहीत हैं,[2] जिसके फलस्वरूप यह महत्त्वपूर्ण ही नहीं, विलक्षण भी बन पड़ा है।

प्राचीन पालि कोशों में अधिक लोकप्रिय एवं उपलब्ध कोश मोग्गल्लानकृत 'अभिधानप्पदीपिका' है, जिसकी रचना १२ वीं शती में हुई थी। यह कोश पद्य में है और अमरकोश का प्रभाव इस पर स्पष्ट लक्षित होता है, यहाँ तक कि कई छन्द तो संस्कृत अमरकोश के पालि रूपान्तर मात्र प्रतीत होते हैं।[3]

प्राकृत कोश ग्रंथ

ग्रंथ धनपाल द्वारा निर्मित पाइयलच्छिनाममाला प्राकृत का सबसे प्राचीन कोशग्रन्थ माना जाता है। यह अपने समय का सर्वाधिक लोकप्रिय तथा प्रसिद्ध कोश था। कोशकार के वक्तव्य के अनुसार इसकी रचना उसने अपनी बहिन के निमित्त सन् ९७२ ई० में की।[4] इसमें कुल २७९ छन्द हैं जिनको कांडों या अध्याओं में

---

१. रामावतार शर्मा : कल्पद्रुकोश (केशव), भूमिका, पृ० ५३।
२. विन्टरनिज : Winternitz: Geschichte der Indischen Litteratur भाग ३, पृ० ४१५।
३. वही, पृ० ४१६।
४. पाइयलच्छि नाममाला (बूलर द्वारा सम्पादित, १८७९), पृ०५०; छन्द२७६-२७८।

नहीं विभाजित किया गया है। हेमचन्द्र ने 'देशीनाममाला' की रचना में इस कोश से पर्याप्त सहायता ली है ।[१]

हेमचन्द्र द्वारा विरचित 'देशीनाममाला' अपने ढंग का एक बहुत ही सुन्दर तथा रोचक ग्रंथ है। जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है, प्रस्तुत कोश में देशी या प्रान्तीय शब्द ही अधिक संकलित हैं, जिनको संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्दों से भिन्न कोटि में रखा गया है फिर भी तत्सम व तद्भव शब्द पर्याप्त मात्रा में आ गये हैं। यह कोश आठ वर्गों में विभाजित है। शब्दों का संकलन आद्य अक्षर के अकारादिक्रम तथा अक्षरों (सिलेबल्) के आधार पर किया गया है। अनेकार्थी शब्दों को उसी अक्षर से प्रारंभ होने वाले एकार्थी शब्दों के पश्चात् रखा गया है। इसकी एक टीका भी लेखक ने स्वयं प्रस्तुत की। अपने से पूर्व देशी कोशरचयिताओं की सूची में हेमचन्द्र ने अभिधानचिह्न, गोपाल, देवराज, धनपाल, पादलिप्ताचार्य, राहुलक और शीलांक आदि के नाम का भी उल्लेख किया है।[२]

प्राकृत शब्द कोश का एक वृहत् रूप पाइयसद्द महण्णवो (प्राकृत शब्द महार्णव) सेठ हरगोविन्ददास द्वारा हिन्दी अर्थों तथा रुपात्मक विवेचन के साथ उपलब्ध है। प्राकृत भाषा के शब्द भाडार की दृष्टि से यह कोश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। आचार्य नरेन्द्रदेव द्वारा सम्पादित 'अभिधम्म कोश' भी इस क्षेत्र में एक विशिष्ट रचना है।[३]

अपभ्रंश के कोशग्रंथ

शब्द कोशों के क्षेत्र में अपभ्रंश ने प्रायः प्राकृत शैली का ही अनुगमन किया है। प्रायः प्राकृत के कोश ही अपभ्रंश शब्दों के लिये भी प्रयोग में लाये जाते रहे हैं। इन अपभ्रंश शब्दों की संख्या अत्यधिक है। एक ही शब्द के बहुत से अपभ्रंश हैं जैसे 'गो' शब्द के गावी, गोणी, गोता, गोपोतलिका आदि ।[४]

पंतजलि प्रभृति संस्कृत वैय्याकरणों के मतानुसार संस्कृत से निम्न सभी प्राकृत भाषायें अपभ्रंश के अन्तर्गत हैं। परन्तु प्राकृत भाषा के व्याकरणविदों ने अपभ्रंश भाषा को प्राकृत का ही एक अवान्तर भेद माना है। काव्यालंकार की टीका में नामसिन्धु ने लिखा है—'प्राकृतमेवापभ्रंशः, अर्थात् अपभ्रंश भी शौरसेनी, मागधी आदि की

---

१. विन्टरनिज : Geschichte der Indischen Litteratur, पृ० ४१६ ।
२. पिशेल : देशीनाममाला (हेमचन्द्र), भूमिका, पृ० १२–१४ ।
३. डॉ० सरयू प्रसाद अग्रवाल : प्राकृत विमर्श, पृ० ६६–६७ ।
४. 'भूयांसोऽपशब्दाः, अल्पीयांसः शब्दा इति । एकैकस्य हि शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः तद् यथा गौरित्यस्य शब्दस्य गावी, गोणी,गोता, गोपोतलिकेत्यादयो बहवोऽपभ्रंशा :' —पस्पशाह्निक, महाभाष्य ।

भाँति एक प्रकार की प्राकृत ही है।[१] अतएव प्राकृत के कोश ही अपभ्रंश भाषा की कठिनाइयों का समाधान करने के लिये प्रयोग में लाये जाते रहे। वहाँ कोई विशिष्ट कोश उपलब्ध नहीं होते।

प्राचीन भारतीय कोशों की सामान्य विशेषताएँ

शब्द—स्वरूप की दृष्टि से उपर्युक्त कोशों के तीन विभाग किये जा सकते हैं: वैदिक, लौकिक तथा उभयात्मक। निघण्टु वैदिक कोश है। ग्रंथारंभ में ही कहा गया है—समाम्नायः समाम्नातः और समाम्नाय शब्द वैदिक शब्द के लिये आता है।[२] समाम्नाय जो समाम्नात हुआ, उसका कारण मंत्रार्थ-परिज्ञान है। निष्कर्ष यह कि निघण्टु की रचना मूलतः वैदिक शब्दार्थ-ज्ञान के लिये हुई थी। यद्यपि लौकिक-वैदिक शब्दों का मिश्रण हो जाना असंभव नहीं, फिर भी अमर आदि कोशों को सर्वथा लौकिक कहा जा सकता है।

शब्द--जाति के अनुसार संस्कृत कोशों के चार विभाग हो सकते हैं:—क्योंकि इस भाषा में शब्द मुख्यतः चार प्रकार के हैं—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात। इनमें नाम शब्द ही प्रधान हैं क्योंकि आख्यात का प्रयोग नाम के ही आधीन होता है।[3] इसके अतिरिक्त नाम के प्रयोग की जितनी अधिकता तथा विविधता है उतनी क्रियापदों की नहीं। उपसर्ग तथा निपात भाषा में अप्रधान हैं। अतएव सभी कोशों में नाम शब्दों की ही प्रधानता पायी जाती है। नामों के संकलन की भी दो मुख्य पद्धतियाँ थीं—प्रथम लिंगमात्रपरायण कोश, द्वितीय नाम मात्र परायण कोश।

व्याडि तथा वररुचि आदि के कोश केवल लिंग परायण थे। संस्कृत शब्दों का लिंग निर्धारण करना भी अत्यन्त दुष्कर कार्य है इसीलिये अधिकांश कोशों में केवल लिंग-मात्र का अनुशासन किया गया है। प्रो० रामअवध पाण्डेय ने लिंग मात्र द्योतन करने वाले ४१ संस्कृत कोशों का उल्लेख एक लेख में किया है।[४] सामान्य रूप से इन लिंगपरायण कोशों में मुख्यतः तीन कांड होते थे—स्त्रीकांड, पुंकांड, तथा

१. पाइअसद्द महण्णवो (पं० हरगोविन्द दास सेठ द्वारा सम्पादित) पृ० ४४, २:१७४।
२. 'समस्यते मर्यादया अयम् इति समाम्नायः, स च ऋषिभिः मंत्रार्थपरिज्ञानाय उदाहरणभूतः'—पंचाध्यायी, दुर्ग, निरुक्त टीका १।१।
३. 'आख्यातस्य नामपदवाच्यार्थाश्रय क्रियोपलक्षत्वात्'—वही, १।१।
४. संस्कृत में लिंगानुशासन-साहित्य —सम्मेलन पत्रिका, भाग ४६, संख्या ३ पृ० ६०—६८।

नपुंसक कांड ।[1] शब्द लिंगार्थ चन्द्रिका में एकलिंग–द्विलिंग-त्रिलिंग रूप-विभाग भी लक्षित होता है। वैजयन्ती कोश के अनेकार्थक अंश में पुलिंगाध्याय, स्त्रीलिंगाध्याय, अर्थवल्लिंगाध्याय तथा नानालिंगाध्याय रूप ग्रंथ-विभाग हैं। अधिकांश कोशों में रूप-भेद, साहचर्य तथा शब्दतः कथन द्वारा भी लिंग निर्देश किया गया है।[2]

'त्रिकांड', 'उत्पलिनी' आदि कोश केवल नाम परायण थे[3]। शब्द-संकलन की दृष्टि से इन के दो अवांतर विभाग किये जा सकते हैं—(१) पर्याय कोश तथा (२) अनेकार्थी कोश। अधिकांश कोशों में पर्याय संकलन के साथ साथ एक अनेकार्थ अंश भी पाया जाता है। 'हारावली' कोश के पर्याय संकलनात्मक अंश में तीन विभाग हैं—प्रथम विभाग में पर्याय शब्दों का संकलन पूर्ण श्लोक में है, द्वितीय विभाग में केवल अर्द्ध श्लोक में तथा तृतीय विभाग में केवल एक चरण में। इसी प्रकार अनेकार्थ अंश में भी तीन विभाग हैं—प्रथम विभाग के अर्द्ध श्लोक में अर्थों का संकलन है, द्वितीय विभाग में एक चतुर्थांश में तथा तृतीय विभाग में एक शब्द मात्र संकलित हैं। 'अनेकार्थ समुच्चय' नामक कोश में भी इसी प्रकार की विचित्रता पाई जाती है।

अकारादिक्रम से रचित कोशों में अजयपाल रचित 'नानार्थ-संग्रह' कोश महत्त्वपूर्ण है। परन्तु इसमें वर्णमाला के अनुसार वर्णानुक्रम केवल अक्षर में ही दिया गया है। पदस्थ अन्य वर्णों में इस रीति का पालन नहीं किया गया है जैसा आधुनिक कोशों में किया जाता है।[4] फलस्वरूप 'अमृत' शब्द का पाठ पहले होगा और अकूपार का बाद में। वैजयन्ती कोश के अनेकार्थ अंश में भी यही शैली व्यवहृत हुई है।

कुछ कोशों में विशेष रूप से सभी अनेकार्थ-शब्द-संकलनांश में—अन्त्य-वर्णानुसारी पद्धति पर शब्द-नियोजना की गई है। दुर्ग कोश के अनेकार्थक अंश में शब्द क्रम अन्त्य वर्ण के अनुसार है अर्थात् 'काल' शब्द 'क' विभाग में न रहकर 'ल' विभाग में संकलित होगा। रंति कोश, रुद्र कोश, 'अनेकार्थ संग्रह', विश्वप्रकाश मंखकोश तथा मेदिनी में भी यही शैली अपनाई गई है। कुछ कोशों में आदि वर्ण और अन्त्य वर्ण दोनों के अनुसार शब्द-संकलन किया गया है परन्तु 'शब्दकल्पद्रुम' से पूर्व ज्ञात संस्कृत कोशों में मध्यम-वर्ण-ज्ञापनात्मक रीति का व्यवहार नहीं दिखाई पड़ता।

---

१. 'न तु रत्नकोशादिवत् स्त्री-पुं-नपुंसककांडविधानेनैव वक्तुम् उचितम्'—सर्वानन्द, अमर टीका।

२. प्रायशो रूपभेदेन साहचर्याच्च कुत्रचित्।
स्त्रीपुंनपुंसकं ज्ञेयं तद्विशेषविधेः क्वचित्॥ अमरकोश १।१।३।

३. 'त्रिकाण्डोत्पलिन्यादीनि नाममात्र तंत्राणि'—सर्वानन्द, अमरटीका।

४. राधाकान्तदेव कृत 'शब्दकल्पद्रुम' आधुनिक कोश ही माना जायगा।

कुछ कोशों में एक शब्द के कई रूप भी निर्देशित किये गये हैं। अधिकांश कोशों में संक्षिप्तता की दृष्टि से वैकल्पिक रूपों का निर्देश नहीं किया गया है। तारपाल तथा वाचस्पत्य कोश के इस प्रकार के वैकल्पिक रूप-निर्देश अधिक संख्या में पाये जाते हैं। 'शब्दार्णव', द्विरूपकोश तथा संसारावर्त में द्विविध-वैकल्पिक रूप-निर्देश तथा त्रिविध वैकल्पिक रूप-निर्देश भी उपलब्ध होते हैं। चार रूप वाले शब्द संस्कृत में नहीं हैं।

अक्षरों के आधार पर भी कुछ कोश निर्मित हुये जैसे पुरुषोत्तम देव का एकाक्षर कोश या सौभरिकृत एकार्थनाममाला तथा द्वयर्थनाममाला जिनमें से अन्तिम दो प्रकाशित हैं। इनमें प्रत्येक अक्षर के अर्थ दिये गये हैं। अक्षरों का क्रम शुद्ध रूप से वर्णमाला के अनुसार है।

कहीं कहीं कोशों में व्याकरण-पद्धति के अनुसार भी शब्दों का संकलन किया गया है। शब्दार्णव कोश में 'कृत अध्याय', 'तद्धित अध्याय' सदृश विभाग है। भवदेव नाम के किसी विद्वान् के 'तद्धित कोश' का उल्लेख मिलता है[1] परन्तु इसका विशेष विवरण उपलब्ध नहीं है।

प्रायः कोशकारों ने किसी एक तत्त्व के अनुसार एक-एक वर्ग, कांड या अध्याय में एक के बाद अन्य अर्थ का स्थापन किया है। अमरकोश, हैमकोश आदि इसके उदाहरण हैं। इनमें अर्थों का सांकर्य प्रायः कहीं भी नहीं है, यद्यपि कहीं कहीं ऐसा कहा जा सकता है कि अमुक वर्ग में जो अमुक अर्थ का संकलन किया गया है वह अन्य वर्ग में भी हो सकता था। कोश ग्रंथ के अवांतर विच्छेद के लिये सर्ग (विश्व, निघण्टु), परिच्छेद (पर्यायरत्नमाला), गुच्छक (पर्याय पदमंजरी), तरंग (पर्याय शब्द रत्नाकर) तथा कांड (अमर आदि अनेक कोश) आदि शब्दों का व्यवहार किया गया है। मंख कोश में अध्याय, पाद आदि नहीं हैं, पूर्ण ग्रंथ एक प्रयत्न से लिखा गया है।

कोशों में प्रयुक्त भाषा पर यदि विचार करें तो ज्ञात होगा कि यास्क के निघंटु में शब्दों का पृथक्-पृथक् पाठ है, अतः उसकी भाषा को गद्य या पद्य कुछ भी नहीं कहा जा सकता, परन्तु यास्क के पश्चात् रचे गये समस्त कोश, वर्णदेशना को छोड़कर, पद्य में रचे गये हैं। आधुनिक कोशों के समान ये कोश निर्देश या संदर्भ-ग्रंथ न थे, इनको कंठस्थ करने के निमित्त रचा गया था। कंठस्थ करने में सुविधाजनक होने से ही प्रायः समस्त कोश पद्यबद्ध हैं। छन्द में भी 'अनुष्टुप' छन्द ही कोशकारों को सर्वाधिक प्रिय रहा है।

---

१. रामशंकर भट्टाचार्य : संस्कृत कोशों के शब्द संकलन के प्रकार—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५९, अंक १, पृ० १४।

संस्कृत में कुछ ऐसे भी कोश हैं, जो प्राचीन कोशों के संक्षिप्त संस्करण हैं। अमरकोश के टीकाकार रायमुकुट ने 'बृहत् अमरकोश' का, सर्वानन्द ने 'वृद्धामरकोश' तथा भानुजी दीक्षित ने 'वृहद् हारावली कोश' का उल्लेख किया है। इसी प्रकार प्रायः प्रत्येक कोशकार ने अपने से पूर्व कोशों का उपयोग आवश्यकतानुसार किया है—अधिकांश कोश तो किसी पुराने कोश के वृहत्, लघु या परिवर्तित व परिवर्द्धित संस्करण प्रतीत होते हैं। अतएव कोशों का संक्षिप्तीकरण, कोशों के शब्दार्थ-सम्बन्धी उप-बृहण तथा कोश-वचनों का परस्पर अनैक्य आदि ऐसे विषय हैं जिनके विवेचन से कोश-रचना के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ सकता है।

नाम सम्बन्धी कोशों के बाद उपसर्ग, निपात तथा आख्यात सम्बन्धी कोशों की विशेषतायें दृष्टव्य हैं। प्रायः सभी कोशों में अव्यय (निपात जिसका एक अंग है) का संकलन अन्त में किया गया है। विश्वकोश तथा शब्द-रत्नाकर में यही पद्धति व्यवहृत हुई है। केवल अजयपाल के कोश के प्रत्येक अध्याय के अन्त में आदि वर्ण के क्रम से अव्ययों का संकलन किया गया है। महादेव विरचित 'अव्यय कोश' प्राप्त है, तथा जयभट्टारक के 'अव्ययार्णव' का भी उल्लेख मिलता है[1] पर इन दोनों की रचना-पद्धति साधारण है।

आख्यात (—धातु) सम्बन्धी कोश को एक पृथक विद्या-प्रस्थान न मानकर उसे शब्द-शास्त्र का ही एक अंग माना जाता है। अतएव प्रत्येक व्याकरण के धातु-पाठ को आख्यात-कोश कह सकते हैं। आचार्य वोपदेव का 'कविकल्पद्रुम' नामक एक धातुकोश है जिसमें वर्ण-क्रमानुसार धातुओं का संकलन किया गया है। 'तिगन्तार्णव तरणि' नामक धातु-कोश में प्रत्येक गण की विशिष्ट धातुओं के रूप संकलित हैं। 'धातुपाठ' में 'दण्डक धातुपाठ' का उल्लेख मिलता है, जिसका अर्थ है—एकार्थक अनेक धातुओं का एक वाक्य में संकलन है। परन्तु अप्राप्य होने के कारण इन कोशों की रचनापद्धति के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं।

—०—

१. रामशंकर भट्टाचार्य : संस्कृत कोशों के शब्द संकलन के प्रकार—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, वर्ष ५९, अंक १, पृ० १७।

विषय-सूची

———

संकेत सूची

अ० को०	अमरकोश (संस्कृत)
अ० खु०	अल्ला ख़ुदाई
अ० प्र०	अनभै प्रबोध (गरीबदास)
अ० मा०	अवधान माला (उदैराम)
अने० उदै०	अनेकार्थ (उदैरामकृत)
अने० चन्द०	अनेकार्थ (चन्दनराम)
अने० नन्द०	अनेकार्थ (नन्ददास)
अने० विनय०	अनेकार्थ (विनयसागर)
अने० सा०	अनेकार्थ (सागर)
आ० बो०	आतमबोधनाममाला (चेतनविजय)
ई०	ईसवी
उ० को०	उमराव कोश (सुवंश शुक्ल)
एका० उदै०	एकाक्षरीनाममाला (उदैराम)
एका० वीर०	एकाक्षरीनाममाला (वीरभाण रतनू)
कर्णा०	कर्णाभरण (हरिचरणदास)
क्र० चि०	क्रम चिह्न
खा० बा०	ख़ालिक़बारी
खो० वि०	खोज विवरण, हस्तलिखित हिन्दी ग्रंथों का (काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी)
छ०	छन्द
डिं० ना० मा०	डिंगलनाममाला (हरिराज)
तुह०	तुहफ़तुलहिन्द (मिर्ज़ाख़ाँ)
ध० ना० मा०	धनजी नाम माला (सागर)
ना० डिं०	नागराज डिंगल कोश
ना० प्र०	नामप्रकाश (भिखारीदास)
ना० मा०	नाममाला (नन्ददास)
ना० मा० "क"	नाममाला "क", डिंगलकोश में प्रकाशित
ना० मा० "ख"	नाममाला "ख'
ना० मा० "ग"	नाममाला "ग"

पा० पा०	पारसी पारसात नाममाला (कुंवर कुशल सूरी)
पी०	पीठ
प्र० ना० मा०	प्रकाशनाममाला (मियाँ नूर)
महा०	महाभाष्य
मा० मं०	मानमंजरीनाममाला (बद्रीदास)
राज० हस्त० खोज	राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज
ल० मं०	लखपतमंजरी नाममाला
वाक्य०	वाक्यपदीय
वाके०	ए वाकेबुलरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंगलिश (गिलक्राइस्ट
वि० ना० मा०	विश्वनाथमाला (बालकराम)
सु० च०	सुबोध चन्द्रिका (फ़कीरचन्द)
ह० ना०मा०	हमीरनाममाला (हमीरदानरतने)
हिन्दवी	हिन्दवी भाषा का कोष (पादरी आदम)
हिन्दु०	ए डिक्शनरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (टेलर और हण्टर)
>	पूर्व रूप
<	पर रूप

अध्याय १

मध्यकालीन हिन्दी कोश साहित्य का इतिहास

(सन् १५००—१८५० ई०)

संस्कृत कोशों की सुदृढ़ आधार-शिला पर आलोच्यकालीन हिन्दी कोश निर्मित हुए। अगले पृष्ठों में विवेचित इन कोश ग्रंथों के आंशिक उल्लेख नागरी प्रचारिणी सभा, राजस्थान तथा बिहार राष्ट्रभाषा परिषद् द्वारा प्रस्तुत हस्तलिखित ग्रंथों के खोज-विवरण, विभिन्न पुस्तकालयों के केटॉलॉग, हस्तलिखित ग्रंथागार, साहित्य के विभिन्न इतिहास तथा ऐतिहासिक ग्रंथों एवं पत्र-पत्रिकाओं तथा प्रकाशित कोशों की भूमिकाओं में बिखरे पड़े हैं। इन प्रकीर्ण सूचनाओं को संकलित करते हुए आवश्यकतानुसार निजी अन्वेषण का भी यथास्थान उपयोग कर समस्त कोशों को कालानुक्रम में वर्णित किया गया है। उपलब्ध, वा अनुपलब्ध हस्तलिखित वा मुद्रित सभी प्रकार के कोश ग्रंथ तथा उनके रचयिताओं के सम्बन्ध में यथासम्भव प्राप्त सामग्री प्रस्तुत की गई है। इनमें से उपलब्ध कोशों का निर्देश प्रबन्ध के परिशिष्ट (१) में कर दिया गया है।

विवेचन की सुविधा के लिये आलोच्य कोशों को तीन सुस्पष्ट विभागों में वर्गीकृत किया गया है:

प्रथम प्रकार के कोशों के रचयिता या कोशों की निर्माण-तिथि की समस्या अन्तःसाक्ष्य के आधार पर आंशिक रूप से निर्णीत हो जाती है। निश्चित तिथि उपलब्ध न होने पर किसी अन्य आधार का आश्रय लेते हुये अनुमान से भी तिथि का निर्णय किया गया है। निर्णीत तिथि कोष्टकों में निर्दिष्ट है फिर भी इस निर्णय को अन्तिम नहीं कहा जा सकता।

द्वितीय प्रकार के कोशों में रचयिता का उल्लेख तो है परन्तु रचना-तिथि कहीं भी निर्दिष्ट नहीं। रचयिता का अन्यत्र कहीं भी विवरण न मिलने के कारण अनुमान का आश्रय भी न लिया जा सका।

तृतीय श्रेणी में ऐसे कोश रखे गये हैं, जिनकी न तो रचना-तिथि का कहीं उल्लेख है और न उनके रचयिताओं का ही। ऐसे कोश अधिकांशतः या तो किसी अन्य ग्रंथ के साथ सम्बद्ध मिले हैं या अपूर्ण। फिर भी द्वितीय तथा तृतीय वर्ग के कोशों की हस्तलिखित प्रति एवं भाषा को देखकर उन्हें आलोच्यकाल के अन्तर्गत ले लिया गया है।

(क) प्रथम श्रेणी के कोश ग्रन्थ

१. ख़ालिक़बारी (?)

अब तक के समस्त हिन्दी साहित्य के इतिहास के लेखकों ने परम्परा एवं जनश्रुति के आधार पर ख़ालिक़बारी को प्रसिद्ध अमीर ख़ुसरो (१२५३-१३२५ई०) द्वारा विरचित माना है।

डॉ० रामकुमार वर्मा ने सर्वप्रथम अपने इतिहास में ख़ालिक़बारी के वास्तविक रचयिता संबंधी विवाद का उल्लेख किया था[1] परन्तु अन्तिम निर्णय पर वे भी न पहुँच पाये। डॉ० क़ादरी ने भी ख़ालिक़बारी को प्रसिद्ध अमीर ख़ुसरो की रचना मानते समय प्रश्नवाचक चिह्न लगाया है।[2] इन दोनों विद्वानों का ऐसा मानने का आधार शेरानी का वह वक्तव्य है जो उन्होंने अपनी पुस्तक "पंजाब में उर्दू" के अन्तर्गत दिया है। शेरानी ने दृढ़तापूर्वक लिखा है कि प्राप्त ख़ालिक़बारी प्रसिद्ध अमीर ख़ुसरो की रचना बिलकुल नहीं हो सकती। "हिफ़जुलनिसाँ" या "ख़ालिक़बारी" के नाम से उन्होंने इस ग्रंथ का संपादन किया है, जिसके संपादकीय वक्तव्य में वे इस कोश ग्रंथ को जहाँगीरकालीन किसी अन्य ख़ुसरो की रचना मानते हैं। इसका आधार यही दिया है कि १६वीं शती से पूर्व इस कोश ग्रंथ की कोई भी प्रति नहीं मिलती जबकि १६वीं-१७वीं शती ई० के पश्चात् सैकड़ों प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। १६वीं-१७वीं शती ई० के बाद ख़ालिक़बारी के समान फ़ारसी-हिन्दवी कोश लिखने की एक परम्परा ही चल पड़ी थी।[3]

"अल्ला ख़ुदाई" के नाम से किसी गुमनाम लेखक द्वारा विरचित एक अन्य जीर्ण-शीर्ण प्रकाशित कोश उपलब्ध हुआ है[4], जिसकी भूमिका (दर बयान् सुखन् व सबब तालीफ़) में रचयिता ने ख़ुसरो की रूह को ग्रंथ की प्रेरणा बताया।[5] अल्ला ख़ुदाई हिजरी ११०० (१६८८ ई०) में निर्मित हुआ था। अतएव यह निश्चित है कि उक्त समय तक ख़ालिक़बारी ख़ुसरो के नाम से प्रसिद्ध हो चुकी थी, और यह ख़ुसरो भी अन्य नहीं, प्रसिद्ध अमीर ख़ुसरो ही थे।

प्राप्त प्रतियों के आधार पर भी निश्चित रूप से यह नहीं कहा जा सकता कि इसमें १३वीं-१४वीं शती ई० की भाषा पूर्ण रूप से सुरक्षित है। वस्तुतः ख़ालिक़बारी

---

१. डॉ० रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० १३०।
२. डॉ० सैय्यद मुहीउद्दीन क़ादरी: उर्दू शहपारे, जिल्द अव्वल, पृ० १०।
३. शेरानी: पंजाब में उर्दू, पृ० १७४।
४. देखिये आगे अल्लाख़ुदाई, पृ० २६।
५. शाहिद अज़ लुत्फ़ रहमते बारी। रूह ख़ुसरो नुमा बदम् यारी।
—वही, पृ० ४।

के वास्तविक रचयिता तथा रचना-तिथि का निर्धारण करना अभी शेष है। ऐसा कहना कि शेरानी की तहक़ीक़ और तफ़तीश से यह प्रमाणित हो चुका है कि ख़ालिक़-बारी का लेखक प्रसिद्ध अमीर ख़ुसरो नहीं था और यह बहुत बाद के ज़माने की किताब है[1]—अभी बहुत शीघ्रता करना है। हमको यह धारणा कुछ अधिक समीचीन लगती है कि ख़ुसरो ने इस प्रकार की रचना अवश्य की होगी—भले ही उसका मूल रूप सुरक्षित न रह सका हो। ख़ुसरो ग़यासुद्दीन बलबन के लड़के के शिक्षक थे अतएव संभव है उसी के तत्कालीन भाषा-ज्ञान के लिये उन्हें फ़ारसी-हिन्दी कोश की रचना करनी पड़ी हो।[2]

ख़ालिक़बारी के अब तक कई संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं जिनमें स्थान स्थान पर पाठ-भेद लक्षित होते हैं। सभी प्रकाशित प्रतियाँ नस्तालीक़ लिपि में हैं। अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर से ख़ालिक़बारी की एक हस्तलिखित प्रति देव-नागरी लिपि में भी लिखी मिली, जिसके अन्त में ख़ुसरो का नाम न होकर पंडित अभयसोमि का नाम है।[3] इसीलिये खोज-विवरण में इस का मूल लेखक पंडित अभयसोमि ही बताया गया है।[4] यह प्रति वास्तव में प्रचलित ख़ालिक़बारी की ही प्रतिलिपि मात्र है, केवल शब्दों के राजस्थानी रूप दे दिये गये हैं।

ख़ालिक़बारी का मूल लेखक जो भी हो, उसके प्रचलित रूपांतर के आधार पर कहा जा सकता है कि यह हिन्दी का प्रथम मौलिक कोश है। संस्कृत कोशों की पर्याय वा अनेकार्थी पद्धति का पूर्ण त्याग कर, कोशकार ने एक नितान्त नवीन शैली का आविष्कार किया। इसमें हिन्दी, अरबी तथा फ़ारसी के तदर्थी शब्दों को एक साथ छन्दोबद्ध किया गया है। किंतु विभिन्न शब्दों की भाषा का कोई क्रम नहीं है, उसका निर्णय अध्येता पर ही छोड़ दिया गया है।

ख़ालिक़बारी में हिन्दी के तद्भव तथा देशज शब्द संकलित हैं। संस्कृत के तत्सम शब्द नाममात्र को हैं। शब्दरूप भी प्रचलित व बोलचाल के हैं, साहित्य-सम्मत या पांडित्यपूर्ण नहीं। शब्दों का संकलन किसी भी सुनिश्चित योजना वा आधार पर नहीं है, जो भी शब्द कोशकार के सम्मुख आये उसने उनके तदर्थी अरबी फ़ारसी रूप छन्दबद्ध कर दिये हैं। शब्दों में केवल नाम संज्ञा ही नहीं क्रियायें और अव्यय भी हैं।

---

१. डॉ० सैय्यद मुहीउद्दीन क़ादरी; उर्दू शहपारे, जिल्द अव्वल, पृ० १०।
२. हिन्दी साहित्य, द्वितीय खण्ड, पृ० ५५४।
३. "तमतमाम शुद ख़ालिक़बारी, पंडित अभयसोमिनालेखि"
—ख़ालिक़बारी, बीकानेर प्रति।
४. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० ४-५।

ख़ालिक़बारी की एक अन्य प्रमुख विशेषता यह है कि इसमें शब्द ही नहीं वाक्य या वाक्य खंडों के भी अरबी-फ़ारसी रूप दिये गये हैं। आलोच्यकालीन उपलब्ध कोशों में ऐसी विशेषता अन्यत्र कहीं नहीं उपलब्ध हुई। विदेशी भाषा को सीखने सिखाने की यह पद्धति भी बहुत लाभप्रद और वैज्ञानिक बताई गई है।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि ख़ालिक़बारी ने हिन्दी कोशों में एक नवीन शैली व दिशा प्रस्तुत की है, जिसके अनुकरण पर अनेक परवर्ती द्विभाषीय कोशों की सृष्टि हुई।

२. डिंगलनाममाला (१५६१ ई०)

परम्पराबद्ध हिन्दी समानार्थी कोशों में डिंगलनाममाला सबसे प्राचीन उपलब्ध कोश है। मूल प्रति में इसके रचयिता का नाम हरराज मिलता है।[1] हरराज जैसलमेर के रावल मालदेव के कुंवर थे और सं० १६१८ (१५६१ ई०) में जैसलमेर की गद्दी पर बैठे। इससे यह सहज अनुमान लगाया जा सकता है कि इस कोश की रचना १५६१ ई० के आसपास हुई होगी।

श्री अगरचन्द नाहटा के अनुसार हरराज स्वयं कवि नहीं था। कुशललाभ नामक जैन कवि ने उसके लिये इस कोश की रचना की थी।[2] प्राप्य कोश के एक छन्द में वैसे कुशललाभ का नाम भी लेखक के स्थान पर आया है।[3] कुशललाभ खतरगच्छीय जैन कवि जैनाचार्य अभयधर्म के शिष्य थे।[4] जैसलमेर के रावल हरराज इनके समकालीन व आश्रयदाता रहे।[5] इनका जन्म १५२३ ई० के आसपास माना जाता है।[6] १५६० ई० के लगभग हरराज के लिये इन्होंने ही सुप्रसिद्ध "ढोला मारू रा दोहा" को चौपाई बद्ध किया।[7] इन्हीं के विनोदनार्थ कुशललाभ ने "माधवानल कामकन्दला" नामक शृंगार काव्य की रचना की।[8] इससे यही निष्कर्ष निकलता है कि प्रस्तुत कोश का यथार्थ प्रणेता भी कुशललाभ ही था। रावल हरराज स्वयं कवि भी था, इसका ठोस प्रमाण अभी तक उपलब्ध नहीं हो पाया।

---

१. नारायणसिंह भाटी : डिंगलकोश, भूमिका, पृ० ९।
२. अगरचन्द नाहटा : राजस्थान भारती, भाग १, अंक ४, जनवरी १९४७।
३. "कर जोड़ अेम हरियन्द कहि कुसललाभ देवांण मयि"
—डि० ना० मा० छं० २४।
४. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४१।
५. राज० हस्त० खोज, प्रथम भाग, पृ० १६६।
६. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १४१।
७. मेनारिया : राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० २२४।
८. राज० हस्त० खोज, प्रथम भाग, पृ० १६६।

डिंगलनाममाला आकार में अत्यन्त लघु है। २७ छन्दों में कुछ प्रचलित शब्दों के पर्याय छन्दबद्ध किये गये हैं। परन्तु प्राचीन होने के कारण यह कोश तत्कालीन कई शब्दों की अच्छी जानकारी प्रस्तुत करता है। इसलिये राजस्थानी भाषा के विकास की दृष्टि से इसका विशेष महत्त्व है। 'पुष्पिका' में दिया गया नाम "अथ उडिंगल नाम माला", 'डिंगल' शब्द की व्युत्पत्ति पर भी प्रकाश डालता है। पुष्पिका से ही यह भी ज्ञात होता है कि प्रस्तुत कोश किसी "पिंगल शिरोमणि" नामक पूर्ण ग्रंथ का 'चित्रक कथन' नामक सप्तम अध्याय मात्र है।[१] यह कोश डिंगल कोश के अन्तर्गत राजस्थानी शोधसंस्थान, चौपासनी, जोधपुर से १९५७ ई० में प्रकाशित हो चुका है।

३. नाममाला (१५६८ ई०)

अष्टछाप के प्रसिद्ध वैष्णव कवि नन्ददास ने दो कोश ग्रंथों की रचना की—'नाममाला' एवं 'अनेकार्थ'। नाममाला कोश की सबसे अधिक हस्तलिखित तथा प्रकाशित प्रतियाँ उपलब्ध होती हैं। पं० उमाशंकर शुक्ल[२] और श्री ब्रजरत्नदास[३] द्वारा उल्लिखित प्रतियों के अतिरिक्त खोज विवरणों में १० अन्य हस्तलिखित प्रतियों का भी उल्लेख मिला जिनमें ५१५[४], ६६१[५], ३६०[६], ४२४[७], ४००[८], ३८५[९], ३४१[१०], ६००[११], ३४७,[१२] ३६९[१३], अनुष्टुप तक उपलब्ध होते हैं। प्रयाग के साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में भी नंददासकृत नाममाला कोश की ८ हस्तलिखित प्रतियाँ १६वीं तथा १९वीं शती के बीच की प्रतिलिपि की हुई मिलती हैं।[१४]

---

१. **"इति श्री—कुंवर सिरोमणि हरिराज विरचितायां पिंगल सिरोमणे उडिगंल नाममाला चित्रक कथन नाम सप्तमोध्याय"।**
२. **पं० उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, प्रथम भाग, पृ० ४६-६१।**
३. **श्री ब्रजरत्नदास : नन्ददास ग्रंथावली, पृ० ४५-५५।**
४. **खो० वि० (सन् १९२३-२५), क्र० चि० २९४ (ई), पृ० १०८९।**
५. **वही, क्र० चि० २९४ (जी), लेखनकाल सं० १८६३, पृ० १०९३।**
६. **वही, क्र० चि० २९४ (एच), लेखनकाल सं० १८६१, पृ० १०९४।**
७. **वही, क्र० चि० २९४ (आइ), लेखनकाल सं० १८७०, पृ० १०९४।**
८. **वही, क्र० चि० २९४ (जे)।**
९. **वही, क्र० चि० २९४ (एफ) पृ० १०९१।**
१०. **वही, (सन् १९२६-२८), क्र० चि० ३१६ एच।**
११. **वही, (सन् १९२९-३१) क्र० चि० २४४ ई०।**
१२. **वही, क्र० चि० २४४ एफ।**
१३. **वही, क्र० चि० २४४ जी।**
१४. **ग्रंथ-संख्या (हस्तलिखित)** १३२२/२०१७, १३१०/१९८४, १०३०/१६२६, १२३०/१८३०, १३७३/२२००, १३०४/१९६०, ७६५/९०५, १४२३/२४११।

हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त नाममाला कोश की प्रकाशित प्रतियाँ भी मिली हैं जो निम्नलिखित हैं: (१) बनारस लाइट प्रेस से १९२९ वि० में पुनः प्रकाशित। इसमें कुल २६७ दोहे हैं। (२) हरि प्रकाश यंत्रालय द्वारा अमीरसिंह जी की आज्ञा से संशोधित होकर १९६३ वि० में प्रकाशित। इसमें २७७ दोहे हैं। (३) लीथो का छापा काशी नागरी प्रचारिणी सभा के आर्यभाषा पुस्तकालय में संख्या ११ पर सुरक्षित। प्रति पर प्रकाशक, स्थान तथा प्रकाशन के समय का कुछ निर्देश नहीं है। इसमें कुल २६७ दोहे हैं। (४) भारत जीवन प्रेस, काशी से प्रकाशित इसमें २८७ दोहे हैं। (५) प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा १९४० ई० में प्रकाशित तथा बलभद्रप्रसाद मिश्र और विश्वम्भरनाथ मेहरोत्रा द्वारा सम्पादित। इसमें ३०० दोहे हैं। (६) चश्मये नूर प्रेस, अमृतसर से १९०० ई० में प्रकाशित। परिमाण का उल्लेख नहीं है।[1] (७) लाहरी प्रेस, बनारस से सन् १९१४ में द्वितीय बार प्रकाशित। इसमें कुल २७८ दोहे हैं। (८) राम प्रताप खर्रा द्वारा संशोधित एवं लक्ष्मी बेंकटेश्वर प्रेस बम्बई से १९९४ वि० में प्रकाशित। (९) पं० उमाशंकर शुक्ल द्वारा संपादित और प्रयाग विश्वविद्यालय द्वारा १९४२ ई० में प्रकाशित। इसमें मूल रूप से २६४ दोहे हैं। परिशिष्ट (१) में ३४ संदिग्ध और परिशिष्ट (२) में २२ प्रक्षिप्त दोहे संकलित किये गये हैं। (१०) श्री ब्रजरत्नदास द्वारा सम्पादित तथा नागरी प्रचारिणी सभा, काशी से २००६ वि० में प्रकाशित। इसमें भी मूल ग्रंथ में २६४ दोहे तथा परिशिष्ट 'क' में ६२ और परिशिष्ट 'ख' में १६ दोहे संकलित किये गये हैं।

नन्ददासकृत इस कोशग्रंथ के नाम भी अनेकानेक मिलते हैं। शिवसिंह, मिश्रबन्धु, रामचन्द्र शुक्ल, श्यामसुन्दर दास, राम कुमार वर्मा एवं चतुरसेन शास्त्री, आदि इतिहासकारों ने इस एक ही कोश के भिन्न भिन्न नाम दिये हैं। मानमंजरी, मानमाला, नाममंजरी, नाममाला, नामचिन्तामणि, नाममणिमाला आदि अनेक शीर्षकों के अन्तर्गत यह कोश मिलता है। नवीन खोज विवरणों में अनेक नाममाला[2] और नंदकोश[3] तथा कोशमंजरी[4] नाम भी उपलब्ध होते हैं जो वस्तुतः एक ही कोश के भिन्न भिन्न नाम हैं।

---

१. डॉ० माता प्रसाद गुप्त : हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ४८९।

२. इस नाम से दो प्रतियाँ कविराज मोहनसिंह, उदयपुर के संग्रह में मिली हैं, एक में छन्द संख्या ६६ है और दूसरी में २९१।

—दे०, राज० हस्त० खोज, तृतीय भाग, पृ० १५०।

३. प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण (बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना), प्रथम भाग, पृ० ५, क्र० चि० ६।

४. हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग की पाण्डुलिपि, ग्रन्थ संख्या १३७३/२२००

नाममाला में मूलतः कितने दोहे थे, इसका निर्णय करना भी अत्यन्त कठिन है। हस्तलिखित प्रतियों में ६६१ तक दोहे नाममाला में मिलते हैं।[1] परन्तु पं० उमाशंकर शुक्ल के शोधों से यह प्रमाणित हो चुका है कि नाममाला में प्रारम्भ में केवल २६५ दोहे विद्यमान थे।[2] परवर्तीकाल में क्षेपकों की मात्रा उसमें बढ़ती गई। इसका आधार उन्होंने सं० १८३५ वि० में रामहरी या हरीराम जौहरी द्वारा लिपि-बद्ध एक नाममाला का अंश उद्धृत किया है जिसमें रामहरी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि नन्ददासकृत नाममाला में मूलतः दो सौ पैंसठ दोहे थे। इनसे अधिक दोहे उन्होंने धनंजय आदि संस्कृत कोशों की सहायता से निर्मित कर नाममाला में जोड़ दिये। दोहा इस प्रकार है :

दो सत पैंसठ ऊपरे, दोहा श्री नंददास।
रामहरी बाकी किये, कोष धनंजय तास॥

रामहरी जौहरी कृत "लघुनामावली" नामक कोश ग्रंथ का उल्लेख आगे किया गया है[3] जिसकी रचना उन्होंने सं० १८३४ वि० में की थी। इस कोश के प्रारंभ भाग में भी नन्ददास को कोशकार ने बड़े आदर से स्मरण किया है।[4] वे नंददास की कविता के प्रेमी थे ही, अतएव उन्होंने अपने कोश के कुछ अंशों को नाममाला के साथ ही मिला दिया। इस कार्य में अन्य लोगों ने भी कालान्तर में हाथ बँटाया और क्षेपकों की मात्रा बढ़ती गई। दोहों में निर्मित होने तथा केवल शब्दार्थ-संग्रहमात्र करना ही लक्ष्य होने से प्रक्षिप्त अंशों को जोड़ देने की सुविधा अधिक थी और यही कारण है कि अन्य कोशों की सहायता से नन्ददास के भक्त और प्रशंसक कोशकार-कवियों ने स्वयं गढ़कर नाममाला में मिला दिया है। परन्तु ये दोहे प्रायः सं० १८३५ वि० के बाद लिखी गयी प्रतियों में ही उपलब्ध होते हैं, जिनमें अधिकता रामहरी के द्वारा प्रक्षिप्त दोहों की ही है। रामहरी से पूर्व या उनके समय तक भी इन दोहों में कुछ प्रक्षिप्त अंश मिल चुके थे या नहीं, इसे निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। फिर भी २६४ या २६५ दोहों का नन्ददास द्वारा निर्मित होना प्रायः विद्वानों को मान्य है।[5]

नन्ददास की नाममाला में शब्दों का क्रम बहुत समय तक पाठकों को उलझन में डाले रहा। यद्यपि नन्ददास ने अपनी माला को 'अमरकोस के भाइ' पर गूँथे जाने

१. खो० वि० (१९२३-२५ ई०), क्र० चि० २९४ (ई०)।
२. पं० उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ४६-६०।
३. दे०, आगे, पृ० ४१-४२।
४. नंददास नामावली अमरकोष के नाम।
इनतें जे नितरक्त औ लिषे हेत घनश्याम॥
—लघुनामावली, प्रारम्भिक अंश
५. पं० उमाशंकर शुक्ल : नंददास, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ६०; तथा श्री ब्रज रत्नदास : नन्ददास ग्रंथावली, पृ० १०७।

की घोषणा की, परन्तु इसके शब्द संकलन में अमरकोश की "कांड" या "वर्ग" विभाजन शैली व्यवहृत नहीं हुई है। इसी व्यतिक्रम-जन्य 'कठिनता' का निराकरण करने के लिये गंगादास नामक एक व्यक्ति ने प्रस्तुत नाममाला के शब्दों को दस वर्गों में वर्गीकृत कर दिया था।[१] प्रयाग विश्वविद्यालय से जो प्रति सन् १९४० में प्रकाशित और श्री बलभद्रप्रसाद द्वारा सम्पादित हुई थी, उसमें भी शब्दों को अकारादिक्रम में नियोजित कर दिया गया था। परन्तु ये सब प्रयास ग्रन्थकार के मूल उद्देश्य पर कुठाराघात करने वाले थे। नन्ददास ने प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया था कि अमरकोश के अनुकरण पर पर्याय संकलन करते हुये, उनका उद्देश्य मानवती राधा का मान वर्णन भी है जिसको ठीक रूप से समझने के उपरान्त ही कोश में संकलित शब्दों के अर्थ समझ में आ सकते हैं:

गूँथनि माला नाम की, अमरकोस के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ ॥[२]

इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुये प्रत्येक शब्द के दोहे की द्वितीय अर्द्धाली या जिस शब्द के दो या दो से अधिक दोहे हैं उनके अन्तिम दोहे को लेने से मानलीला का भी पूरा वर्णन आ जाता है।

संस्कृत कोशों में बहुत सी नाममालायें हैं परन्तु हमारे सम्मुख एक भी ऐसी नाममाला नहीं आयी, जिसमें मान प्रसंग की भी नियोजना इतने सुन्दर ढंग से की गई हो। इस दृष्टि से नन्ददास का यह मौलिक प्रयास अत्यन्त स्तुत्य है। कल्पना-प्रसूत कथानक की योजना जिस उत्कृष्टता से हुई है, वह काव्योचित और प्रशंसनीय है। कवि की कल्पना स्थान-स्थान पर अनुपम उपमा और उत्प्रेक्षा के सुमधुर रूपों में अनिर्वचनीय सुन्दरता के साथ निखरी है। वाक्चतुर सखी की शिक्षा और उपालम्भ से सभी मधुर उक्तियाँ छन्दों के अन्तिम चरणों में कुछ इस प्रकार मिलती जुलती चलती हैं कि उनमें कवि की काव्यमयी मधुर भाषा के परिचय के साथ साथ उनकी वर्णन-शैली की महत्ता की छाप भी रसिक हृदयों पर बरबस पड़ती जाती है।

नंददास के इस कोश संबंधी रचना-कौशल का अनुकरण परवर्तीकाल में अन्य कोशकारों ने भी किया। बद्रीदास ने अपनी 'मानमंजरी नाममाला' में यही शैली

---

१. **तामें लखि कछु कठिनता पद विभ्रमता भास।**
वर्ग सु चौपाई मिले कीन्हो गंगादास ॥
+ + +
कोस नाममाला रुचिर नन्ददास कृत जोय।
सोध्यो गंगादास तेहि भयो सरल अति सोय ॥
—खो० वि० (१९०९-११) पृ० २९६, क्र० चि० २०८ बी।

२. **नाममाला, नन्ददास : पंक्ति ५-६।**

अपनाई है। नाममाला 'ख' भी इसी के अनुकरण पर लिखी गई प्रतीत होती है। यही नहीं, अन्य पर्याय कोशों में भी अनेक स्थलों पर नन्ददास की नाममाला की छाप प्रत्यक्ष वा अप्रत्यक्ष रूप से दिखाई पड़ती है। इस क्षेत्र में नन्ददास का प्रयास नितांत मौलिक एवं एक नवीन दिशा का प्रवर्त्तक है।

४. अनेकार्थ (१५६८ ई०)

नन्ददास का दूसरा कोश 'अनेकार्थ' है। वास्तव में इन दोनों कोशों को लिपिकारों ने इतना घुला मिला दिया है कि ये दोनों नाम कभी कभी एक दूसरे के लिये भी प्रयुक्त किये गये हैं। अनेकार्थ भी नाममाला के ही समान लोकप्रिय एवं प्रचलित कोश है। दोनों की हस्तलिखित प्रतियाँ भी लगभग समान रूप से मिलती हैं। सम्भव है नन्ददास ने दोनों कोशों की रचना एक साथ ही की हो।

पं० उमाशंकर शुक्ल[१] तथा श्री ब्रजरत्नदास[२] द्वारा उल्लिखित खोज विवरणों की प्रतियों के अतिरिक्त अन्य खोज विवरणों में भी इन दोनों रचनाओं की हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख मिलता है, जिनमें क्रमशः २००[३], ११८[४], ४२५[५], २७[६], २१०[७], १४९[८], २४८[९], १८७[१०], ५६०[११], २१०[१२] अनुष्टुप (दोहे) उपलब्ध होते हैं। प्रयाग के साहित्य सम्मेलन के संग्रहालय में भी अनेकार्थ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ मिली हैं जिनमें एक का लिपि-काल सं० १९२२ वि० दिया गया है।[१३]

अनेकार्थ की एक प्रति इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी लन्दन[१४] से भी लेखक को प्राप्त हुई। केटॉलॉग में इस कोश का नाम 'अनेकार्थ नाममाला' दिया गया है परन्तु

---

१. पं० उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ६१-६४।
२. श्री ब्रजरत्नदास : नन्ददास ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ४४-५२।
३. खो० वि० (१९२६-२८), क्र० चि० ३१६ ए०।
४. वही, क्र० चि० ३१६ बी०, लिपिकाल सं० १८९९।
५. वही, क्र० चि० ३१६ सी०।
६. वही, क्र० चि० ३१६ डी०।
७. वही, क्र० चि० ३१६ ई०।
८. वही, क्र० चि० ३१६ एफ०, लिपिकाल सं० १९१३ वि०।
९. वही, क्र० चि० ३१६ जी०।
१०. खो० वि० (१९२९-१९३१ ई०), क्र० चि० २४४ सी०।
११. वही, क्र० चि० २४४ बी०।
१२. वही, क्र० चि० २४४ सी०।
१३. हस्तलिखित ग्रंथ संख्या ७६५/९०२, पत्र २३ : ७½" × ६", १३२२/२०१७, पत्र १३, १२½" × ६"।
१४. "अनेकार्थ" (इसके साथ जसवन्तसिहकृत "भाषा भूखन" बद्ध है) पुस्तकालय संख्या—हिन्दी, बी०, ७० ए०, पत्र २५।

कोशकार का नाम अंकित नहीं। किसी अन्य की रचना मान लेने के भ्रमवश ही उक्त प्रति मँगा ली गई थी। परन्तु अध्ययन से ज्ञात हुआ कि यह नन्ददासकृत अनेकार्थ की ही प्रतिलिपि नस्तालीक़ लिपि में की गई है। पत्र २५ मू० के अन्त में 'इति नन्ददास-किरत नाममंजरी समपूरण' अंकित है। ९$\frac{३}{१०}$"×६$\frac{२}{५}$" आकार के २५ पत्रों में यह कोश संकलित है। प्रत्येक पृष्ठ में ११ पंक्तियाँ हैं। कोश में संकलित मुख्य नामशब्दों के ऊपर उनके फ़ारसी तदर्थी भी दिये गये हैं, यथा, 'धाम' के ऊपर 'मकान',[१] 'मोर' के ऊपर 'ताऊस',[२] 'सूरज' के शीर्ष पर 'आफ़ताब' एवं 'काम' के साथ 'ख्वाहिशे नफ़्स'[३]। यह कोश अनेकार्थ ही नहीं, इसमें नाममाला के भी बहुत से अंश संकलित हो गये हैं। कुल २०९ नामशब्द इसमें आये हैं।

'नाममाला' कोश के प्रसंग में उल्लिखित पिछली दस प्रकाशित प्रतियाँ 'अनेकार्थ' की भी मिलती हैं जिनके सम्पादक एवं प्रकाशक और मुद्रक भी वही हैं। इन प्रकाशित प्रतियों का परिमाण इस प्रकार है: प्रथम में १५६, द्वितीय, चतुर्थ, सप्तम् और अष्टम् में १५४, तृतीय में १५२, पंचम में १५२, षष्ठ में परिमाण का उल्लेख नहीं, नवम् में मूल रूप से ११९ तथा परिशिष्ट (ख) में ३८ प्रक्षिप्त दोहे और अन्तिम दसवीं प्रकाशित प्रति के मूल में १२०, परिशिष्ट 'क' में ५७ एवं 'ख' में २४ दोहे संकलित किये गये हैं।

नाममाला के ही समान इस कोश के भी अनेकार्थ, अनेकार्थमंजरी, अनेकार्थ-माला, अनेकार्थमणिमाला, अनेकार्थचिन्तामणि आदि अनेक नाम मिलते हैं। इस कोश में मूलतः कितने दोहे थे यह भी विवादास्पद है। सं० १८३५ वि० की लिपिबद्ध एक हस्तलिखित प्रति में ऐसा प्रसंग मिलता है कि उक्त रामहरि या हरिराम जौहरी ने नन्ददास के मूल १२० दोहों के साथ कुछ संस्कृत कोशों के आधार पर निर्मित या अपने अनेकार्थी कोश 'लघुशब्दावली' के दोहे मिला कर प्रक्षिप्तांशों में वृद्धि करने के उपरान्त अपनी इस ढिठाई के लिये क्षमायाचना की :

बीस उपरें एक सौ, नन्ददास जू कीन।
और दोहरा रामहरि, कीन्हें हैं जु नवीन॥
श्रीमद श्री नंददास जू, रसमद आनंदकंद।
रामहरी की ढीठता, छमियो हो जगबंद॥
कोश मेदिनी आदि औ, कछु शब्द अधिकाइ।
मन रुचि लखि बिच सांधे दिय, बाँचौ जा चितभाइ॥

---

१. "अनेकार्थ", पुस्तकालय संख्या हिन्दी, बी, ७० ए०, पत्र ३ मू०।
२. वही, पत्र ३ मू०।
३. वही, पत्र १३ पी०।

रामहरी जौहरी द्वारा विरचित 'लघु शब्दावली' का उल्लेख आगे दिया गया है।[१] इसमें भी उन्होंने नन्ददास की 'अनेकार्थमंजरी' का उल्लेख किया है।[२] अतएव इन्हीं तथ्यों के आधार पर विद्वानों[३] ने निर्धारित किया है कि अनेकार्थ में मूलतः ११९ या १२० दोहे थे, परवर्ती काल में रामहरी जैसे क्षेपककारों ने यत्र तत्र अपनी करामातों का कौशल प्रदर्शित करने में कोई कमी न रखी। पुनः हस्तलिखित प्रतियों में एक ही मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत मूल एवं प्रक्षिप्त दोनों कोशों के दोहों को संकलित कर लिया गया है।

नन्दासकृत अनेकार्थ कोश संस्कृत में शाश्वतकृत "अनेकार्थसमुच्चय" से पर्याप्त मात्रा में प्रभावित है। इसमें कुल ११३ शब्दों के भिन्न भिन्न अर्थ दोहाबद्ध किये गये हैं। शब्द परम्परागत, रूढ़, काव्यसाहित्य में प्रचलित और साम्प्रदायिक हैं, जनभाषा के नहीं। केवल नाम संज्ञा ही प्रस्तुत कोश में आ पाये हैं, क्रिया या अव्यय के लिये इसमें कोई क्षेत्र न था।

कोश में शब्दों के संकलन का कोई निश्चित क्रम नहीं है। समानार्थी कोश 'नाममाला' की भाँति इसमें कोई अन्य कथा भी अन्तर्निहित नहीं। केवल प्रसंग-वश कुछ हरिमहिमा, प्रभु कीर्तन या भगवद्भजन सम्बन्धी प्रसंग आ गये हैं, जिनका कोई निश्चित क्रम नहीं है। स्थान स्थान पर वे छन्द-पूर्ति के साधन मात्र प्रतीत होते हैं। नन्ददास एक भक्त कवि थे अतएव ऐसे प्रसंगों को कोश जैसे शुष्क विषय में भी लाना उनके लिये नितान्त स्वाभाविक था।

५. अर्थ चन्द्रोदय

डॉ० माताप्रसाद गुप्त ने अपने संदर्भ ग्रंथ हिन्दी पुस्तक साहित्य में नन्ददास-कृत एक अन्य 'पद्यबद्ध शब्दकोश' ग्रंथ—'अर्थ चन्द्रोदय' का उल्लेख किया है।[४] यह कोश ग्रंथ मोती लाल, फतेहपुर सीकरी से प्रकाशित तथा श्रेष्ठ प्रेस, आगरा से मुद्रित भी बताया गया है। परन्तु पहले तो इस ग्रंथ के नन्ददासकृत होने में ही संदेह है,

१. दे० आगे लघुशब्दावली, पृ० ४२।
२. अनेकार्थ नन्ददास की एक शब्द बहु अर्थ।
अधिक शब्द लै कोश तें दोहा किये समर्थ॥

—वही, प्रारम्भिक अंश।

३. पं० उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ६५; तथा श्री ब्रजरत्न-दासः नन्ददास ग्रंथावली, पृ० ४९।
४. डॉ० माताप्रसाद गुप्त : हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ४८९।

दूसरे यह अप्राप्त है।[1] अतएव इसके सम्बन्ध में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी सम्भव है कि 'अर्थ चन्द्रोदय' 'अनेकार्थ' अथवा 'मानमंजरी' का ही दूसरा नाम रहा होगा।[2]

६. नाममाला (१६१३ ई०)

प्रस्तुत कोश ग्रंथ जैन कवि बनारसी दास द्वारा विरचित है। "अर्द्ध कथानक" नामक अपने अन्य काव्य ग्रंथ में इन्होंने अपना ५५ वर्षीय आत्मचरित वर्णित किया है, जिससे ज्ञात होता है कि इनके पिता का नाम खरगसेन और गुरु का नाम खरतरगच्छीय भानुचन्द था। इनकी फुटकल रचनाओं का संग्रह 'बनारसी विलास' में हुआ है। 'नाटक समय सार' इनका एक अन्य आध्यात्मिक ग्रंथ है।

'नाममाला' उनकी प्राप्त रचनाओं में सर्वप्रथम है। उन्होंने इसे अपने मित्र नरोत्तम दास खोवरा और थानमल दालिया के कहने से सं० १६७० वि० (१६१३ ई०) की विजयदशमी को रचकर समाप्त किया था। यह धनंजय की 'नाममाला' और 'अनेकार्थ नाममाला' के आधार पर रचित १७६ दोहों का एक छोटा सा पद्यबद्ध शब्द कोश है। उपलब्ध हिन्दी जैन कोश ग्रंथों में यह सबसे पहला है। वीर सेवा मंदिर से यह प्रकाशित भी हो चुका है।[3] आर्य भाषा पुस्तकालय की सूची में इस कोश के संपादक चंडीप्रसाद सिंह बताये गये हैं तथा प्रकाशन-तिथि १९४१ ई० निर्दिष्ट है।[4] मिश्रबन्धु विनोद में भी इस 'नाममाला' कोश का उल्लेख मिलता है।[5]

७. अनभै प्रबोध (१६१५ ई०)

इस कोश के रचयिता स्वामी गरीबदास हैं। परम्परागत जनश्रुति तथा प्राचीन साम्प्रदायिक रचनाकारों के आधार पर इनका जन्म १६३२ वि० में हुआ था। अट्ठाईस वर्ष की अवस्था में दादू के ब्रह्मलीन होने पर ये उनके उत्तराधिकारी हुये। इनका शरीर १६९३ वि० तक रहा ऐसा आचार्य प्रणाली से ज्ञात होता है।[6]

दादू से गरीबदास के क्या सम्बन्ध थे यह एक विवादास्पद प्रश्न है। जनगोपाल-कृत 'श्री दादू जन्मलीलापरची'[7] के आधार पर पुरोहित हरिनारायण ने गरीब-

---

१. पं० उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, प्रथम भाग, भूमिका, पृ० ३९।
२. वही, पृ० २०।
३. हिन्दी साहित्य (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ४७९-४८२।
४. आर्य भाषा पुस्तकालय, सूची संख्या ४४४ "ब"।
५. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ३९८-३९९।
६. स्वामी मंगलदास : गरीबदास जी की वाणी, प्राक्कथन पृ० ६।
७. "श्रीदादू जन्म लीला परची", नवम् विश्राम, पद्य १ और ४।

दास को दादू दयाल का औरस पुत्र माना है। कुछ अन्य दादूपंथी सन्त जैसे जैमल, चैन, राघवदास, इत्यादि भी वही मानते हैं। डॉ० क्षितिमोहन सेन ने भी अपने बंगला ग्रंथ 'दादू' की भूमिका में गरीबदास को दादू का औरस पुत्र माना है। परन्तु आजकल दादू पंथी विद्वान विशेष रूप से स्वामी मंगलदास गरीबदास को दादू का वरद अथवा पोष्य पुत्र मानते हैं, न कि औरस। वे दादू तथा गरीबदास के गुरु-शिष्य सम्बन्ध पर ही अधिक ज़ोर देते हैं।[1] श्री मेनारिया ने ऐतिहासिक सामग्री, जनश्रुति और तर्क तीनों के आधार पर पुनः यही प्रमाणित किया है कि गरीबदास दादू के औरस[2] तथा ज्येष्ठ पुत्र थे[3]।

गरीबदास का रचना-काल अनुमानतः १६५५ से १६८० वि० (१५९८-१६२३ ई०) तक माना गया है। कुल मिलाकर इनकी चार रचनायें मिलती हैं—(१) अनभै प्रबोध (२) साखी (३) चौबोले तथा (४) पद। खोज रिपोर्ट में 'आध्यात्म-बोध नामक एक और ग्रंथ उपलब्ध होता है।[4] यह या तो 'अनभै प्रबोध' का ही दूसरा नाम है या इसके रचयिता कोई दूसरे गरीबदास हैं।

अनभै प्रबोध सन्त साहित्य की साधनापरक शब्दावली का छोटा सा पद्य-बद्ध समानार्थी कोश है। सन्तसाहित्य में विपर्यय अथवा उलटवासियों में जो जो प्रधान शब्द प्रयुक्त होते हैं उनके प्रतीकों, उपमानों तथा पर्यायों का संग्रह किया गया है। देह, काया, मन, चित्त, माया, विकार, इन्द्रिय, संशय, प्राण, आत्मा, सुरति, निरति, विरह, ब्रह्म, गुरु आदि शब्द जो कि प्रत्येक सन्त की वाणी में अनवरत रूप से आये हैं—किन किन प्रतीकों द्वारा उल्लिखित हैं, इसी का सहज ज्ञान 'अनभै प्रबोध' कराता है। सन्त साहित्य के अध्ययन में इससे कैसी और कितनी सहायता मिल सकती है यह सन्त साहित्य के अध्येता ही निर्णीत कर सकते हैं। सन्त साहित्य के समझने में अधिकांश कठिनाई इन शब्दों के प्रतीकों व पर्यायों में ही आती है। अतएव अनभै प्रबोध के द्वारा इसका आंशिक निराकरण अवश्य हो जाता है।

कोश में कुल १४१ पद्य हैं। रचना काल अनुमानतः १६१५ ई० है। 'गरीबदास जी की वाणी' के अन्तर्गत जयपुर से सं० २००४ वि० में इसका प्रकाशन भी हो चुका है।

८. नाममाला या नाम उर्वसी (१६२३ ई०)

यह कोश प्रकाशित नहीं है केवल खोज रिपोर्टों[5] में ही इसका इस प्रकार उल्लेख मिलता है :

---

१. स्वामी मंगलदास : गरीबदास जी की वाणी, प्राक्कथन, पृ० त।
२. मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १८७।
३. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २१४।
४. खो० वि०, सन् १९०२, क्र० चि० ९५।
५. वही, सन् १९२०-१९२२, पृ० ४३४।

क्र० वि० १७८—नाममाला या नाम उर्वसी, मिश्र शिरोमणि विरचित। लेखक गम्भीरी निवासी था। पत्र—२५। आकार १०×७ इंच। पंक्ति प्रति पृष्ठ—२२। लिपि—नागरी। रचनाकाल—सं० १६८० वि० या सन् १६२३ ई०। लिपिकाल—सं० १९११ या सन् १९५९ ई०। सुरक्षा स्थान—ठा० कान्हा सिंह, मंत्री, राजपूत सभा, जम्मू।

ग्रंथ के रचना-काल के सम्बन्ध में निम्न उक्ति कोश में उपलब्ध होती है:

संवत सोरह से असी, बधनु नगर तिथ मार।
मूल महीना माघ को, कृष्न पक्ष गुरुवार॥
ता दिन यह पूरन करी, सुहस्थाने लोइ।
किरषनु काजहु समझ कै, दूष न दीजहु कोइ॥[1]

इससे ज्ञात होता है कि यह कोश सं० १६८० (१६२३ ई०), माघ, कृष्ण पक्ष, गुरुवार को समाप्त हुआ था। कोश के अन्तिम अंश में शिरोमणि मिश्र ने अपने आप को जहाँगीर के राज्यान्तर्गत शाहजहाँ का चाकर घोषित किया है।[2] प्रारम्भिक भाग में शिरोमणि मिश्र[3] ने अपने जन्मस्थान, आदि का परिचय भी दिया है।[4] कोश की कोई प्रति उपलब्ध नहीं है, परन्तु लेखक ने स्वयं कोश की पर्याप्त प्रशंसा की है।[5]

६. भारती नाममाला (१६२६ ई०)

यह कोश ग्रंथ फतेहपुर निवासी भीखजन द्वारा निर्मित हुआ था। लेखक जाति के महाब्राह्मण, तारक व आचारज थे।[6] दादू के शिष्य संतदास इनके गुरु थे।[7] संन्यस्त

१. नाम उर्वसी, छन्द २९७-२९८।

२. साहिजहाँ की चाकरी, जहाँगीर को राजु।
द्वै सुख में निर्हचित यह, कियो जगत सुख साजु॥
—नाम उर्वसी, छन्द ३००।

३. एक शिरोमणि का उल्लेख खो० वि० १९३२-३४, पृ० ५८ पर भी आता है परन्तु वे कोई अन्य शिरोमणि जैन प्रतीत होते हैं।

४. गंगा जमुना बीचु इकु, पुंडो (डी?) को गाँव।
तहाँ मथुरिया बसत हैं, ताहि गभीरा नाम॥
माथुर भेद अनेक विध, रोकु तिवारी भेदु।
परमानन्द तहाँ उपजि, पढ़े पुरानस वेदु॥
ते सत अवधानी किये, समुझि चित की चाहि।
अकबर साहि खिताब दे, प्रगट करे जग माँहि॥
—वही, छन्द ६, ७, ८।

५. इकु पहिरन की उर बसी, अरु उर बसी जु नारि।
यह जो उर बसि उर बसी, दुहु रस बीच विचारि॥
—वही, छन्द, ३०१।

६. मोतीलाल मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २२०।

७. गोपाल दिनमणि : फतेहपुर परिचय, पृ० १५१।

होकर ये भजन, स्मरण एवं अध्ययन करने लगे थे। इनका रचना-काल सं० १६८३ या १६२६ ई० के आस पास माना गया है। 'सर्वांग बावनी' या 'सर्वज्ञ बावनी' इनका दूसरा ग्रंथ माना जाता है। २४० अनुष्टुपों से युक्त यह नीति का ग्रंथ १६२६ ई० में निर्मित हुआ था।[1] मिश्रबन्धुओं ने भूल से इसका परिमाण ५०० श्लोक अंकित कर दिया था। विनोद में ये अज्ञात कालिक प्रकरण में रखे गये हैं।[2]

'भारती नाममाला' में कोशकार ने अपना परिचय विस्तृत रूप से दिया है:—

> बागर माधे गुन आगरो, सुबस फतेहपुर गाँव।
> चक्रवर्ति चहुवांन निरप, राज करत तिहाँ ठाँव॥
> राज करत रस सो भयो, ज्यो जगतीपति इंद।
> अलिफखान नंदन नवल, दोलतिखान नरिंद॥
> दान क्रिपांन सुजान पन, सकल कला संपूर।
> रवि विरंचि ऐसौ रच्यौ, वचन रचन सति सूर॥
> ता नन्दन बंदन जगत, गुन छंदनह निधान।
> कवि पंछी छाया रहे, तरवर ताहरखान॥
> अजा सिंह नित एकठाँ, धर्म रीति आनंद।
> सकल लोक छाया रहे, विनैराज हरिचंद॥
> तहाँ सुभग सोभा सरस, बसै बरन छत्तीस।
> तहाँ भीखजनु जानिकै, इन मनि भई जत्तीस॥[3]

यह कोश भीखजन ने सं० १६८५ (१६२६ ई०) आश्विन शुक्ल १५ को[4] फतेहपुर में समाप्त किया था।

यह कोश ग्रंथ जिनचरित्र सूरि संग्रह, बीकानेर में सुरक्षित है। परन्तु उक्त संग्रह दीर्घकाल से बन्द रहने के कारण कोशग्रंथ उपलब्ध न हो सका। केवल खोज-रिपोर्ट[5] के आधार पर ही उक्त विवरण प्रस्तुत किये गये हैं।

नाममाला किसी संस्कृत कोश के अनुकरण पर लिखी जान पड़ती है। मेनारिया जी के मतानुसार यह अमरकोश का भाषानुवाद है।[6] संस्कृत भाषा की 'दुर्गमता'

१. खो० वि० (सन् १९३२-३४ ई०), क्र० चि० २४, पृ० ९०।
२. मिश्रबन्धु : विनोद, पृ० ९९३।
३. भारती नाममाला छन्द, १०-१५।
४. सोलह सै पच्चासिये, संवत् इहै विचार।
सेत पाखि राका तिथू, कवि दिन मास कुवार॥—वही, छन्द २०।
५. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० ६-७।
६. मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १९०।

को देखकर ही भीखजन के मन में यह 'उपजी' कि भाषा में एक कोश ग्रंथ बनाया जाय।[१] परन्तु उन्होंने एक कोश को मुख्य आधार मानते हुये भी अन्य स्रोतों की ओर पूर्ण दृष्टि रखी है।[२] समस्त कोश प्रायः दोहों में निबद्ध है, कविराजा मुरारिदान के 'डिंगलकोश' के समान भारतीनाममाला में भी दोहे के लक्षण कोश के प्रारम्भ में दिये गये हैं।[३] लेखक के मतानुसार समस्त कोश सरस कला व रस से ओतप्रोत हैं।[४] इसके २० पत्रों में कुल मिला कर पाँच सौ अठारह दोहे और आठ कवित्त हैं।[५] प्रति का लेखनकाल सं० १६९१, कार्तिक सुदी १३ है। बाबा ज्ञानमेरु के शिष्य मुनि विमला द्वारा किसी 'चिरंजीवीरंगसोम के पठनार्थ' यह प्रति लिपिबद्ध हुई थी। कुल बीस पत्र हैं, प्रत्येक पत्र में चौदह पंक्ति व प्रत्येक पंक्ति में अड़तालिस अक्षर हैं।

१०. अनेकार्थ नाममाला (१६३० ई०)

इस कोश के रचयिता भगवतीदास अग्रवाल हैं। ये बंसल गोत्रीय किशनदास के पुत्र थे। मूलतः वे महेन्द्र बूढ़िया ज़िला अम्बाला के निवासी थे किन्तु बाद में दिल्ली आ बसे थे। वहाँ के भट्टारक सेन का उल्लेख उन्होंने अपने गुरु के रूप में किया है। जहाँगीर और शाहजहाँ के राज्यकाल में निर्मित उनकी २३ रचनायें मिली हैं। इनमें से अंतिम 'मृगांकलेखाचरिउ' अपभ्रंश की रचना है, जो १७०० वि० (१६४३ ई०) में लिखी गई थी।[६]

अनेकार्थनाममाला कोश की रचना १६८७ वि० (१६३० ई०) में की गई थी। समस्त कोश में कुल मिलाकर २५६ छन्द हैं, जो तीन अध्यायों में

---

१. नाममाला गुन सहसक्रिति, दुगम लखी जिय जानि।
इह उपजी जनु भीख जिय, रची जु भाषा आनि॥
—भारतीनाममाला, छन्द १६।

२. मथ्यो ग्रंथ गुन सारदी, बीनि लेउ नग सिंधु।
कछुक और सुनि आन ते, रचौं जु दोहा बंध॥
—वही, छं० १७।

३. तेरह मत्ता प्रथम पद, ग्यारह दुतिय करंति।
तेरह ग्यारह साजि कें, दोहा नाम धरंति॥
—वही, छं० १८।

४. सरस कला रस सो भरी, करो भीखजनु जांनि।
धर्यो नाव तिह भारती, भाख्यो ग्रन्थ प्रवानि॥
—वही, छं० १९।

५. संख्या सब गुन दोहरा, कित जनु भीख सुचेत।
सत्रह ऊपरि पांच सै, आठों कवित्त सहेत॥
—वही, छं० ५२६।

६. हिन्दी साहित्य (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), द्वितीय खंड, पृ० ४८३।

विभक्त किये गये हैं। कोश अप्राप्य एवं अप्रकाशित है केवल कुछ पत्रिकाओं[1] में ही इसका उल्लेख मिलता है।

११. नाममाला (१६३० ई०)

इस ग्रंथ के रचयिता राजस्थानी कवि हरिदास हैं। इनके द्वारा विरचित आठ ग्रंथों में एक ग्रंथ 'नाममाला' भी मेनारिया द्वारा[2] अंकित मिलता है। नाम शीर्षक से भासित होता है कि उक्त ग्रंथ परम्पराबद्ध समानार्थी कोश होगा परन्तु इधर हरिदास कृत 'हरिपुरुष जी की वाणी'[3] उपलब्ध हुई जिसमें वाणी के ही अन्तर्गत एक नाममाला[4] भी है। यदि मेनारिया ने उक्त वाणी के अंग 'नाममाला' को ही एक स्वतंत्र ग्रंथ मान लिया है तो यह एक भक्ति परक आध्यात्मिक ग्रंथ है, कोश नहीं।

हरिदास के व्यक्तिगत व साहित्यिक जीवन के आधार पर ही रचना-तिथि १६३० ई० निर्णीत की गई है।

१२. नामनिरूपण (१६३० ई०)

यह ग्रंथ भी उक्त हरिदास द्वारा निर्मित है। शीर्षक से यह भी एक कोश ग्रंथ प्रतीत होता है और मेनारिया ने इसको एक स्वतंत्र ग्रंथ बताया है। उपर्युक्त 'वाणी' में 'नामनिरूपण' शीर्षक से एक अंग है जिसमें कोश ग्रंथ न होकर आध्यात्मिक चर्चा से सम्बद्ध विषय हैं।

१३. अनेकार्थ नाममाला (१६४६ ई०)

इस कोश की दो हस्तलिखित प्रतियाँ उपलब्ध हुई हैं। एक अभय जैन ग्रन्थालय बीकानेर से और दूसरी भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना[5] से। दोनों प्रतियाँ एक समान हैं—पत्र—१२, प्रति पत्र पंक्ति—११, प्रतिपंक्ति अक्षर—३५, रूप-प्राचीन। इनमें से प्रथम का विवरण राजस्थान में हस्तलिखित ग्रंथों की खोज[6] में

---

१. दे० "अनेकान्त" पत्रिका (वीरसेवा प्रेस सरसावा से मुद्रित), वर्ष ११, पृ० २०५।
२. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २३६ व मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० २०९।
३. "श्री हरिपुरुष जी की वाणी", प्रकाशक वैष्णव साधु देवादास जोधपुर, १९८८ वि०।
४. अथ नाममाला जोग ग्रंथ पृ० ३-१२।
५. नामनिरूपण जोग, पृ० १३-१७।
६. १८९१-१८९५ का क्रमचिह्न १५७६।
७. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० २।

तथा दूसरी का डॉ० पाटकर के अप्रकाशित थीसिस 'ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लेक्सिकॉग्राफी'[1] में प्रसंग रूप से दिया गया है।

कोश के रचयिता विनयसागर उपाध्याय हैं। ये जैन साधुओं की अंकलगच्छीय शाखा से सम्बन्ध रखते थे। इनके गुरु कल्याणसागर भी इसी शाखा के जैन आचार्य थे जिन्होंने विनयसागर के लिये लिंग द्योतन करने वाला 'मिश्रलिंग कोश' निर्मित किया। 'अनेकार्थ' के अन्तिम अंश में भी विनयसागर ने अपने गुरु को बड़ी श्रद्धा से स्मरण किया है।[2] 'भोज व्याकरण' तथा 'वृद्ध चिन्तामणि' विनयसागरकृत अन्य दो रचनायें मानी जाती हैं। इनमें से प्रथम रचना भारमल्ल प्रथम के पुत्र भोज के निमित्त की गई थी। भोज ने १६३१-१६४५ ई० तक शासन किया अतएव व्याकरण का निर्माण इसी समय के आसपास मानना चाहिये।

प्रस्तुत कोशग्रंथ अनेकार्थनाममाला की रचना-तिथि छन्द १६९ में इस प्रकार दी गई है :

सत्तर सहि बिडोत्तरे, कातिक मास निधान।
पुनमि दिन गुरु वासरे, पूरण एहि प्रधान॥

अर्थात् कोश १७०२ वि० की कार्तिक पूर्णिमा, गुरुवार (या १२ नवम्बर, बृहस्पतिवार १६४६ ई०) को पूर्ण हुआ।

समस्त कोश में कुल मिलाकर १६९ 'दूहा' छन्द हैं जो तीन अधिकारों में विभाजित हैं। प्रथम अधिकार में एक शब्द के अनेकार्थ सम्पूर्ण दोहे में दिये गये हैं। दूसरे अधिकार में सामान्यतः एक शब्द के अर्थ दोहे के अर्द्ध भाग में और तीसरे अधिकार में एक शब्द के अर्थ दोहे के चतुर्थ भाग में दिये गये हैं। शब्दों का स्रोत मौलिक न होकर परंपरागत व रूढ़ है। अर्थ व्यवस्था का प्रयास परम्परागत अनेकार्थी कोशों की शैली में है। शब्दों का संकलन व नियोजन भी किसी सुसम्बद्ध वा सुनिश्चित प्रणाली पर नहीं है।

१४. लखपतमंजरी (१६४७ ई०)

खोज विवरणों[3] में 'लखपतमंजरी' नामक एक 'कोश' का विवरण दिया गया है। यह ग्रंथ राजस्थान पुरातत्त्व मन्दिर, जयपुर में सुरक्षित है परन्तु यह वास्तव में एक

१. डॉ० एम० एम० पाटकर : ए हिस्ट्री ऑव संस्कृत लेक्सिकॉग्राफी, पृ० १९५।
२. धर्म्म पाटि कल्यान गुर अचलगण सिणगार।
विनयसागर इयुं बन्दे, अनेकार्थ अधिकार॥
—अने० विनय०, छन्द १६८।
३. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १८३-१८४।

कोश ग्रंथ न होकर ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें कुल १२९ पद्य हैं। पद्यांक ९ से ११ तक नृप वंश वर्णन है जिसमें नारायण से कुंवर लखपत तक की वंशावली दी गई है। पद्यांक ११२ से कवि वंश प्रारम्भ होता है। ग्रंथ के १४८वें दोहे में कवि ने इस ग्रंथ में 'नाम निरूपण' करना अपना लक्ष्य बताया है :

मंजुल लखपत मंजरी, करहु नाम की दाम।

परन्तु जिस रूप में यह उपलब्ध है वह कोश नहीं कहा जा सकता। इस ग्रंथ की रचना सं० १७०४ (१६४७ ई०) माघ वदी, ११ बुधवार को हुई थी।[1]

१५. मानमंजरी (१६६८ ई०)

इस कोश ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर[2] से उपलब्ध हुई। कोश १० पत्रों में है। कई पत्रों के ऊपर तथा नीचे का अंश उदई द्वारा भक्षित होने से पाठ त्रुटित रह गये हैं। खोज विवरणों में इसका प्रसंग है।[3]

कोश के रचयिता बद्रीदास हैं, जिनके व्यक्तिगत या साहित्यिक इतिवृत्त का कहीं भी परिचय नहीं मिलता। रचना-तिथि ग्रन्थ के अन्त में सं० १७२५ (१६६८ ई०) दी गई है :

"इति श्री मानमंजरी सम्पूर्ण। संवत् १७२५ वर्ष वैशाख वदि १२ दिने श्री जयतारिणी मध्ये लि० पं० श्री यशोलाभगणिनावाच्यमान चिरनंद्यात्।"

यह कोश २१३ सोरठों में सम्पूर्ण हुआ है, कुल १८३ नाम शब्दों के पर्याय इसमें गिनाये हैं। ये नाम संज्ञा परम्पराश्रुत एवं साहित्य वा धर्म सम्बन्धी विषयों से सम्बन्धित है, सामान्य जन-जीवन में व्यवहृत नहीं। छन्द के आग्रह से शब्द रूप विकृत हो गये हैं, वैसे इन शब्दों को तत्सम ही कहा जा सकता है।

मानमंजरी कोश का उद्देश्य तथा शिल्प विधान नन्ददास की 'नाममाला' के अनुकरण पर है। काव्य साहित्य के जिज्ञासु, परन्तु आसानी से संस्कृत न समझ सकने वाले अध्येताओं के निमित्त बद्रीदास ने अपनी 'सुमति' से नाम की दाम प्रस्तुत की :

सहंसक्रित नहिं कछू सकति बिना को पचि मरे।
यथा सुमति बद्री सुखद, नांम दांम प्रकटैं करै॥[4]

---

१. संवत सतरैसे वरष पुनि तें ऊपर च्यार,
माघ मास एकादसी किसन पछि कवि वार॥

—ल० मं०, पद्य ७।

२. ग्रंथसंख्या ४९७३।
३. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० ७-८।
४. मानमंजरी, छंद १।

कोशकार के कथनानुसार यद्यपि प्रथम पंक्ति के पर्याय गिनाने में संस्कृत अमरकोश का अनुकरण किया गया है फिर भी कोश में गुम्फित मान प्रसंग को उचित रूप से समझे बिना समानार्थी शब्दों के अर्थ समझ में नहीं आयेंगे :

बहु विधि नाम निहारि, अरथ अमर जु कोष कैं।
सरब समोउ बिचारि, मांन छड़ावति राधिका ॥[१]

इसी उद्देश्य के फलस्वरूप सोरठे की प्रथम पंक्ति में पर्यायों को गिनाते हुये दूसरी पंक्ति में मानकथा के प्रच्छन्न रूप का निर्वाह किया गया है।

१६. तुहफ़तुलहिन्द (१६७५ ई०)

"तुहफ़त्-उल्-हिन्द" का शाब्दिक अर्थ है 'भारत का एक उपहार'। यह विशाल ग्रंथ मध्यकालीन भारतीय मुसलमानों में जाग्रत् मानववाद के प्रति एक नवीन दृष्टि-कोण का सर्वोत्तम उदाहरण है, जिसमें अकबर महान् द्वारा प्रेरित प्राचीन भारतीय संस्कृति का विदेशी या फ़ारसी संस्कृति के साथ एकीकरण का प्रयास चरमोत्कर्ष पर फलीभूत दिखाई देता है।[२]

प्रस्तुत ग्रंथ की पाँच प्रतियों का उल्लेख मिलता है—ब्रिटिश म्यूज़ियम[३], बोदलियन लाइब्रेरी[४], रॉयल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल[५], इंडिया आफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन[६] व पब्लिक ऑरियन्टल लाइब्रेरी, पटना में उक्त ग्रंथ की एकएक हस्त-लिखित प्रतियाँ मिलती हैं। प्रस्तुत प्रबन्ध के अध्ययनार्थ इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी की प्रति ही उपलब्ध हो सकी। इस प्रति में कुल मिलाकर २८६ पत्र हैं जिनमें से पत्र

---

१. मानमंजरी, छन्द २।

२. "- - - - An interesting specimen of Indo-Moslem literature. It is . . . . the product of a new type of humanism which arose among Indian Musalmans in the 16th and 17th centuries, the attempt of Akbar the great to bring about a synthesis of the old culture of India with that (mainly persian) brought in by the early Musalman invaders of India supplying the immediate impetus and inspiration- - - - "

—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाखा, भूमिका, पृ० ७।

३. संख्या, हस्तलिखित, ए० डी० डी० १६,८६८।

४. बोदलियन लाइब्रेरी केटॉलाग, पृ० १०२२ बी०।

५. हस्तलिखित ग्रंथ सं० ७८, १८ × १९½, एच ४३१, ११, १५, पृ० १०६। यह ग्रंथ भी इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लन्दन, में सुरक्षित है परन्तु वहाँ के क्यूरेटर द्वारा सूचना मिली कि ग्रंथ मूलतः रायल एशियाटिक सोसाइटी, बंगाल का है।

६. हस्तलिखित ग्रंथ संख्या १२६९, ई० २०११, २८०, १३, सी०।

१८९ मूल से पत्र १९७ पीठ तक नष्ट हो गये हैं। ग्रंथ का पूर्वार्द्ध शुद्ध तथा सुन्दर नस्तालीक़ लिपि में लिखा गया है किन्तु उत्तरार्द्ध में वह स्पष्टता व शुद्धता नहीं। इसके अतिरिक्त लिपिकार ने ग्रंथ की प्रतिलिपि करने में अत्यन्त अनवधानता से काम लिया है। इस ग्रंथ के प्रारम्भिक पृष्ठ पर किसी अध्येता ने अँग्रेजी में टिप्पणी दी है—'यह पुस्तक अत्यन्त अशुद्ध ढंग से नक़ल की गई है'। ये शब्द वास्तव में उचित ही कहे गये हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि लिपिकार हिन्दी शब्दों से तो पूर्णतः अनभिज्ञ था ही, उसे फ़ारसी भाषा का भी पूर्ण ज्ञान न था। प्रायः वाक्यों में से शब्द छूट गये हैं और नुक़्ते तो सामान्यतः गायब हैं जिसके फलस्वरूप कई अंश अत्यधिक प्रयास करने के पश्चात् भी अस्पष्ट रह गये हैं। ग्रंथ के अंत में पृष्ठ २८६ पीठ पर लिपिकर्त्ता ने लिपिकाल का इस प्रकार उल्लेख किया है—"ब तारीख़ हफ़्तुम रज्जब ब फ़ज़ले इलाही सूरते इतमाम मदबरफ्त ११९४ हिजरी (१७८० ई०)"।

उक्त ग्रंथ के रचयिता का वास्तविक नाम भी अधिक स्पष्ट नहीं है। पर्ट्श केटॉलाग[१] में लेखक का नाम 'मिर्ज़ा जान इब्न फ़क्रुद्दीन मोहम्मद' अंकित है तो ब्रिटिश म्यूज़ियम व बोदलियन लाइब्रेरी के केटॉलाग में केवल 'मिर्ज़ा इब्न फ़क्रुद्दीन मोहम्मद' लिखा गया है, जिसमें 'ख़ान' या 'जान' कुछ नहीं है। रॉयल एशियाटिक सोसायटी की प्रति में 'मिर्ज़ा ख़ान इब्न फ़क्रुद्दीन मोहम्मद' और इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी की प्रति में 'मिर्ज़ा मोहम्मद इब्न फ़क्रुद्दीन मोहम्मद' नाम मिलते हैं। विलियम जोन्स व ज़ियाउद्दीन ने सुविधा के लिये केवल 'मिर्ज़ा ख़ाँ' ही उपयुक्त व पर्याप्त समझा।

लेखक के व्यक्तिगत व साहित्यिक जीवन के सम्बन्ध में भी अधिक विवरण उपलब्ध नहीं हो सका। उसका सम्भवतः सर्वप्रथम परिचय लक्ष्मीनारायण शाफ़िककृत भारतीय कवियों के जीवन-चरित कोश "गुलैराना" में मिलता है। इसी प्रकार "तुहफ़तुल-हिन्द" का सर्वप्रथम प्रसंग विलियम जोन्स ने १७८४ में अपने एक लेख "ऑन दि म्यूज़िकल मोड्स ऑव् दि हिन्दूज़" में दिया था। इसी में उन्होंने लेखक व उनकी कृति का परिचय पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत किया था।[२]

कृति का रचनाकाल एवं लेखक के संरक्षक का प्रश्न और भी अधिक विवादास्पद है। उपर्युक्त प्रत्येक हस्तलिखित प्रति के प्रारंभिक अंश में अगणित विशेषणों सहित

१. Mss. W. Pertsch's Cat. (1881 p. 83 No. 34 or 40 224)

२. "The Persian Book entitled 'a present from India', was composed under the patronage of Azam Shah by the very diligent and ingenious Mirza Khan and contains a minute account of Hindu literature in all or most of its branches . . . ."

—एशियाटिक रिसर्चेज़, तृतीय भाग, पृ० ६५।

शाहंशाह औरंगज़ेब का उल्लेख समान रूप से मिलता है[1], जिसके राज्यकाल में ग्रंथ का निर्माण हुआ। परन्तु वास्तविक संरक्षक व रचनातिथि के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मतान्तर प्रायः प्रत्येक प्रति में उपलब्ध होते हैं। रॉयल एशियाटिक सोसायटी की प्रति में लेखक ने आज़मशाह को अपना संरक्षक घोषित किया है, परन्तु उपलब्ध इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी की प्रति में मिर्ज़ा ने कोकल्ताश खाँ को इस ग्रंथ का प्रेरक बताया है।[2] कोकल्ताश खाँ की प्रशंसा में उसकी 'रज़ी-ए-शाह' (राजा का सौतेला भाई) की उपाधि का भी प्रसंग आया है, जिससे ज्ञात होता है कि यह वही कोकल्ताश खाँ था जिसको १०८६ हिजरी या १६७६ ई० में 'ख़ान जहाँ बहादुर ज़फ़र जंग की उपाधि प्रदान की गई थी। यह उपाधि उक्त विशेषणों में सम्मिलित नहीं की गई है इसलिये ग्रंथ का रचनाकाल १६७६ ई० से पूर्व या १६७५ ई० के आसपास निश्चित किया जा सकता है। सी० रियू भी उक्त ग्रंथ का रचना काल १६७६ ई० से पूर्व मानते हैं।[3]

पब्लिक ओरियन्टल लाइब्रेरी पटना, डब्लु० पर्टश के केटॉलाग, तथा रॉयल एशियाटिक सोसाइटी की हस्तलिखित प्रतियों के प्रारंभिक अंश में आज़मशाह की भरपूर प्रशंसा की गई है, जब कि बोदलियन केटॉलाग व इंडिया ऑफिस लाइब्रेरी की प्रति में मुइज़ुद्दीन जहाँदारशाह को ही मिर्ज़ा खाँ ने अपना हेमायतश (संरक्षक) घोषित किया है।[4] इससे वास्तविक संरक्षक का निर्धारण करना और भी दुष्कर हो गया है।

---

१. "........मिर्जा मोहम्मद इब्न फ़क्रुद्दीन मोहम्मद क़े दर अहदे मैमनत नामन्द ख़देव किश्वरिस्ताने खुदायगाँ कजाजिरियाने नैय्यरे औजे साहिब क़ेरानी अख्तरे बुर्जे गौहरे कानी शाहनशाहे खुरशीदे कुलाहे गर्दू सरीर अब्बुल मुज़फ़्फ़र मोहिउद्दीन मोहम्मद औरंगज़ेब बादशाह आलमगीर.......... ।"

—तुहफ़तुलहिन्द (इण्डिया आफ़िस लाइब्रेरी प्रति), पृ० १ पीठ।

२. "........हसबुल इशारत व बशारत बज़ारत व अमारत मर्तबत अबहत व अयालत मंजिलत मुरस्सअ रज़ी-ए-शाह जम कद्र सिकन्दर मकाँ कोकल्ताश ख़ाँ ब राय मुतालये हुमायूं बन्दगाने शहरयार वाला तबार मरक़ज़े मुहीते सल्तनत कुबराँ मुहीते मरक़जे दौलते ऊज़माँ........." ।—वही, पृ० १ पीठ।

३. रियू का केटॉलाग, खण्ड १, पृ० ६२, मआसिरुल उमरा, खण्ड १, पृ० ७९४, ८०१ तथा मआसिरी आलमगीरी, पृ० १४२।

४. "........ब पुश्ते मुक़र्रमी हेमायतश चश्मे ग़ज़ाल बख़्ने शेरे जयाँ सियाहे शाहे मुल्क जाह फ़लक़ बारगाहे अमान........खुरशीद कुलाह पादशाहज़ादा मुहम्मद मोइज़ुद्दीन जहांदारशाह मद्दालहूताला ज़िल्ले दौलतहू फ़िलअर्द वस्सक़ाअ वा अर्फा इल्मे सल्तन्तहू अल्समाय वा अल्लाह........." ।

—तुहफ़तुलहिन्द (इंडिया ऑफ़िस लाइबेरी प्रति), पृ० २ मूल।

विलियम जोन्स[1] व श्री ज़ियाउद्दीन[2] आज़मशाह को ही लेखक का वास्तविक संरक्षक मानते हैं। उनके मतानुसार कोकल्ताश ख़ाँ व जहाँदारशाह के नाम निश्चित रूप से बाद में लिपिकार के द्वारा जोड़े गये हैं। जहाँदारशाह के स्थान पर आज़मशाह का नाम स्थानान्तरित करने के कोई प्रत्यक्ष कारण नहीं हैं। आज़मशाह अपने भाई मुअज़्ज़मशाह के द्वारा १७०७ ई० में अकबराबाद के युद्ध में पराजित हुआ, जिसमें उसकी मृत्यु भी हो गई थी। यही मुअज़्ज़म बाद में बहादुरशाह के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर आसीन रहा। उसकी मृत्यु के पश्चात् १७१२ ई० में एक वर्ष के लिये जहाँदारशाह दिल्ली का सम्राट रहा। इस प्रकार स्पष्ट है कि आज़मशाह का नाम बाद में नहीं जोड़ा जा सकता था। आज़मशाह के वास्तविक संरक्षक होने का दूसरा प्रमाण यह भी है कि वह "भाखा" का एक प्रबल समर्थक एवं प्रशंसक भी था। भाखा के कवियों व लेखकों को वह सतत् प्रोत्साहन व प्रेरणा दिया करता था। अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि भाखा से सम्बन्धित अमूल्य ग्रन्थ 'तुहफ़तुलहिन्द' का वास्तविक प्रेरक व संरक्षक आज़मशाह ही रहा हो।

'तुहफ़तुलहिन्द' में भारतीय साहित्य के सामान्य वा विशिष्ट विद्वन्मण्डली मात्र से संबद्ध विभिन्न विषयों का विवेचन किया गया है। यह ग्रंथ विषय वस्तु वा उसके निरूपण की दृष्टि से पूर्णतः विस्तृत, अतः हिन्दी भाषा के लिये एक महत्त्वपूर्ण देन है। ग्रंथ का अध्ययन करते समय ऐसा प्रतीत होता है मानों लेखक ने पूर्ण सच्चाई के साथ हिन्दी भाषा के सभी आवश्यक तत्त्वों को समग्र रूप में सुरक्षित रखने व प्रचारित करने में कोई कसर न रख छोड़ी हो।[3] विशेष रूप से शब्दार्थ-शास्त्र, ध्वनि-शास्त्र व ब्रजभाषा के प्रारम्भिक व्याकरण की दृष्टि से प्रस्तुत ग्रंथ हिन्दी साहित्य के लिए एक अमूल्य एवं अपरिहार्य निधि है।

समग्र ग्रंथ में भूमिका तथा परिशिष्ट के अतिरिक्त सात अध्याय हैं। भूमिका में ब्रजभाषा की ध्वनियाँ और उनकी फ़ारसी में लिप्यंतरण एवं उच्चारण व्यवस्था तथा व्याकरण की विवेचना[4] की गई है। इसके अतिरिक्त प्रथम अध्याय में छन्दशास्त्र,

---

१. एशियाटिक रिसर्चेज, तृतीय भाग, पृ० ६५।

२. मियाँ ज़ियाउद्दीन : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाखा, पृ० ३।

३. One feels while going through the work that the author has tried to make sure that the Hindi language with all its fundamentals should be safe with in tne pages of this one book at least even though all other literature on the subjects got lost or destroyed.

—ज़ियाउद्दीन : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाखा, पृ० ४।

४. भूमिका के अन्तर्गत द्वितीय खण्ड का चौथा प्रकरण शान्तिनिकेतन के श्री ज़िया-उद्दीन द्वारा अंग्रेजी में 'ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाखा' शीर्षक से १९३५ ई० में अनूदित व प्रकाशित भी हो चुका है।

द्वितीय में तुक, तृतीय में रस व अलंकार, चतुर्थ में शृंगार रस व नायक-नायिका भेद, पाँचवें में संगीत शास्त्र, छठें में कामशास्त्र, तथा सातवें में सामुद्रिकशास्त्र का निरूपण किया गया है। अन्तिम अध्याय का नाम 'ख़ातिमा' या परिशिष्ट है। इसमें 'दर् इल्मे लुग़त' या कोशशास्त्र का विवेचन किया गया है जिसको मिर्ज़ा ख़ाँ ने स्थान-स्थान पर 'लुग़तये हिन्दी' या हिन्दी कोश के नाम से भी अभिहित किया है।

श्री सी० रियू ने ब्रिटिश म्यूज़ियम में सुरक्षित इस पुस्तक की हस्तलिखित प्रति का परिचय देते समय ब्रजभाषा व्याकरण व शब्द कोश वाले अन्तिम अध्याय की कोई चर्चा नहीं की। इसका कारण सम्भवतः यह भी हो सकता है कि मिर्ज़ा ख़ाँ ने इस अंतिम अध्याय का नाम 'ख़ातिमा' रखा है, जिसका उन्होंने शायद 'तमामशुद' अर्थ लिया हो। भ्रम का दूसरा कारण यह भी सम्भव है कि लेखक ने ग्रंथ के 'मुक़द्दिमा' (प्रारंम्भिक वक्तव्य) में 'ख़ातिमा' के अन्तर्गत निरूपित विषय का निर्देशन नहीं किया है, जब कि अन्य अध्यायों में विवेचित विषय इस वक्तव्य में स्पष्ट रूप से समझाये गये हैं।

मिर्ज़ा ख़ाँ का यह 'लुग़तये हिन्दी' या हिन्दी-फ़ारसी कोश समस्त तुहफ़त का आधा भाग समेटे हुये है। प्रस्तुत अध्ययनार्थ उपलब्ध इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी की प्रति के पृष्ठ १९८ मूल से लेकर पृ० २८६ पीठ अर्थात् ८८ पत्रों में यह कोश संकलित है। उक्त प्रति में से पत्र १८९ मूल से १९७ पीठ तक नष्ट हो गये हैं जिसमें कुछ अंश कोश का भी है। यदि चार पत्र भी कोश के हुये तो कोश ग्रंथ ९२ पत्रों या १८४ पृष्ठों में संकलित माना जा सकता है। प्रत्येक पृष्ठ में प्रायः पन्द्रह से लेकर बीस मूल शब्द आये हैं। जिसके आधार पर कुल मिलाकर साढ़े तीन हज़ार मूल हिन्दी शब्दों के अर्थ समस्त कोश में दिये गये हैं। ज़ियाउद्दीन के मतानुसार कोश में लगभग ३००० मूल हिन्दी शब्द हैं।

शब्द-संकलन, उच्चारण-व्यवस्था, नियोजना-पद्धति, अर्थ-प्रक्रिया एवं एक कोश में आवश्यक समस्त अन्य तत्त्वों की दृष्टि से यदि प्रस्तुत कोशग्रंथ की परीक्षा करें तो समग्र रूप से इसकी समता का कोई भी दूसरा कोश आलोच्यकाल में उपलब्ध नहीं होता। वास्तविक अर्थों में यह हिन्दी का प्रथम एवं पूर्ण कोश है। मिर्ज़ा ख़ाँ ने कोश अंश में ही अपनी सम्पूर्ण मौलिकता, सुसम्बद्ध शैली, ज्ञान व विवेकशील बुद्धि का सफल परिचय दिया है। पूर्णतः वैज्ञानिक पद्धति पर आधारित यह कोश ग्रंथ तत्कालीन हिन्दी भाषा और साहित्य के अध्ययनार्थ ही नहीं, आधुनिक भाषाविदों के लिये भी रोचक व महत्वपूर्ण सामग्री प्रदान करता है।

शब्दावली की दृष्टि से प्रस्तुत 'लुग़त' में केवल संस्कृत के तत्सम शब्द ही नहीं, अपितु तदभव व देशज शब्द भी आधे से अधिक संख्या में आये हैं। तत्कालीन लोक

व्यवहार, समाज व साहित्य में प्रचलित प्रायः सभी सामान्य शब्द इस कोश में मिल जाते हैं। कोश में संकलित प्रत्येक शब्द का एक कष्टसाध्य, जटिल परन्तु पूर्व निर्देशित वर्णान्तर व्यवस्था के माध्यम से उच्चारण दिया गया है। उच्चारण में शब्द के लिखित रूप का नहीं प्रत्युत बोलचाल के स्वरूप का ही सर्वाधिक ध्यान रखा गया है। अर्थों के लिये जितने अधिक माध्यम मिर्ज़ा ख़ाँ ने अपनाये उतने किसी अन्य कोशकार ने नहीं। एक ही शब्द के प्रत्येक सम्भव अर्थ विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा बोधगम्य कराने का सफल प्रयास इस कोश में मिलता है। इसके अतिरिक्त शब्दों के माध्यम से भारतीय संस्कृति को भी हृदयंगम कराने की पूर्ण चेष्टा की गई है। समग्र रूप से कहा जा सकता है कि

चित्र संख्या—१

मिर्ज़ा ख़ाँ विरचित हस्तलिखित फ़ारसी ग्रंथ 'तुहफ़तुलहिन्द' के अन्तर्गत 'लग़तये-हिन्दी' (फ़ारसी हिन्दी कोश) का अन्तिम पत्र
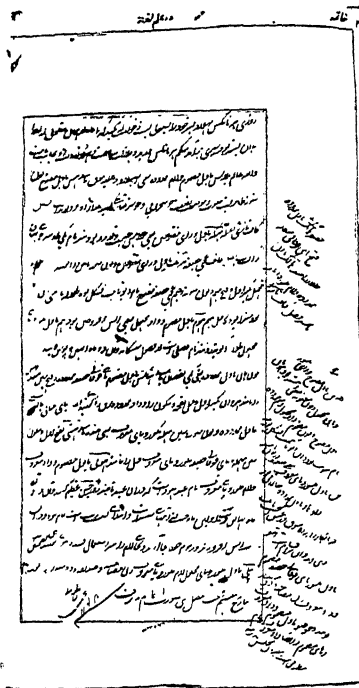
इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी लन्दन की हस्तलिखित प्रति, संख्या १२६९, ई० २०११ का पत्र २८६ पीठ (ख़ातिमा)।

(लाइब्रेरी के क्यूरेटर की अनुमति एवं अनुग्रह से)

कोश के प्रारम्भिक भाग में कोशकार ने मुग़ल सम्राट शाहजहाँ का उल्लेख करने के उपरान्त[1] अंत में रचना-तिथि भी स्पष्ट अंकित कर दी है :

दर जमीरम् चूंई हविश अफ़जूद ।
साले हिज्री हजारो यक सद बूद ।।[2]

अर्थात् इस ग्रंथ का प्रणयन ११०० हिजरी या १६८८ ई० में हुआ ।

'अल्लाखुदाई' ख़ालिक़बारी की परम्परा में निर्मित एक त्रिभाषीय कोश है, जिसमें हिन्दी, अरबी और फ़ारसी के समान अर्थों वाले शब्दों को एक साथ छन्दोबद्ध किया गया है । पहले किस भाषा का शब्द आयेगा इसका कोई निश्चित क्रम रचयिता के सम्मुख नहीं था । अध्येता को अपने ज्ञान के अनुसार ही अनुमान लगाना पड़ता है कि कौन शब्द किस भाषा का है । शब्दों का संकलन किसी स्पष्ट निर्दिष्ट वर्ग-क्रम पर न होते हुये भी साधारणतया यह क्रम कोश में निभाया गया है—पारिवारिक शब्दावली, प्राकृतिक दृश्य, रंग, भोज्यपदार्थ एवं तत्सम्बन्धी उपकरण, शारीरिक अवयव, वनस्पति, आलेपन तथा वस्त्राभूषण, औद्योगिक शब्दावली तथा अंत में राशियों के नाम । इन वर्गों के कोई स्पष्ट भिन्न शीर्षक नहीं दिये गये हैं । शब्द सामान्य बोलचाल के जन-प्रचलित तथा दैनिक व्यवहार में आने वाले हैं । कोश की भाषा फ़ारसी तथा लिपि नस्तालीक़ है । मूल कोश अंश में कुल १८३ पंक्तियाँ तथा लगभग ४५१ मूल हिन्दी शब्दों के अरबी-फ़ारसी तदर्थी शब्द छन्द बद्ध किये गये हैं ।

१८. प्रकाशनाममाला (१६९७ ई०)

इस विशाल कोश के रचयिता मियाँ नूर हैं । इनके व्यक्तिगत या साहित्यिक जीवन का परिचय अन्यत्र कहीं नहीं उपलब्ध होता । कोश के आरम्भिक अंश में इन्होंने आत्मपरिचय इस प्रकार दिया है :

खान जहाँ नवखंड में, प्रगट बहादुर खान ।
जाके दान कृपांन कौ, साहि करत सनमान ।।
खांन जहाँ बहादुर बली, जफर जंग जिह नाम ।।
सिपहदार खां नंद तिह, जीते अरि संग्राम ।।
साहि सराहत सर्वदा, जानत सब संसार ।
सिपहदार खाँ को सुजस, पारावार सुपार ।।
सिपहदार को बहादुर, ताको नादिर नूर ।
कादर कर्‌यो उदार वर, कवि कुल जीवनि मूर ।।[3]

---

१. शाहेगेहाँ ख़देवे शाहेजहाँ । आँ के आमद पनाहे हिन्दोस्ताँ ।।
—अल्लाखुदाई, पृ० ४ ।

२. वही, पृ० १६ ।

३. प्र० ना० मा०, पृ० २६५ ।

उपर्युक्त छन्दों में आये हुये बहादुरखाँ, जिनके 'दान कृपांन' की 'साहि' (औरंग-जेब ?) प्रशंसा व 'सम्मान' करते हैं, के सम्बन्ध में इससे अधिक विवरण न मिल सका। इन्हीं बहादुरखाँ, 'जफ़रजंग' के नंद सिपहदारखाँ का नादिर प्रस्तुत कोश का रचयिता मियाँ नूर था।

कोश का रचना-काल इस प्रकार दिया हुआ है :

सत्रह सै चवन बरस, बिजै दस्मि इषु मास।
नूर नाम माला करी, भाषा नाम प्रकास॥[1]

अर्थात् १७५४ वि० (१६९७ ई०) आश्विन मास की विजयादशमी को प्रकाशनाम-माला कोश ग्रंथ समाप्त हुआ।

यह कोश वस्तुतः अमरकोश पर आधारित है, इसको कोशकार ने प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दिया है :

अमर कोष तें काढ़ि कै कीनी प्रगट सुदाम।[2]

× × ×

अमर कोष के भाय सों कीने नाम प्रकाश।[3]

'प्रकाशनाममाला' मुख्य रूप से अमरकोश का अनुकरण करते हुए भी अमरकोश का भाषानुवाद नहीं कहा जा सकता। प्रस्तुत कोश का संकलन करते समय कोशकार ने एकांगी दृष्टिकोण न रखकर अन्य स्रोतों का भी पूर्ण उपयोग किया है। इसके लगभग एक तिहाई शब्द अमरकोश में नहीं मिलते।

समस्त कोश पाँच 'प्रकासों' में विभक्त है। प्रथम प्रकाश के अन्तर्गत दस वर्ग द्वितीय में भी दस और तृतीय प्रकाश में अमरकोश के ही अनुकरण पर विशेष्यनिघ्न तथा संकीर्ण दो वर्ग हैं। यहाँ तक शब्दों का संकलन पर्याय शैली में हुआ है। प्रथम तीन प्रकाशों में कुल १०२१ दोहे हैं। चतुर्थ प्रकाश में अनेकार्थ प्रकरण है। इस प्रकरण में शब्दों का संकलन अमरकोश के अनुसार अन्त्यवर्णानुसारी पद्धति पर न होकर क्षपणकक्रत 'अनेकार्थध्वनिमंजरी' के आधार पर किया गया है।[4] इस प्रकाश में कुल २७१ दोहे हैं। पंचम प्रकाश में एकाक्षरी कोश हैं, जो क्षपणक के ही कोश के आधार पर निर्मित है। इसमें नूर मियाँ ने अपनी मति के अनुसार प्रत्येक वर्ण को

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० २६५।
२. वही, पृ० २६५।
३. वही, पृ० ३७३।
४. **विष अरु धाम सु नूर कहि, इतने होंहि ललाम।**
अनेकार्थ ध्वनिमंजरी, छपनक कहे ये नाम॥

—वही पृ० ३७५।

माला में गूँथ दिया है।[1] परन्तु यथार्थ में इस 'माला' के अन्तर्गत प्रत्येक वर्ण नहीं आ सका। पंचम प्रकाश में कुल ४९ दोहे हैं।

प्रस्तुत कोश के शब्दों के संकलन में भी ग्रंथकार ने अपने विवेक से हिन्दी की प्रवृति का ध्यान रखते हुए उनका पूर्ण रूप से ग्रहण अथवा त्याग किया है।[2] अमरकोश के अतिरिक्त इसमें पर्याप्त शब्द अन्य स्रोतों से भी संकलित किये गये हैं।

यह नाममाला आगरा विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित 'ग्रंथ वीथिका' के अन्तर्गत संकलित व प्रकाशित है। इसके पृ० २६५ से लेकर ३९९ तक में प्रस्तुत नाममाला आई है।

१६. अनेकार्थ नाममाला (१७०३ ई०)

इस कोश के रचयिता महासिंह पाँडे हैं। कोशकार के साहित्यिक वा वैयक्तिक जीवन का इतिवृत्त अन्यत्र कहीं भी उपलब्ध नहीं होता। कोश का विवरण भी केवल खोज रिपोर्टों में मिलता है।[3] हस्तलिखित प्रति अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर में सुरक्षित बताई गई है। परन्तु वहाँ से उपलब्ध न हो सकी। प्रति का विवरण इस प्रकार है:

प्रति—गुटकाकार। पत्र १४। पंक्ति १४-१५। प्रति पंक्ति अक्षर १२-१६। साइज $५\frac{१}{२}'' \times ८\frac{१}{४}''$। प्रारम्भ का एक पत्र नष्ट हुआ बताया गया है।

ग्रंथ का रचनाकाल कोश के अन्त में इस प्रकार दिया गया है:

"संवत् १७६० ज्येष्ठ मासे कृष्ण पक्षे १२ शनौ। पातसाहि श्रीमनि विनोदात अवरंगजेब राज्ये लि० पांडे महासिंह।"

कोश में कुल १२० दोहे हैं जिनमें शब्दों के अनेकार्थ छन्दबद्ध किये गये हैं। यद्यपि लेखक के वक्तव्यानुसार वह अमरकोश आदि अन्य संस्कृत कोशों के अनुकरण पर चले हैं[4], परन्तु नन्ददास के अनेकार्थ से वे अपेक्षाकृत अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। 'धनंजय' शब्द के भिन्न भिन्न अर्थ दोनों कोशों से तुलना के लिये दृष्टव्य हैं:

---

१. **सोई माला प्रति वर्ण की, रची सुमति अनुसार।**
कंठ करे गुनवतं नर, सोभा बढ़ै अपार॥

—प्र० ना० मा०, पृ० ३९५।

२. **और नाम सुनि अमर में, है आदेस विशेष।**
भयो संपूरन नूर कृत, जो कछु लिख्यो सुलेष॥
बहुत न कहिये जगत में, गहिये मन विश्राम।
नूर कथन तितनो भलौ, तिजो जासौ काम॥

—वही, पृ० ३७२।

३. **राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० १।**

४. **अमर आदि जु कोस जु घने, तिनि कोस तु यहाँ लीन।**
महासिंह कवि यो भने, अनेकार्थ यह कीन॥

—अनेकार्थ नाममाला, अंतिम अंश।

महासिंहकृत अनेकार्थ से :

अग्नि धनंजय कहत कवि, पवन धनंजय आहि ।
अर्जुन बहुरि धनंजय, कृष्ण सारथी जाहि ।।

नन्ददासकृत अनेकार्थ से :

अग्नि धनंजय कहत कवि, पवन धनंजय आहि ।
अर्जुन बहुरि धनंजय, कृष्ण सारथी जाहि ।।

महासिंह के मतानुसार उनके 'अनेकार्थ' को पढ़ने से अनेक परमार्थों की सिद्धि भी हो सकती है।[1]

२०. हिन्दुस्तानी भाषा का कोश (१७०४ ई०)

यूरोपीय लेखकों द्वारा निर्मित यह सर्व प्रथम कोश है। कोशकार का नाम फ्रांसिस्कस एम० तुरोनेसिस (Fraciscus M. Turonesis) था जिन्होंने १७०४ ई० में इस द्विभाषीय कोश ग्रन्थ की रचना कर हिन्दी कोश साहित्य में एक नवीन युग का सूत्रपात किया। इस ग्रंथ की एक प्रति रोम की प्रोपेगेण्डा लाइब्रेरी में सन् १७६१ ई० तक विद्यमान बताई जाती है[2] परन्तु आजकल उपलब्ध नहीं।

२१. भाषा शब्द सिन्धु (१७१३ ई०)

इस कोश ग्रंथ की रचना किन्हीं गुजराती कवि रत्नजित् द्वारा हुई है। ग्रंथ का निर्माणकाल १७७० वि० (१७१३ ई०) है। कोशकार के सम्बन्ध में कोई भी इतिवृत्त अन्यत्र नहीं उपलब्ध होता। इनके द्वारा निर्मित एक ब्रजभाषा व्याकरण मिला है जिसमें इन्होंने ब्रजभाषा की बड़ी प्रशंसा की है।

'भाषा शब्द सिन्धु' में 'ककारान्त' शब्दों से लेकर 'ज्ञकारान्त' तक सम्पूर्ण शब्दों का संग्रह अनुक्रमणिकानुसार विविध वृत्तों में किया गया है। ये समस्त शब्द नाम अर्थात् संज्ञा वाचक हैं। पुस्तक का आरंभ इस प्रकार है :

"अथ भाषा शब्द सिन्धु लिख्यते। बचनिका। ककारान्त शब्दा:
तिलक, किलक, पलक, गनक, तनक, नरक, बक, बृक, कंटक, मसक, ससक, आदि।"

प्रस्तुत ग्रंथ को हम कोश इसीलिये कह सकते हैं कि यह शब्दों का संग्रह है। अर्थ देने का कोई भी आधार इसमें नहीं दिखाई देता। अंतिम अक्षर के शुद्ध आकारादि-

---

१. **जो इह अनेकार्थ कौ पढ़ै, सुनै नर कोइ।**
ताके अनेकार्थ इह, पुनि परमारथ होइ ।।
—अनेकार्थनाममाला (महासिंह) अंतिम अंश।

२. **ज़ियाउद्दीन : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाखा, भूमिका, पृ० ८।**

क्रम से केवल संज्ञा शब्दों का संकलन कर "सिन्धु" का रूप दे दिया है। ग्रंथ अप्राप्त व अप्रकाशित है केवल संदर्भ मात्र उपलब्ध होते हैं।[1]

२२. भाषा धातु माला (१७१३ ई०)

इस क्रिया कोश की रचना भी १७७० वि० (१७१३ ई०) में उक्त गुजराती कवि रत्नजित द्वारा हुई। "शब्द सिन्धु" में कोशकार केवल नामों या संज्ञाओं को अन्त्याक्षर से संकलित कर पाये थे। क्रियाओं के लिये उसमें स्थान न समझकर इन्होंने 'भाषा धातुमाला' नामक क्रिया कोश की रचना की। इसमें इन्होंने समानार्थी क्रियाओं को अंतिम वर्ण के अनुसार छन्द बद्ध किया। संकलन में क्रियाओं के अर्थ के अतिरिक्त छन्द प्रकार और अन्तिम वर्ण का एक साथ सामंजस्य अन्य किसी कोश में नहीं मिलता। इस दृष्टि से यह हिन्दी कोशों के क्षेत्र में एक बहुमूल्य रचना है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं:

"अथ 'देख' वाचक (सकर्मक) धातु, यथा—

देख, अवदेख, लख, झांख, अवलोक, विलोक, निरख, निहार, परेख.........

और अकर्मक धातु जथा—

दरस दीस......।

ककारान्त जथा—

तरक, खरक, चुक, छिरक, कुहुंक, अटक, पटक, अवलोक।
चमक, दमक, बक, चौंक, सक, हुलक, विलोकहि रोक।।

(अंत) **अथ इकारान्त, जथा—**

कह, गह, दह, रह, गुह, लहहु, मोह, सोह, अवगाह।
रोह, गाह, अवरोह, ठह, सह, चह, निवह, सराह"

२३. हमीर नाममाला (१७१७ ई०)

इस कोश के रचयिता 'हमीरदान रतनू' रतनू शाखा के चारण थे। इनका जन्म जोधपुर राज्य के अन्तर्गत घड़ोई गाँव में हुआ था, परन्तु विद्याध्ययन व जीवन का अधिकांश भाग कच्छभुज में ही बीता जहाँ भाट चारणों के लिये उन दिनों विशेष सुविधा थी। कच्छभुज के राजा महाराव श्री देशल जी प्रथम (सं० १७७४-१८०८) के महाराजकुमार लखपत इनके आश्रयदाता रहे। ये अपने समय के अच्छे विद्वानों में गिने जाते थे। इन्होंने 'लखपत पिंगल'[2], 'गुण पिंगल प्रकास', 'ज्योतिष जड़ाव',

---

१. ब्रजभाषा के कोश ग्रंथ (सेठ कन्हैयालाल पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ), पृ० ५४२।

२. "जाडेजां सूरजि रख जलवट, भुज भूपति लखपति कुल भांण।
त्रय ग्रंथ कीध अजाची तिण रै, जोतिखि पिंगल नांम श्रब जांण।।"
—ह० ना० मा०, छ० ३०९।

'ब्रह्माण्ड पुराण, 'भागवत पुराण', इत्यादि बाईस ग्रंथ निर्मित किये। इनमें डिंगल छन्द शास्त्र का ग्रंथ 'लखपतपिंगल' इनकी सर्वोपयोगी रचना है जो सं० १७९६ वि० में लिखी गयी थी।[1]

'हमीरनाममाला' डिंगल कोशों में सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रचलित है। इसके निर्माणकाल के सम्बन्ध में एक छन्द कोश के अन्त में इस प्रकार है :

संमत छह्योतरे सतर मैं, मती ऊपनी हमीर मन।
कीधी पूरी नाम-मालिका, दीपमालिका तेण दिन[2] ।।

अर्थात् सं० १७७४ (१७१७ई०) की दीपावली को ग्रंथ समाप्त हुआ। हमीर-नाममाला डिंगल के प्रसिद्ध गीत 'बेलियो' में लिखी गई है। प्रत्येक छन्द के पर्याय गिनाने के पश्चात् उत्तरार्द्ध में हरिमहिमा सम्बन्धी सुन्दर उक्तियाँ कहकर ग्रंथ में सर्वत्र व्यक्तित्व की छाप छोड़ने का प्रयत्न भी किया है, इसीलिये यह ग्रंथ 'हरिजस-नाममाला' के नाम से भी प्रसिद्ध है।[3]

हमीरनाममाला की रचना में कई संस्कृत कोशों से यथोचित सहायता ली गई है।[4] समस्त कोश में कुल मिलाकर ३११ छन्द हैं। इनमें प्राचीन तथा तत्कालीन डिंगल साहित्य में प्रचलित डिंगल भाषा के बहुत से शब्द अपने विशुद्ध रूप में सुरक्षित हैं। जोधपुर से डिंगल कोश के अन्तर्गत यह कोश भी प्रकाशित है।

२४. नामरत्नाकर कोश (१७२९ ई०)

इस कोश के वास्तविक प्रणेता का ठीक निर्धारण करना कठिन है। खोज विवरणों[5] में केसरकीर्ति इसका कर्त्ता बताया गया है जिन का नाम ग्रंथ के अंत में भी आया है[6] वैसे कहीं कहीं केशव तथा केशवदास का भी उल्लेख ग्रंथ में मिलता है। इस कोश की रचना १७८६ (१७२९ ई०) में हुई थी जैसा कि एक पद्य से स्पष्ट है :

६ ८ ७ १
रस वसु मुनि विधु वर्ष मास त०० सित पथ मुणोह।
तिथि पंचम क्षिति प्रणोभार, तिय दिन कोमिणो यह ।।

---

१. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १९१।
२. ह० ना० मा०, छ० ३११।
३. नारायणसिंह भाटी : डिंगल कोश, भूमिका, पृ० ११।
४. जोइ अनेकारथ धनंजय, 'मांणमंजरी' 'हेमी' 'अमर'।
नांम तिकां माहै निसरिया, उवै भेला भेलाया आखर ।।"
—ह०ना० मा०, छं० ३०९।
५. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १७९-१८०।
६. केसरि कीरति जोड करी, करयौ ग्रंथ सुखरासि।
पढ़ै गुणै रवै मुणौ, पावत चित...।।
——नामरत्नाकर कोश, अंतिम अंश-

इसमें कुल ८७८ पद्य हैं। आरम्भिक ४ पद्यों को छोड़कर समस्त कोश अधिकारों में विभक्त है। रेवाधिकार में २२२, मनुष्याधिकार में २७३, स्त्री (अधिकार) में १६२ एवं चतुर्थ (प्रकीर्ण अधिकार) में ११७ पद्य मिलते हैं।[1] इसकी हस्त-लिखित प्रति मोतीचन्द खजानची संग्रह, बीकानेर में सुरक्षित है, परन्तु यह संग्रह अनिश्चित काल के लिये बन्द है जिसके फलस्वरूप अध्ययनार्थ उपलब्ध न हो सका।

२५. एकाक्षरी नाममाला (१७३० ई०)

इस कोश की एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान पुरातत्व मन्दिर, जोधपुर से उपलब्ध हुई। खोज विवरणों में इसका उल्लेख मिलता है।[2] यह "डिंगल कोश" के अन्तर्गत प्रकाशित भी हो चुका है।

कोशकार का नाम वीरभाण है। ये जोधपुर राज्य के घड़ोई ग्राम के निवासी तथा 'रतनू' शाखा के चारण थे। इनका जन्म सं० १७४५ (१६८८ ई०) तथा देहावसान सं० १७९२ (१७३५ ई०) में हुआ था।[3] इनका लिखा 'राजरूपक' डिंगल भाषा का एक सुप्रसिद्ध ग्रंथ है, जिसमें जोधपुर के महाराजा अभयसिंह और गुजरात के सूबेदार शेरबिलंदखाँ के युद्ध का वर्णन है। युद्ध १७३० ई० में हुआ था। अतएव ग्रंथ भी इसी तिथि के आसपास निर्मित हुआ होगा। उपर्युक्त कोश की रचना भी १७३० ई० के लगभग मानी जा सकती है।

एकाक्षरी कोश में देवनागरी वर्णमाला के कुछ अक्षरों के अनेकार्थ दिये गये हैं। आकार में यह कोश अत्यन्त लघु है और इसमें केवल ३४ पद्य हैं। संस्कृत में महाक्षपणक रचित एकाक्षरी कोश की छाया इसमें स्थान-स्थान पर मिलती है। कोश अत्यन्त अव्यवस्थित एवं क्रमहीन है। वर्ण्य अक्षरों के न तो शीर्षक दिये गये हैं और न कोई स्पष्ट विभाजन। अक्षरों का क्रम भी अनियमित है। ऐसी स्थिति में स्थान-स्थान पर अस्पष्टता रह गई है। समग्र रूप से कोश अधिक उपादेय नहीं है।

२६. अमरकोश भाषा (१७३५ ई०)

यह कोश अप्रकाशित एवं अप्राप्य है; केवल खोज रिपोर्टों[4] में ही इसका उल्लेख मिलता है जिससे ज्ञात होता है कि इसका परिमाण ८०० अनुष्टुप के लगभग है और यह सं० १८९१ वि० में लिपिबद्ध हुआ। प्रति का अंतिम अंश इस प्रकार है:—

---

१. खोज विवरण में छन्दों की संख्या भूल से ३२८ दी गई है। परन्तु कुल मिलाकर यह संख्या नहीं आती।
२. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १७८-१७९।
३. मोतीलाल मेनारिया: राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १७८।
४. खो० वि० सन् १९०९-१९११ ई०, पृ० १७३।

अन्त—खग, मृग, गदहा पाले होइ ताके नाम ॥
गृहा सक्त षग मृग जछा वाल वस्य ते होत ।
गृह वस छके सो कहत है दोनों नाम उदोत ॥

॥ इति सिंहादि वर्ग ॥ सुभमस्तु पोथी लीखा जो देखा मम दोष न दीयते ॥ श्री लीखी प्रहलाद मिश्र सुभ अथान आजमगढ़ मुहल्ले इरादत गंज गुर टोला संवत् १८९१ वार सोम ३ महीना अगहन जुदि ९ ।

कोश ग्रंथ के निर्माणकाल के सम्बन्ध में प्रारम्भ में ही एक दोहा है :

ससि मुनि निधि अरु पछ गन संवत बिक्रम लेहु ।
वार दिवाकर द्वैज सित माह उदित भव एह ॥[1]

ससि=१, मुनि=७, निधि=९, पक्ष=२, अर्थात् विक्रमी सं० १७९२ (१७३५ ई०) माघ (?) शुक्ला २, रविवार को यह कोश समाप्त हुआ ।

कोशकार हरिजू मिश्र मुगल सम्राट एवं आज़मगढ़ के संस्थापक आज़म ख़ाँ का आश्रित पर्याप्त समय तक रहा। आज़मगढ़ की स्थापना १६६५ ई० में हुई अतएव आज़मशाह का १७३५ ई० तक जीवित रहना सम्भव नहीं, फिर भी सम्भव है कि प्रारम्भिक दिनों में उन्हें आश्रय मिलता रहा हो । सेठ अमीचन्द कोश के वास्तविक प्रेरक माने जाते हैं ।[2]

कोश उपलब्ध नहीं है । ज्ञात होता है कि यह अमरकोश के एक अंश मात्र का भाषानुवाद है। डॉ० रामकुमार वर्मा[3] एवं डॉ० हरदेव बाहरी[4] ने इस कोश का प्रसंग दिया है परन्तु विशेष विवरण नहीं । उनका आधार भी शायद खोज-रिपोर्ट ही है ।

२७. नाम प्रकाश (१७३८ ई०)

प्रस्तुत कोशग्रंथ के रचयिता संस्कृत के पण्डित, हिन्दी के कवि और काव्य-शास्त्र के प्रणेता आचार्य भिखारीदास हैं । इनका जन्म सं० १७६० (१७०३ ई०) के आसपास माना जाता है । ये अरवर प्रदेश में ट्यौंगा ग्राम के निवासी थे । अरवर प्रदेश के हिन्दूपति ने इनको प्रश्रय दिया जिनकी बार बार प्रशंसा इन्होंने अपने

---

१. अमरकोश भाषा (हरिजू मिश्र), प्रारम्भिक अंश, छन्द ५ ।
२. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ७५० ।
३. डॉ० रामकुमार वर्मा : हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७ ।
४. डॉ० हरदेव बाहरी : कंट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी, लेख, पृ० ८३ ।

ग्रंथों में की है। कोश ग्रंथ 'नाम प्रकाश' भी इन्हीं हिन्दूपति की सम्मति[१] से लिखा गया था।

भिखारीदास का काव्यकाल आचार्य शुक्ल के मतानुसार सं० १७८५ से लेकर सं० १८०७ तक है।[२] डॉ० नारायणदास खन्ना[३] इनके द्वारा विरचित निम्न नौ ग्रंथ मानते हैं:—रस सारांश, छंदार्णव-पिंगल, काव्यनिर्णय, श्रृंगार-निर्णय, विष्णुपुराण भाषा, शतरंज शतिका, तेरिज रस सारांश, तेरिज काव्य निर्णय और नामप्रकाश।

भिखारीदासकृत कोश ग्रंथ के सम्बन्ध में हिन्दी साहित्य के अनेक इतिहास लेखक अभी तक प्रायः अपरिचित रहे हैं और इसी कारण इस ग्रंथ के सम्बन्ध में अनेक भ्रमपूर्ण बातें कही गई हैं। मिश्रबन्धुओं ने केवल नाम प्रकाश,[४] आचार्य शुक्ल ने नाम प्रकाश तथा अमर प्रकाश (संस्कृत अमरकोश भाषा पद्य में)[५], चतुरसेन शास्त्री ने भी दो[६], एवं डॉ० रसाल ने भी दोनों को भिन्न-भिन्न ग्रंथ माना है।[७] पंडित अयोध्यासिंह उपाध्याय ने भिखारीदास कृत ९ ग्रंथों का संकेत देते हुये, अमर-कोश भाषानुवाद का प्रसंग भी दे दिया है।[८]

वास्तव में वस्तुस्थिति इससे भिन्न है। जिसने भी भिखारीदास का नाम-प्रकाश ग्रंथ देखा है वह यह नहीं कह सकता कि 'नामप्रकाश' तथा 'अमरप्रकाश' अथवा 'अमरकोष' दो भिन्न-भिन्न ग्रंथ हैं। प्रतापगढ़ के राजा प्रतापबहादुर सिंह ने इस कोश ग्रंथ को 'द्वितीय बार संशोधि' करके प्रकाशित भी करवाया है।[९] इसका मुद्रण एवं प्रकाशन अभी तक केवल एक ही प्रेस अर्थात् 'गुलशन अहमद यंत्रालय, प्रतापगढ़' से नवम्बर १८९९ ई० में हुआ है। पुस्तक के आवरण पृष्ठ पर मोटे

---

१. "इति श्री भिखारीदास कृते सोमवंशावतंस श्री १०८ महाराज छत्रधारी सिहात्मज श्री बाबू हिन्दूपति सम्मते अमरतिलके नाम प्रकाशे तृतीय काण्डे अनेकार्थ वर्ग सम्पूर्णम"। —ना० प्र०, पृ० ३५९।
२. आचार्य शुक्ल: इतिहास, पृ० २०७।
३. डॉ० नारायणदास खन्ना: आचार्य भिखारीदास, पृ० १००।
४. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ६८५।
५. आचार्य शुक्ल: इतिहास, पृ० २०७।
६. चतुरसेन शास्त्री: हिन्दी भाषा और साहित्य का इतिहास, पृ० ३८५।
७. डॉ० रसाल: हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ० ४५०।
८. हरिऔध: हिन्दी भाषा और उसके साहित्य का विकास, पृ० ३९५।
९. ये इन ग्रंथन कहं जब पायो, बहुधन खरचि तिनहि छपवायो।
इन कृत अमरकोषहू पायो, द्वितिय बार संशोधि छपायो॥
—प्रतापसोमवंशावली, पृ० १११-११५।

अक्षरों में इसका नाम 'नामप्रकाश अर्थात् अमरकोश' दिया गया है। इस ग्रंथ का मुद्रण लीथो पर हुआ है और अब तो यह ग्रंथ लगभग अप्राप्त सा ही है। डॉ० नारायणदास खन्ना को इस ग्रंथ की एक प्रकाशित[१] परन्तु जीर्ण-शीर्ण प्रति प्रतापगढ़ से उपलब्ध हो गई थी जिसे उन्होंने कुछ समय के लिये प्रस्तुत अध्ययनार्थ दे दिया था।

ठाकुर शिवसिंह ने दासकृत केवल पाँच ग्रंथ निर्मित बताये जिनमें एक ग्रंथ 'बागबहार' भी है। राजा प्रतापबहादुर सिंह के मतानुसार 'नाम प्रकाश' का ही दूसरा नाम 'बागबहार' है।[२] मिश्रबन्धुओं ने भी राजा साहब के अनुमान को यथार्थ माना है।[३] परन्तु अमरकोश या नामप्रकाश का नाम 'बागबहार' बताना केवल भ्रमात्मक दृष्टिकोण का परिचायक है। बागबहार का अर्थ नामकोश किसी प्रकार नहीं निकलता।[४] ठाकुर शिवसिंह ने बागबहार का नाम देते समय निश्चित रूप से कोई भूल की है।[५]

उक्त कोश ग्रंथ के 'नामप्रकाश' तथा 'अमरकोश भाषा' के अतिरिक्त 'अमरतिलक' नाम भी स्थान-स्थान पर मिलता है। काशी नागरी प्रचारिणी सभा की खोजरिपोर्टों में ट्यौंगा निवासी भिखारीदासकृत कोश का 'अमरतिलक' नाम भी हस्तलिखित पोथियों में मिलता है।[६] रिपोर्टों के अनुसार इस ग्रंथ की दो हस्तलिखित प्रतियाँ महाराजा लायब्रेरी, प्रतापगढ़ में सुरक्षित हैं किंतु दोनों प्रतियाँ खंडित हैं अतः लिपि-काल अज्ञात है। एक का परिमाण लगभग ढाई हज़ार अनुष्टुप बताया गया है और दूसरी का लगभग तीन हज़ार अनुष्टुप।

दासकृत 'नामप्रकाश' कोश की निर्माण-तिथि कोश के प्रारम्भ में इस प्रकार दी गई है:

सत्रह से पचानवें, अगहन को सित पक्ष।
तेरसि मंगल को भयो, नाम प्रकाश प्रतक्ष॥[७]

अर्थात् सं० १७९५ (१७३८ ई०) अगहन मास, शुक्ल पक्ष की त्रयोदशी को 'नामप्रकाश' प्रकाश में आया।

---

१. कोश प्रकाशित होते हुये भी इसका उल्लेख "हिन्दी पुस्तक साहित्य" या "हिन्दी में उच्चतर साहित्य" में नहीं आया है।
२. शिवसिंह सरोज, परिशिष्ट, पृ० ३।
३. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ६८६।
४. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र : भिखारीदास ग्रंथावली, भूमिका, पृ० ७।
५. डॉ० नारायण दास खन्ना : आचार्य भिखारीदास, पृ० ७४।
६. खो० वि० (सन् १९२६-२८ ई०), पृ० १७० तथा १७१, क्रमांक ६१ ए तथा ६१ बी।
७. नामप्रकाश, पृ० २, छं० ९।

लेखक के वक्तव्यानुसार यह कोश मुख्य रूप से अमरकोश पर आधारित है।[१] इसमें कुल तीन काण्ड हैं। प्रथम काण्ड में दस, द्वितीय में भी दस, तथा तृतीय काण्ड में केवल तीन वर्ग हैं। अमरकोश के तृतीय काण्ड के अन्तिम दो वर्ग—अव्यय एवं लिंगादिसंग्रह वर्ग नामप्रकाश में नहीं आये हैं। अंतिम वर्ग 'नानार्थ वर्ग' के अतिरिक्त समस्त कोश समानार्थी है।

परन्तु नामप्रकाश को पूर्णरूपेण अमरकोश का भाषा-अनुवाद भी नहीं कहा जा सकता। शब्दों की क्या महत्ता है इससे कोशकार भलीभाँति अवगत था। कोश मुख्य रूप से 'भाषा' (हिन्दी) के अध्येताओं के निमित्त रचा गया था अतएव संस्कृत के नामों के अतिरिक्त 'भाषा' के ग्रंथों से भी भिखारीदास ने पर्याप्त शब्द संकलित किये।

छन्दों के चुनाव में दास ने अपनी पूर्ण प्रतिभा का परिचय दिया है। परन्तु छन्दों के आग्रह से शब्द रूपों में विकृति आ गई है। शब्दों के पर्याय गिनाने के अनन्तर अन्त में कुल पयार्यों की संख्या भी गिना दी गई है।

२८. अनेकार्थ (१७३८ ई०)

इस नानार्थी कोश के रचयिता दयाराम त्रिपाठी हैं। लेखक का जन्मकाल सं० १७६९ (१७१२ ई०) तथा रचनाकाल सं० १७९५ (१७३८ ई०) के आसपास माना जाता है।[२] अतएव उक्त कोश ग्रंथ भी इसी तिथि के लगभग निर्मित माना जा सकता है। दयाराम त्रिपाठी द्वारा 'अनेकार्थ' कोश के निर्मित होने का विवरण इण्डियन एन्टिक्वेरी[३] तथा शिवसिंह सरोज[४] में भी दिया गया है, परन्तु कोश के सम्बन्ध में अधिक विवरण नहीं मिलता। ग्रियर्सन ने भी इस कोश का उल्लेख किया है, वे लेखक को शान्त रस का कवि मानते हैं।[५]

२९. सुबोधचन्द्रिका (१७४३ ई०)

इस कोश की एक हस्तलिखित प्रति प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान संग्रहालय, जोधपुर से प्राप्त हुई है।[६] खोज रिपोर्टों में भी इसका उल्लेख मिलता है।[७] ग्रंथ का

१. 'देखि के अमरकोष तिलक अनेकनि सों बूझि के बुधन जो सकत शेश सरिकैं' —ना० प्र०, पृ० १, छं० १।
२. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ७५१।
३. दि इंडियन एन्टिक्वेरी, जनवरी १९०३, पृ० १९।
४. शिवसिंह : सरोज, पृ० १३९।
५. ग्रियर्सन : ए मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव् हिन्दुस्तान, पृ० १०१।
६. प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, संग्रहालय, प्रति संख्या ११२०।
७. राज० हस्त० खोज०, चतुर्थ भाग, प० १८६।

रचयिता फ़कीरचन्द है जिसने कोश के अन्त में अपने आप को मयाराम का पुत्र और चहुआण जाति का बताया है :

"इति श्री चहुआंण मयांराम सुत फकीरचंद कृता एकाक्षर अनेकार्थ सुबोध चंद्रका नाममाला त्रिभिरुद्योतैः सम्पूर्णाः।"

इन फ़कीरचन्द या मयाराम का विवरण कहीं अन्यत्र नहीं मिल सका। कवि उदैराम ने अवश्य अपनी 'एकाक्षरी नाममाला' के अन्तिम भाग में फ़कीरचन्द का उल्लेख दिया है।[1] प्राप्त प्रति किसी बीसाजू ने सं० १८२८ में लिपिबद्ध की थी।

लेखक के ही वक्तव्यानुसार सुबोधचन्द्रिका आचार्य सौभरि कृत संस्कृत कोश 'एकाक्षर नाममाला' के आधार पर निर्मित हुई है। परन्तु अन्य कवियों के मुख से सुने हुये शब्दों तथा अन्य शब्द कोशों का भी लेखक ने पूर्ण उपयोग किया और उन समस्त साधनों के आधार पर अपने कोश को द्वादश वर्णों के अर्थ देते हुये सज्जित किया :

सोभरि नाम अचार्य कृतं, हुती नाम की माल।
ताही के परमान कुछ, बरनौ जुगति रसाल॥
अधिक और कवि मुखन तें, सुनिकै कियो प्रमान।
सो प्रमान ह्याँ लायकैं, कहैं महा बुधवांन॥
सब्द सिन्धु सब मथ्य कै, रंच्यौ सु भाषा आनि।
अर्थ अनत इक वर्न के, द्वादश अनुक्रम बान॥[2]

फ़कीरचन्द ने ग्रंथ का निर्माणकाल इस प्रकार दिया है :

संवत ठार से बरष, चेत तीज सित पक्ष।
भई सुबोध चन्द्रिका सरस, देत गंयान परतक्ष॥[3]

अर्थात् सं० १८०० वि० (१७५३ ई०) चैत मास की शुक्ल पक्ष की तृतीया को प्रत्यक्ष ज्ञान देने वाली 'सुबोधचन्द्रिका' प्रकाश में आई।

यह विशाल एकाक्षर नाममाला १०२१ छन्दों में पूर्ण हुई है। सर्व प्रथम स्वरों के अनेक अर्थ छन्द बद्ध किये गये हैं। यह प्रथम उद्योत में समाप्त हुआ है। द्वितीय उद्योत में 'वर्ण' (व्यंजन) एकाक्षरों के अर्थ दिये गये हैं। इनमें प्रत्येक

---

१. **अव्यय भेद अपार है, वरण अरथ विस्तार।**
कवि औ फकीरचन्द, उदै कियौ उचार॥
—एकाक्षरी नाममाला, उदै० पृ० ३१५।

२. **सुबोध चन्द्रिका, छन्द २-४।**

३. **वही, छन्द ५।**

व्यंजन के ग्यारह वर्णों के अनेकार्थ छन्दोबद्ध हैं। 'क्षकार' को भी लेखक ने स्वतंत्र वर्ण मान कर उसके ११ रूपों के भिन्न-भिन्न अर्थ प्रस्तुत किये हैं। तृतीय उद्योत में अव्यय एकाक्षरों का निरूपण किया गया है जिनका कोई निश्चित क्रम नहीं है। इस तृतीय उद्योत के अंत में यह उक्ति है:

"इति श्री चहुआंण मयाराम सुत फकीरचन्द विरचिता सुबोध चन्द्रिकायां अव्यय एकाक्षर अनेकाक्षर अनेकार्थ नाम निरुपनं ॥ तृतीयोद्योत।"

सुबोध चन्द्रिका की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें लेखक ने भगवद्-भजन ईश्वरचर्चा एवं पौराणिक कथाओं का उल्लेख भी भरपूर किया है। स्थान विशेष पर तो लगता है जैसे लेखक का उद्देश्य अर्थ निरूपण न होकर केवल हरि-महिमा का ही वर्णन करना हो। कोश के लिये यह परिपाटी निश्चित रूप से घातक ही नहीं, अवांछनीय भी है।

३०. विश्वनाममाला (१७५० ई०)

इस कोश ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति श्री अगरचन्द नाहटा के सौजन्य से प्राप्त हुई है। खोज विवरणों में कहीं भी इसका उल्लेख नहीं मिलता।

कोश के रचयिता बालकराम हैं जिन्होंने कोश में कई स्थानों पर अपना नाम अंकित किया है। ये संतदासोत साधु मीठाराम के चेले थे। इन्होंने नाभादास के 'भक्तमाल' पर एक टीका[1] लिखी जिसमें इनकी व्यंजना शक्ति सुस्पष्ट एवं शैली निखरी हुई प्रतीत होती है। इनका रचनाकाल सन् १७४३ से १७६३ ई० तक माना गया है।[2] अतएव उक्त कोश का निर्माण भी अनुमानतः १७५० ई० के आसपास हुआ होगा।

'विश्वनाममाला' का उपलब्ध रूप एक बड़े कोश का खंडित अंश ही प्रतीत होता है क्योंकि यह केवल 'पूर्वार्ध संधान' ही है:

"इति श्री विश्वनामावल्यां श्री रामपादाश्रितेन वैष्णवा बालक नाम्ना विरचितायां पूर्वार्ध संधान संपूर्णम्।"

इसके पश्चात् पुनः 'इन्द्र नाम' प्रारम्भ हो जाते हैं।

प्रस्तुत कोश कुल मिलाकर २४८ छन्दों में पूर्ण हुआ है जिनमें २५० नाम शब्दों के पर्याय गिनाये गये हैं। प्रायः एक नाम शब्द के पर्याय एक ही छन्द में हैं। छन्दों में दोहे की प्रधानता है। इन नामों को किसी काण्ड या वर्ग आदि में विभाजित

---

१. राज० हस्त० खोज, प्रथम भाग, (१९४२ ई०), पृ० १७१-१७२।
२. मनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० २३५।

न कर एक क्रम में प्रारम्भ से अन्त तक नियोजित किया गया है, जिसके फलस्वरूप शब्द विशेष की स्थिति ज्ञापन करना अत्यन्त दुष्कर हो गया है। शब्द भी परम्परा-श्रुत, कोशों में प्रचलित एवं रूढ़ है। दिन प्रति दिन की व्यावहारिक शब्दावली के लिये इसमें कोई स्थान नहीं है।

संक्षेप में 'विश्वनाममाला' कोश एक प्रचलित परम्परा में निर्मित ग्रंथ है, जिसका उद्देश्य एक चलती हुई धारा में अपना योगदान करना था, नवीनता या विशिष्टता के लिये उसमें कोई स्थान नहीं।

३१. अमरकोशभाषा (१७५३ ई०)

संस्कृत के अमरकोश पर आधारित इस कोश के प्रणेता हरिकवि हैं।[१] लेखक की अन्य कृतियों का विवरण अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलता और न कोश का उल्लेख ही कहीं हुआ है। मिश्रबन्धु इसकी रचना १७५३ ई० में बताते हैं।

३२. नाम प्रकाश (१७५६ ई०)

यह समानार्थी कोश खंडन द्वारा निर्मित हुआ है। खंडन, पंडोखर या दिलीप-नगर (दतिया) का निवासी तथा जाति का कायस्थ था। ये दतिया के नरेश राम-चन्द (सन् १७२४-१७६२ ई०) के समकालीन बताये जाते हैं।[२] नामप्रकाश छन्दों में विरचित एक कोश ग्रंथ है जिसकी रचना १७५६ ई० में हुई थी।[३] एक अन्य खोज विवरण के अनुसार इसमें ८५० श्लोक थे।[४] मिश्रबन्धुओं ने इनके नामप्रकाश का उल्लेख दिया है।[५]

३३. लखपत मंजरी नाममाला (१७६६ ई०)

प्रस्तुत कोश की हस्तलिखित प्रति प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर[६] से उपलब्ध हुई है। खोज रिपोर्टों में इसका उल्लेख है।[७] इसकी पुष्पिका से ज्ञात होता है कि इसके रचयिता कनककुशल हैं जिन्होंने सं० १८२३ (१७६६ ई०) में इस ग्रंथ का प्रणयन किया।

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ७६८।
२. राज० हस्त० खोज, प्रथम भाग, पृ० ३१ और ७९।
३. खो० वि० (१९०६-१९०८), क्र० चि० ५९, पृ० ३६।
४. खो० वि० (१९०३ ई०), क्र० चि० ७४।
५. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ६७२।
६. ग्रंथ-संख्या ११२१, गुटकाकार साइज ६"×५", पत्र १३, पं० १३, अक्षर २० से २४ तक।
७. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १८४-१८५।

कनककुशल तपागच्छीय साधु थे। इन्होंने भुजनगर के राजा लखपत को ब्रजभाषा के ग्रन्थों का अध्ययन करवाया था। कच्छभुज (भुजनगर) में इन्होंने ब्रजभाषा के अध्ययन के लिये एक विद्यालय भी स्थापित करवाया था।[१] प्रस्तुत कोश भी इन्हीं लखपत की प्रेरणा से लिखा गया था।[२]

इस 'नाममाला कोश' में कुल २०२ दोहे हैं। पद्यांक १०२ तक भुजनगर तथा उनके राजादि का वर्णन किया गया है। शेष छन्दों में एकाक्षरी कोश है जिसमें स्वर और व्यंजन एकाक्षरों के भिन्न-भिन्न अर्थों को दोहा छन्द में बद्ध किया गया है। ये एकाक्षर अधिकांश अव्यय हैं जिनके व्याकरणिक रूप भी आवश्यकतानुसार दिये गये हैं। इनके द्वादश वर्णों का उल्लेख न कर केवल एक ही वर्ण की विवेचना की गई है। बीच-बीच में कुंवर लखपत का भी यशोगान किया है। असम्वद्धता और क्रमहीनता से पूर्ण इस ग्रंथ का न तो शब्द सम्बन्धी अधिक मूल्य है, न साहित्यिक।

३४. हिन्दुस्तानी कोश (१७७३ ई०)

यह द्विभाषीय कोश तुरोनेसिस द्वारा निर्मित हिन्दुस्तानी कोश की श्रृंखला में किया गया दूसरा प्रयास है। इसके लेखक जे० फ़र्गुसन थे। कोश के दो स्वरूप थे, प्रथम में अंग्रेज़ी शब्दों का हिन्दुस्तानी में अर्थ दिया गया था और दूसरे में हिन्दुस्तानी शब्दों के अंग्रेज़ी में अर्थ दिये गये थे।[३] इन दोनों का प्रकाशन लंदन से १७७३ ई० में हुआ था।[४] हिन्दुस्तानी शब्दों के लिये रोमन लिपि का ही व्यवहार इस कोश में हुआ है।

३५. लघुनामावली (१७७७ ई०)

लघुनामावली एवं इसके रचयिता रामहरी या हरीराम जौहरी का परिचय नन्ददासकृत 'नाममाला' कोश के प्रसंग में दिया जा चुका है। यह कोश स्वतंत्र रूप में उपलब्ध नहीं होता केवल खोज विवरणों[५] में इसकी एक हस्तलिखित प्रति का उल्लेख मिलता है। यह प्रति वृंदावन में सुरक्षित बताई गई है। प्रति पूर्ण है और परिमाण १०२ अनुष्टुप के बराबर बताया गया है।

---

१. राज० हस्त० खोज, प्रथम भाग, पृ० १४५।
२. तिनि हिति त्रिपुरा पूजि पद इंदीवर अभिरांम।
   कनक कुशल कवि यह, दिव्य नांम की दांम॥
   —ल० मं०, छन्द १०२।
३. हिन्दी शब्दसागर, आठवां खंड (सम्पा० डॉ० श्यामसुन्दर दास), भूमिका।
४. डॉ० हरदेव बाहरी : कॉन्ट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्रॉफ़ी, लेख, पृ० ८५।
५. खोज विवरण (सन् १९२९-१९३१ ई०), पृ० ५२८, क्रम संख्या २८३ डी।

इसमें कोश ग्रंथ का रचना-काल इस प्रकार दिया गया है :

अब्द खंड जुग चारि तिस श्रावण शुक्ला तीज ।
रामहरी बृज बास करि सदा कृष्ण रंग भीज ॥[१]

अब्द=वर्ष, खंड जुग=९×२=१८, चारि तिस=३४ अर्थात् सं० १८३४ (१७७७ ई०), श्रावण मास, शुक्ल पक्ष तृतीया को ग्रंथ पूर्ण हुआ। इस ग्रंथ के श्लोक सं० १८३५ में नन्ददासकृत 'नाममाला' के साथ कैसे मिलाये गये थे इसका उल्लेख पीछे हो चुका है। पं० उमाशंकर शुक्ल तथा श्री ब्रजरत्नदास ने रामहरी के कुछ दोहों को अपनी पुस्तकों में अलग से प्रकाशित करवाया है।[२]

३६. लघुशब्दावली (१७७७ ई०)

'लघुशब्दावली' तथा इसके लेखक रामहरी जौहरी का उल्लेख नन्ददासकृत नानार्थी कोश 'अनेकार्थ' के प्रसंग में दिया जा चुका है। यह नानार्थी कोश है जिसकी केवल एक हस्तलिखित प्रति का विवरण खोज रिपोर्टों[३] में मिलता है। यह गोविन्दकुंड, वृन्दावन में बाबा बंशीदास जी के पास बताई गई है। पुष्पिका में इसका आकार १०० दोहे और निर्माणकाल इस प्रकार बताया गया है[१] :

वेद राम वसु कलानिधि संवत मास जु क्वार ।
शुक्ल पक्ष पुन्यौ सरद वृन्दावन गुरुवार ॥[४]

वेद=४, राम=३, वसु=८, कलानिधि=१; अर्थात् सं० १८३४ (१७७७ ई०) आश्विन मास, शुक्ल पक्ष की पूर्णिमा को यह कोश समाप्त हुआ। खोज रिपोर्ट में प्रति का लिपि-काल सं० १८३५ उल्लिखित है। इसके अधिकांश दोहे सं० १८३५ के बाद नंददासकृत 'अनेकार्थ' में मिला दिये गये थे। नन्ददास के सम्पादकों[५] ने उनको प्रकाशित कराते समय परिशिष्ट में स्थान दिया है।

३७. अनेकार्थ नाममाला (१७७८ ई०)

इस नानार्थी कोश के प्रणेता प्रेमी यमन दिल्ली के मुसलमान थे। 'सरोज' में इनका जन्म सं० १७९८ (१७४१ ई०) दिया गया है। मिश्रबन्धु इनका

---

१. लघु नामावली, अंतिम छन्द ।
२. उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, परिशिष्ट १ (क) तथा २ (क); ब्रजरत्नदास : नन्ददास ग्रंथावली, पृ० १०७-११६।
३. खोज विवरण (१९२९-१९३१ ई०), पृ० ५२७-२८, क्र० सं० २८३ सी ।
४. लघुशब्दावली, अंतिम अंश ।
५. उमाशंकर शुक्ल : नन्ददास, परिशिष्ट २ (ख); ब्रजरत्नदास : नन्ददास, पृ० ६४-७१

रचनाकाल सं० १८३५ (१७७८ ई०) के आसपास मानते हैं।[1] अतएव उक्त कोश की निर्माण-तिथि भी अनुमानतः यही मानी जा सकती है।

'अनेकार्थ नाममाला' में केवल १०३ छंद हैं जिनमें दोहे विशेष रूप से आये हैं। कोश में एक शब्द के अनेक प्रचलित अर्थ छन्दबद्ध किये गये हैं। विषय का निरूपण साहित्यिक ढंग से किया गया है इसीलिये ग्रियर्सन ने इसकी बहुत प्रशंसा की थी।[2] कोश अनुपलब्ध है परन्तु मिश्रबन्धु द्वारा दिये गये एक उदाहरण[3] से ज्ञात होता है कि यह एक अच्छी श्रेणी का कोश रहा होगा।

३८. अमरप्रकाश (१७७९ ई०)

दस विलासों (अध्यायों) का यह कोश अभी अप्रकाशित है। खोज रिपोर्टों[4] में इसकी दो हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख मिलता है। एक प्रति जिसका परिमाण ८५० अनुष्टुप है, काशीनरेश के पुस्तकालय में और दूसरी जिसका परिमाण ७७० अनुष्टुप है, छतरपुर के बाबू जगन्नाथ प्रसाद के पास सुरक्षित बताई गई है।

दोनों प्रतियों में रचनाकाल सं० १८३६ (रस गुन वसु ससि) बैशाख शुक्ल चतुर्दशी बुधवार दिया गया है और रचनाकार का नाम 'खुमान' कवि दिया है। खुमाण का उपनाम 'मान' भी था। डॉ० ग्रियर्सन ने भूल से खुमाण तथा मान को अलग-अलग कवि माना है।[5] खुमाण के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि ये सम्भवतः वही कवि थे

---

१. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ८४८।
२. ग्रियर्सन : ए मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, पृ० १०३।
३. ॥ चन्द्र शब्दार्थ ॥

चन्द्र मन हंस तार तारिका औ कसतूरी
चंदन औ पृथ्वी गंगा ग्रंथन गहत हैं।
वानर औ कुशलता वज्रनाथ औधपुरी,
लंका साँप कामदेव जग में चहत हैं।
खग्ग रिपु ग्रह जन रवि मंडलों प्रमान।
मेघ दूते शब्द चन्द्रमाहु के लहत हैं
चन्द्रमा सु नर जानि भजो राम रहिमान,
नाही तो तवा समान ताही को कहत हैं।

—मिश्रबन्धु, विनोद, पृ० ८४९।

४. खो० वि० १३०३ ई०, पृ० ५२, क्र० सं० ७४ तथा १९०५ ई०, पृ० ८०, क्र० सं० ८६।
५. डॉ० ग्रियर्सन : ए वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, पृ० ७०-११२।

जिन्होंने अमरकोश के एक अंश का अनुवाद भाषा में छन्दोबद्ध किया ।[1] ये वसरी ग्राम के निवासी तथा जाति के बंदीजन थे । पन्ना नरेश महाराज विक्रमसिंह इनके आश्रयदाता बताये जाते हैं। इनके पूर्वज महाराज छत्रसाल और उनके वंशजों के आश्रित होते आये थे।[2] डॉ० ग्रियर्सन इनको १८२० ई० के आसपास विद्यमान मानते हैं।[3] कोशग्रंथों के अतिरिक्त खोज रिपोर्टों में इन के द्वारा विरचित इन ग्रंथों का उल्लेख है—हनुमान पंचक, हनुमंत पचीसी, लक्ष्मण शतक, हनुमंत शिखनख, नीतिनिधान, समरसार, नृसिंह चरित्र, नृसिंह पचीसी तथा अष्टयाम ।[4]

शिवसिंह के मतानुसार खुमाण ने एक कांड अमरकोश का भाषा में उल्था किया है।[5] अन्य स्रोतों से उक्त कोश के सम्बन्ध में कोई सूचना उपलब्ध न हो सकी

३६. कर्णाभरण (१७८१ ई०)

प्रस्तुत कोश ग्रंथ की एक हस्तलिखित प्रति हिन्दी विद्यापीठ, आगरा के संग्रहालय से उपलब्ध हुई है। समस्त कोश में ६″×१०″ आकार के ५४ पत्र या १०९ पृष्ठ हैं। देवनागरी अक्षरों में लिखा गया यह कोश सामान्यतः अच्छी दशा में है केवल अंतिम पृष्ठ दीपक के द्वारा या अन्य किसी कारण से जल गया है।

ग्रंथ के रचयिता हरिचरणदास हैं जिन्होंने कर्णाभरण कोश के अंत में अपना परिचय इस प्रकार दिया है:

राजत सुबे बिहार में है सारनि सरकार ।
सालग्रामी सुरसरित सरजू सौभ अपार ।।
सालग्रामी सुरसरित मिली गंग सौं आय ।
अंतराल में देस सो हरि कवि कौ सरसाय ।।
परगन्ना गौआ तहाँ गाँव चैनपुर नाम ।
गंगा सों उत्तर तरफ तहँ हरि कवि को धाम ।।
सरजूपारी द्विज सरस, वासुदेव श्रीमान ।
ताको सुत श्री रामधन, ताको सुत हरि जान ।।
नवापुर में ग्राम है, चढ़या अभिजन तास ।
विश्वसेन कुल भूप वर, करत राज रवि भास ।।

---

१. डॉ० ग्रियर्सन: ए मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव् हिन्दुस्तान, पृ० ७०।
२. खोज विवरण, सन् १९००-१९११ ई०, प्रथम भाग, पृ० ३१ ।
३. डॉ० ग्रियर्सन: ए मॉडर्न वर्नाक्यूलर लिटरेचर ऑव हिन्दुस्तान, पृ० ११२।
४. खो० वि०, १९०६-१९०८ ई०, क्र० चि० ७०, पृ० ५० ।
५. शिवसिंह सरोज, पृ० ३९९ ।

मारवाड़ में कृष्णगढ़, तिह किय हरि कवि वास।
कोस जु करनाभरन यह, कीन्हो है जु प्रकास॥[१]

इससे ज्ञात होता है कि कोशकार मूलतः सूबा बिहार के अन्तर्गत परगन्ना गौआ गाँव चैनपुर का निवासी था परन्तु कालान्तर में ये मारवाड़ आकर कृष्णगढ़ बस गये थे। ये जाति के सरयूपारी ब्राह्मण थे। पितामह का नाम वासुदेव तथा पिता का नाम रामघन था।

हरिचरणदास का वैयक्तिक व साहित्यिक इतिवृत्त अन्यत्र भी मिलता है। इनका जन्म सं० १७६६ में हुआ था[२] तथा सं० १८३४ तक इनको वर्तमान माना गया है।[३] अन्यत्र इनकी मृत्यु सं० १८३५ में बताई गई है।[४] परन्तु इनके दूसरे ग्रंथ 'कविवल्लभ' से ज्ञात होता है कि ये सं० १८३९ तक विद्यमान थे।[५]

कर्णाभरण के आधार पर नवापुर के राजा विश्वसेन इनके प्रथम आश्रयदाता थे परन्तु अन्य ग्रंथों के अनुसार कृष्णगढ़ के महाराजा सावंतसिंह उपनाम नागरीदास तथा राजा बहादुर सिंह ने इनको दीर्घकाल तक प्रश्रय दिया। इन्होंने केशवदासकृत 'रसिकप्रिया', 'कविप्रिया' एवं 'बिहारी सतसई' तथा महाराजा जसवन्तसिंहकृत 'भाषाभूषण' के अनुवाद भाषा में किये।[७] इनके द्वारा विरचित दो स्वतंत्र ग्रंथ भी रचे गये थे—'सभा प्रकाश' तथा 'वृहत्कविवल्लभ'।[८] 'अलंकार चन्द्रिका' भी स्वतंत्र ग्रंथ ही प्रतीत होता है।[९] 'सरोज' में 'वृहत्कविवल्लभ' की बड़ी प्रशंसा की गई है।[१०]

'कर्णाभरण' कोश ग्रंथ का कहीं भी अन्यत्र प्रसंग नहीं मिलता परन्तु इसमें प्रस्तुत आत्मपरिचय लेखक के अन्य ग्रंथों में भी ठीक उसी प्रकार मिलता है। अतएव

---

१. कर्णा० पृ० ५३ पीठ।
२. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ७८०।
३. हस्तलिखित ग्रंथों का संक्षिप्त विवरण, सं० श्यामसुन्दर दास, पहला भाग, पृ० १९३।
४. मेनारिया : राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १८६।
५. "संवत नंद (९) हुत्तासन (३) दिग्गज (८) इंदहु (१)"
—"कविवल्लभ" उदयपुर की हस्तलिखित प्रति, पत्र १०७-१०८।
६. मेनारिया : राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १४४-१४५।
७. मेनारिया : राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा, पृ० २३२।
८. मिश्रबन्धु विनोद पृ० ७८०।
९. राज० हस्त० खोज, तृतीय भाग, पृ० १११।
१०. शिवसिंह सरोज, पृ० ५११।

इस कोश को उक्त हरिचरणदास द्वारा निर्मित माने जाने में कोई विरोध नहीं प्रतीत होता।

कोश का रचनाकाल विवादास्पद है। इसके अंतिम ५४वें पत्र के पृष्ठभाग पर एक दोहा इस प्रकार है:

संवत् बाइस सौ बित्ते तापर है अड़तीस।
कीन्हों कर्णाभरण हरि, हो राजी जगदीश ॥

उक्त दोहे में 'बाइस सौ' शब्द भूल से लिखा गया प्रतीत होता है। लेखक के जीवन-काल एवं अन्य रचनाओं की तिथि को देखते हुये यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि 'बाइस सौ' के स्थान पर 'ठारह सौ' होना चाहिये था। इस निष्कर्ष के फल-स्वरूप कर्णाभरण की रचनातिथि सं० १८३८ (१७८१ ई०) निर्णीत होती है। ऐसा ज्ञात होता है कि पुस्तक केसरी लग्न तथा प्रभात काल में समाप्त हुई थी:

केसरी लग्न प्रभात में भानुसुता प्रकटी रति कोटि निकाई।
ताहि ए द्यौस में पूरो कियो हरि ग्रंथ कवीस को मंगलदाई ॥[1]

ग्रंथारंभ में राधा पर एक दोहा तथा एक कवित्त बनाया गया है। हस्तलिखित प्रति के पत्र ५०, ५१ एवं ५२ के मूल भाग में कुछ आध्यात्मिक चर्चा तथा पत्र ५२वें के पृष्ठभाग में राग रागनियों का वर्णन है।

कर्णाभरण कोश में पर्याय गिनाने वाले मूल श्लोकों की संख्या १२०० तथा टीका के श्लोकों की ७०० है। १०९ पृष्ठों में संकलित यह कोश पर्याप्त रूप से महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय है।

कर्णाभरण का मुख्य आधार संस्कृत का अमरकोश है। अमरकोश के ही अनुकरण पर यह भी तीन काण्डों में विभक्त है। प्रथम काण्ड में दस, द्वितीय काण्ड में भी दस और तृतीय काण्ड में केवल दो वर्ग हैं विशेष्यनिघ्न तथा संकीर्ण। अमरकोशान्तर्गत तृतीय काण्ड के अन्य वर्गों का भाषा में इन्होंने 'भाषा' की दृष्टि से कोई उपयोग न देखकर छोड़ दिया। 'अनेकार्थ वर्ग' का उपयोग अवश्य था, परन्तु उसका वर्णन किसी 'सुकवि प्रवीन' के लिये छोड़ दिया गया।

अमरकोश से प्रभावित होते हुये भी यह कई दृष्टियों से स्वतंत्र रचना कही जा सकती है। शब्दसम्पति के लिये हरिचरणदास ने अपनी दृष्टि पूर्ण व्यापक रखी और संस्कृत के प्रसिद्ध कोश मेदिनी, हेमीकोश तथा अन्य महत्त्वपूर्ण कोशों से पर्याप्त शब्द संकलित किये गये हैं। लेखक ने अपने ज्ञान का उपयोग तो किया ही है, साहित्य

---

१. कर्णा०, पत्र ५४ पीठ।

शास्त्रों से भी पर्याप्त शब्दों को यथास्थान छन्दबद्ध किया है। हरिचरणदास को भलीभाँति ज्ञात था कि यह रचना 'भाषा' के अध्येताओं के लिये की जा रही है अतएव स्थान-स्थान पर भाषा के प्रचलित शब्दों को भी ले लिया गया है। ऐसे शब्दों के संबंध में उस शब्द का प्रयोग किया जाने वाला भौगोलिक स्थान भी निर्दिष्ट है।

पर्यायों के सम्बन्ध में हरिचरणदास ने अमरकोश के टीकाकारों के मतों का भी आवश्यकतानुसार उल्लेख दिया है। क्षीरस्वामी, रायमुकुट एवं भानुजी दीक्षित के मतों का यथास्थान प्रसंग मिलता है। शब्द विशेष का शीर्षक देने के उपरान्त उसके पर्याय दिये गये हैं। प्रत्येक पर्याय को क्रम से अंकित भी कर दिया गया है जिससे पाठक को भ्रम न हो।

इस कोश ग्रंथ की एक अन्य विशेषता यह है कि इसमें मूल कोश के अलावा लेखक ने टीका भी प्रस्तुत की है। इस टीका अंश में प्रकीर्ण स्रोतों को आधार मानकर पर्याय दिये गये हैं। यही नहीं, शब्दों के पर्यायों को समग्र रूप से व्यवस्थित करने

चित्र संख्या २

हरिचरणदासकृत हस्तलिखित पद्यबद्ध समानार्थी कोश ग्रंथ "कर्णाभरण" का एक पत्र (पृष्ट ११५ पीठ)

(संचालक, के० एम० इन्स्टीट्यूट ऑव हिन्दी लिंग्विस्टिक्स एण्ड स्टडीज, आगरा के अनुग्रह से)

की भी अत्यन्त सुन्दर योजना है। इस टीका अंश में स्थान-स्थान पर गद्य का भी प्रयोग हुआ है। यह दृष्टव्य है कि आलोच्यकालीन कोशों में यही कोश ऐसा उपलब्ध हुआ है जिसमें पर्यायों को गद्य के माध्यम से भी गिनाने का सफल प्रयास है। पुनः

१८वीं शती के गद्य का भी सुन्दर स्वरूप इसमें सुरक्षित है। इन समस्त विशेषताओं को देखते हुये कर्णाभरण की अपरिहार्य उपादेयता स्पष्ट हो जाती है। इस ग्रंथ के प्रकाशन से हिन्दी शब्द सम्पत्ति को अत्यधिक लाभ होना निश्चित है।

४०. वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (१७८६ ई०)

तुरोनेसिस तथा फ़र्ग्युसन के आरम्भिक प्रयास को गति देने वाला यह तृतीय द्विभाषीय कोश है। इसके प्रणेता डॉ० जॉन गिलक्राइस्ट थे। ये ३ अप्रैल १७८३ ई० में ईस्ट इंडिया कंपनी की अध्यक्षता में चिकित्सक की हैसियत से भारत आये और १७८७ ई० में इन्होंने अपना हिन्दुस्तानी सम्बन्धी अध्ययन प्रारम्भ किया। कंपनी के समस्त कर्मचारियों में से ये ही एक ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने हिन्दुस्तानी भाषा का हिन्दुस्तानी प्रदेश (बनारस तथा गाज़ीपुर की तत्कालीन ज़मींदारी) में रहकर विशेष रूप से अध्ययन किया। वेलेज़ली द्वारा स्थापित फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के हिन्दुस्तानी विभाग के ये प्रथम अध्यक्ष (१८००-१८०४ ई०) थे।[1]

डॉ० गिलक्राइस्टकृत 'डिक्शनरी: इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी' सर्व प्रथम सन् १७८६ तथा १७९०ई० में प्रकाशित हुई।[2] इसी कोश का उलटा रूप 'दि वाकेबुलेरी हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' १८९० ई० में कलकत्ते से 'दि ओरियन्टल लिंग्विस्ट' के नाम से प्रकाशित हुआ। इसमें 'हिन्दुस्तानी भाषा' की भूमिका, लाभदायक वार्तालाप इस भाषा सम्बन्धी अन्य आवश्यक बातें तथा युद्ध की कहानियाँ आदि संकलित हैं।[3] 'हिन्दुस्तानी अंग्रेजी कोश' प्रस्तुत ग्रंथ के पृ० ५७ से पृ० १४६ तक आया है।

डॉ० गिलक्राइस्ट का 'हिन्दुस्तानी-इंग्लिश कोश' उनके अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोश' का उलटा रूप है। अर्थात् अंग्रेज़ी शब्दों के अर्थ देते समय जितने हिन्दुस्तानी शब्द प्रयोग में आये थे उन्हीं को मूल मानकर 'हिन्दुस्तानी अंग्रेजी कोश' में संकलित

---

१. डॉ० लक्ष्मीसागर वार्ष्णेयः आधुनिक साहित्य, पृ० ३३–३४।

२. शेक्सपियर : ए डिक्शनरी हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० १०।

३. The oriental Linguist, an easy and familiar introduction to the popular language of Hindoostan (Vulgarly but improperly called the Moors) comprising the rudiments of that tongue with an extensive vocabulary English and Hindoostanee, and Hindoostanee and English accompanied with some plain and useful dialogues, tales, poems and to illustrate the construction and facilitate the acquisition of the language to which is added for the accommodation of the army the English and Hindustanee part of the articles of war with practical Notes and observations by the author of 'The English and Hindoostanee Dictionary,.

—दि ओरिएन्टल लिंग्विस्ट का शीर्षक

किया गया है और जो शब्द 'अंग्रेज़ी हिन्दुस्तानी कोश' में मूल रूप में आये थे इसमें अर्थ के रूप में दिये गये हैं।

प्रस्तुत कोश में लगभग १००० मूल हिन्दुस्तानी शब्द हैं जिनका संकलन लेखक ने जनता के बीच रहकर तथा काव्य-साहित्यादि से किया। इसमें केवल संज्ञा ही नहीं सर्वनाम, विशेषण, क्रियायें तथा अव्ययों का भी संकलन किया गया है। इसमें संस्कृत का तत्सम शब्द एक भी नहीं आया है। समस्त शब्द तद्भव, देशज एवं अरबी-फ़ारसी के प्रचलित रूप हैं। शब्दों का संकलन अंग्रेज़ी के वर्णानुक्रम पर हुआ है और लिपि रोमन है। शब्दों की व्याख्यायें कम दी गई हैं, अधिकांशतः हिन्दुस्तानी शब्दों के अंग्रेज़ी समानार्थी रूप दिये गये हैं। हिन्दुस्तानी शब्दों का अंग्रेज़ी समानार्थी जानने के लिये यह अपने ज़माने में एक लाभदायक कोश समझा जाता था।

४१. आतमबोध नाममाला (१७९० ई०)

यह कोश अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर से हस्तलिखित रूप में उपलब्ध हुआ। खोज विवरणों में भी इसका उल्लेख मिलता है।[1] इसके रचयिता चेतनविजय हैं जो ऋद्धिविजय के शिष्य थे। इनकी अन्य रचना 'लघुपिंगल' (रचना-काल सं० १८४७) की अन्तःप्रशस्ति के अनुसार इनका जन्म बंगाल में हुआ था।[2] 'जम्बूचरित' संवत् १८५२ में अजीमगंज में निर्मित हुआ था।[3] 'श्रीपालरास' (सं० १८५३) और 'सीता चौपाई' (सं० १८५१) इनकी अन्य रचनाएँ हैं। मिश्रबन्धु विनोद में इनका परिचय दिया गया है।[4]

उक्त कोश ग्रंथ की रचना-तिथि अन्त में इस प्रकार दी गई है:

इक अष्टचार अरु सात धरिये, माघ सुद दसमी रची।
इह साख विक्रमराज कहै, चित धार लीजे कची॥

अर्थात् सं० १८४७ (१७९०ई०), माघ सुदी दसमी को प्रस्तुत कोश सम्पूर्ण हुआ। कोश ग्रंथ में कुल २७३ छन्द हैं, जिनमें अधिकांशतः दोहे ही हैं। कोश पर्यायवाची है जिसमें शब्दों के प्रचलित नाम छन्दोबद्ध किये गये हैं। संकलित शब्द परम्परानुगत रूढ़ एवं कोशों में प्रचलित ही हैं, नवीनता के लिये वहाँ कोई गुँजायश नहीं। शब्द भी केवल नाम संज्ञा मात्र हैं। अतएव यह कोश एक परिपाटी में बद्ध नामग्रंथ कहा जा सकता है।

---

१. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० ३।
२. वही, तृतीय भाग, पृ० १३।
३. वही, पृ० ७३।
४. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ८३६।

इस कोश की एक अन्य विशेषता यह है कि रचयिता ने ग्रंथ की प्रथम पंक्ति में नाम पर्यायों को गिनाने के अतिरिक्त द्वितीय पंक्ति में कुछ उपदेशात्मक या भगवद्भजन सम्बन्धी चर्चा भी की है। लेखक के ही वक्तव्यानुसार प्रस्तुत कोश में नाम के ज्ञान के अतिरिक्त व्यावहारिक चतुरता तथा आत्मबोध कराने का भी पर्याप्त प्रयास किया गया है।[१]

४२. हिन्दुस्तानी कोश (१७९० ई०)

डॉ० हेरिसकृत कोश 'ए डिक्शनरी : इंग्लिश एण्ड हिन्दुस्तानी' मद्रास से १७९० ई० में प्रकाशित हुआ था। इस का उल्लेख डॉ० बाहरी[२] एवं डॉ० श्यामसुन्दर दास[३] ने किया है। इस कोश का कोई 'हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी' रूप भी था या नहीं इसका कहीं उल्लेख नहीं मिलता। इस कोश की पाण्डुलिपियाँ इण्डिया आफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन में सुरक्षित हैं। जॉन शेक्सपियर ने इन पाण्डुलिपियों से पर्याप्त सहायता अपने कोश के लिये ली थी। उन्होंने इसकी अत्यधिक प्रशंसा की है।[४]

४३. पारसी पारसातनाममाला (१८०० ई०)

इस द्विभाषीय कोश की एक हस्तलिखित प्रति राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर[५] से प्राप्त हुई। खोज विवरणों में भी इसका उल्लेख है।[६] कोशकार कुँअर

---

१. इहा शुद्ध आतमबोधमाला, किये रचना नाम कौ।
सुभ कुसुम मेधा सरस गुंथ्यौ, हिय धर इह दाम कौ॥
× × ×
इह नाम माला अति विसाला कंठ धारे जे नरा।
बहु बुझि ऊपजै हिय मांहि, ग्यान जगमें है खरा॥
—छन्द, २७२-२७३।

२. डॉ० बाहरी : कन्ट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी, लेख पृ० ८५।

३. डॉ० श्यामसुन्दर दास : हिन्दी शब्दसागर, आठवाँ खण्ड, भूमिका भाग।

४. But from no other source has the author gathered so much additional matter as from what the late Dr. Harris of Madras had prepared in Mss., apparently with the design, had he lived, of publishlng a very extensive and accurate Dictionary of Hindustani, currently in both Hindustani and Dakhan. The Mss. left by him in several volumes and now deposited in the India office library fully evincing the content of his plan, the pains he had taken to make his work a complete and general book of rcference for both dialects as the important aid he had sought and obtained from learned natives in fixing the meaning of the word·
—शेक्सपियर : डिक्शनरी हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० ६

५. ग्रंथ संख्या, ५२९।

६. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १८१।

कुशल सूरी हैं। मेनारिया[1] तथा टीकमसिंह तोमर[2] ने इनको लखपतमंजरीनाममाला के रचयिता कनककुशल का भाई बताया है। उनकी यह धारणा मिश्रबन्धु[3] के आधार पर है। परन्तु इनको भाई बताना अशुद्ध है। इनका सम्बन्ध गुरु और शिष्य का था।[4]

कनककुशल के ब्रजभाषा सम्बन्धी कार्य को उनके शिष्य कुँअरकुशल ने आगे बढ़ाया। प्रस्तुत कोश उसी प्रयास का परिणाम है। यह एक द्विभाषीय कोश है जिसमें ब्रजभाषा (हिन्दी) शब्दों का फ़ारसी में या फ़ारसी शब्दों का ब्रजभाषा में उसी अर्थ के द्योतक शब्दों को छन्दबद्ध किया गया है। इसकी लिपि देवनागरी है और फ़ारसी शब्दों को भी देवनागरी लिपि में अपनी प्रवृत्ति के अनुसार लिखा गया है।

ग्रंथ का निर्माण-काल अन्त में इस प्रकार दिया गया है:

"इति श्री पारसातनाममाला भट्टारक कुँअरकुशल सूरी कृत सम्पूर्णा ।। संवत् १८५७ (१८०० ई०) ना आसू वदि १० सोमे संपूर्णा कृता......"।

कोश में कुल ३५३ छंद हैं। प्रारंभिक १० दोहों में भुजनगर एवंवहाँ के राजा लखपत की प्रशंसा तथा सूर्य-प्रार्थना की गई है। समस्त कोश दस 'बाब' (अध्याय) में विभाजित है, प्रत्येक 'बाब' में उस वर्ग से सम्बद्ध शब्दावली के ब्रजभाषा और उनके फ़ारसी रूप छन्दों में नियोजित हैं।

शब्दों का संकलन नितान्त मौलिक पद्धति पर किया गया है। जहाँ एक ओर इसमें विवेचित नामों का शीर्षक देकर हिन्दी नाममालाओं की परिपाटी का अनुगमन है वहाँ 'खालिक़बारी' तथा 'अल्लाखुदाई' की शैली भी अपनाई गई है इस दृष्टि से दोनों धाराओं का संगम इसमें मिलता है। पुनः वर्गों का स्पष्ट उल्लेख कर निरूपण में आंशिक स्पष्टता भी आ गई है।

श्री अगरचन्द नाहटा के मतानुसार यह इसी नाम वाले फ़ारसी शब्द कोश का ब्रजभाषा अनुवाद है।[5] इस आशय का एक संकेत पारसीपारसातनाममाला में भी मिलता है[6], परन्तु इस फ़ारसी कोश का वर्तमान समय में कहीं भी उपलब्ध होना दुष्कर है अतएव बिना मूल को देखे हुए अन्तिम रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता।

---

१. मेनारिया: राजस्थानी भाषा और साहित्य, पृ० १११।
२. हिन्दी साहित्य (सं० डाँ० धीरेन्द्र वर्मा), द्वितीय खंड, पृ० १७१।
३. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ६६७।
४. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० १४४।
५. हिन्दी साहित्य (सं० डाँ धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ४९८।
६. किय लखपति कुंअरेस कौ, हित करि हुकम हजूर।
पारसात है पारसी, प्रगटहु भाखा पूर ।।
—पारसीपारसातनाममाला ह० ९।

४४. उमरावकोश (१८०५ ई०)

प्रस्तुत कोश ग्रंथ विसवाँ (सीतापुर) निवासी सुवंश शुक्ल द्वारा विरचित है। खोज रिपोर्टों में इसकी चार हस्तलिखित प्रतियों का उल्लेख मिलता है।[1] इनमें से पहली छतरपुर के बाबू जगन्नाथ के यहाँ है, दूसरी पं० विपिन बिहारीमिश्र, ग्राम सिधौली, ज़िला सीतापुर के यहाँ से प्राप्य है और सं० १९४२ की लिखी हुई है, तीसरी श्री अर्जुनसिंह, ग्राम संडीला, ज़िला सीतापुर के यहाँ तथा चौथी प्रति सीतापुर में ही मल्लापुर ग्राम के श्री प्रकाशसिंह के यहाँ है। पिछली दो प्रतियों के लिपिकाल क्रमशः सं० १९२६ तथा सं० १८९३ वि० हैं।

उपर्युक्त चार हस्तलिखित प्रतियों के अतिरिक्त उमरावकोश की दो और हस्त-लिखित प्रतियाँ भी उपलब्ध हुई हैं। प्रथम श्री लक्ष्मीधर मालवीय के निजी संग्रह से और द्वितीय काशीराज सरस्वती भण्डार, रामनगर, वाराणसी से। इनमें से प्रथम प्रति अत्यन्त जीर्ण-शीर्ण है। बहुत से पृष्ठ नष्ट हो गये हैं, बहुत से दीमकों ने चाट लिये हैं। इस प्रति के अपठनीय अंशों को काशिराज की प्रति से शुद्ध करके प्रस्तुत अध्ययन का आधार बनाया गया है।

कोश के रचयिता सुवंश शुक्ल हैं। 'शिवसिंह सरोज' में इनको बीघापुर, ज़िला उन्नाव का निवासी बताया गया है। वहीं यह भी लिखा है कि अमेठी के वंघलगोत्री राजा उमरावसिंह के यहाँ इन्होंने उमरावकोश, रसतरंगिणी और रसमंजरी नामक ग्रंथ भाषा में बनाये और फिर राजा सुब्बासिंह के यहाँ जाकर 'विद्वन्मोद तरंगिणी' नामक ग्रंथ बनाने में राजा की सहायता की।[2]

परन्तु उमरावकोश की हस्तलिखित प्रति में वंशवर्ग में इन्होंने अपने आश्रयदाता के वंश का पूरा वर्णन किया है[3] जिससे ज्ञात होता है कि सुवंश के आश्रयदाता विसवाँ (सीतापुर) के चौधरी उमरावसिंह थे। इन्हीं उमरावसिंह के लिये इन्होंने 'उमराव शतक' और 'उमरावप्रकाश' नामक दो अन्य ग्रंथ भी बनाये[4]। अतः अमेठी के राजा

---

१. खो० वि० १९०५, पृ० ८२–८३, १९२३–१९२५ ई०, पृ० १४५७–५८; सन् १९२६–१९२८ ई०, पृ० ७०५ तथा वही पृ० ७०६।
२. शिवसिंह सरोज, पृ० ५०१।
३. उमरावकोश, प्रथम कांड, वंश वर्ग, छन्द १२–२५।
४. ज्यों उमराउ शतक उपजायो, औ उमराउ प्रकास बनायौ।
त्यों उमराउ कोश अब कहौं, जाते सकल अर्थ कौं लहौं॥
—वही, २।१।२९।

उमरावसिंह के आश्रय में ग्रंथ बनाना प्रमाणित नहीं होता। उमरावसिंह द्वारा 'रस-चन्द्रिका' नामक ग्रंथ निर्मित करने का उल्लेख 'उमराव कोश' में किया गया है। इन्होंने इस ग्रंथ से एक छन्द भी उद्धृत किया है।[१] इन ग्रंथों के अतिरिक्त सुवंशकृत 'पिंगल'[२], 'रसतरंगिनी'[३], तथा 'रसमंजरी'[४] नामक अन्य कृतियों का उल्लेख भी खोज विवरणों में मिलता है।

उमरावकोश नामक कोश ग्रंथ संस्कृत के अमरकोश का भाषा में अनुवाद सा है। जो संस्कृत का अध्ययन नहीं कर सकते उनके लिये सुवंश ने भाषा में छन्दबद्ध कोश निर्मित किया। यद्यपि सुवंश के कथनानुसार इस कोश में तीन कांड इसलिए रखे गये हैं कि तीनों लोकों के नामों का समाहार यहाँ किया गया है, फिर भी यह व्यवस्था अमरकोश के ही आधार पर है। अन्तिम कांड में सुवंश ने अमरकोश से केवल 'विशेष्य-निघ्न' वर्ग लिया है। 'अनेकार्थ' अंश अमरकोश से प्रभावित नहीं है।

प्रथम कांड में नौ वर्ग तथा ३६७ छन्द हैं।[५] द्वितीय कांड में दस वर्ग तथा १२१५ छंद हैं।[६] तृतीय कांड में केवल दो वर्ग, और २७४ छंद हैं।[७] इस प्रकार समस्त कोश में कुल मिलाकर तीन कांड, २१ वर्ग तथा १८५६ छन्द हैं।[८]

---

१. कियो ग्रंथ रस चन्द्रिका श्री उमराउ महीप।
ताको एक कवित्त में लिखो लहौ बुधि दीप।

—उमरावकोश, १।१।२७।

२. खो० वि० (१९२६–२८ ई०), पृ० ७०७, क्र० चि० ४७५ सी० तथा ४७५ डी०; 'सरोज', परिशिष्ट, पृ० ६।

३. खो० वि० (१९२६–२८ ई०), पृ० ७०९, क्र० चि० ४७५ एफ़०।

४. वही, पृ० ७०८, क्र० चि० ४७५ ई०।
खो० वि० १९२३–२५ में 'उमराव वृत्ताकर', 'राम चरित्र' तथा 'स्फुट काव्य' (पृ० ४२२) ग्रथों का भी उल्लेख है।

५. सरसठि लहिए यों तीन सै प्रथम काण्ड में छंद।
भाषै सुकवि सुवंश ये करिके अमित अनंद ॥

—वही, १।९।५३।

६. औ बारह सै पंद्रह छंद। रचे सुवंस सहित आनंद ॥
ए दूसरे कांड में मित्र। जान लीजिये परम विचित्र ॥

—वही, २।१०।७६।

७. वर्ग विसेष निघ्न द्वै मित्र। सहित अनेकाअर्थ विचित्र ॥
द्वै से छंद सतत्तरि चार। कांड तीसरे में है बुधिवर ॥

—वही, ३।२।१०३।

८. वर्ग वीस कांड त्रै छिति रस बसु ससि छंद।
भाष्यो सुक्ल सुवंस कवि, करि कै महा अनंद ॥

—वही, ३।२।१०५।

कोश की निर्माण-तिथि इस प्रकार दी गई है :

युग रस बसु अरु निशापति संवत वर्ष विचारि ।
माघ कृष्ण प्रतिपदा को, भयो ग्रंथ औतार ।।[१]

अर्थात् सं० १८६२ (१८०५ ई०) माघ मास की कृष्ण पक्ष की प्रतिपदा को ग्रंथ सम्पूर्ण हुआ ।

उमरावकोश में सुवंश की मौलिकता कम दिखाई पड़ती है, फिर भी अनावश्यक शब्दों को उन्होंने त्याग दिया है। अमरकोश के अतिरिक्त शब्द अधिक संख्या में नहीं हैं। छन्द पूर्ति के लिये भरती के शब्द अन्य कोशों की अपेक्षा अधिक हैं। इस दृष्टि से इसे सामान्य कोश माना जा सकता है ।

४५. रत्नमंजरी (१८०६ ई०)

यह एकाक्षरी कोश भिनगा के राजा जगतसिंह द्वारा निर्मित है। कोश अप्रकाशित एवं अनुपलब्ध है । खोज विवरणों[२] में इसका उल्लेख मिलता है। इसका अंतिम अंश इस प्रकार है :

ओ नाम—भैरव देव ओकार कहि ओकार अनंत ।
परब्रह्म अं जानवी अः महेस बुद्धिवेत ।।
अं नाम—ब्रह्मा विष्णु महेश अरु परब्रह्म ओंकार ।
यही नाम याकै कहै सकल कोस को सार ।।

"इति श्री मन्महाराज कुमार विसेनबंसावतंस दिग्विजय सिंहात्मज जगतसिंह कवि कृत रत्नमंजरी नाम कोशः ।"

कोश ग्रंथ की निर्माण-तिथि इस प्रकार दी गई है:

कहँ राम रस नाग ससि कातिक दुतिया सेतु ।
जगत सिंह भाषा कियो जानि लेहु कवि हेतु ।।[३]

राम=३, रस=६, नाग=८, ससि=१ अर्थात् संवत् १८६३ (१८०६ ई०) कार्तिक द्वितीया को जगतसिंह ने कोश ग्रंथ समाप्त किया ।

यह एक एकाक्षरी कोश है और वीरभाणकृत एकाक्षरी नाममाला एवं सुबोध-चन्द्रिका की श्रेणी में आता है। अक्षरों का अनुक्रम कुछ अधिक स्पष्ट नहीं क्योंकि

१. उ० को०, ३।२।१०४।
२. खो० वि० (१९२३-२५), पृ० २५६ ।
१. रत्नमंजरी, अन्तिम अंश ।

अंत में स्वर के अर्थ दिये गये हैं। महाक्षपणक के एकाक्षरी कोश से तो लेखक ने सहायता ली ही[1], अन्य शास्त्र तथा अभिधान ग्रंथों को भी इन्होंने पूर्ण रूप से देखा है।[2]

४६. ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (१८०८ ई०)

यह द्विभाषीय कोश मूलतः कैप्टेन टेलर द्वारा अपने व्यक्तिगत प्रयोग के लिये बनाया गया था। बाद में डॉ० हण्टर ने फ़ोर्ट विलियम कॉलेज के अध्यापकों की सहायता से इसको परिवर्द्धित कर प्रेस में दिया।[3] और वह विशाल कोश सन् १८०८ में कलकत्ते से दो बड़े-बड़े भागों में प्रकाशित हुआ। इसके सम्पादकद्वय का यह प्रयास एक विस्तृत योजना पर आधारित था। अब तक प्रकाशित द्विभाषीय कोशों में यह कोश सबसे बड़ा और सुस्पष्ट पद्धति पर नियोजित है। प्रथम बार शब्दों का संकलन जनसमूह के मध्य में जाकर विस्तृत रूप से किया गया। इस कोश में अरबी, फ़ारसी, तुर्की ग्रीक, चीनी, अंग्रेज़ी, पुर्तगाली, उज़बेगी तथा संस्कृत के तत्सम, तद्भव एवं देशज, दक्खिनी और बंगाली के शब्द विशाल मात्रा में संकलित हैं। फिर भी अरबी, फ़ारसी तथा संस्कृत और हिन्दी के तद्भव शब्द ही अधिक संख्या में आये हैं। शब्द भी केवल नाम संज्ञा ही नहीं, क्रियायें, सर्वनाम, विशेषण, क्रियाविशेषण तथा विस्मयादिबोधक सभी प्रकार के हैं। हिन्दी शब्दों का अंग्रेज़ी में सम्यक् अर्थ देने का सर्वप्रथम प्रयास इसी कोश में किया गया प्रतीत होता है। अर्थ देने के भी जितने अधिक माध्यम इन्होंने अपनाये उतने अब तक के अन्य कोशों में तुहफ़त को छोड़कर उपलब्ध नहीं होते। अंग्रेज़ी के समानार्थी तो दिये ही गये हैं, वस्तु का आकार व प्रयोग द्वारा भी अर्थ समझाने की व्यवस्था है। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं के प्रसंग में पूर्ण पौराणिक कथाओं का उल्लेख किया गया है। यही नहीं, भारतीय संस्कृति सम्बन्धी शब्दावली को पूर्णरूपेण स्पष्ट कर सम्बन्धित रीति-रिवाजों का भी पूर्ण विवरण दिया गया है।

शब्दों के संक्षिप्त व्याकरणिक रूप निर्दिष्ट करने की सर्व-प्रथम व्यवस्था इसी कोश में दृष्टिगत होती है। कोश में संकलित प्रत्येक शब्द का व्याकरण-सम्मत निर्देश

---

१. छपनक मतौ विचारि के निज मति के अनुसार।
रतनमंजरी नाम कहि रचे कवित करतार॥

—रत्नमंजरी, छन्द ५९।

२. शास्त्र धातु अभिधान अरु आमेत शब्द ते संधि।
भाषा किये यकाक्षरहि समुझो बुद्धि अगाध॥

—वही, प्रारम्भिक अंश।

३. " A Dictionary, Hindoostani and English originally compiled for his own private use by Capt. Joseph Taylor, revised and prepared for press with the assistance of the natives in the College of Fort Williams by William Hunter, M.D."

—कोश का शीर्षक।

दिया गया है। यथास्थान शब्दों के वैकल्पिक रूप एवं भौगोलिक भिन्नतायें भी स्पष्ट हैं। पुनः प्रत्येक शब्द का भाषा विशेष से भी सम्बन्ध दिखाया गया है। संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों को देवनागरी लिपि में भी अंकित किया गया है। इस प्रकार हम देखते हैं कि हिन्दी शब्दों के लिये देवनागरी लिपि का व्यवहार सर्वप्रथम इसी कोश में किया गया। अनेकानेक उर्दू और हिन्दी कवियों की रचनाओं से उद्धरण देने का सूत्रपात भी यहीं से प्रारम्भ हुआ। मुहावरों, लोकोक्तियों तथा कहावतों को भी सर्वप्रथम इसी में स्थान मिला।

४७. अनेकार्थ (१८०९ ई०)

इस कोश के प्रणेता चन्दनराम हैं।[१] ये रीतिकालीन कवि थे। रामचन्द्र शुक्ल ने इनके द्वारा विरचित दस ग्रंथों का उल्लेख किया है।[२] 'वृहत् हिन्दी साहित्य का इतिहास' में इनके द्वारा निर्मित तेरह ग्रंथों का उल्लेख है।[३] ये नाहिल पुवायाँ (ज़िला शाहजहाँपुर) के अम्वा ग्राम[३] के निवासी थे। 'अनेकार्थ' में इन्होंने अपने पिता का नाम साहिबराम, पितामह का श्री हरिकृष्ण तथा प्रपितामह का नाम देवसिंह दिया है।[५]

चन्दनरामकृत कोश ग्रंथों के सम्बन्ध में थोड़ा सा विवाद है। 'हिन्दी पुस्तक साहित्य' में चन्दनरामकृत दो कोश ग्रंथों का उल्लेख है—'अनेकार्थ' तथा 'नामार्णव'। दोनों ग्रंथ खंग विलास प्रेस, बाँकीपुर से १८८० ई० में प्रकाशित बताये गये हैं।[६] यही दो ग्रंथ 'हिन्दी में उच्चतर साहित्य' नामक पुस्तक में भी उल्लिखित हैं, जहाँ इनको प्रकाशन-तिथि १८८२ ई० दी गई है।[७] रामचन्द्र शुक्ल ने उक्त दोनों कोशों का उल्लेख न कर इनके द्वारा विरचित 'नाममाला (कोश)' का उल्लेख किया

---

१. शिवसिंह ने 'सरोज' में इनको चन्दनराय बताया, वहाँ इनके कोश ग्रंथ का उल्लेख नहीं है (पृ० ४१३–४१४)।
२. रामचन्द्र शुक्ल: इतिहास, पृ० २९६।
३. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास, (सं० डॉ० नगेन्द्र), षष्ठ भाग, पृ० ४७१।
४. "इति श्रीमतराजाधिराज साहबराम सिंहस्यात्मजो बंदीजनोऽम्बा ग्रामवासी श्री कवि चन्दनराम बिरचितायां नामार्णवे अनेकार्थ ध्वनि मञ्जयां चतुर्थांस दोहा ध्वनि मञ्जयां चतुर्थांस दोहाधिकारः समाप्तः"

—अने० चन्द०, पृ० ४१।

५. वही, पृ० ४०, छन्द २१, २२।
६. हिन्दी पुस्तक साहित्य, पृ० ४३८।
७. हिन्दी में उच्चतर साहित्य (सं० राजबली पाण्डेय), पृ० १८९।

है।[1] इसी के अनुकरण पर सम्भवतः 'हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास' में भी 'नाममाला' कोश चन्दनरामकृत बताया गया है।[2] चन्दनराम के 'तत्वसज्ञा' (तत्वसंग्रह ?) ग्रंथ को भी कुछ विद्वान एक कोश ग्रंथ मानते हैं जिसमें त्रिगुण नाम, ज्ञानेंद्रिय नाम, सूक्ष्म इन्द्रिय नाम आदि विभिन्न वर्गों के शब्द लिये गये हैं।[3]

चन्दनरामकृत 'अनेकार्थ' कोश ग्रंथ उपलब्ध हुआ है। वह बोधोदय प्रेस, बांकीपुर से १८८० ई० में प्रकाशित है। मुखपृष्ठ पर इसको 'जेनरल संस्कृत हिंदी डिक्शनरी' बताया गया है। इसी के अन्तिम अंश में प्रस्तुत कोश के लिये "नामार्णव" शब्द भी तीन बार प्रयुक्त हुआ है। यही नहीं, पुष्पिका में भी "........श्री कवि चन्दनराम विरचितायां नामार्णवे, अनेकार्थ ध्वनि मञ्जयां चतुर्थसिदोहाधिकार समाप्तः" इस उक्ति द्वारा दोनों नाम दिये गये हैं। नाममाला ग्रंथ का आधार क्या है, यह स्पष्ट नहीं। इन संकेतों से यह भासित होता है कि चन्दनराम ने केवल एक कोश ग्रंथ लिखा जिसका नाम 'अनेकार्थ' है। इसी को 'नामार्णव' भी कहा जाता है।

'अनेकार्थ' की रचना-तिथि कोश के अन्त में इस प्रकार दी गई है :

सम्बत रस ऋतु नाग सिसि, आश्विन दसमि स्वच्छ।
ससि सुत वासर को भयो, अनेकार्थ अवलच्छ ॥[4]

रस=६, ऋतु=६, नाग=८, ससि=१, अर्थात् सं० १८६६ (१८०९ई०), आश्विन मास के बुधवार को अनेकार्थ कोश निर्मित हुआ।

अन्य कोशों की भाँति 'अनेकार्थ' भी किसी रूप में मौलिक नहीं है। कोशकार ने स्पष्ट स्वीकार किया है कि प्रस्तुत कोश में क्षपणक, अमरसिंह तथा धनंजय के अनेकार्थ कोशों का सार लिया गया है :

छपनक, अमर, धनंजयो तिहूं ग्रंथ को सार।
अनेकार्थ भाषा विषै, यह हौ कियो उचार ॥[5]

जैसे नाम से ही स्पष्ट है इस कोश में एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं। शब्द कुल संस्कृत के तत्सम व सर्वप्रचलित ही हैं। 'सार' ग्रहण करने में चन्दनराम ने यह ध्यान नहीं रखा, कि शब्द विशेष हिन्दी में प्रचलित है या नहीं। उसका उद्देश्य

---

१. रामचन्द्र शुक्ल : इतिहास, पृ० २९६।
२. हिन्दी साहित्य का वृहत इतिहास, षष्ठ भाग, पृ० ४७१।
३. जवाहर लाल चतुर्वेदी : पोद्दार अभिनन्दन ग्रन्थ, पृ० ५४६।
४. अने०, चन्द०, पृ० ४१।
५. वही, पृ० ४०।

संस्कृत परिपाटी पर हिन्दी में भी एक 'नाममाला' प्रस्तुत करना था जिसको कंठस्थ किया जा सके।[1]

समस्त कोश में कुल मिलाकर २८५ दोहे हैं जिनको तीन परिच्छेदों में बाँटा गया है। शब्द संकलन तथा नियोजन या अर्थ की दृष्टि से इस कोश में कोई नवीनता नहीं। यह एक परिपाटी को केवल गति मात्र देता है।

४८. नामार्णव (१८१० ई०)

इस कोश ग्रंथ के रचयिता रणधीर सिंह हैं। ये सिहरामऊ (जौनपुर) के ज़मींदार थे। इनके द्वारा विरचित पाँच ग्रंथ माने जाते हैं—काव्यरत्नाकर, भूषण-कौमुदी, पिंगल, नामार्णव और रसरत्नाकर। कोई भी ग्रंथ प्रकाशित एवं उपलब्ध नहीं है, केवल साहित्य के इतिहासों में ही इनका उल्लेख मिलता है।[2] अनुमान से ही बताया जा सकता है कि यह 'नामार्णव' कोश ग्रंथ रहा होगा। इसकी रचना १८१०ई० के आसपास निर्धारित की जा सकती है।

४६. हिन्दुस्तानी कोश (१८१२ ई०)

एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका[3] में रूसो द्वारा एक हिन्दुस्तानी कोश का उल्लेख मिलता है जिसकी प्रकाशन-तिथि १८१२ ई० दी गई है। यह कोश न तो कहीं उपलब्ध है और न अन्य किसी परवर्ती कोशकार ने इसका कहीं उल्लेख किया है।[4] अतएव इसके सम्बन्ध में इससे अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता।

५०. शब्द रत्नावली (१८१२ ई०)

यह कोश अप्रकाशित एवं अप्राप्त है केवल खोज-रिपोर्टों[5] में ही इसकी एक हस्त-लिखित प्रति का उल्लेख मिलता है जो आर्य भाषा पुस्तकालय, काशी नागरी प्रचारिणी सभा, वाराणसी में सुरक्षित है और जिसका अंतिम अंश इस प्रकार है:

हृदय स्थान:
प्लीह गुल्म अथ पुरातन अत्र सु अथ अस्नायु।
वस्न सासु अथ जकृति पुनि कालषा जह भायु॥

---

१. नामार्णव संभव सगुन, अनेकार्थ मनि माल।
कंठ करहु सज्जन लहो, महिमा प्रभा रसाल॥
—अने० चन्द०, पृ० ४१।

२. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास (सं० डॉ० नगेन्द्र), षष्ठ भाग, पृ० ४७५।

३. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (ग्यारहवाँ संस्करण), आठवाँ खंड, पृ० १९८।

४. डॉ० हरदेव बाहरी: कन्ट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी, लेख, पृ० ८५।

५. खो० वि० सन् १९०९–११ ई०, पृ० ३१७–३१८।

ग्रन्थ का निर्माण-काल कोश के ही अन्तर्गत इस प्रकार दिया गया है :

संवत नव षट वसु ससी, श्रावन सुदि बुधवार ।
भई शब्द रत्नावली तिथि द्वादसी प्रचार ।।[१]

अर्थात् संवत् १८६९ (१८१२ ई०), श्रावण मास की १२वीं तिथि बुधवार को 'शब्दरत्नावली' समाप्त हुई। खोज रिपोर्ट से ही ज्ञात होता है कि यह संस्कृत अमर-कोश का भाषानुवाद है। ऐसे शब्दों का संकलन भी इसमें कर लिया गया है, जिसका प्रयोग हिन्दी में नहीं होता।

कोशकार प्रयागदास छतरपुर राज्यान्तर्गत, बसारी ग्राम का निवासी था। यह कोश बिजावर के राजा रतनसिंह (सन् १८१०-१८३२ ई०) की प्रेरणा से निर्मित बताया जाता है।[२] मिश्रबन्धुओं ने चरखारी नरेश खुमानसिंह को प्रयागदास का आश्रयदाता माना है।[३] रामकुमार वर्मा[४] व हरदेव बाहरी[५] ने उक्त कोश का नामांकन मात्र किया है।

५१. नामरत्नमाला (१८१३ ई०)

इस कोश का दूसरा नाम 'अमरकोशभाषा' भी मिलता है। मिश्रबन्धु[६] और उन्हीं के आधार पर रामचन्द्र शुक्ल[७] ने दोनों ग्रन्थों को भिन्न-भिन्न मान लिया था जो वास्तव में एक ही ग्रंथ के दो नाम हैं। कोश के रचयिता गोकुलनाथ भट्ट हैं। ये प्रसिद्ध कवि रघुनाथ बंदीजन के पुत्र एवं बनारस के निवासी थे। उक्त कोश के अतिरिक्त इनके द्वारा चार अन्य ग्रंथ भी रचे गये थे जिनमें महाभारत का अनुवाद प्रशंसनीय है। गोकुलनाथ का कविता-काल सं० १८४० से १८७० (सन् १७८३-१८१३ ई०) तक माना जाता है।[८]

उक्त कोश ग्रंथ अप्राप्त है। खोज रिपोर्टों[९] में इसकी एक प्रति का विवरण मिलता है जो चुनार के पं० भानुप्रताप तिवारी के यहाँ सुरक्षित है। इसका परिमाण ५०० अनुष्टुप दिया हुआ है।

---

१. शब्द रत्नावली, छन्द २६।
२. खो० वि० सन् १९०९-११ ई०, पृ० ३१७।
३. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ९४९।
४. डॉ० रामकुमार वर्मा: हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० २७।
५. डॉ० हरदेव बाहरी: कन्ट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी, लेख पृ० ८५।
६. मिश्रबन्धु विनोद, पृ० ८०२।
७. रामचन्द्र शुक्ल: इतिहास, पृ० ३६९।
८. वही, पृ० ३६९।
९. खो० वि० (१९०९-११), पृष्ठ १५६।

ग्रंथ का निर्माण-काल आरंभ में इस प्रकार दिया गया है :

गगनआद्र वसु विधु संवत कार्तिक पुन्य कदंभ ।
सुकुल पंचमी पाय पुन्य भव कियो कोस प्रारभ ।।

गगन=०, आद्र=७, वसु=८, विधु=१, अर्थात् सं० १८७० वि० (१८१३ ई०), कार्तिक शुक्ल पक्ष की पंचमी को प्रस्तुत कोश का लिखना प्रारम्भ किया गया। उपलब्ध अंश में अमरकोश, प्रथमकांड के दस वर्गों का ही वर्णन मिलता है।[१] कहा नहीं जा सकता कि समस्त अंश कितना था ।

५२. ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश (१८१७ ई०)

यह हिन्दी-अंग्रेज़ी के द्विभाषीय कोशों को गति देने वाला एक अन्य प्रयास है। इसके रचयिता शेक्सपियर थे । कोश का सर्वप्रथम प्रकाशन १८१७ ई० में लन्दन से हुआ[२] जिसके पीछे तीन संस्करण और निकले । कोश के चतुर्थ संस्करण (१८४९ ई०) के उत्तरार्द्ध में अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी अंश भी जोड़ दिया गया। इससे पहले वाले संस्करणों में केवल हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी रूप था ।

कोश में लगभग ७०,००० शब्द २२३९ पृष्ठों में संकलित किये गये हैं। शब्द संस्कृत, अरबी, फ़ारसी आदि भाषाओं के हैं, परन्तु अधिक मात्रा हिन्दी शब्दों की ही है । अधिकांश शब्दों की व्युत्पत्ति देने का भी प्रयास किया गया है । विभिन्न भाषाओं का निर्देश संकेताक्षरों द्वारा शब्दों के पूर्व ही कर दिया गया है । शब्द उर्दू के ३४ अक्षरों के शुद्ध अक्षरानुक्रम में नियोजित हैं । सर्वप्रथम भाषा का अंकन कर फिर शब्द नस्तालीक़ लिपि, फिर रोमन लिपि एवं—शब्द के संस्कृत से व्युत्पन्न होने पर—देवनागरी लिपि में आये हैं । संक्षेप में व्याकरणिक रूप का उल्लेख कर फिर अंग्रेज़ी में अर्थ दिये गये हैं । स्थान-स्थान पर अर्थ पर्याप्त रूप से विस्तृत हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि शेक्सपियर ने प्रायः टेलर तथा हन्टर की नियोजना-प्रणाली को अपने कोश में अपनाया। संपादक ने स्पष्ट रूप से स्वीकार भी किया है कि टेलरकृत कोश के अप्राप्य हो जाने पर उसी प्रकार के एक कोश की आवश्यकता

---

१. **स्वर्ग व्योम दिग काल धी, शब्दादि नाट्य अभिराम ।**
पा पातालभोगि नर्क वारि वर्ग, कहे वर्ग के नाम ।।

—नामरत्नमाला, अंतिम अंश ।

२. **हिन्दी शब्द सागर (आठवाँ खण्ड), भूमिका, में शेक्सपियरकृत कोश की प्रकाशन-तिथि १८१० ई० दी गई है, जो अशुद्ध है ।**

पड़ी।[१] फिर भी कई दृष्टियों से इसमें मौलिकता भी है।[२] बहुत से शब्दों को एकदम हटा दिया गया या संक्षिप्त कर दिया गया, हिन्दी ध्वनियों की रूपान्तर-व्यवस्था में भी परिवर्तन लाया गया, और चतुर्थ संस्करण में तो विभिन्न दक्खिनी भाषा के कवियों की रचनाओं से शब्द संकलित किये गये। इसी बीच आदम, टॉमसन, इलियट, प्राइस आदि के कोशों से भी पर्याप्त सहायता ली गई। अंतिम संस्करण में द्राविड़ भाषाओं से भी अत्यधिक शब्द शेक्सपियर के कोश में आये हैं, जिनको उन्होंने डॉ० हैरिस की पाण्डुलिपियों से लिया।

५३. अमरकोश भाषा (१८१७ ई०)

यह कोश उपलब्ध एवं प्रकाशित नहीं है। खोज विवरणों में इसकी तीन हस्त-लिखित प्रतियों का उल्लेख मिलता है:

क्र० चि० ३९४ ए—अमरकोश भाषा। लेखक—शिव प्रसाद कायस्थ, भिनगा, बहराइच। पत्र—१३७। पंक्ति प्रति पृष्ठ—२२। परिमाण—३७४० अनुष्टुप श्लोक। लिपि—नागरी। रचनाकाल सं० १८७४ या १८१७ ई०। लिपिकाल—सं० १८७६ या १८१९ ई०। सुरक्षा स्थान—बाबू पद्म बख्श सिंह, भिनगा, बह-राइच।[३]

क्र० चि० ३९७ ए—अमरकोश, भिनगा के राजा शिवसिंह कृत। पत्र—२९१। पंक्ति प्रति पृष्ठ—२०। परिमाण—५१०० अनुष्टुप श्लोक। लिपि—नागरी। रचना-काल सं० १८७४ या १८१७ ई०। सुरक्षा स्थान—महाराजा राजेन्द्र बहादुर सिंह महोदय, भिनगा।[४]

क्र० चि० ३९७ बी—अमर कोश भाषा, भिनगा, बहराइच के राजा शिव सिंह कृत। पत्र—१९६। परिमाण—४६२० श्लोक। लिपि—नागरी। रचनाकाल—सं०

१- "...Subsequent to the decease of these authors (Taylor & Hunter) when the publication above mentioned (Dictionary) had become out of print and rarely to be procured, the first edition of this Dictionary founded on Dr. Hunter's and intended to meet the urgent demands of the public at home and in India was passed through press in 1817."

शेक्सपियर: ए डिक्शनरी हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका पृ० ५।

२- "...Several alterations were made as well as many additions which cannot be attributed to those authors"

—वही, भूमिका पृ० ५।

३. खो० वि० (१९२३-२५), द्वितीय भाग, पृ० १३६३।

४. खो० वि० सन् १९२३–२५ ई०, पृ० १३६७–१३६९।

१८७४ या १८१७ ई०। लिपिकाल सं० १८७५ या १८१८ ई०। सुरक्षा-स्थान—भैय्या सन्त बख्श सिंह, गुथावर, बहराइच[1]।

उपर्युक्त तीनों प्रतियों का आदि व अन्त एक-सा दिया गया है :

आदि—श्री गणेशायनमः। बंदौ श्री गुरु चरन जुग हरन सकल भव त्रास। जा जाने सुर सिद्ध मुनि कियो ब्रह्म में वास ॥१॥...अमर कोश भाषा कियो श्री शिवसिंह विचार। सुरवानो वुध लोग को भाषा अबुध निहार ॥४॥ छंद अधिक बहु ग्रंथ में है पढ़िबों अति क्लिष्ट। ताते द्वै अति सरल लखि पढ़त सबै करि इष्ट ॥५॥ चौपाई औ दोहरा ये द्वौ छन्द प्रसिद्ध। हौं याही में ग्रंथ किय है दोहन को वृद्धि ॥६॥

अन्त—अमर तीसरे काण्ड में आठ वर्ग कों देखि। चारि वर्ग भाषा विषे आवत काज विशेषि ॥१॥...चारि वर्ग जो लिंग के भाषा में नहिं होय। स्त्री पुरुष नपुंसकहि इस्त्रि नपुंसक सोई ॥३॥ ताते भाषा नहि करौं नाममात्र को साज। संस्कृत शब्द जु होत जहँ आवत तहवाँ काज ॥४॥ लिंग भेद भाषा विषे बिन कारज को पेखि। ताते छोड्यो चाहिये स्वार्थ रहित कों देखि ॥५॥

कोश ग्रंथ का रचनाकाल दूसरी प्रति में इस प्रकार दिया गया है :

वेद सप्त अरु अष्ट कहि पुनि ससि संबत जान।
कृष्ण पक्ष नभ शुक्ल लखि तिथि तेरसि पहिचानि ॥

वेद=४, सप्त=७, अष्ट=८, ससि=१, अर्थात् संवत् १८७४ मास (?) कृष्ण पक्ष की त्रयोदस तिथि को ग्रंथ पूर्ण हुआ। प्रथम प्रति के अंत में कोश का विषय भी वर्णित है :

पृष्ठ १-२९—प्रार्थना व निर्माणादि वर्णन। स्वरादि कांड, प्रथम सर्ग वर्णन।

पृष्ठ ३०-६०—पर्वतादि, औषध, नदी, वृक्षादि नाम तथा सिंहादि जीव संज्ञा वर्णन।

पृष्ठ ६१-८३—स्त्री वर्ग और रोगादि नाम वर्णन, शरीर नाम, गहनों के नाम, सुगंधित वस्तुओं के नाम, यज्ञ वस्तुओं के नाम वर्णन।

पृष्ठ ८४-१००—पालतू जानवर, राजा, व्यावहारिक वस्तुओं तथा कार-बारियों के नाम वर्णन।

---

१. खो० वि०, सन् १९२३-२५ ई०, पृ० १३६८-१३६९।

पृष्ठ १००-१०९—गाय के अंगादि के नाम, रंगों के नाम, सुवर्णादि के नाम, शराब, जुवा आदि व्यसनों के नाम।

पृष्ठ ११०-१३७—विशेषणादि ४ वर्ग का अनुवाद वर्णन।

इसी प्रकार द्वितीय प्रति के अन्त में तीनों कांड एवं तृतीय काण्ड के आठों वर्ग तथा उनके छन्दों की तालिका इस प्रकार प्रस्तुत की गई है :

वर्ग आठ हू का प्रमाण:

१	२	३	४	५	६	७	८	
विशेष निघ्न वर्ग	संकीर्न वर्ग	अनेकार्थ वर्ग	अव्यय वर्ग	स्त्रीलिंग विशेष वर्ग	पुँल्लिंग विशेष वर्ग	पुँल्लिंग-नपुँसकलिंग विशेष वर्ग	स्त्री पु० वि० वर्ग ८	तृतीय काण्ड वर्ग
३०९	१२८	५१५	५५	+	+	+	+	१०१२

प्रथम काण्ड वर्ग ११	द्वितीय काण्ड वर्ग १०	तृतीय काण्ड वर्ग ८	अमरकोश काण्ड ३, वर्ग २९
५७८	१६४५	१०१२	३२४५

कोश ग्रंथ के वास्तविक प्रणेता के सम्बन्ध में थोड़ा विवाद खड़ा होता है। उपर्युक्त तीनों प्रतियों में से पहली प्रति में लेखक का नाम 'शिव प्रसाद कायस्थ' दिया गया है, परन्तु दूसरी तथा तीसरी में लेखक 'राजा शिवसिंह' हैं। तीनों प्रतियाँ हैं एक ही ग्रंथ की। निर्माणकाल भी एक है। प्रथम प्रति के चौथे छन्द में एक पंक्ति इस प्रकार है :

'अमरकोश भाषा कियौ, लीजे सुकवि विचारि',

इसी पंक्ति को दूसरी प्रति में इस प्रकार परिवर्तित कर दिया है :

'अमरकोश भाषा कियौ श्री शिवसिह विचार'

पुस्तक के अन्त में 'इति श्री महाराजकुमार विसेनवंशावतंश बरिबंड सिंहात्मज सर्वदमनसिंह तनुज शिवसिंह कृते अमरकोश भाषायां तृतीय कांड:' दिया गया है जिससे प्रतीत होता है कि ग्रंथ मूलतः शिवसिंह कायस्थ ने लिखा था जो राजा शिवसिंह के आश्रित कवि थे। कोश को अपने आश्रयदाता द्वारा लिखित घोषित करना असम्भव नहीं है। यह भी सम्भव है कि प्रथम प्रति के 'शिवसिंह कायस्थ' कोश के लिपिकार

अनेकार्थी ६० दोहों का एक छोटा सा कोश है जिसमें शब्दों के भिन्न-भिन्न अर्थ दिखाये गये हैं। शब्द भी सामान्यतः पूर्ववर्ती कोशों में संकलित जैसे ही हैं, उनके चयन या निरूपण पद्धति में कोई नवीनता नहीं। समस्त कोश एक चलती हुई परिपाटी में योगदान मात्र देता है।

५६. हिन्दवी भाषा का कोश (१८२९ ई०)

'पादरी आदम साहीब का संग्रह कीया हूआ' हिन्दी कोश या हिन्दवी भाषा का कोश[1] सर्वप्रथम १८२९ ई० में प्रकाशित हुआ। १८३९ ई० में इसका दूसरा संस्करण कलकत्ता से निकला।[2]

प्रस्तुत कोश में हमें आधुनिक हिन्दी कोशों के ऊषाकाल के दर्शन होते हैं। पूर्ण-रूपेण देवनागरी अक्षरों में मुद्रित व देवनागरी क्रम में नियोजित यह कोश वास्तव में हिन्दी भाषा का कोश है। मूल शब्द ही नहीं, व्याकरणिक निर्देश एवं अर्थ सभी हिन्दी में और देवनागरी लिपि के माध्यम से दिये गये हैं। इस कोश में लगभग २०,००० शब्द आये हैं जिनमें अरबी-फ़ारसी के कम और हिन्दी-संस्कृत के शब्द अधिक हैं। नाम-संज्ञाओं के अतिरिक्त विशेषण, सर्वनाम, क्रिया और अव्यय भी संकलित किये गये हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञायें परिशिष्ट में अलग से दी गई हैं, जिनमें बहुत से अंग्रेज़ी वा पाश्चात्य नाम हैं। शब्दों का भाषांकन या व्युत्पत्ति देने का कोई प्रयास नहीं किया गया है। फिर भी पर्याप्त समय तक यह कोश अत्यधिक प्रचलित और लोक-प्रिय था। इसने भावी हिन्दी कोशों के लिये एक नवीन दिशा का सूत्रपात किया।

५७. अवधानमाला (१८३५ ई०)

यह कोश ग्रंथ 'डिंगलकोश'[3] के अन्तर्गत प्रकाशित है। इसके रचयिता बारहठ उदयराम मारवाड़ के थबूकड़ा ग्राम के निवासी थे। कोशकार की जन्म सम्बन्धी निश्चित तिथि उपलब्ध नहीं होती पर अन्य साधनों[4] के आधार पर यह सिद्ध होता

१. A Dictionary of The Hindee Language Compiled by Rev. M. T., Adam, Calcutta. Medical Press—1839, pages 395.

२. इस कोश की एक प्रति (सं० ४२ डी० २) इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन से लेखक को अध्ययनार्थ उपलब्ध हुई।

३. डिंगलकोश (संपादक नारायण सिंह भाटी), राजस्थानी शोध संस्थान, चौपा-सनी, जोधपुर।

४. श्री नारायण सिंह भाटी के अनुसार, शोध संस्थान जोधपुर में सुरक्षित महा-राजा मान सिंह के समकालीन कवियों के चित्र में उदयराम का चित्र भी नाम सहित मिलता है। —वही, भूमिका, पृ० १२।

है कि ये जोधपुर के राजा मानसिंह के समकालीन थे। मानसिंह का जन्म १७८२ ई०[1] तथा देहान्त १८४३ ई० को जोधपुर में हुआ था।[2] इन्होंने कच्छभुज के राजा भारमल तथा उनके पुत्र देसल (द्वितीय) की प्रशंसा[3] उक्त कोश में स्थान-स्थान पर की है। इससे ज्ञात होता है कि ये उनके कृपापात्र थे और जीवन का अधिकांश भाग इन्होंने वहीं व्यतीत किया। इन साधनों के आधार पर कोश की रचनातिथि १८३५ ई० के लगभग निश्चित की जा सकती है।

'कविकुलबोध' लेखक की सर्वोत्कृष्ट कृति है। अवधानमाला नामक प्रस्तुत कोश इसी ग्रंथ की एक तरंग[4] है। इस समानार्थी कोश में कुल ५६१ दोहे हैं। संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त इसमें डिंगल के शब्द अधिक मात्रा में आये हैं। कोशकार ने पर्याप्त शब्दों को स्वयं भी निर्मित किया है। तत्कालीन डिंगल साहित्य के अध्ययन में इस कोश की उपादेयता असंदिग्ध है। शब्दों का नियोजन रूढ़ परम्परा के अनुसरण पर पर्याय संकलनात्मक पद्धति को अपनाते हुये छन्दों में हुआ है। नाम शब्दों को किसी वर्गादि में विभाजित न करते हुये एक ही क्रम में ले लिया गया है। परन्तु विवेच्य नामसंज्ञा का शीर्षक दिया गया है। और कोई विशेष नवीनता इसमें नहीं प्रतीत होती। परन्तु इस कोश की एक प्रशंसनीय विशेषता यह है कि इसमें छन्दपूर्ति के आग्रह वश पर्यायवाची शब्दों के अतिरिक्त व्यर्थ के शब्द बहुत कम लाये गये हैं।

५८. अनेकारथी (१८३५ ई०)

यह नानार्थी कोश भी 'डिंगल कोश' के अन्तर्गत प्रकाशित है। इसके रचयिता भी उक्त उदयराम हैं। उपर्युक्त साधनों के आधार पर इसकी रचना-तिथि भी १८३५ ई० के लगभग निर्धारित करनी पड़ेगी।

'अनेकारथी' कोश में एक शब्द में 'उठे' अनेक अर्थों[5] को छन्दबद्ध किया गया है। इसमें कुल ८९ दोहे हैं, जिनके अन्तर्गत १२९ नाम संज्ञाओं के अनेकार्थ दिये गये हैं। शाश्वतकृत 'अनेकार्थ समुच्चय' तथा नन्ददास के 'अनेकार्थ' की छाप प्रस्तुत कोश पर

---

१. विश्वेश्वर नाथ रेउ: मारवाड़ का इतिहास, पृ० ४०१।
२. मेनारिया: राजस्थान का पिंगल साहित्य, पृ० १६६।
३. अनेक ग्रंथ सूझै अरथ, कब कविता कायब कहण।
 श्रब जांण गुणभारासुतन, महाराव देसल महण॥ —अ० मा० छं०, ३।
४. "इति श्री महराव राजंद्र श्री देसल जी राजसमुद्र मध्ये त्रिविध नाममाला निरूपण नामं अवधा, अनेकाक्षरी, एकाक्षरी वर्णन नाम दसमौ लहर या तरंग"। —वही, पुष्पिका।
५. एक सबद पद में उठे अरथ अनेक उपाय।
 अनेकारथ 'उदा' उकत विवधा नाम वणाय॥ —अने० उदै०, छन्द १।

स्पष्ट दृष्टिगत होती है। शब्दों को किसी सुनिश्चित क्रम में नियोजित नहीं किया है। शब्द-संकलन या अन्य किसी दृष्टि से इस कोश में कोई नवीनता नहीं दृष्टिगत होती।

५९. एकाक्षरी नाममाला (१८३५ ई०)

यह एकाक्षरी नाम कोश भी उदैराम विरचित तथा उक्त डिंगल कोश में प्रकाशित है। रचनातिथि अनुमानतः १८३५ ई० के आसपास मानी जा सकती है। इसके अंत में कोशकार ने अपने ग्रंथ 'कविकुलबोध' का भी उल्लेख किया है[१], जिसमें यह कोश मूलतः संकलित था।

एकाक्षरी नाममाला २८२ दोहा छन्दों में सम्पूर्ण हुआ है। इसमें प्रत्येक स्वर तथा व्यंजन के प्रचलित अर्थ दिये गये हैं। व्यंजनों के समस्त द्वादश वर्णों में से अंतिम विसर्गान्ति वर्ण को छोड़कर अन्य सब वर्णों के नानार्थ प्रस्तुत कोश में छन्दबद्ध हैं। संस्कृत में सौभरिकृत 'एकाक्षरीनाममाला' एवं हिन्दी में फ़कीरचन्दकृत 'सुबोध चन्द्रिका'[२] को उदैराम ने अवश्य देखा होगा, क्योंकि निरूपण-शैली लगभग उन्हीं के समान है। फ़कीरचन्द का उल्लेख कोश के अंतिम भाग में किया भी गया है। ठेठ डिंगल के अतिरिक्त प्रस्तुत नाममाला में संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है पर कहीं-कहीं तो जन-जीवन में प्रचलित अत्यन्त साधारण शब्दों तक को कवि ने अनोखे ढंग से अपनाया है।[३] ऐसे शब्दों का प्रयोग कवि के सूक्ष्म अध्ययन का परिचायक है।

एकाक्षरी वर्णकोश के अतिरिक्त १३ दोहों में अव्यय नामावली भी संकलित की गई है, जिसमें २५ अव्यय अक्षरों के प्रयोग में आने वाले अर्थ दिये गये हैं।

६०. भारतीय भाषाओं का कोश (१८३७ ई०)

यह त्रिभाषीय कोश कलकत्ता से १८३७ ई० में प्रकाशित हुआ था।[४] इसके संकलनकर्ता पी० एस० डी-रोज़ारियो ने भारतवासियों के उपयोगार्थ ही प्रस्तुत कोश निर्मित किया था परन्तु वास्तव में यह बंगाल प्रेसीडेन्सी के निवासियों के लिये

---

१. 'उदा' यण एकाक्षरी अरथ अनेक उपाव।
'कवकुलबोध' प्रकासमै देसल जल दरयाव॥ —एका०, उदै०, छन्द २८२।

२. अव्यय भेद अपार है वरण अरथ विसतार।
कवि औ फकीरचन्द उदै कियो उचार॥ —वही, अंतिम दोहा।

३. उदाहरण के लिये 'झ' अर्थ उन्होंने "करभ झैकतांकाज" (छन्द ११६) अर्थात् ऊँट को बिठाते समय किया जाने वाला शब्दोच्चारण दिया है जो जन-जीवन में अत्यन्त प्रचलित है।

४. शेक्सपियर: ए डिक्शनरी, हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० १०।

ही अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ। इसमें अंग्रेज़ी, बंगाली तथा हिन्दुस्तानी के तदर्थी शब्द एक साथ दिये गये हैं। हिन्दुस्तानी शब्दों का क्रम फ़ारसी में तथा लिपि रोमन है।[१]

६१. अमरसार नाममाला (१८३८ ई०)

यह कोश उपलब्ध एवं प्रकाशित नहीं है, केवल खोज विवरणों में ही इसका विवरण मिलता है।[२] ग्रंथकार 'तुच्छमति' कृष्णदास हैं, जिन्होंने 'शब्दमहोदधि' में से सार-सार ग्रहण कर प्रस्तुत कोश की रचना की।[३] कृष्णदास नाम से हिन्दी साहित्य में कई कवि हो चुके हैं अतएव कोशकार का ठीक निर्णय आसानी से नहीं किया जा सकता। इस कोश में लेखक ने किन्हीं 'भीमसेन नृप' का उल्लेख किया है जिनके लिये इस 'नाम नग दांम' की रचना हुई।[४] खोज विवरणों में एक कृष्णदास का उल्लेख मिलता है जो राजा भीमसिंह के आश्रित बताये गये हैं।[५] यदि प्रस्तुत लेखक यही कृष्णदास हैं तो उक्त आधार पर ये उज्जैन (मालवा) के निवासी एवं जाति के ब्राह्मण थे। ३५०७ श्लोकों की 'सिंहासन बत्तीसी' इनकी दूसरी रचना मिली है।[६]

अमरसार नाममाला नामक कोश में कुल ३६० दोहे हैं। कृष्णदास के ही वक्तव्यानुसार वह अमरसिंह तथा उनके अमरकोश से पूर्ण प्रभावित थे।[७] अतएव कोश का संकलन निश्चित रूप से समानार्थी पद्धति पर हुआ होगा। फिर भी कोश के आकार को देखते हुये यह कहा जा सकता है कि इसमें उन्होंने बहुप्रचलित शब्दों के ही—अमरकोश के सार लेकर ही—पर्याय संकलित किये होंगे।

हस्तलिखित प्रति सं० १८९५ (सन् १८३८ ई०) वैसाख सुदी सप्तमी, मंगलवार को किन्हीं 'सामिजी बालवाचक' के निमित्त ताल (?) स्थान पर पूर्ण हुई थी।[८]

---

१. राजमल जैन : इंग्लिश हिन्दी डिक्शनरीज (हिन्दी रिव्यू, जुलाई १९६०), पृ० २२८।
२. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १७८।
३. कृष्णदास कवि तुच्छमति सबदमहोदधि मांहि।
बाग समत्थ उताहो, सार हत्थ गही बाँह॥—अमरसार नाममाला, छन्द १०।
४. भीमसेन नृपराज हित करूँ नाम नग दाम।
कवि कुल विगनि मान हो, अमरसार अभिराम॥ —वही, छन्द ११।
५. खो० वि० (१९००-१९११), पृ० २८।
६. खो० वि० (१९०६-१९०८), क्र० चि० १७४ ए।
७. अमरकोष मुन कोस किय अमरसिंह मति राज।
क्रिस्नदास मतिसर सिय, कर सुबुद्धि हित राज॥
—अमरसार नाममाला, छन्द १४।
८. "संवत १८९५ वर्षे मंगलवारे वैसाख सुदी सातम दिने ७ ताल मध्ये लिखी सामिजी बाल-बाचक वाचनार्थे लीखी छे" —वही, पुष्पिका।

गोविन्द पुस्तकालय, बीकानेर में इसे सुरक्षित बताया गया है[1] पर अत्यधिक प्रयास करने पर भी इसका पता उक्त पुस्तकालय में न लग सका।

६२. भारतीय शब्दावली (१८४५ ई०)

श्री एच० एम० इलियटकृत 'सप्लीमेन्ट टु दी ग्लॉस्सेरी ऑव् इण्डियन टर्म्स' १८४५ ई० में प्रकाशित हुआ था। यह कोश एक विशिष्ट उद्देश्य की पूर्ति के लिये निर्मित किया गया था क्योंकि पश्चिमोत्तर प्रान्तीय सरकार ने इसकी बहुत कम प्रतियाँ प्रकाशित करवाई थीं। अधिकांश अहिन्दी शब्दों का संकलन करते हुये भी इसमें अनेकानेक भारतीय रीतिरिवाजों तथा प्रथाओं का भी उल्लेख है।[2] शब्दों को रोमन लिपि में अंकित कर अंग्रेज़ी में अर्थ दिये गये हैं। कई संस्कृत शब्दों को उर्दू भाषा का बताया गया है। आवश्यकतानुसार शब्दों की व्युत्पत्ति देकर, अर्थ साहित्यिक उद्धरणों द्वारा भी पुष्ट किये गये हैं।[3]

६३. नाम चिन्तामणि (१८४६ ई०)

इस कोश के रचयिता नवलसिंह प्रधान हैं। कोश ग्रंथ का उल्लेख आचार्य शुक्ल ने अपने इतिहास में किया है। कोश अप्रकाशित तथा अप्राप्य है, केवल खोज रिपोर्टों[4] में ही इसका विवरण मिलता है जिससे निम्नलिखित विशेषताएँ ज्ञात होती हैं :

परिमाण ४६६ अनुष्टुप श्लोक है; प्राप्ति-स्थान : बाबू जगन्नाथप्रसाद, छतरपुर। इसका अंतिम अंश इस प्रकार है :

पढ़है सुनिहै समझहै, करहै कंठ सुजान।
तिनको पद मै लगै, नाना अरथ दिखान ॥५२॥
रची नाम रामायनहि, नवलसिंह कर प्रीत।
यह सु नाम चितामनिहि, तिनहू रची सुरीत ॥५३॥
दुऔ ब्रह्म माय सुब्रस, गनौ ग्रंथ यह सार।
सोभित नाम अनंत मै, कर प्रकास विस्तार ॥५४॥
येक तजं इक संग्रहै, दरसनीय नहि होइ।
यह विचार सुचित्र मै, पढ़है संजन दोइ ॥५५॥

---

१. राज० हस्त० खोज, चतुर्थ भाग, पृ० १७८।
२. डॉ० बाहरी : कन्ट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी लेख, पृ० ८५।
३. राजमल जैन : इंग्लिश हिन्दी डिक्शनेरीज़ (हिन्दी रिव्यू, जुलाई १९६०), पृ० २२८-२२९।
४. खो० वि० (१९०५ ई०), पृ० २६।

"इति श्री श्री संप्रदाय परायन श्री सरन रामानुजदासाभिधेय प्रधान नवलसिंह विरचिते श्री नाम चिन्तामन सप्तम प्रकर्न समाप्त ।"

कोश ग्रंथ की रचनातिथि इस प्रकार दी गई है:

तीन सुन्य नव एक मैं माधव सुदि कुजवार ।
सिय नवमी दिन नाम मय, चिंतामन अवतार ॥[1]

तीन=३, सुन्य=०, नव=९, एक=१, अर्थात् संवत् १९०३ (१८४६ ई०) वैशाख शुक्ल ९ जानकी नवमी मंगलवार को 'नामचिन्तामणि' कोश ग्रंथ समाप्त हुआ । अंतिम वक्तव्यानुसार कोश अनेकार्थी प्रतीत होता है ।

६४. नाम रामायण (१८४६ ई०)

इस कोश के प्रणेता भी नवलसिंह कायस्थ हैं । ये झाँसीके रहने वाले थे और समरथ नरेश राजा हिन्दूपति की सेवा में रहते थे । रामचन्द्र शुक्ल ने इनके द्वारा विरचित २८ ग्रंथों का उल्लेख किया है जो सं० १८७३ से सं० १९२६ तक के बीच रचे गये थे । नाम रामायण का उल्लेख वहाँ नहीं है । प्रस्तुत कोश का उल्लेख केवल खोज विवरणों[2] में मिलता है । ७६ हस्तलिखित पत्रों तथा १००० श्लोकों का यह कोश बाबू जगन्नाथ प्रसाद, छतरपुर के पास सुरक्षित बताया गया है । प्रारम्भिक व अंतिम अंश इस प्रकार हैं :

आरम्भ—श्री नामा रामाः (नाम रामायण ?) ।श्री गनेसायनमा।श्री सीताराम चन्द्राय नमा । अथ नाम रामायन प्रारम्भ ॥ श्री श्री श्री श्री श्री नाम ॥ रामाः ॥

सिद्धि लहिये सब काज मैं, सुमिरत जिनको नाम ।
सर्व देव मय सर्व हित, वंदत हूते श्री राम ॥१॥

× × ×

नाम राम के ऐन दै, नाम राम के ऐन ।
कहौ नाम रामायनहि नामहि मैं मत दैन ॥३॥

× × ×

अंत—नवलसिंह कायस्थ कुल श्रीवास्तव सनाम ।
सम्प्रदाय वैष्णवी दुतिय श्री सरन नाम ॥१०८॥
तिहमै तिन मत आपनी भूषित करी प्रसार ।
वहु वस्तुन के नाम जुत, दोहा रचे विचार ॥१०९॥
भक्त भुक्ति मुक्तिहि लहै पढ़ सुन समल सुदेष ।
विविध नाम संज्ञा विषै होवहि ज्ञान विशेष ॥११०॥

---

१. नाम चिन्तामणि, सप्तम प्रकरण, छन्द ५१ ।
२. खो० वि० (सन १९०५), पृ० २६ ।

इति श्री श्री वैष्णव सम्प्रदाय परायन श्री सरन रामानुजादासाभिधेय प्रधान नवलसिंह विरंचिते श्री नाम रामायने उत्तर काण्ड समाप्त ।।[1]

इस कोश ग्रंथ की रचना तिथि इस प्रकार दी गई है :

राम ष निध सस साल मै रामजन्म तिथि चीन ।
जन्म नाम रामायनहि जन्म समयै मै लीन ।।[2]

राम=३, ख=०, निध=९, सस=१, अर्थात् संवत् १९०३ (१८४६ ई०) की रामजन्म तिथि के दिन कोश प्रारम्भ किया गया ।

इस कोश में पद पूर्ति के लिये रामकथा के प्रसंग भी जोड़ दिये गये हैं।[3] खोज-रिपोर्टों में नवलसिंह के नाम से एक 'रामायण कोश' भी मिलता है,[4] जो नाम रामायण का ही दूसरा नाम है। नामरामायण कोश ग्रंथ का काण्ड-विभाजन अमरकोश आदि की पद्धति पर न करते हुये रामायण के अनुसार किया गया प्रतीत होता है।

६५. हिन्दी अंग्रेज़ी कोश (१८४६ ई०)

यह द्विभाषीय कोश १८४६ ई० में कलकत्ता से प्रकाशित हुआ था। इसके रचयिता श्री जे० टी० टॉमसन हैं।[5] कोश के भूमिका-भाग में लेखक ने ग्रंथ प्रणयन की विस्तृत पृष्ठभूमि दी है। अब तक कई द्विभाषीय कोश प्रकाश में आ चुके थे। परन्तु उनमें कई कमियाँ टॉमसन को प्रतीत हुईं। वे हिन्दी के न होकर अरबी, फ़ारसी, उर्दू, संस्कृत, बंगाली या मराठी अध्येताओं के लिये उपादेय थे।[6] आदम का कोश

---

१. खो० वि० (१९०५), पृ० २६।
२. नाम रामायण (नवलसिंह), उत्तर काण्ड, छन्द १०७।
३. राम कथादिक पद इते पद पूरन के अर्थ।
तिनहि जुहे कर वस्तु के गनयो नाम समर्थ ।। —वही, अंतिम अंश।
४. खो० वि० (सन् १९०६-१९०८ ई०), क्र० चि० ७९१।
५. "Dictionary in Hindee and English, compiled from approved authorities. A work based on Price's and Adam's vocabularies and amplified by all the additional terms to be found in the works of Wilson, Hunter and Shakespeare and in the Hindee portion of the compiler's own Oordoo and English Dictionary."

इस कोश की एक प्रकाशित प्रति इंडिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन (ग्रंथ संख्या बी० ४५०२) से कुछ समय के लिये उपलब्ध हुई थी। कोश में कुल ४९८ पृष्ठ हैं।

६. "... A Hindee dictionary therefore remained a desideratum still as the other works adverted to, only offered assistance to the oriental student in the Arabic, Persian, Oordoo, Senskrit, Bengali and Maratha languages respectively and not in Hindee..."
—हिन्दी अंग्रेज़ी कोश (टॉमसन), भूमिका, पृ० ३।

निश्चित रूप से पर्याप्त लाभप्रद था परन्तु इसमें शब्दों के अर्थ अंग्रेज़ी में न होकर हिन्दी में थे। यह सबसे बड़ी कमी थी जिसके फलस्वरूप यूरोपीय अध्येताओं को पर्याप्त कठिनाई का सामना करना पड़ा। अतएव प्रस्तुत कोश आदमकृत 'हिन्दवी भाषा का कोश' तथा प्राइस की शब्दावली के अनुकरण पर नियोजित है, जिसमें शब्दों के अर्थ अंग्रेज़ी में दिये गये हैं। उक्त दो कोशों के अतिरिक्त विलसन, हण्टर तथा शेक्सपियर के कोशों से भी लेखक ने पूर्ण सहायता ली है। हिन्दी भाषा सीखने के इच्छुक यूरोपीय पाठकों तथा विशिष्ट रूप से सेना की निम्न शाखाओं के निमित्त इस कोश ग्रंथ की रचना हुई।[१]

कोश में लगभग ३०,००० हिन्दी शब्द संकलित किये गये हैं। टॉमसन के कथनानुसार यह संख्या अब तक के समस्त कोशों से अधिक है। शब्दों का संकलन पुराने कोशों तथा सर्वोत्तम रचनाओं की सहायता से किया गया है। शब्द हिन्दी की मूल प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर समाहृत किये गये हैं अतएव संस्कृत के तत्सम तथा जन-सामान्य में प्रचलित शब्द भी स्थान-स्थान पर आ गये हैं।

कोश में संकलित समस्त शब्द देवनागरी के वर्णक्रम में नियोजित हैं। संयुक्ताक्षरों में 'त्र' तथा 'ज्ञ' तो क्रमशः 'त' और 'ज' के अन्तर्गत हैं परन्तु 'क्ष' को 'ह' के पश्चात् स्वतंत्र स्थान दिया गया है। शब्द रूप पहले देवनागरी और फिर रोमन लिपि में अंकित किये गये हैं और उसके पश्चात् आवश्यकतानुसार अर्थ अंग्रेज़ी में हैं। हिन्दी शब्दों के लिये नस्ता'लीक़ लिपि का प्रयोग इसमें नहीं मिलता। अर्थ उतने विस्तृत नहीं, जितने टेलर या शेक्सपियर के कोशों में मिलते हैं। पृष्ठ के शीर्ष भाग में उस पृष्ठ द्वारा समाहृत शब्दों में से प्रारम्भिक तथा अंतिम शब्द निर्देशन के लिये रखे गये हैं।

यद्यपि प्रारम्भिक वक्तव्यानुसार लेखक ने अपने से पूर्ववर्ती समस्त कोशकारों की कृतियों से पूर्ण लाभ उठाया, फिर भी प्रस्तुत कोश में अधिकांश लाभदायक बातें छोड़ दी गई हैं। उदाहरण के लिये टेलर, प्राइस और शेक्शपियर के कोशों से पाठक तत्काल जान जाता है कि शब्द विशेष किस भाषा का है परन्तु टॉमसन ने संकलित

---

१. "...An attempt has been made to offer to the students of Hindee and the patrons of Hindee Literature, a work formed on the plan of Adam's Hindee vocabulary but with the signification in English.....for the benifit of European students of Hindee in general and of the junior branches of the military service in particular......"

—हिन्दी अंग्रेज़ी कोश (टामसन), भूमिका, पृ० ४।

शब्दों का भाषा सम्बन्धी स्रोत अंकित करने का कुछ भी प्रयास नहीं किया, जब कि इसमें क़लम, पिलक, ग़ैर, तौबा, ज़मीन जैसे अनेक शब्द अरबी, फ़ारसी के आये हैं। पूर्ववर्ती कोशों में शब्दों की व्युत्पत्तियाँ भी सामान्यतः दी गई हैं परन्तु विवेच्य कोश में नहीं। रोमन अक्षरों में हिन्दी शब्दों का उच्चारण देते समय मूर्धन्य एवं दन्त्य व्यंजनों का भेद भी अंकित नहीं किया गया है। शब्दों के अर्थ क्रम में नहीं हैं। व्याकरणिक निर्देश भी प्रायः अशुद्ध हैं। इन कमियों के होते हुये भी टॉमसन का कोश अंग्रेज़ी के माध्यम से हिन्दी शब्द और भाषा सीखने वालों के लिये पर्याप्त समय तक लाभदायक और लोकप्रिय रहा।

६६. हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश (१८४८ ई०)

द्विभाषीय कोशों को गति देने वाला यह कोश डॉ० डनकान फ़ोर्ब्स द्वारा १८४८ ई० में संकलित किया गया था। फ़ोर्ब्स किंग्ज़ कालेज, लन्दन में प्राच्य भाषाओं के प्राध्यापक थे। कोश के भूमिका-भाग में इन्होंने उन समस्त स्रोतों का उल्लेख किया है जिनका उपयोग प्रस्तुत कोश में किया गया।

शब्दों की संख्या में वृद्धि के अतिरिक्त प्रस्तुत कोश में कोई ऐसी विशेषता नहीं दृष्टिगत होती जिससे कोशकला में किसी प्रकार की नवीनता अथवा परिवर्तन, परिवर्द्धन आया हो। कोश की समस्त शैली पूर्ववर्ती कोशों के ही अनुकरण पर है। शब्द पहले नस्तालीक़ फिर रोमन और उसके अनन्तर देवनागरी लिपि में अंकित किये गये हैं। उसके पश्चात् व्याकरणिक संक्षेप निर्दिष्ट हैं, जो अधिकांशतः भ्रामक हैं। शब्दों की व्युत्पत्ति देने का कोई प्रयास नहीं किया गया। अर्थ अपेक्षाकृत संक्षेप में हैं, पुनः न तो अर्थ की भिन्नता की ओर ही कोशकार का ध्यान गया और न अर्थों के पारस्परिक सम्बन्ध का ही कुछ संकेत मिलता है।[1]

(ख) द्वितीय श्रेणी के कोश ग्रन्थ

इस वर्ग में उन कोशों का विवेचन किया गया है जिनके लेखकों के नाम तो उपलब्ध हैं परन्तु जिनकी रचना-तिथि ज्ञात नहीं है। वर्णन-शैली तथा हस्तलिखित प्रति के आधार पर इन कोशों को आलोच्यकाल में निर्मित माना गया है।

१. अनेकार्थ नामावली

इसके रचयिता कोई नाथ अवधूत हैं जिनको १७वीं शताब्दी के अंतिम दशक में विद्यमान बताया गया है। न तो यह कोश उपलब्ध है, और न रचयिता का ही विवरण

---

१. डॉ० बाहरी : कंट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी लेख, पृ० ८५।

कहीं मिलता है । इसमें लगभग ३००० पर्याय शब्दों को संकलित किया गया है ।[१]

२. प्रदीपिका नाममाला

यह कोश किन्हीं रघुनाथ द्वारा निर्मित किया गया है । लेखक ने अपने को विष्णुदत्त का नंद बताया[२] परन्तु पिता-पुत्र में से किसी का भी विवरण कहीं नहीं मिलता । खोज विवरणों में हस्तलिखित प्रति के २३ पत्र बताये गये हैं ।[३] कुल ३५५ छन्दों का रचना-तिथि रहित यह कोश जिनचरित्र सूरि संग्रह, बीकानेर में सुरक्षित है, परन्तु उक्त संग्रह पर्याप्त समय से बन्द होने के कारण प्रस्तुत कोश का उपयोग सम्भव न हो सका ।

३. नाम सार

इस कोश के रचयिता राठोड़ फ़तहसिंह महेशदासोत हैं । हस्तलिखित प्रति में २० पत्र बताये गये हैं ।[४] प्रति पत्र में १८ पंक्ति तथा प्रति पंक्ति में ११ अक्षर हैं । कोश के प्रकार व आकार तथा लेखक के सम्बन्ध में कुछ भी ज्ञात नहीं । हस्तलिखित प्रति सीताराम जी लालस जोधपुर के निजी संग्रह में उल्लिखित है, परन्तु कई वार प्रार्थना करने पर भी लालस जी से इस विषय में कुछ सूचना उपलब्ध न हो सकी ।

४. नाममाला

प्रस्तुत कोश में ४५६ पद्य बताये गये हैं । कोशकार दुर्गालाल कायस्थ हैं जिनका कोई इतिवृत्त ज्ञात नहीं । खोज रिपोर्टों में ही इस कोश का विवरण मिलता है, जो इस प्रकार है :

संख्या १११ सी०—नाममाला, रचयिता—दुर्गालाल कायस्थ (जूही, प्रतापगढ़), पत्र—१९, परिमाण (अनुष्टुप)—४५६, खंडित । प्राप्तिस्थान—श्री राधे विहारीलाल, ग्राम—जूही, डाकघर—सांगीपुर, ज़िला—प्रतापगढ़ (अवध) ।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ अथ नाममाला लिष्यते ॥ दोहा ॥
प्रथमहि सुमिरौ शिव सुवन बहुरि सुमिरि सव देव ।

---

१. डॉ० बाहरी : कन्ट्रीब्यूशन टु हिन्दी लेक्सिकॉग्राफ़ी लेख, पृ० ८३ ।

२. विविध नाम रत्नावली सुनत हरै दुख दंद ।
कृत रघुनाथ प्रदीपिका, विष्णुदत्त के नंद ॥
—प्रदीपिकानाममाला , छन्द ३५५ ।

३. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० ५-६ ।

४. वही० चतुर्थ भाग, पृ० १८०-१८१ ।

मोर मनोरथ सिद्ध करु, हनुमत रघुवर सेव ॥१॥

× × × ×

समुझि परै नहि अर्थ कछु, नाम भेद नहिं जानि ।
तिनके हित मैं रचत हौं, नाम दाम की खानि ॥५॥

॥ विष्णु नाम ॥

हृषीकेश वैकुण्ठ हरि, कृष्ण विष्णु भगवन्त ।
वासुदेव वामन विमल, परमातमा अनन्त ॥६॥
केशव माधव दैत्य रिपु, दामोदर कंसारि ।
नारायण गरुड़ध्वजौ, गिरिधर बहुरि मुरारि ॥७॥
अच्युत जलशायी कहत, मधुसूदन गोविन्द ।
चक्रपाणि नरकान्तकौ, कमलाकान्त मुकुन्द ॥८॥

× × × ×

अंत—**॥चतुर्दश रत्न ॥ धेनु धन्वन्तरि विष सुरा, लक्ष्मी संख गयन्द ।**
पारिजात रम्भा धनुष, अमी वाजि मणि चन्द ॥३३६॥
॥ सुन्दर नाम ॥ सुभग मनोहर सुसम, अरु कांति दृश्य कम ।

× × ×

विषय—(१) पृ० १ से पृ० १० तक—मंगलाचरण, ग्रंथ चतुष्ठय, विष्णु नाम, गणेशनाम, स्वामि कार्तिक नाम, ब्रह्मा नाम, इन्द्र नाम, देवता नाम, सरस्वती नाम, सूर्य, चन्द्रमा, मंगल, बुध, वृहस्पति, शुक्र, शनि, राहु-केतु, अमृत, विष, रमा, पवन, कुबेर, यम, वरुण, अग्नि, घर, सोना, रूपा, जलदी (?), बुद्धि, मुक्ति, उज्जल, कृष्ण, रक्त, शोभा, किरण, मेघ, बिजुली, जल, लहरि, समुद्र, गंगा, जमुना, नदी, सर, कूप, कचबन्ध, कमल, आकाश एवं भू नाम वर्णन ।

(२) पृ० ११ से पृ० २० तक—पर्वत, पाषाण, वन, वृक्ष, पत्र, हस्ती, सिंह, मृग, ऊँट, खट (?), भैंसा, वानर, शृंगाल, शूकर, स्वान, विलार, निउरा, कछुवा, मेघा, मूष, गरुड़, मोर, पपीहा, कोकिला, पक्षी, शुक, सारिक, काक-बक, वसन, काम शरीर, शिर, कर्न, भृकुटी, आँख, ओष्ठ, बाहु, कुच, वार, चरण, पनही, प्रेम, वैर, अहंकार, धर्म, क्रोध, राजा, सेवक, जन्म, मानुष, मन, द्रव्य, मीन, शेश, सर्प, अनी, युद्ध, आयुद्ध, वषतर, वान, तरकस, धनुष, तरवारि, चतुर, झूठ, पुनि, बहु, कठिन, कोमल, दाया, ओढर, भनायक, तथा अनादर के नाम ।

(३) पृ० २१ से पृ० ३० तक—अभिलाष, दिन, संध्या, निशा, तम, प्रात, सुख, लज्जा, स्त्री, पति, पत्नी, पुत्र, सखी, शत्रु, पाला, उतंग, नीच, वौर, नवीन, पुराना,

दैत्य, राक्षस, दिशा, द्वादश, सूर्य, एकादश रुद्र, आठ वसु, सतोगुण, रजोगुण, चौदह लोक, अष्टादश पुराण, नवरस, षोडश शृंगार, द्वादश भूषण, चौरासी लक्षि योनि, युत, आज्ञा द्वय, षटरस, षटरितु, वसन्त, षटशास्त्र, षटकाव्य, नव व्याकरण, भ्रमर, उपवन, फूल, सीढ़ी, उसीसी, सेज्या, समय, नमस्कार, दर्पण, छुद्र घंटिका, घूँघुरू, टेढ़ा-वंस (मछली पकड़ने का), वेद, जोगेश्वर, वलिभद्र, वेणु, नौ निधि, अष्टसिद्धि, वसुदिग्गज, सात खण्ड, द्वादश दोष, द्वादश व्रत तथा चतुर्दश जरायुज नाम ।

(४) **पृ० ३१ से पृ० ३८ तक**—पंच जाति स्थावर, मदिरा, अपराध, समूह, अति, सूक्ष्म, शब्द, धूरि, छल, नव, रुधिर, मुगुध, हरदी, प्रेम, विवाह, लघुभ्राता, निकंट, वज्र, पतिव्रता, वेश्या, वीथी, राह, अन्तर्ध्यान, दीरघ, विद्रुम, चन्दन, वृक्षराज, वरगद, आम्र, महुआ, बेल, अनार, केला, पाडर, किंशुक, तमाल, चंपा, कदम्ब, नारियल, सुपारी, पीपरि, हर्रें, दाख, सोंठि, केशरि, बहेरा, केवाक्ष, जूही, राजवेलि, लवंग, इलायची, ववरि (अमर वेलि), मालती, चंचल, चतुर्दश रत्न एवं सुन्दर नाम ।[१]

उक्त विवरणों से ज्ञात होता है कि यह एक परम्पराबद्ध समानार्थी कोश रहा होगा । शब्दों का संकलन पूर्ववर्ती संस्कृत या हिन्दी कोशों के आधार पर किया गया प्रतीत होता है । शब्द भी परम्पराबद्ध, रूढ़ और कोशों में प्रचलित ही हैं, जिनको किसी कांड या वर्ग में विभाजित नहीं किया गया है । कोश अपेक्षाकृत बड़ा प्रतीत होता है ।

५. नाममाला

इस कोश के रचयिता बसाहूराम हैं ।[२] कोश के आकार प्रकार व लेखक की जीवनी आदि के सम्बन्ध में कोई अन्य सूचना उपलब्ध नहीं होती ।

६. अनेकार्थ नामावली

खोज विवरणों में इस कोश के सम्बन्ध में केवल इतना अंकित है कि 'शायद जोधपुर निवासी किसी जालंधरनाथ के भक्त ने इसे रचा' ।[३]

७. अनेकार्थ

प्रस्तुत कोश के लेखक माधोराम हैं । लेखक की अन्य कृति 'करुणाबत्तीसी' के साथ 'अनेकार्थमंजरी' नामक कोश भी संगृहीत बताया गया है ।[४] हस्तलिखित

---

१. खो० वि० (सन् १९२६-१९२८ ई०), पृ० २३६ ।
२. वही० (१९०३ ई०), संख्या, १२९ पृ० ८९ ।
३. वही० (१९०२ ई०), संख्या ६६ ।
४. राज० हस्त० खोज, तृतीय भाग, पृ० ८ ।

प्रति का लिपिकाल सं० १९०० (१८४३ ई०) आश्विन शुक्ल ५, गुरुवार दिया गया है, अतएव मूल ग्रंथ इससे पूर्व ही निर्मित हुआ होगा। कोश वा कोशकार के विषय में कोई अन्य विवरण ज्ञात न हो सका।

८. नाम प्रकाश

१९६ छन्दों का यह कोश अप्राप्य तथा अप्रकाशित है, केवल खोज विवरणों में ही इसका उल्लेख मिलता है:

संख्या १५—नाम प्रकाश, रचयिता—बिहारीलाल अग्रवाल (कोसी कलाँ), पत्र—२८, परिमाण (अनुष्टुप)—१९६, खंडित, प्राप्ति-स्थान—श्री मदनलाल वल्द पन्नालाल जी अग्रवाल, वल्देवगंज डा०—कोसी कलाँ, ज़िला—मथुरा।

आदि—श्री गणेशायनमः ॥ श्री मद्राधा रसिक सर्वेश्वर जू सहाय ॥ अथ श्री बिहारीलाल कृत नाम प्रकाश गंथ लिख्यते ॥

दोहा—श्री गजमुख अरु सारदा, पुनि बन्दौ सुख रूप।
तिनके अतुल प्रताप सौ, रचियत ग्रंथ अनूप ॥

ग्रंथ प्रयोजन—अगम संस्कृत जास मति, ताहित भाषा आस।
सुकवि बिहारी शुगभयहि (?) विरचित नाम प्रकास ॥
नाम ग्रंथ के बोध बिन, अरथ बोध नहि होय।
बरनौ नाम प्रकास यौं, सुनि रीझे कवि लोय ॥

अंत—अथ तरकस नाम—उपासंग तरकस इषुधि, तूणी तूणनि निषंग।
तूणीर सु रघुवीर कहि, जगमगात बहु रंग ॥
इषु नामन अवसान मैं, धरिधि शब्द मति धीर।
कहै बिहारीलाल कवि, रचना नाम्म तू वीर ॥

अथ सीतानाम—रामप्रिया रिषि वाक्य जा वैदेही कुसुमात।
सिया करष जा जानुकी सीता है श्री ख्यात ॥
(सीता शब्द के अन्य पर्याय बनाने की विधि)

रचना—जनक कर्ष ऋषि वचन महि इन पर तनया नाम।
कुश जगपर मातादिकन, धरि रच सीता नाम ॥

विषय—संस्कृत के अमरकोश तथा नन्ददास जी की नाममाला के आधार पर यह कोश ग्रंथ निर्मित है। इसमें एक-एक शब्द के अनेक अर्थ दोहों में बताये गये हैं। एक मुख्य विशेषता प्रस्तुत कोश की यह दिखाई देती है कि एक ही छन्द में उसी शब्द के पर्याय एवं अनेकार्थ एक के पश्चात् दूसरे छन्दबद्ध किये गये हैं। अन्य कोश या तो

समानार्थी ही हैं या अनेकार्थी, परन्तु बिहारीलाल ने दोनों का समन्वय कर एक विशिष्ट शैली का उद्घाटन किया ।

कोश में मुख्यत: निम्न शब्दों के अनेकार्थ तथा पर्यायवाची शब्द आये हैं :

नाम, राधा, विष्णु, लोक, बाँसुरी, छिद्र, शब्द, शंख, गरुड़, लक्ष्मी, कामदेव, द्वारिका, बल्देव, हल, रामचन्द्र, धनुष, चिल्ला, बाण, तरकस, सीता, इत्यादि ।

प्रस्तुत कोश के आधार कौन-कौन ग्रंथ हैं इसका उल्लेख स्पष्ट रूप से कर दिया गया है:

अमर, धनंजय, हेमिका, हारावलि हू खास ।
इन कोशादिक भाव सों, बरनो नाम प्रकास ।।
इंच्छित क्रम कौ नेम लै, जेई बरनौं नाम ।
तिनकौ बहु ग्रंथन विषे, परै शेष करि काम ।।
प्रथम नाम बरनन करौं, बरनौं बहुरि बनाव ।
तासों कवि कोविद लहें, अमित नाम कौ भाव ।।
नामावलि सब इमि रचौं, जिमि गजमुकतन दाम ।
तिनकौ भूषन लक्ष पै, मिले भाव सब ठाम ।।[१]

कोशकार के सम्बन्ध में व्यक्तिगत या साहित्यिक संकेत अन्यत्र कहीं भी नहीं मिलते । एक अन्य विवरण[२] में इनको मथुरा निवासी बताया गया है तथा इनके द्वारा विरचित दो अन्य ग्रंथ भी उल्लिखित हैं—'गजेन्द्र मोक्ष' एवं 'दोष निवारण' ।

९. अनेकार्थ मंजरी

इस नानार्थी कोश के रचयिता कोई उदोत कवि हैं । इनको ग्वालियर निवासी एवं जाति का ब्राह्मण बताया गया है ।[३] मुग़ल सम्राट औरंज़ेगब के राजदरबार में भी इनका आना जाना था । कोश के सम्बन्ध में कोई विवरण उपलब्ध नहीं होता और न कोशकार का ही कहीं अन्यत्र परिचय मिलता है । कोश ग्रंथ नन्ददासकृत 'अनेकार्थ' के ही अनुकरण पर लिखा गया प्रतीत होता है ।

(ग) तृतीय श्रेणी के कोश ग्रन्थ

तृतीय श्रेणी के कोशों का न तो रचनाकाल निश्चित हो सका है और न रचयिता का ही कहीं स्पष्ट निर्देश है । ये कोश अधिकांशत: अपेक्षाकृत आकार में लघु या अपूर्ण हैं । इनके आरम्भिक या अंतिम अंश प्राय: नष्ट हो गये हैं ।

---

१. खो० वि० (सन् १९३५-१९३७ ई०), पृ० ९०-९१ ।
२. वही० (सन् १९३२-३४ ई०), क्र० चि० ३० ।
३. जवाहर लाल चतुर्वेदी : पोद्दार अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ५४३ ।

१. नागराज डिंगल कोश

किंवदंतियों के आधार पर स्वयं शेषनाग इस कोश के प्रणेता थे।[1] यह भी सम्भव है कि किसी विद्वान ने पिंगल की प्रसिद्धि देखकर[2], पिंगल के नाम से ही डिंगल में भी ऐसे ही ग्रंथ की रचना कर दी हो जो कालान्तर में 'पिंगल' द्वारा ही विरचित मानी जाने लगी हो और प्राप्य कोश उसी का एक अंश हो।[3]

यह कोश 'डिंगल कोश' के अन्तर्गत जोधपुर से प्रकाशित है। केवल २० छन्दों का होते हुये भी पर्यायवाची शब्दों की अच्छी संख्या इसमें मिलती है। आकार में अत्यन्त लघु होने के कारण काण्ड या वर्गों में विभाजित करने का प्रश्न ही कोशकार के सम्मुख न था। यह कोश सं० १८२१ (१७६४ई०) की लिपिबद्ध प्रति के आधार पर सम्पादित हुआ है अतएव मूलप्रति निश्चित रूप से उससे पहले की निर्मित रही होगी।

२. आरंभ नाममाला

कोश अप्राप्य एवं अप्रकाशित है। खोज विवरणों में इसका लेखक 'सुबुद्धि' बताया गया है।[4] यह नाम छन्द ११-१३ में आता है परन्तु इन छन्दों में भी सुबुद्धि शब्द रचयिता के अर्थ में प्रयुक्त नहीं प्रतीत होता। कोश के आदि तथा अन्त भाग दोनों नाममय हैं, अतएव कोशकार का परिचय, रचना, समय आदि का कोई पता नहीं चलता।

लेखक के वक्तव्यानुसार अमरकोश आदि संस्कृत कोशों का आधार लेते हुये लेखक ने कुछ अपनी बुद्धि से नये शब्द संकलित किये और प्रस्तुत कोश बनाया।[5] हिन्दी भाषा का प्रचलन और उपादेयता को ध्यान में रखते हुये ही भाषा में कोश की आवश्यकता प्रतीत हुई। कोश का आकार प्रकार नहीं दिया गया है। इसका लेखनकाल खोज विवरणों में १८वीं शती निर्दिष्ट है।

३. नाममाला

यह अप्रकाशित कोश ग्रंथ डॉ० पारसनाथ तिवारी के निजी संग्रह से उपलब्ध हुआ है। कोश में कहीं भी लेखक वा रचनातिथि का प्रसंग नहीं। आकार में यह अत्यन्त लघु है—केवल १९ छन्द इसमें आये हैं।[6]

---

१. नारायणसिंह भाटी : डिंगल कोश, भूमिका, पृ० १०।
२. पिंगलमुनि कृत पिंगल सूत्र प्रसिद्ध है।
३. नारायण सिंह भाटी : डिंगल कोश, भूमिका, पृ० १०।
४. राज० हस्त० खोज, द्वितीय भाग, पृ० ४।
५. अमर ग्रंथ में जे कहे, सुने लहे करि शुद्ध।
कछु उपजाये अर्थ सों, नये नाँउ निज बुद्ध॥

—आरम्भ नाममाला, छन्द ५।

६. प्रबन्ध में इसको नाममाला 'ग' के रूप में रखा गया है।

'नाममाला' गरीबदासकृत 'अनभै प्रबोध' की ही भाँति संत साहित्य का छोटा सा कोश है। संत साहित्य में जो साधना परक शब्द प्रयुक्त होते हैं उनके प्रतीकों, पर्यायों तथा उपमानों का संग्रह इसमें है। जीव, चित, मनसा, माया, कुबुद्धि, ज्ञान, सुरति, आदि शब्दों के प्रायोगिक पर्याय इसमें आये हैं। शब्द तथा पर्याय लगभग अनभै प्रबोध के ही समान हैं। अन्य उल्लेखनीय विशिष्टता इसमें नज़र नहीं आती।

४. शब्द कोश

प्रस्तुत कोश अप्राप्य तथा अप्रकाशित है। खोज विवरणों[1] के आधार पर ज्ञात होता है कि इसमें कुल १५० अनुष्टुप (दोहे) थे। शब्दों का संकलन पर्याय पद्धति पर किया गया है। रचनातिथि और रचयिता का कोई उल्लेख नहीं। खोज विवरणों में हस्तलिखित प्रति का विवरण इस प्रकार दिया गया है:

संख्या २२८—शब्दकोश, पत्र—६, परिमाण (अनुष्टुप)—१५०, अपूर्ण, प्राप्तिस्थान—पं० अयोध्या प्रसाद बोहरे, स्थान व पो०—जसवंत नगर, जिला—इटावा।

आदि—॥ सेवक के नाम ॥ विधि करके करद सजन अनुचर अनुगम दिसि।
भ्रित्य किरात जहमैं जसैं, छवि वनि नहीं जाति ॥३४॥

॥ दासी नाम ॥　भ्रित्य दासी किंकरी चरी, भारहि जु अंभ।
रजति मनीमय अजिर मैं कै उरवसि के रंभ ॥३५॥

× × × ×

॥ सूरज नाम ॥　दिवि दिवकर विभाकर दिनकर भासकर हंस।

× × × ×

कोश ग्रंथ अप्राप्य है परन्तु उपलब्ध अंश से प्रतीत होता है कि यह नन्ददास की 'नाममाला' और बद्रीदासकृत 'मानमंजरी' की शैली पर निर्मित है जिसमें दोहे की प्रथम पंक्ति में शब्दों के पर्याय गिनाने के अतिरिक्त द्वितीय पंक्ति में मान प्रसंग भी संगुम्फित किया गया है।

५. नाममाला

यह नाममाला जोधपुर से प्रकाशित 'डिंगलकोश' के अन्तर्गत प्रकाशित है। संपादक के कथनानुसार उनके शोध संस्थान में सुरक्षित, मूल प्रति लगभग १०० वर्ष पुरानी होनी चाहिये, ऐसा अनुमान इसकी लिखावट से लगता है।[2]

---

१. खो० वि० (सन् १९३५-१९३७ ई०) पृ० ४३१।
२. नारायण सिंह भाटी : डिंगलकोश, भूमिका, पृ० १२।

कोश में कुल १३५ छन्द हैं। छंद भी राजस्थान के प्रसिद्ध गीत 'बेलियो' के हैं। संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त कई शब्दों के प्राचीन शुद्ध डिंगल रूप इस कोश में देखने को मिलते हैं, जिससे यह अनुमान होता है कि इसका रचयिता कोई अच्छा विद्वान होना चाहिये। शब्दों को पर्याय शैली में निबद्ध किया गया है परन्तु वर्ग या काण्ड की व्यवस्था इसमें नहीं है। ईश्वर, व्रख (वृक्ष), भ्रमर, चपला आदि के डिंगल पर्याय इसमें मिलते हैं। कोश की एक अन्य विशेषता यह है कि छन्दपूर्ति आदि के लिये भी बहुत ही कम निरर्थक शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है जिससे लेखक का शब्द तथा छन्द दोनों पर समान अधिकार प्रमाणित होता है।[१]

६. नाममाला

इस कोश ग्रंथ की हस्तलिखित प्रति अभयजैन ग्रंथालय, बीकानेर[२] से उपलब्ध हुई। खोज विवरणों में कहीं इसका उल्लेख नहीं है। प्रति त्रुटित है क्योंकि पद्यांक १ से ११४ तक के पत्र खंडित हो चुके हैं। पद्यांक ११५ से २६१ प्राप्त हैं।

यह नाममाला नन्ददासकृत 'नाममाला' तथा बद्रीदास विरचित 'मानमंजरी' की शैली पर निर्मित है, जिनके दोहों की प्रारम्भिक पंक्ति में शब्दों के पर्याय तथा उत्तरार्द्ध की पंक्ति में नायिका का मान प्रसंग नियोजित है किन्तु मान का क्रम स्पष्ट नहीं है।

प्रति में न तो कहीं कृतिकार के नाम का उल्लेख है और न रचनातिथि का। यह भी संभव है कि नन्ददास की 'नाममाला' को लेकर किसी महानुभाव ने उसमें आंशिक परिवर्तन कर एक नया कोश प्रस्तुत कर दिया हो क्योंकि दोनों में अधिक अन्तर नहीं है।[३]

७. नाममाला

यह कोश अप्राप्य एवं अप्रकाशित है। खोज विवरणों में इसके नाम के अतिरिक्त और कोई सूचना नहीं दी गई है। यह ९०० पृष्ठों के गुटके में संगृहीत बताया गया है।[४]

—o—

१. प्रस्तुत प्रबन्ध में इसे 'नाममाला' 'क' के नाम से अंकित किया है।
२. ग्रंथ संख्या ४९७९।
३. प्रबन्ध में इसे 'नाममाला' 'ख' के नाम से अंकित किया गया है।
४. राज० हस्त० खोज तृतीय भाग, पृ० २२।

अध्याय २

वर्गीकरण

प्रथम अध्याय में वर्णित समस्त कोशों को विवेचन की सुविधा के लिये प्रस्तुत अध्याय में वर्गीकृत किया गया है। इस वर्गीकरण के आधार मुख्य रूप से तीन माने गये हैं––(१) संकलन-शैली (२) भाषा तथा (३) अर्थ वा अन्य उक्तियाँ। इन तीनों के पुनः कई वर्ग और उपवर्ग तथा भेद एवं उपभेद किये गये हैं।

अध्याय के अन्त में कुछ ऐसे विशिष्ट कोशों का भी उल्लेख है, जिनकी शब्दावली अन्य कोशों के समान काव्य-साहित्य विषयक न होकर किसी सम्प्रदाय या क्षेत्र-विशेष से ही अधिकांशतः सम्बन्ध रखती है, यही कारण था कि इन कोशों को प्रथम अध्याय के अन्तर्गत विवेचित अन्य कोशों के साथ कालक्रमानुगत इतिहास में स्थान न मिल पाया।

आगे इन सभी वर्गोपवर्गों तथा उनके भेदोपभेदों का सविस्तार क्रमिक तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत है :

शब्द-संकलन का आधार

शब्दों की संकलन-पद्धति के आधार पर कोशों के तीन भाग किये गये हैं––(१) समानार्थी (२) अनेकार्थी एवं (३) वर्णक।

समानार्थी कोश

समानार्थी कोशों को भी पुनः तीन उपभेदों में विभाजित किया गया है, (१) सामान्य या वर्गहीन कोश (२) अनुवादित या वर्गात्मक कोश तथा (३) मानमाला।

उपलब्ध कोशों में गरीबदासकृत अनभै-प्रबोध, चेतनविजय द्वारा विरचित आतमबोधनाममाला, बालकराम द्वारा निर्मित विश्वनाममाला, सागर प्रणीत धनजी-नाममाला एवं नाममाला 'ग' सामान्य समानार्थी कोश हैं। डिंगल कोश के शीर्षक से अगले पृष्ठों में वर्णित डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश, हमीर-नाममाला, अवधानमाला तथा नाममाला 'क' भी सामान्य या वर्गहीन कोश ही हैं।

अनुवादित या वर्गात्मक कोशों में केवल चार कोश हैं––प्रकाशनाममाला, नाम-प्रकाश, कर्णाभरण एवं उमरावकोश।

मानमालायें तीन मिली हैं––नन्ददासकृत मानमाला, बद्रीदास विरचित मान-मंजरी, एवं अज्ञात लेखक द्वारा निर्मित नाममाला 'ख'।

उपर्युक्त वर्गों में से डिंगल, अनुवादित या वर्गात्मक तथा मानमाला कोशों का स्वतंत्र रूप से भी अध्ययन किया गया है परन्तु उनका मूलभूत आधार समानार्थी होने के कारण प्रस्तुत विवेचन में भी उनका प्रसंग यत्र-तत्र आ गया है।

पर्याय की परिभाषा

उपर्युक्त समस्त कोशों को दूसरे शब्दों में 'पर्याय-कोश' भी कहा जा सकता है। पर्याय का तात्पर्य एक ही क्रम में आये हुये उसी अर्थ के वाचक शब्द[1] से है। परन्तु वास्तव में पर्याय मिलते-जुलते अर्थ वाले शब्द हैं। प्रयोग की दृष्टि से दोनों का एक स्थान पर प्रयोग नहीं हो सकता।[2] जॉनसन ने उचित ही कहा था कि अंग्रेज़ी भाषा के किन्हीं भी दो शब्दों के अर्थ एक से नहीं हैं।[3] मेकॉले के मतानुसार भी यदि एक शब्द को उसके कथित पर्याय द्वारा स्थानान्तरित कर दिया जाय तो वाक्य का समस्त प्रभाव चौपट हो जाने का डर है।[4]

यदि हम इन कोशों को समानार्थी या पर्यायवाची कहते हैं तो इसका तात्पर्य इतना ही समझना चाहिये कि इनमें एक ही भाषा (हिन्दी-संस्कृत) के कुछ 'समान अर्थ वाले' शब्दों को एक साथ रखा गया है।[5] एक स्थान पर संगृहीत ऐसे शब्दों का प्रायः 'एक सा सामान्य भाव' होता है।[6] इन शब्दों में पारस्परिक 'एक या इससे अधिक गुणों की साम्यता' होती है[7] अर्थात् पर्यायवाची शब्दों का 'वही' या 'लगभग वही' अर्थ होता है।[8] परन्तु इस 'साम्यता' के अतिरिक्त उनमें कुछ 'असाम्यता' का होना भी आवश्यक बताया गया है। उनमें कुछ 'साधारणता' और साथ ही बहुत कुछ 'असाधारणता वा विशिष्टता' का होना भी ज़रूरी है।[9]

१. क्रमेणैकार्थ वाचकाः शब्दाः पर्य्यायाः'—विजय रक्षित। शब्द कल्पद्रुम खण्ड ३, भाग १, पृ० ७३।
२. भोलानाथ तिवारी : पर्यायवाची कोश, भूमिका, पृ० ७।
३. जॉनसन : डिक्शनरी, भूमिका।
४. मेकाले : एस्सेज, भाग १, पृ० १२।
५. ग्राहम : वेब्सटर्स डिक्शनरी ऑव् सिनानिम्ज, भूमिका, पृ० १४।
६. "Strictly a word having the same sense as another (in the same language), but more usually either or any of two or more words (in the same language) having the same general sense but possessing each ef them meanings which are not shared by the other or others or having different shades of meanings or implications appropriate to different contexts."
—ए न्यू इंगलिश डिक्शनरी, ऑन हिस्टॉरिकल प्रिन्सिपल्स खण्ड ९, भाग २, पृ०३८४-३८५।
७. चार्ल्स जे० स्मिथ : ए कम्प्लीट कलेक्शन ऑव् सिनॉनिम्ज एण्ड एण्टोनिम्ज (१८६७), भूमिका।
८. जेम्स सी० फर्नाल्ड : स्टैण्डर्ड डिक्शनरी (१८९४), दे० 'सिनानिम' शब्द।
९. "......words of like significance in the main, but also with a certain unlikeness as well, with very much common but also with somewhat private and peculiar......"
—डॉ० हरदेव बाहरी : हिन्दी सिमैण्टिक्स, पृ० १२०।

आलोच्य कोशों में पर्याय शब्दों का संकलन बड़े व्यापक अर्थ में हुआ है। उपर्युक्त दी गई परिभाषाओं की पूर्ण यथार्थता के अतिरिक्त इनमें अन्य दिशायें भी सूझती हैं। मोटे रूप में इनमें शब्दों के पर्याय 'नाम' के अन्तर्गत दिये गये हैं जैसे 'समुद्र नाम' या 'इन्द्रनाम', 'कच्छुलि नाम' या 'नाड़ा नाम'। इस व्यापक दृष्टिकोण के फलस्वरूप एक शब्द-विशेष से सम्बद्ध जितने अन्य शब्द मिले, उन सबको एक ही शीर्षक के अन्तर्गत ले लिया गया है—उनके पारस्परिक आन्तरिक साम्य का कोई मापदण्ड इन कोशकारों के सम्मुख न था।[१]

पर्यायों के आधार

विवेच्य कोशों में संकलित पर्यायों के सम्बन्ध में सविस्तार जानने से पूर्व इनके आधार का ज्ञान भी आवश्यक है। शब्द-विशेष के पर्याय को आँकने के चार प्रमुख दृष्टिकोण, माध्यम या आधार माने जा सकते हैं—(१) निरुक्तिकार का दृष्टिकोण, (२) साहित्यिक का दृष्टिकोण, (३) सामान्य वक्ता का दृष्टिकोण, (४) अशिक्षित का दृष्टिकोण। इन चारों में से कोशों के प्रसंग में प्रथम दो ही महत्त्वपूर्ण हैं। निरुक्तिकार भी प्रत्येक प्रकार के पर्यायों में भिन्नता देखता है। उसके लिये कोई दो शब्द समान नहीं हैं—रूढ़ प्रयोगों से उसको कोई वास्ता नहीं है। समय पड़ने पर वह शब्द-विशेष के प्रयोग को अशुद्ध भी घोषित कर सकता है। निरुक्तिकार शब्दों के अर्थों में समानता ढूँढ़ने की अपेक्षा असमानता ही अधिक ढूँढ़ते हैं। अतएव पर्याय शब्दों का अध्ययन करने में, एवं विशेष रूप से उनके संकलन में, निरुक्तिकार का दृष्टिकोण अधिक फलदायी नहीं। निरुक्तिकार वियोग को आधार बनाता है तो पर्याय संकलनकर्ता संयोग को, एक शब्दों का विघटन करता है तो दूसरा संघटन, एक विश्लेषण का मार्ग अपनाता है तो दूसरा संश्लेषण का।

साहित्यिक का दृष्टिकोण पर्याय संकलन करने वाले के लिये अत्यन्त लाभदायी रहा है। इन समानार्थी कोशों में शब्द संकलन प्रायः साहित्यिक ग्रंथों के आधार पर ही हुये हैं। काव्य एवं कोश ने एक दूसरे को परस्पर सहायता तथा सहयोग दिया है। काव्य ने कोशों से शब्द ग्रहण किये और कोश ने काव्य से। यह दूसरी बात है कि कवि को 'संगीत भेद के कारण' भ्रू, भृकुटि, भौं तथा हिलोर, लहर, तरंग, बीचि

---

१. "Synonyms or different names for the same thing, but which are really distinct expressions for distinct modifications of the general idea, each demanding its appropriate place for which no other word is so well fitted........"

—डॉ० फैलन : डिक्शनरी, हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० ४।

में सूक्ष्म अर्थ भेद दिखाई दे और उनके प्रयोग में वह अन्तर ला दे।[1] इसी प्रकार साहित्यिक प्रयोग-भेद के कारण या उसके प्रभाव को देखते हुये कभी-कभी थप्पड़, चाँटा या तमाचा में भी अंतर बताया जा सकता है।[2]

सामान्य वक्ता वा अशिक्षित व्यक्ति निरुक्तिजन्य या साहित्यिक प्रयोग के फल-स्वरूप उपस्थित प्रभेदों की ओर दृष्टि नहीं डालता। उसके लिये बहु-प्रचलित तथा प्रसिद्ध पर्याय एक से होते हैं।

पर्यायों के प्रकार

इन विस्तृत दृष्टिकोणों को सम्मुख रखते हुये आलोच्य कोशों में संकलित पर्यायों को कुछ वर्ग विशेषों में विभाजित किया जा सकता है—

(अ) निश्चित या शुद्ध पर्याय।

(आ) आंशिक पर्याय या पर्यायाभास मात्र।

(इ) अनिश्चित वा अस्पष्ट पर्याय।

(ई) अशुद्ध पर्याय।

(अ) निश्चित या शुद्ध पर्याय—इस वर्ग के अन्तर्गत उन समानार्थी शब्दों को लिया जा सकता है जिनमें निरुक्ति या साहित्यिक प्रयोग के दृष्टिकोण से अधिक अन्तर नहीं है। वे बहुत प्रचलित, सर्वप्रसिद्ध एवं रूढ़ हैं। सामान्यतः यदि एक के स्थान पर दूसरे शब्द को रख दिया जाय तो मूल भाव को विशेष हानि न पहुँचेगी। कुछ ऐसे पर्यायों के वर्ग नीचे उद्धृत हैं जो प्रायः प्रत्येक समानार्थी कोश में आये हैं, अतएव उनका स्रोत देना निरर्थक है—

महादेव—अंधकरिपु, अनंगारि, उमापति, कपर्दी, कामारि, कैलासपति, चन्द्र-शेखर, जटाधर, त्रिनेत्र, त्रिपुरारि, धूर्जटि, भूतपति, योगीनाथ, शिव, सितिकंठ, स्वयंभू, हर, आदि।

बादल—अंबुधर, जलद, नभचर, नीरद, पयोद, पयोधर, बारिद, बलाहक, मेघ, आदि।

स्त्री—अबला, कांता, गृहिणी, तिय, त्रिया, दारा, नारी, बनिता, बामा, बाला, भामिनी, महिला, ललना, सीमंतिनी, आदि।

(आ) आंशिक पर्याय या पर्यायाभास मात्र—विवेच्य कोशों में दूसरे प्रकार के वे पर्याय हैं, जिनको शुद्ध रूप से पर्याय नहीं कहा जा सकता। ऐसे शब्द किसी अन्य

---

१. सुमित्रानन्दन पंत : गद्यपथ, पृ० १७-१८।

२. मिर्जा अहमद चग़ताई : चग़ताई की कहानियाँ, पृ० ५-७।

शब्द के भी पर्याय हो सकते हैं। ये शब्द केवल रूढ़ शैली में किसी शब्द विशेष के लिये प्रयुक्त होते रहते हैं। पर्यायों के इस भेद के भी दो उपभेद किये जा सकते हैं :

(१) प्रथम प्रकार के पर्यायों का आधार रूढ़ प्रयोग या बहुव्रीहि समास है। यथा—पीताम्बर (कृष्ण), चतुरानन (ब्रह्मा), षडानन (कार्तिकेय), दसानन (रावण), बीसहत्थी (दुर्गा), गजमुख (गणेश) वा इसी प्रकार के अन्य शब्द।

(२) दूसरे प्रकार के पर्यायों में से मूलशब्द का कोई गुण विशेष ग्रहण कर सामान्य से विशिष्ट या विशिष्ट से सामान्य का आश्रय लिया गया है। सरस्वती के लिये देवी[१], युधिष्ठिर के लिये पंडवतिलक[२], 'अरजुण' के लिये पंडवमध, पंडसुत, नर, सुनर[३], बृहस्पति के लिये रिखी, मुनेसर, वेदरस[४] गणिका के लिये भगतण, चातुर[५], रामचन्द्र जी के लिये बहोंनामी, जमीं के लिये नाम अनेक[६] आदि इसी प्रकार के पर्याय हैं।

(इ) अनिश्चित या अस्पष्ट पर्याय—बहुत से शब्दों के साथ इस प्रकार के पर्याय भी संकलित किये गये हैं, जिनका सामान्यतः उस शब्द विशेष के साथ अप्रत्यक्ष सम्बन्ध रहता है। साहित्य या दैनिक बोलचाल में उनको एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त नहीं किया जा सकता। वे शब्द केवल किसी ग्रंथ विशेष या सम्प्रदाय विशेष में प्रयुक्त होते रहते हैं। अस्पष्ट पर्यायों के इस वर्ग के भी निम्न उपभेद किये जा सकते हैं :

(१) प्रथम प्रकार के पर्याय डिंगल कोशों में विशेष रूप से पाये जाते हैं। परबतसुत (लोह)[७], दुखी (सत्रू)[८], घमसाण (सेना)[९], मोटा (बड़ा भाई)[१०] व जूता के लिए पगरखी, काँटारखी, पगसुख, पैजार[११] आदि इसी प्रकार के पर्याय हैं।

(२) दूसरे प्रकार के शब्दों को पर्याय न कहकर विशेषण कहना चाहिये। तेज, तेजी (घोड़ा)[१२], सुथर, सुन्दर, सोहलाली (धरती)[१३], उमदा, प्रचंड (ऊँट)[१४] ऊजल, सीतल (पानी)[१५], उग्र, भीम (शिव)[१६], विख्याता (यम)[१७] आदि इसी प्रकार के पर्याय हैं।

---

१. अ० मा०, छन्द ९।
२. वही, छन्द २०८।
३. वही, छन्द २१४।
४. वही, छन्द ४८०।
५. वही, छन्द ५०२।
६. ह० ना० मा०, छन्द २०।
७. अ० मा०, छन्द १८१।
८. वही, छन्द २६२।
९. वही, छन्द २६६।
१०. वही, छन्द २८०।
११. वही, छन्द ५१९,५२०।
१२. डि० ०ना० मा०, छन्द १३।
१३. ना० डि०, छन्द ८।
१४. वही, छन्द ५।
१५. वही, छन्द १६।
१६. ना० प्र०, पृ० १३।
१७. वही, पृ० ७।

(३) तीसरे प्रकार के पर्याय गरीबदासकृत 'अनभै प्रबोध' और 'नाममाला' 'ग' में अधिकांश रूप से मिलते हैं, जिनको शुद्ध रूप से पर्याय न कह कर प्रतीक या उपमान मात्र मानना चाहिये। 'मन' के लिये मीन, मींडक, मंजार, मूसा, मर्कट, मोर, गरुड़, गज, पीसू, पतंग, सुनहा, सूवा, कऊवा, महादेव, अवधूत[१], आदि नाम। इसी प्रकार काया (देह) के लिये पृथी, समुद्र बांबी, कूप, भोमी, खाड, गोकल, बिन्द्राबन, वृष, वेली, बबूल[२], आदि शब्द संकलित हैं। इतना निश्चित है कि इनको उल्लिखित शब्द का पर्याय शुद्ध रूप से नहीं कहा जा सकता। ये सन्त साहित्य में प्रयुक्त होने वाले प्रतीक या उपमान मात्र हैं जिनका केवल लाक्षणिक अर्थ लग सकता है। साहित्यिक या सामान्य पाठक इनको शब्द विशेष का पर्याय नहीं मान सकता।

(ई) **अशुद्ध पर्याय**—उपर्युक्त तीन प्रभेदों में निर्दिष्ट पर्यायों का मूल शब्द से किसी न किसी क्षेत्र में आंशिक सम्बन्ध स्थापित किया जा सकता है परन्तु विवेच्य कोशों में कुछ पर्याय ऐसे भी संकलित किये गये हैं जिनका मूल शब्द से कोई सम्बन्ध नहीं। उदाहरण के लिये हमीर नाममाला में 'सनेह' के लिये सुख तथा संतोष[३], डिंगल नाममाला में 'जोधा' के लिये हंसा[४], 'धरती' के लिये सागर-अंबेरा[५], तथा नागराज डिंगल कोश में चन्द्र के लिये बादल[६] शब्द दृष्टव्य हैं।

विशिष्ट पर्याय

उपर्युक्त अनुच्छेदों में ऐसे सामान्य पर्यायों का उल्लेख किया गया है जो किसी न किसी वर्ग के अन्तर्गत समाविष्ट किये जा सकते हैं परन्तु प्रायः प्रत्येक समानार्थी कोश में इस प्रकार के नाम शब्दों का भी संकलन किया गया है, जिनको पर्याय न कह कर केवल तत्सम्बन्धी नामों की सूची मात्र कहा जा सकता है। उदाहरण के लिये अवधानमाला में 'फूल नाम'[७] इस प्रकार दिये गये हैं:

पुसप सुगंधक फल पिता, कुसम सूप्रन कलार।
रगत फूल सिंधक धरम, सुमन सनद्रुमसार।

× × ×

कुसमावल चंपाकली, गोटाजाय गुलाब।
कणी केवड़ा केतकी, जुही हबास जबाव॥

---

१. नाममाला 'ग', छन्द २।
२. अ० प्र०, पृ० ६
३. ह० ना० मा०, छन्द २०१।
४. डिं० ना० मा०, छ० ३।
५. वही, छ० १३।
६. ना० डिं०, छ० १९।
७. अ० मा०, छन्द १२२–१२६।

मैंदी कणियर मोगरा, निधनलियर गुलमंड ।
रायबेल रतनावली, परी गुढ़ेर प्रचंड ।।
करणफूल गोरखकली, जंबक जाफरा जांण ।
संमंद सोख गुल सेवती, अरक हजारी आंण ।।

प्रस्तुत छन्द की प्रथम दो पंक्तियों में तो 'फूल' शब्द के पर्याय परम्परागत रूप से दिये गये हैं परन्तु उत्तरार्द्ध की छः पंक्तियों में 'फूल' के पर्याय न होकर विभिन्न फूलों के नाम मात्र संकलित हैं। नाम-संकलन की यह पद्धति संस्कृत के समस्त कोशों में पायी जाती है। आलोच्य हिन्दी कोशों में स्थान-स्थान पर यह युक्ति प्रयोग में लायी गई है। सताईस नक्षत्र नांम[१] शीर्षक के अन्तर्गत २७ नक्षत्रों के नाम गिना दिये गये हैं। इन नामों को पर्याय या समार्थक वा प्रतिशब्द नहीं कहा जा सकता। इसी प्रकार 'चोईस अवतार नाम'[२], 'सात घात रा नांम'[३], 'बारे रासाँ रा नांम'[४], वेद नांम[५], आश्रम नांम[६] में भी यही युक्ति काम में लाई गई है। वर्णक संग्रह तो प्रायः इसी प्रकार के नामों के संग्रह मात्र हैं।

जातिवाचक के अन्तर्गत व्यक्तिवाचक

पर्याय संकलन की विशिष्ट पद्धतियों में एक अन्य शैली जातिवाचक शब्दों के अन्तर्गत व्यक्तिवाचक शब्दों का संकलन है। उदाहरणार्थ 'अपसरा नाम'[७] लीजिये :

सुर वेस्या कहि अछरा, उरव्वसी अभिरांम ।
मेनक रंभ घ्रतायची, सुकेसी तिलतांम ।।

इसमें अपसरा के पर्याय सुरवेस्या और अछरा तो शास्त्र सम्मत हैं, जो अप्सराओं की सामान्य जाति के बोधक हैं, परन्तु इनके बाद गिनाये गये शब्द—उरव्वसी, मेनक (मेनका), रंभ (रंभा) घ्रतायची, सुकेसी और तिलतांम (तिलोत्तमा) पुराण-कालीन अप्सराओं के व्यक्तिगत नाम हैं। इस प्रकार की पद्धति प्रायः सभी पर्याय कोशों में मिलती है। यहाँ पर यह ध्यान देने योग्य है कि प्राचीन काव्य ग्रंथों में व्यक्तिवाचक शब्दों का प्रयोग जातिवाचक शब्दों की तरह भी किया गया है। ऐरावत इन्द्र के हाथी का भी नाम है पर साधारण हाथी के लिये भी प्रयुक्त होता रहा है। अतः सम्भवतः कोशकारों ने इस प्रकार की प्रवृत्ति को ध्यान में रखकर ही यह प्रणाली अपनाई होगी।

---

१. अ० मा०, छन्द ४४८-४५१।
२. वही, छन्द ४४२-४४४।
३. वही, छन्द ४५६।
४. वही, छन्द ४५२।
५. उ० को० १।६। ३।
६. ना० प्र०, पृ० १७२।
७. डिं० ना० मा०, छन्द १७।

सामान्य तुलनात्मक विशेषताएँ

विवेच्य समानार्थी कोशों में से 'मानमाला' और अनुवादित कोशों तथा डिंगल कोशों का अलग से विवेचन किया गया है केवल अनभै प्रबोध, नाममाला 'ग', विश्व-नाममाला, आतमबोध नाममाला, तथा धनजी नाममाला शेष रहते हैं। इनमें से प्रथम दो केवल संत साहित्य की शब्दावली से सम्बद्ध हैं जिनके पर्याय भी विशिष्ट और साम्प्रदायिक हैं। अन्तिम तीनों में परम्पराश्रुत, रूढ़ एवं प्रचलित पर्याय दिये गये हैं। आतमबोध नाममाला में चेतन विजय ने दोहों की द्वितीय पंक्ति में शिक्षा-प्रद या आत्मबोध ज्ञापक उपदेश भी दिये हैं। धनजी नाममाला में शब्दों के कुछ पर्याय देकर अन्य पर्याय निर्मित करने की भी पद्धति का निर्देश है।

उपर्युक्त सभी कोश छन्दबद्ध हैं; वर्ग वा कांड का विभाजन किसी में नहीं है। शब्द बिना किसी क्रम के एक तरफ़ से गिना दिये गये हैं। विवेच्य शब्द का शीर्षक प्रत्येक कोश में दिया गया है पर्याय शब्दों की अन्त में गणना कहीं नहीं की गई है। छन्द पूर्ति के लिये अन्तिम तीन कोशों में पर्याप्त शब्द आये हैं।

अनुवादित या वर्गात्मक कोश

संस्कृत कोशों ने अपने सम्पर्क में आने वाले हिन्दी कोशों को अनेक रूपों में प्रभावित किया। यह प्रभाव तीन दिशाओं में पड़ा :

१ : अनुवाद, २ : अनुकरण, ३ : अनुसरण।

यदि वास्तव में देखा जाय तो कुछ द्विभाषीय कोशों को छोड़कर अन्य समस्त हिन्दी कोश संस्कृत कोशों के अनुकरण और अनुसरण पर निर्मित हुये हैं। यह अनुकरण और अनुसरण शब्द-संकलन, शब्द-संख्या, उनकी नियोजना और अन्य पद्धतियों की दिशाओं में हुआ है।

इन प्रकारों में सर्वाधिक प्रत्यक्ष प्रभाव अनुवाद का है। यद्यपि वाह्यतः अनुवाद द्वारा प्रदत्त प्रभाव की समस्त शक्तियाँ नगण्य जान पड़ती हैं किन्तु वस्तुतः अनुवाद के माध्यम से इतर साहित्य और भाषा में प्रवेश करने वाली शक्तियाँ अत्यधिक सूक्ष्म और व्यापक हैं। आलोच्यकालीन कोशकार भलीभाँति समझते थे कि अनुवाद एक महत्त्वपूर्ण कला है और विशेष रूप से पुनर्जागरण काल में जब कि हिन्दी साहित्य के विभिन्न उपांगों की श्रीवृद्धि का भरपूर प्रयास जारी था, इन अनुवादों का विशिष्ट स्थान था। सामान्य पाठक के लिये इन अनुवादित कोशों का कोई महत्त्व नहीं, परन्तु वे भूल जाते हैं कि अनुवाद कला को भले ही अब तक उपेक्षित समझा जाता रहा हो, उसका साहित्य में एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। साधारणतः यह महान् कृतियों

को ही नहीं उत्पन्न करता, यह प्रायः महान् कृतियों के निर्माण में प्रेरणा भी प्रदान करता है।[१]

इन अनुवादित कोशों का एक बौद्धिक महत्त्व भी है। कोई भी साहित्य, कोई भी भाषा अथवा कोई भी राष्ट्र स्वतः पूर्ण नहीं है। अतएव यह उपयोगी ही नहीं अपितु अनिवार्य भी था कि हिन्दी शब्दों की श्रीवृद्धि के लिये संस्कृत कोशों का आधार लिया जाता। फिर कलात्मक और भाषा सम्बन्धी अभिवृद्धि के लिये भी अनुवाद-प्रक्रिया परम महत्त्वपूर्ण थी।[२] परिणामतः इन अनुवादित कोशों का महत्त्व अन्य कोशों से किसी भी प्रकार कम नहीं माना जा सकता।

मुख्य रूप से संस्कृत के कोशमणि अमरकोश ने ही हिन्दी कोशों को अनुवाद के लिये सामग्री दी। अमरकोश की संस्कृत में इकतालीस टीकायें[३] देखकर ही सम्भवतः हिन्दी के मध्यकालीन कवियों का ध्यान इस कोश-प्रमुख की ओर आकर्षित हुआ और इसी शैली पर उन्होंने हिन्दी में कोशों का सृजन किया।

वैसे तो द्विभाषीय कोशों के अतिरिक्त अन्य सभी कोशकारों ने अमरकोश को अपना प्रेरक माना परन्तु अनुवाद की दृष्टि से उपलब्ध कोशों में चार ही ऐसे कोश प्राप्त हुये हैं जिनको वास्तव में अमरकोश का भाषान्तर रूप या हिन्दी अनुवाद कहा जा सकता है। ये चार कोश हैं—(१) मियाँ नूरकृत प्रकाशनाममाला, (२) भिखारीदास विरचित नामप्रकाश, (३) हरिचरणदास प्रणीत कर्णाभरण और (४) सुवंश शुक्ल द्वारा निर्मित उमरावकोश।

प्रकाशनाममाला के रचयिता नूर मियाँ ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि उनका कोश संस्कृत के अमरकोश के 'भाय' पर निर्मित है।[४] नन्ददास ने भी अपनी नाममाला को अमरकोश के 'भाय' पर आधारित बताया था परन्तु मियाँ नूर का 'भाय' नन्ददास के 'भाय' से कुछ अधिक भारी है। यह कोश केवल अमरकोश से 'काढ़ि के'[५] ही नहीं बना और न दोनों में अन्तर 'कोश' और 'माला' मात्र का है[६] वरन्

१. हिजेट : दि क्लासिकल ट्रेडीशंस, पृ० १०४।

२. "In the earliest period of civilization, translators have been the agents for propagating knowledge from nation to nation and the value of their labours has been inestimable..."
—पी० एम० राजेट : दि इंटरनेशनल थेसारस, भूमिका, पृ० ९।

३. हरगोविन्द शास्त्री : अमरकोश, मणिप्रभा टीकोपेत, भूमिका, पृ० १०-१७।

४. "अमरकोष के भाय सौं कीने नाम प्रकास" —प्र० ना० मा०, पृ० ३७३।

५. "अमरकोष तें काढ़ि कै कीनी प्रगट सुदाम" —वही, पृ० २६५।

६. तीनि कांड है अमर के या के तीन प्रकासु।
कोस उहै माला यहै, नूर प्रकट कर जासु॥ —वही० पृ० ३७२।

पर्याप्त अंश में यह अमरकोश का अनुवाद माना जा सकता है। भिखारीदास ने 'नाम प्रकाश' के प्रारम्भ में ही 'अनेकों के लिये तिलक'[1] अमरकोश की महत्ता प्रतिपादित की और उसी के अनुकरण पर 'नाम प्रकाश' रचा। इसका दूसरा नाम इसीलिये उन्होंने 'अमरकोश भाषा' या 'अमरतिलक' भी रखा। 'कर्णाभरण' के रचयिता ने यद्यपि कहीं यह स्पष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया कि उन्होंने यह कोश अमरकोश के अनुकरण या अनुसरण पर निर्मित किया परन्तु इसका आधार भी वही है। सुवंश शुक्ल ने 'उमरावकोश' के प्रारम्भ में ही स्पष्ट उल्लेख कर दिया है कि जो लोग संस्कृत नहीं समझ सकते उनके लिये अमरकोश के अनुकरण पर यह उमरावकोश निर्मित किया गया है।[2] यही नहीं, नामों के पर्याय देते समय भी 'अमरकोश का मत' स्थान-स्थान पर उद्धृत किया गया है।[3]

तुलनात्मक विवेचन

उपर्युक्त चारों कोशों पर अमरकोश का प्रभाव वा ऋण का उचित मूल्यांकन करने के लिये निम्न दिशायें निर्धारित की जा सकती हैं—(१) कोशों की सामान्य बाह्य रूपरेखा, (२) शब्दों की संख्या और रूप का ग्रहण वा त्याग, (३) अर्थ वा अन्य उक्तियाँ।

(१) कोशों की सामान्य बाह्य रूपरेखा

बाह्य रूपरेखा से तात्पर्य उस आवरण या नियोजन-पद्धति से है जिसमें समस्त शब्द क्रमबद्ध किये गये हैं। चारों कोश बाह्य रूप से अमरकोश का ही अनुसरण करते हुये काण्ड और वर्ग के आधार पर नियोजित किये गये हैं—चारों कोश तीन काण्डों में विभाजित हैं।

प्रथम दो काण्डों के वर्ग-विभाजन लगभग अमरकोश के आधार पर और उन्हीं नाम शीर्षकों से किये गये हैं। प्रथम काण्ड के दस वर्ग—स्वर्ग, भूमि, व्योम, दिक्, काल, धी, शब्दादि, नाट्य, पातालभोगि, नर्क, और वारि में से केवल सुवंश शुक्ल ने स्वर्ग और पाताल वर्ग में क्रमशः व्योम और नरक वर्ग भी मिला लिये हैं।

तृतीय काण्ड के विशेष्यनिघ्न, संकीर्ण, नानार्थ, अव्यय तथा लिंगादि संग्रह वर्ग में से विशेष्यनिघ्न चारों कोशों में आया है। संकीर्ण वर्ग केवल नामप्रकाश, कर्णा-

---

१. "देखि कै अमरकोष तिलक अनेकनि सौं,
बूझि के बुधन जो सकत शेश सरि कै" —ना० प्र० पृ० १।

२. पढ़ि सकत जे नहिं संस्कृत, तिन हेत भाषा छन्द तें।
लहि अमरकोश कहौं उमगि, उमरावकोश अनन्द तें ॥—उ० को० १।१।३१।

३. गना अविद्या अहंमति, अमरकोश मत मानि ॥ —वही, १।५।७।

भरण और प्रकाशनाममाला में विवेचित है और अनेकार्थ अंश कर्णाभरण को छोड़कर शेष तीनों में वर्णित है परन्तु इस वर्ग में अमरकोश का अनुसरण केवल नाम प्रकाश में किया गया है। अव्यय तथा लिंगादि-संग्रह हिन्दी परिपाटी के अनुकूल न होने के कारण चारों कोशों में छोड़ दिये गये हैं। इस प्रकार तृतीय काण्ड में से इन कोशकारों ने उन्हीं वर्गों को लिया जो हिन्दी में अधिक काम के थे।[१]

अमरकोश के अनुसरण पर निर्मित इन चारों कोशों की काण्ड एवं वर्ग व्यवस्था का सविस्तार तुलनात्मक अध्ययन 'शब्दों का नियोजन' नामक एक अगले अध्याय में किया गया है।

(२) हिन्दी शब्दों के रूप

उपर्युक्त चारों कोशों में संकलित हिन्दी शब्दों के रूप दो प्रकार से आये हैं:—(अ) संस्कृत शब्दों का प्रत्यय-विसर्ग सहित यथावत् अंकन और (आ) संस्कृत शब्दों को हिन्दी प्रवृत्ति के अनुसार रूप देना।

(अ) नामप्रकाश और प्रकाशनाममाला में अमरकोश में संकलित कुछ शब्दों को बिलकुल जैसे का तैसा रख दिया गया है। संस्कृत में विसर्ग-संधि से बने ओकारन्त शब्द भी इन कोशों में इसी रूप से अंकित किये गये हैं—यथा अन्तरिक्षो, विष्णुपदो[२] पुष्परसो, सुमनरजो,[३] सभासदो, सभ्यको, समाजिको।[४] प्रकाशनाममाला में अमरकोश से शब्द ग्रहण करते समय उनके विसर्ग तक को नहीं छोड़ा गया है, उदाहरण के लिये अन्तर्गतः,[५] संगूढ़, निधः,[६] अमृतांधसः,[७] हुतभुजः, उषर्बुधः,[८] कंकटः, सस्त्राजीवः मुधिकः, पुरस्सरः[९]। इसी प्रकार स्थान-स्थान पर संस्कृत के अनुस्वार वाले शब्दों को कई बार उसी रूप में रख दिया है जो हिन्दी की प्रवृत्ति के विपरीत पड़ता है जैसे—'बहुमूल्यं सु महा धनं',[१०] 'प्रावृतं सु सोई निवीतं'[११] आदि स्थल इसी प्रकार के हैं। कर्णाभरण और उमरावकोश में ऐसे स्थल बहुत कम आये हैं।

(आ) चारों कोशकार इस तथ्य से भलीभाँति विज्ञ थे कि वे अमरकोश का अनुवाद तो कर रहे हैं, परन्तु भाषाभाषियों के लिये। अतएव अमरकोश के अधिकांश

---

१. **अर तीसरे काण्ड में, आठ (?) वर्ग को देखि।
चारि वर्ग भाषा विषे, आवत काज विशेषि॥**
+ + +
**लिंग भेद भाषा विषे, बिन कारज को पेखि।
ताते छोड्यो चाहिये, स्वार्थ रहित को देखि॥ —अमरकोश भाषा (शिवसिंह कायस्थ), खो० वि० (१९२३-२५, द्वितीय भाग), पृ० १३६८।**

२. ना० प्र० पृ० १५। ३. वही, पृ० ८३। ४. वही, पृ० १७५।
५. प्र० ना० मा०, पृ० ३६४। ६. वही, पृ० ३६५। ७. वही, पृ० २६०।
८. वही, पृ० २७०। ९. वही, पृ० ३३३। १०. वही, पृ० ३१७।
११. वही, पृ० ३१७।

शब्द हिन्दी की प्रवृत्ति में ढल कर आये हैं—संस्कृत के शब्दरूप भाषा (हिन्दी) की वर्त्तनी में लिखे गये हैं। भिखारीदास ने अपने कोशग्रंथ नामप्रकाश में स्पष्ट उल्लेख कर दिया था कि 'भाषा' में कोशग्रंथ रचने के उद्देश्य से उन्होंने कुछ अक्षरों के सम्बन्ध में अधिक 'विवेक' न किया।[1] संस्कृत शब्दों को 'भाषा' में लिखते समय सभी अनुवादकों ने यथास्थान 'य' का 'ज', 'ऋ' का 'रि', 'श' का 'स', 'ष' का 'ख', 'क्ष' का 'छ', 'ण' का 'न', 'ज्ञ' का 'ग्य', 'व' का 'ब' कर दिया है। इसके अतिरिक्त स्थल-विशेष पर आगम और लोप आदि का भी आश्रय लिया गया है। शब्दों के रूप विकृत करने में छन्दों के आग्रह ने यथासम्भव कार्यशीलता दिखाई है।

अमरकोश के उपर्युक्त वर्णित वर्गों के अन्तर्गत संकलित सभी शब्द प्रायः चारों कोशों में आ गये हैं। यहाँ तक कि कुछ मात्रा में भाषा में नितान्त अप्रचलित संस्कृत शब्दों को भी इन कोशकारों ने संकलित कर दिया है। 'कर्णाभरण' के रचयिता ने इस दिशा में अपेक्षाकृत संयमित और उदार दृष्टिकोण अपनाया। अमरकोश के ऐसे शब्दों को जो हिन्दी के लिये उपयुक्त न थे, उन्होंने त्याग दिया और साथ ही अन्य कोशों से भी शब्द-संकलन किया। फिर भी चारों कोशकारों द्वारा अमरकोश से प्रायः सभी शब्द लेने की व्यवस्था को दोषपूर्ण नहीं कहा जा सकता, क्योंकि यह हिन्दी का प्रारम्भिक युग था जिसमें दृष्टि की यह उदारता वांछनीय भी थी।

(३) अर्थ या अन्य उक्तियाँ

काण्ड तथा वर्गविभाजन और शब्द संकलन ही नहीं, आवश्यकतानुसार शब्दों के अर्थ एवं तत्सम्बन्धी अन्य उक्तियों को भी इन चारों कोशों में स्थान-स्थान पर रूपान्तरित कर दिया गया है। उदाहरण के लिये अमरकोश में एक पंक्ति है :

राजहंसास्तु ते चंबुचरणैर्लोहितैः सिताः—अ० को० २।५।२४।

इस पंक्ति का अनुवाद चारों कोशों में इस प्रकार दिया गया है :

हंस मराल बखानिये, चुंच चरन अति स्याम। —प्र० ना० मा०, पृ० ३०६।

\+ + + +

राजहंस है एकै सोइ। चरन चोंचु जिहि रातुल होइ। —ना० प्रा०, पृ० १२९।

\+ + + +

राजहंस सित होय बरन अरु चंचु लाल लस। —कर्णा०, पृ० २८ मू०।

---

१. य ज रि ऋ स श ष ख छ क्ष न ण ग्य ज्ञ ठान्यो एक।
भाषा बर्नन बूझि कै कियौ न एक बिवेक ॥

—ना० प्र०, पृ० २।

\+ \+ \+ \+

लाल चोंच अरु चरन है, औ सब स्वैत सुजान।
राजहंस ताको कहत, औरो बकत प्रमान ॥ —उ० को०, २।५।३७।

इसी प्रकार अन्य कई स्थलों पर भी ऐसी साम्यता मिल जाती है।

अमरकोश से भिन्नताएँ

पर्याय या अनेकार्थ दिये जाने वाले प्रत्येक शब्द का नाम शीर्षक चारों कोशों में दिया गया है। छन्द एक ही नहीं, अनेकानेक हैं। कुल पर्याय शब्दों की छन्द के अन्त में गणना कर दी गई है। 'अनेकार्थ वर्ग' का अनुकरण केवल नामप्रकाश ने किया, कर्णाभिरण में अनेकार्थ हैं ही नहीं, और प्रकाशनाममाला तथा उमरावकोश ने अनेकार्थ-वर्ग के लिये अमरकोश का किंचिन्मात्र भी आधार नहीं लिया। अमरकोश की लिंग-द्योतन पद्धति चारों कोशों ने त्याग दी है। इन सब के अतिरिक्त चारों कोशों में अमर-कोश की अपेक्षा व्यर्थ के शब्द वा प्रसंग अपेक्षाकृत अधिक संख्या में आये हैं।

इन सब प्रसंगों का सविस्तार वर्णन आगे शब्द-नियोजन शीर्षक अध्याय में किया गया है।

अमरकोश के अतिरिक्त शब्द

उपर्युक्त अनुच्छेद में वर्णित भिन्नताओं के अतिरिक्त इन चारों कोशों में इस प्रकार के शब्द भी अत्यधिक संख्या में संकलित हैं जो अमरकोश में नहीं मिलते। अगले पृष्ठों में विवेच्य चारों कोशों के कुछ ऐसे शब्द अकारादिक्रम से उद्धृत किये गये हैं।

(१) **प्रकाशनाममाला**—यद्यपि मियाँ नूर ने प्रस्तुत कोश को अमरकोश के ही अनुकरण पर निर्मित बताया फिर भी उन्होंने अपनी दृष्टि पूर्णरूपेण विस्तृत रखी है। 'अनेकार्थ वर्ग' तथा 'एकाक्षर अव्यय' तो नितान्त भिन्न हैं ही, अमरकोश के अनुवाद वाले अंशों में भी कोशकार ने अन्य कोशों, साहित्यिक ग्रंथों वा सामान्य बोलचाल के शब्दों को संकलित किया है। तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो आलोच्य चारों कोशों में अमरकोश से भिन्न शब्दों की संख्या प्रकाशनाममाला में सबसे अधिक है। इस प्रकार के कुछ शब्द द्रष्टव्य हैं। कोष्टकों में पृष्ठ संख्या निर्दिष्ट है :—

अंबया (पृ० २८२), अंबिका (पृ० २६८), अंबुज (पृ० २९४), अंबुश्रन (पृ० २९०), आख्याह (पृ० २८१), आगमंतु (पृ० ३३०), आगम (पृ० २८०), आरीलिक (पृ० ३३९), उंदरू (पृ० ३०५), उदभिद (पृ० ३००), उदस्वित (पृ० ३४२), उदांत (पृ० ३३१), ककूदर (पृ० ३१३), कप्पर (पृ० ३१३), कबंध (पृ० ४३६), गंड (३२५), गंडक (पृ० ३१०), गंडसिला (पृ० २९९), घनवास (पृ० ३६५),

चिरीमार (पृ० ३५०), चीता (३०४), टंक (३५२), टंकना (३१३), दासरथि (३२७), दीपसुत (३२०), दुंदभी (२८४), दुःकृत (२७७), दुरेषणा (२८२), दुर्नाद (२७१), दुर्व्रण (३४६). धन (२३४), धनपति (३७२), धनिया (३४०), नतुनासिक (३११), पंकज (२९४), पदवी (२९६), पदाग्रम (३१३), पदातिक (३३३), पदिक (३३३), मंडत (३१६), मघाशव: (३५३), यज्ञव्रती (३२२), रक्तदृग (३०५), रक्तसंध्य (२९३), सुरामंड (२५३), सुराट (२६८), हव्य (३२३)।

(२) **नामप्रकाश**—प्रकाशनाममाला की ही भाँति नामप्रकाश में भी ऐसे शब्द पर्याप्त मात्रा में आये हैं जिनका संकलन अमरकोश में नहीं किया गया है। फिर भी दोनों कोशों का दृष्टिकोण और आधार इन अतिरिक्त शब्दों के संकलन के विषय में भिन्न-भिन्न रहा है। मियाँ नूर ने इन शब्दों के लिये प्रकाशनाममाला में अमरकोश के अतिरिक्त अन्य संस्कृत कोश या साहित्यिक ग्रंथों का आश्रय अधिक लिया परन्तु नामप्रकाश के रचयिता भिखारीदास ने 'भाषा' के शब्दों पर ही अपनी दृष्टि जमा कर रखी। उन्होंने ग्रंथारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया कि अमरकोश के संस्कृत नामों के अतिरिक्त नामप्रकाश में 'भाषा (हिन्दी) ग्रंथों' से भी पर्याप्त मात्रा में शब्द लिये गये हैं।

कोष्टकों में पृष्ठांकन सहित नीचे अमरकोश में न मिलने वाले कुछ शब्द उद्धरण रूप में प्रस्तुत हैं :

अंगनई (पृ० ७५), अंगेठी (२२६), अंटारी (७५), अंध्यारों (५३), अहीर (७७), आँखि (१५९), आंम (८७), आक (९९), इंगुवा (९०), एरंड (९२), ओक (७३), औधोमुख (२७०), कंकई (१०८), करछी (२२७), कछुवा (९०), काँटा (३५६), काँडी (२२४), काँदु (२३५), कानु (१५९), कुंदरू (११४), कुढ़नि (५०), कौडिआरा (१११), खलायंतो (३५६), खिरकी (७५), खोंटर (८२), गवन (२१३), गाड़ (५३), गाँड़र (१२१), गूलरि (८४), गूंगा (२७३), गोंड़ा (७७), गोंफा (८३), गोहराइवो (३७), घर (७३), घूरी (२१३), घोड़ी (२००), चाला (२१३), चिचिढ़ा (११८), चिनगी (१२), चिरांयता (११५), चुकरेड (५४), चुल्हि (२२५), चुहुला (५९), चौराहा (७२), छकड़ा (२०१), छप्पर (७६), जलकिनका (१८), जलबेंत (८६), जामुन (८४), झरना (७९), झाऊ (८९), झारू (५६), टेर (३७), ढलहा (२०६), ढाख (८५), ढोल (२१६), तिधारा (१०५), तूत (८९), थरथरी (५३), धवई (११०), धाम (६३), धोबी (२५०), नाऊ (२५०), नारंगी (८८), नियर (२७९), नेवाला (२३५), नेह (५७), नैनु (२७२), न्यावदेखैया (१७५), पखावज (४३), परई (२२६),

पहार (७८), पाथर (७८), पुकार (३७), पैंडो (७०), प्रान (२१८), फरसा (२१२), बंदी (२१८), बयारि (१३), बरिस (२८), बरोठो (७६), बारू (७२), बावलि (६४), बुलबुल (१६९), बैहरि (१३), व्यवहरिया (२२०), भांटा (१०७), भांडो (२२७), भुजा (१५६), भूखा (२६५), भाटी (६९), राति (३४), रिस (४९), रीठी (८७), लसोढ़ा (८८), लालची (२६६), सनेह (५०), सीसो (९४), सेंहुड़ (१०५), सोंठि (२२८), सौरीघर (७४), सौह (२२८), हरै (२३), हाड़ (१५३), हिजरा (१८९)।

(३) **कर्णाभरण**—हरिचरणदास ने अपने 'कर्णाभरण' कोशग्रंथ में शब्दों का संकलन विस्तृत पृष्ठभूमि पर आधारित रखा है। अमरकोश के अतिरिक्त प्रस्तुत कोश में अत्यधिक मात्रा में शब्दों को समाहृत किया गया है। परन्तु इस दृष्टि से अन्य कोश एवं कर्णाभरण में अन्तर इतना है कि कर्णाभरण के प्रणेता ने 'भाषा' के शब्दों पर कम और संस्कृत के अन्य कोशों से अधिक सहायता ली। टीका अंश में तो प्रायः अमरकोश में न मिलने वाले शब्द ही अधिकांशतः संकलित किये गये हैं। स्थान-स्थान पर देश विशेष, दिशा विशेष, कोश वा टीकाकार या साहित्यिक ग्रंथों का भी उल्लेख है जिससे शब्द लिया गया है। कुछ ऐसे शब्द[1] दृष्टव्य हैं, जो अमरकोश में नहीं मिलते :

अंधि (पृ० २४ पीठ), अंभ (१९ मूल), आलीन (३७ मू०), उकनाह (३७ मू०), उदघट (५२ पी०), कचनार (२५ मू०), कदर्ज (४६ मू०), कन (४७ मू०), कबंध (१९ मू०), गंड—हाथी के गाल के लिये (३२ मू०), गंड—गाल के लिये (३६ मू०), चीरिका (२८ मू०), चील्हहि (२७ मू०), टंक (४४ मू०), टहल (२४ पी०), टाँकी (४४ मू०), त्रिजूह (३७ मू०), त्रिदिवपति (५ पी०), दसन—कवचके लिये (३८ मू०), दीर्घजीव (४१ पी०), दीर्घदसी—पंडित (३४ मू०), दुर्गल—ऊँट (४१ पी०), पदतिग—पैदल सेना (३८ मू०), भ्रत्कुटि (१७ पी०), यस्मर—खाने वाला (४५ पी०), सुरोद—समुद्र (१९ मू०)।

(४) **उमरावकोश**—सुवंश शुक्लकृत उमरावकोश में अमरकोश के अलावा अपेक्षाकृत कम शब्द आये हैं। फिर भी पर्याय दिये जाने वाले शब्द का भाषा में नाम प्रायः प्रत्येक स्थल पर दिया गया है। 'बनौषधि वर्ग' में प्रत्येक नाम के साथ भाषा में प्रचलित नाम भी संकलित है। तृतीय कांड के 'अनेकार्थवर्ग' में तो अमरकोश के अलावा शब्द आये ही हैं, अन्य अंश में भी स्थान-स्थान पर भाषा के प्रचलित शब्द संकलित कर

---

१. कोष्टकों में शब्दों के प्रसंग, ह० लि० ग्रंथ कर्णाभरण के पत्रों से प्रस्तुत हैं।

लिये गये हैं। उदाहरणस्वरूप निम्नलिखित शब्द द्रष्टव्य हैं, जिनकी कांड, वर्ग एवं छन्द संख्या कोष्टकों में अंकित है:

अंसुवा (२।६।१४६), अकोहर (२।४।४६), अमरूत (२।४।४३), अरसी (२।९।३८), इंगुवा (२।४।७८), ईंधन (२।३।३१), ऊँट (२।९।१४८), ऐना (२।६।२१७), कपिल[1] (१।२।२८), कार (१।५।१५), किसान (२।९।१२), कुत्ता (२।१०।३१), कुबरा (२।६।६९), केंचुवा (१।९।२९), कोदो (२।९।३२), कौवा (२।५।३२), खिरकी (२।१०।२०), खीर (२।७।३५), घर (२।२।२), घरिआर (१।९।२७), घुँघरू (२।६।१७६), छिउल (२।३।१४७), जजमान (२।७।११), जाँघ (२।६।११५), ढाल (२।८।११५), तकिया (२।६।२१५), तरवारि (२।८।१५४), थाल्हा (१।९।३५), धूम्रकेतु (१।२।२८), नाक (२।६।१४०), निबुआ (२।४।३८), पंखा (२।६।२१८), पंगति (२।३।६), पाइ (२।६।११२), पिआस (२।९।११०), पूँछ (२।८।८६), बच्चा (२।५।५६), बढ़ई (२।१०।१६), बहिनि (२।६।४०), बाघ (२।५।२), भात (२।९।९६), भैंसा (२।५।७), मजूर (२।१०।२५), माटी (२।१।२), मुख (२।६।१३९), मुगरा(२।८।१५६), मुरगा (२।५।२७), म्यलांवा (२।३।७२), रार (२।६।२०१), लज्या (१।७।२६), लिंग (२।६।१२०), लोभी (३।१।४०), सिआर (२।५।८), सुअर (२।५।३), सुख (१।४।२४), सुमुख (१।२।२७), हथियार (२।८।१३९), हरकारा (२।८।२०)।

एक तुलनात्मक उदाहरण

अमरकोश एवं उससे प्रभावित चारों हिन्दी कोशों की इस पृष्ठभूमि के अनंतर इनके पारस्परिक सम्बन्ध वा ग्रहण-त्याग प्रवृत्ति का यथावत् मूल्यांकन करने के लिये नीचे मूल अमरकोश से 'गणेश' शब्द के पर्याय उद्धृत कर उसके चारों हिन्दी कोशों में अनुवादित वा अनुसरित रूप प्रस्तुत किये गये हैं:

अमरकोश (१।१।३८)

विनायको विघ्नराजद्वैमातुरगणाधिपाः।
अप्येकदन्तहेरम्ब लम्बोदरगजाननाः॥

टिप्पणीः—इसमें गणेश के आठ पर्याय बताये गये हैं—विनायकः, विघ्नराजः, द्वैमातुरः, गणाधिपः, एकदन्तः, हेरम्बः, लम्बोदरः, और गजाननः। समस्त शब्द पुँलिंग हैं, छन्द-पूर्ति के लिये केवल 'अपि' आया है।

---

१. **अमरकोश में कपिल शब्द आया है (१।५।५६) परन्तु वहाँ यह शब्द भूरे रंग का पर्याय है। परन्तु उमरावकोश में 'कपिल' गणेश के लिये आया है।**

प्रकाशनाममाला (पृ० २६८)

गणेश नामः

विन्नायक सु गणाधिप, द्वैमातुर एकदंत ।
लंबोदर हेरंब पुनि, गनपति गिरिजातंत ।।
मूषकबाहन शिवतनय, कहै गजानन ताहि ।
फरस पानि सु गनेश हैं, बिघ्न बिनाशन आहि ।।

टिप्पणी:—प्रस्तुत दोहों में गणेश के चौदह पर्याय गिनाये गये हैं जिनमें अमरकोश के 'विघ्नराज' को छोड़कर अन्य सात नाम तो आये ही हैं गणपति, गिरिजातंत (?), मूषकवाहन, शिवतनय, फरसपानि, गनेश एवं विघ्नविनाशन ये सात अन्य नाम भी संकलित कर लिये गये हैं, जो अमरकोश में नहीं हैं। संस्कृत शब्दों का क्रम छन्द के आग्रह से परिवर्तित हो गया है और शब्दों का हिन्दीकरण भी उचित ही है, "विन्नायक" छन्द के आग्रह से हुआ है। सु, पुनि, कहै, ताहि, सु, है, आहि शब्द मात्रापूर्ति के आग्रह वश लाये गये हैं। विवेच्य शब्द का शीर्षक दिया गया है और अन्त में कुल नाम पर्यायों का परिगणन नहीं है।

नाम प्रकाश (पृ० ९)

।। गंणेश के नाम ।। दुर्मिला छन्द ।।

हेरंब विनायक औ गणनायक द्वैमातुर गजबदन कही ।
सुनि विघ्नराज पुनि लंबोदर गनि एकदंत गुरु आदि वही ।
शुभ करन कपिल गहि भालचन्द लहि गौरिनन्द गजकरन सही ।
त्रय नेत्र सुमुख अरु बक्रतुण्ड बर वोनइस नाम गणेश यही ।।

टिप्पणी—उपर्युक्त छन्द में गणेश के उन्नीस पर्याय संकलित किये गये हैं जिनमें अमरकोश के गणाधिप और गजानन को छोड़कर अन्य छः पर्याय तो आये ही हैं, इनके अतिरिक्त गणनायक, गजबदन, गुरु-आदि, शुभकरन, कपिल, भालचन्द, गौरिनन्द, गजकरन, त्रयनेत्र, सुमुख, बक्रतुण्ड, बर, गणेश—ये तेरह नाम पर्याय अमरकोश में नहीं मिलते, किसी अन्य स्रोत से संकलित किये गये हैं। औ, कही, सुनि, पुनि, गनि, वही, गहि, लहि, सही, अरु, वोनइस नाम, यही—शब्द छन्द पूर्ति और स्पष्टता के लिये आये हैं। शब्द रूप सभी हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार हैं, शीर्षक और कुल शब्दों की गणना दृष्टव्य है।

कर्णाभरण (पृ० ५ मूल)

(मूल)

\+ \+ \+ \+

अब कहौ नाम सु गनेस कौ विघ्नराज १ यह श्रवनप्रिय २ ।।२१।।

द्वैमातुर ३ गजवदन ४ गनाधिप ५ औ लंबोदर ६
एकदन्त ७ हेरम्ब ८ औरि सु विनायक ९ सुरवर

\+ + + +

(टीका)

"......गनेस और विघ्नराज या छप्पै मै (जिसकी अंतिम पंक्ति मात्र ऊपर निर्दिष्ट है)।।२१।। द्वैमातुर इति ।। द्वैमातुर से ले कैं विनायक ताईं सात नाम गणेस के या छप्पै में कहै। गनिपति १ गनाधीस २ गननायक ३ करिमुख १ ऊंभवदन २ कर्जानन ३ उंभिलयन (?) गज वाचक आगें जोग करनो एक कैं आगें दंत वाचक लगावै (यथा) एकरदन १ एक दसन २ आदि...।"

टिप्पणी—उपर्युक्त दो छप्पय की तीन पंक्तियों तथा उन्हीं अंशों के टीका-भाग में अमरकोश के 'गजानन' को छोड़कर अन्य सात शब्द तो आये ही हैं, अमरकोश के अतिरिक्त श्रवनप्रिय, गजवदन, गनिपति, गनाधीस, गननायक, करिमुख, ऊंभवदन, कर्जानन—ये आठ शब्द भी संकलित हैं। यही नहीं, गणेश के अन्य पर्याय बनाने का नियम भी निर्दिष्ट कर दिया है—गजवाचक पर्याय के साथ मुखवाचक का योग करने से तथा एक के आगे दंतवाचक पर्याय लगाने से गणेश के समानार्थी शब्द बन जाते हैं। पर्याय कथन का संकेत अलग शीर्षक से नहीं, छन्द में ही किया गया है। पर्यायों की स्पष्टता के लिये प्रत्येक के आगे क्रम चिह्न अंकित हैं। टीका में व्यवहृत तत्कालीन गद्य शैली दृष्टव्य है। 'ण' का 'न' तथा 'श' का 'स' भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार हुआ है।

उमरावकोश (१।२।२७–२८)

।। गणेश नाम ।। दोहा ।।

द्वैमातुर हेरम्ब गनि एकदन्त गणनाथ ।
सुमुष गजानन कपिल पुनि लंबोदर गुणगाथ ।।
हरज विनायक करिकरन धूम्रकेतु जिय जानि ।
द्वादश नाम गणेश के कहे सुवंश बखानि ।।

टिप्पणी—उपर्युक्त दोनों दोहों में अमरकोश के अन्तर्गत आये पर्यायों में से विघ्नराज तथा गणाधिप को छोड़कर अन्य शेष तो आये ही हैं, इनके अतिरिक्त गणनाथ, सुमुख, कपिल, हरज, करिकरन, धूम्रकेतु, —ये छः नाम अन्य स्त्रोत से संगृहीत हैं। गणेश तथा गुणनाथ को भी पर्याय मान लिया जाय तो कुल संख्या बारह के स्थान पर चौदह हो जाती है। शब्दों का हिन्दीकरण तथा कुल पर्यायों का

अन्त में परिगणन दृष्टव्य है। गनि, पुनि, जिय जानि तथा अंतिम पंक्ति केवल मात्र छन्द पूर्ति के लिये है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त अनुच्छेदों में एक छोटे से संक्षिप्त दृष्टान्त को लेकर अमरकोश से प्रभावित चारों हिन्दी कोशों को आँकने का प्रयास किया गया है। इस अत्यल्प पर्याय वाले शब्द के सम्बन्ध में भी विभिन्न कोशकारों ने अमरकोश को आधार बनाकर उसमें संकलित अधिकांश शब्दों को तो ग्रहण किया ही, साथ में अपना विवेक एवं अन्य पूर्ववर्ती हिन्दी या संस्कृत के कोशों से भी पर्याप्त सहायता ली। चारों कोशों में समग्र रूप से अमरकोश के अतिरिक्त संकलित किये गये शब्दों के स्रोत संस्कृत के अन्य कोश एवं व्यक्तिगत ज्ञान वा विचारणा है। सभी आधारों वा दिशाओं को ध्यान में रखते हुये इन चारों कोशों को विशुद्ध रूप से अनुवादित कोश नहीं कहा जा सकता। हाँ, अमरकोश का अनुकरण वा अनुसरण इन्होंने अवश्य किया।

समानार्थी एवं अनुवादित कोश

जैसे पहले ही बताया जा चुका है कि अनुवादित कोश भी—इनके अन्तर्गत वर्णित अनेकार्थी अंश को छोड़कर—समानार्थी कोश ही हैं; अन्तर केवल इतना है कि (१) अनुवादित कोशों में वर्ग तथा काण्ड-व्यवस्था है और समानार्थी कोशों में नहीं, (२) अनुवादित कोश आकार में बड़े हैं, और अन्य समानार्थी अत्यन्त लघु (३) अनुवादित कोशों में अमरकोश के प्रायः समस्त पर्यायों के अतिरिक्त अन्य संस्कृत कोश, भाषा ग्रंथ तथा बोलचाल के शब्द भी संकलित किये गये हैं जिसके कारण उनमें अधिक पूर्णता और उपादेयता आ गई परन्तु अन्य कोशों में ऐसा नहीं है। गरीबदास विरचित 'अनभै प्रबोध' तथा 'नाममाला' 'ग' तो सामान्य पाठक के लिये तनिक भी लाभप्रद नहीं। चेतनविजयकृत कोश में आत्मबोध के लिये कुछ शिक्षायें भी प्रस्तुत की गई हैं जो अन्य कोशों में नहीं है। भरती के शब्द तथा विवेच्य शब्दों के शीर्षक सभी कोशों में एक से हैं। अनभै प्रबोध तथा नाममाला 'ग' के अतिरिक्त सभी में पर्याय भी प्रायः एक से ही हैं।

मानमाला

उपलब्ध कोशों में नन्ददासकृत नाममाला, बद्रीदास द्वारा विरचित मान-मंजरी नाममाला तथा नाममाला 'ख' का दूसरा नाम 'मानमाला' भी है। इनको मानमाला कहने का एक विशेष कारण है। इन तीनों नाममालाओं में नायिका (राधा?) का मान प्रसंग भी संगुम्फित किया गया है। दोहे की प्रथम पंक्ति में शब्दों के पर्याय हैं, और दूसरी पंक्ति में मान सम्बन्धी उक्तियाँ। इस मानकथा का कोई दृढ़ तथा

सुसम्बद्ध आधार नहीं है फिर भी कोश जैसे शुष्क विषय में रोचकता लाने का यह प्रयास श्लाघनीय है। संस्कृत में इस प्रकार की मानमालाओं की परंपरा नहीं मिलती।

(१) **नन्ददास की नाममाला**—इस नाममाला का दूसरा नाम 'मानमंजरी' या 'मानमाला' भी मिलता है। कोश ग्रंथ में वर्णित मानकथा की ओर तीसरा दोहा इंगित करता है :

गूँथनि माला नाम की, अमरकोस के भाइ।
मानवती के मान पर, मिलैं अर्थ सब आइ ॥[१]

अर्थात् प्रस्तुत कोश में नामों की माला अमरकोश के अनुकरण पर (पर्यायवाची शैली में) गूँथी गई है। परन्तु अधिक स्पष्टता के लिये यदि इस कोश में निहित मान-कथा को भी भली प्रकार समझ लिया जाय तो अर्थ अधिक स्पष्ट हो सकते हैं। कोश का प्रथम शब्द 'मान' ही है जिसके पर्याय देने के अनन्तर कोशकार ने मंगलाचरण के रूप में कहा है कि 'राधिका कुंवरि' का मान सबका कल्याण करे :

मान नाम

अहंकार मद दर्प पुनि, गर्व स्मय अभिमान।
मान राधिका कुंवरि कौ, सबकौ करत कल्यान।[२]

इसके अनंतर प्रत्येक दोहे की द्वितीय पंक्ति या जहाँ दो या दो से अधिक दोहे हैं उनके अंतिम दोहे को लेने से मान लीला का पूर्ण वर्णन स्पष्ट हो जाता है। राधिका जी के मान करने पर :

अली कुंअरि वृषभान की चली मनावन ताहि।[३]

\+ \+ \+ \+

मति सौं मतौ जु करि चली, भली विचच्छन तीय।[४]

\+ \+ \+ \+

भवन भूप वृषभान के गई सहचरी जान।[५]

मानिनी राधिका के पिता वृषभानु के समस्त ऐश्वर्यों का वर्णन करने के उपरान्त मालाकार के कथनानुसार 'सहचरी' की समझ में यह न आया कि वह राधिका तक कैसे पहुँचे और कृष्ण का संदेश कैसे सुनाये :

चित में सोचत सहचरी, भीतर कैसे जाऊँ।[६]

---

१. ना० मा०, नन्द०, पंक्ति ५-६।
२. वही, पंक्ति ७-८।
३. वही, पंक्ति १०।
४. वही, पंक्ति १२।
५. वही, पंक्ति १८।
६. वही, पंक्ति २६।

और अंत में :

सौध हर्म्य प्रासाद तैं, चली जु तिय गति मंद ।
सोभित मुख जनु गगन है, अवनी उतरत चंद ॥[१]

मार्ग में चलते हुये अनेक वृक्ष पुष्प आदि को लेकर व्यंग्य करती हुई सखी उसे संकेत स्थान पर ले जाती है तथा :

यौं राधा माधव मिले, परम प्रेम रस पाइ ।[२]

\+ + + +

जुगल किशोर सदा बसौ "नंददास" के हीय ॥[३]

यही मानकथा प्रस्तुत 'नाममाला' में गूँथी गई है ।

(२) **बद्रीदास की मानमंजरी**

नामों की माला के साथ मानकथा को पिरोने वाले कोशों में दूसरा कोश बद्रीदास की 'मानमंजरी' है। कोशकार के आरम्भिक ववतव्य के अनुसार यद्यपि प्रस्तुत कोश में नाम और उनके अर्थ अमरकोश के अनुकरण पर हैं, नथापि राधिका के मान छोड़ने या छुड़वाने की कथा भी इसमें सम्बद्ध है :

बहु बिधि नांम निहारि, अरथ अमरजु कोश कैं ।
सरब समाउ बिचारि, मांन छड़ावति राधिका ॥[४]

इस उद्देश्य के फलस्वरूप मानमंजरी के प्रत्येक सोरठे की प्रथम पंक्ति में अमरकोश के अनुकरण पर शब्दों के पर्याय छन्दबद्ध हैं, और द्वितीय पंक्ति में इस मानकथा का प्रच्छन्न रूप चलता रहता है । हरि की प्रिया मान करती है तो एक 'हितू' सखी प्रिया को मनाने चलती है—वह जानती है कि कृष्ण बहुत आतुर हैं, अतएव उसने शीघ्र ही वृषभानु के घर जाने का कार्यक्रम बनाया :

हरी की हितू जो होय, सखी मानावन को चली ।[५]

\+ + + +

सखी तुरत चली तास, कृष्ण देखि आतुर जहाँ ।[६]

\+ + + +

तहाँ भवन सुख देत, पहुँची सखि वृषभान घर ।[७]

---

१. ना० मा०, नन्द०, पंक्ति ४२३-२४ ।
२. वही, पंक्ति ५२४ ।
३. वही, पंक्ति ५२८ ।
४. मानमंजरी, छन्द २ ।
५. वही, छन्द ४ ।
६. वही, छन्द ७ ।
७. वही, छन्द ८ ।

'बड़राजा वृषभान' के समस्त ऐश्वर्यों को देखती हुई सखी आँखों में लोपांजन दिये सीढ़ी से वहाँ पहुँची जहाँ राधा अपनी माँ के पास बैठी थी :

मंगल सदन सुहात, राधे की बैठी मया।[१]

+ + + +

अली चलि गई ताहि, जित वृखभानहु की सुता।[२]

इसके पश्चात् कई सोरठों में मानिनी की मानजन्य अवस्था का वर्णन किया गया है। सखी ने मानिनी नायिका को समझाना प्रारंभ किया :

रतिपति सौं रूठत नहीं, जौ रूठति सुख हानि करि।
तुम कूं यूं बलि देखि हौं, 'बद्री' बीनति चालि ढरि।।[३]

+ + + +

प्रनपति तो सी भाम, देखी और न को कहूँ।[४]

+ + + +

प्यारे प्रीतम स्याम, तिन सौ मांन न कीजिये।[५]

कृष्ण की आतुरता का चित्रण करते हुये सखी नायिका को संकेत स्थल पर शीघ्र कृष्ण से मिलने को प्रेरित करती है :

उनमें 'बद्री' धकधकी मिटी न अब लौं तब भई।[६]

+ + + +

हरि तुम जामिनी जात, सरद सुहाई पिय मिलो।[७]

+ + + +

मुकट धरे नहिं माथ, मारग तेरो देखिये।[८]

मानिनी नायिका को इस प्रकार विभिन्न पद्धतियों से समझाने का क्रम चलता रहता है। एक ओर नायिका के रूप-गुण की प्रशंसा की गई है तो दूसरी ओर आतुर नायक की प्रेमाकुल आतुरता का चित्रण कर नायिका के पाषाण हृदय को द्रवीभूत करने का प्रयास भी दिखाया गया है। अन्ततः सखी अपने सत्प्रयास में सफल हुई और नायक तथा नायिका एक दूसरे के समीप पहुँच कर 'युगल' हो जाते हैं :

चलि बलि आये सोय पिय प्यारे अति ही निकट।[९]

+ + + +

नित ही किसोर जुगल, समरन 'बद्रीदास' के।[१०]

---

१. मानमंजरी, छन्द ३७।
२. वही, छन्द ४०।
३. वही, छन्द ८६।
४. वही, छन्द ८७।
५. वही, छन्द ९०।
६. वही, छन्द १२६।
७. वही, छन्द १३४।
८. वही, छन्द १४२।
९. वही, छन्द २७२।
१०. वही, छन्द २१३।

(३) **नाममाला 'ख'**—प्रस्तुत नाममाला के प्रथम ११४ दोहे उपलब्ध नहीं हुए हैं। अतएव इस नाममाला में मान प्रसंग का आरम्भिक स्वरूप क्या था, इसके सम्बन्ध में कुछ निश्चित धारणा नहीं बनाई जा सकती। प्राप्त अंश में सखी मानिनी नायिका के रूप-गुण की प्रशंसा करते हुये उससे प्रार्थना करती है कि वह मान त्याग दे, हलधर के बीर को न छोड़े :

प्रिय के तोसी प्रणयिनी, और न देखी कोय।[1]

\+ + + +

हरि सें प्रीतम सों कुंवरि, न करि अकारन मान।[2]

\+ + + +

तिहि हलधर के बीर को, किती छुड़ाई देति।[3]

\+ + + +

अनेक प्रकार की पौराणिक कथाओं का उल्लेख कर नायक कृष्ण की महत्ता को समझाते हुए सखी उस 'बड़भाग' मानिनी से पूछती है कि ऐसे महान् व्यक्ति के लिये तेरा वह भूतपूर्व अगाध प्रेम पल भर में कहाँ अन्तर्धान हो गया :

कित गो तेरौ प्रेम, वह हे भामिनी बड़ भाग।[4]

संध्या हो गई है। नायक से मिलने का उपयुक्त समय आ पहुँचा इसलिये हे मानिनी रस में बिरस न घोल, तेरी बलि जाऊँ, शीघ्रता कर :

सांझ परी है छोंल अब, छांड़ि रोष करि तोष।[5]

\+ + + +

रस में बिरस न घोरि बल, चलि अब न करि अबार॥[6]

सखी का प्रयास जारी है। वह नायिका से कहती है कि तेरे प्रिय यमुना के किनारे वृक्षों के नीचे बैठे पता नहीं कब से तड़प रहे हैं और तेरी प्रतीक्षा में रत हैं, इस प्रकार उनको कष्ट मत दे, क्यों रुष्ट हुए बैठी है :

नदि कालिन्दी नीर तट, बैठे मदन गोपाल।[7]

\+ + + +

---

१. नाममाला 'ख' छन्द ११९।
२. वही, छन्द १२२।
३. वही, छन्द १६२।
४. वही, छन्द १७५।
५. वही, छन्द ८४।
६. वही, छन्द १८५।
७. वही, छन्द २११।

कल्पतरु तलि तल्य रवि, कब के बिलपत पीय ।[१]

+ + + +

दुख जन दे अब जाऊँ बलि कत बैठी अनखाइ ।[२]

यह नाममाला अन्त में भी खंडित है अतएव सखी की इन बातों का मानिनी नायिका पर क्या प्रभाव पड़ा इसकी जानकारी नहीं हो पाती ।

तुलनात्मक विवेचन

नन्ददास और बद्रीदास की मानमालायें पूर्ण उपलब्ध हुई हैं और नाममाला 'ख' अपूर्ण तथा त्रुटित । नन्ददास की नाममाला में कुल २६४ छन्द हैं, बद्रीदास की मानमंजरी में कुल २१३ और नाममाला 'ख' में ११५-२६१ संख्यक छन्द मिलते हैं । नन्ददास ने २०७, बद्रीदास ने १८३ तथा नाममाला 'ख' के रचयिता ने उपलब्ध अंश में १०८ मूल नाम शब्दों के पर्याय संकलित किये हैं । शैली तीनों की एक सी है । प्रथम विवेच्य शब्द का शीर्षक अंकित किया गया है यथा 'तपस्वी नाम', 'स्नेह नाम' या 'आज्ञा नाम' । तत्पश्चात् उस शब्द के पर्यायों को छन्दबद्ध किया गया है। पर्याय संकलन के लिये नन्ददास तथा बद्रीदास दोनों ने अमरकोश को आधार माना है । नाममाला 'ख' का प्रारम्भिक अंश उपलब्ध नहीं परन्तु शब्दों का संकलन इसमें भी उपर्युक्त दोनों कोशों के ही अनुसरण पर है । छन्द के पूर्वांश में समानार्थी शब्दों का संकलन और उत्तरांश में उक्त मान प्रसंग की कथा नियोजित की गई है । मुख्य रूप से शब्दों के पर्याय संकलन पर ही तीनों कोशकारों की दृष्टि रही, मान का प्रसंग तो प्रकीर्ण और गौण रहा । अधिक पर्याय वाले शब्दों को अपेक्षाकृत अधिक स्थान मिला है, उदाहरण के लिये 'महादेव' या 'सूर्य' के पर्यायवाची शब्द तीनों कोशों में ६-८ पंक्तियों में गिनाये गये हैं, परन्तु मान सम्बन्धी उक्ति केवल अंतिम पंक्ति में ही है । उसका भी वर्ण्य विषय या शब्द से कोई प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं अतः ये उक्तियाँ आरोपित सी लगती हैं ।

प्रकीर्ण रूप से दी गई मानकथा का क्रम भी तीनों कोशों में एक सा है—सखी आतुर कृष्ण की दशा के कारण सरस्वती का आराधन करती हुई शीघ्रतापूर्वक वृषभानु के घर पहुँचती है, जिसके पास की रौप्य गोशालाओं, उज्जवल अट्टालिकाओं तथा वैभव की वस्तुओं का वर्णन करते हुये तीनों मानकथाकार इस बात का उल्लेख करते हैं कि सिद्धांजन लगाये रहने के कारण सखी अलक्षित रूप से भवन में प्रवेश पाती है । मानिनी राधा के एकांतवास में पहुँचने पर कुछ क्षणों तक उसका सौन्दर्य निहारने

---

१. नाममाला 'ख' छन्द २१३ । **२. वही, छन्द २१७ ।**

में निमग्न रहती है और तदनन्तर जल द्वारा नेत्रों का लोपांजन धोकर प्रकट हो जाती है। प्रच्छन्न रूप से प्रिय की सखी को अपने पास आया देखकर राधा का क्रुद्ध होना तीनों मानमालाओं में वर्णित है। क्रोध के शांत होने पर सखी उस मानिनी को मनाने के प्रयत्न में संलग्न हो जाती है और अन्ततोगत्वा अपने कार्य में सफल होकर राधा-कृष्ण का मिलन करा देती है।

उपर्युक्त प्रच्छन्न कथाक्रम का निर्वाह तो तीनों कोशों में है ही, अधिकांशतः कई नामों के पर्याय भी समान रूप से और लगभग उसी संख्या में मिल जाते हैं। छन्द के आग्रहवश थोड़ा हेर-फेर होना सामान्य सी बात है। उदाहरण के लिये 'शिव नाम' तीनों मानमालाओं से उद्धृत किये जाते हैं :

॥ शिवनाम ॥

गंगाधर हर शूलधर, शशिधर शंकर बाम ।
सर्वेस्वर भव शंभु शिव, रुद्र कामरिपु नाम ॥
शूली त्र्यम्बक त्रिपुरअरि, ईश उमापति होय ।
जटिल पिनाकी पसूपति, नीलकंठ शिव सोय ॥
बामदेव सो देव जेहि, राखत हिय मैं ओहि ।
ताको तूं कपटी कहति, कहा कहौं बलि तोहि ॥

—नन्ददासकृत नाममाला से।

॥ महादेव के नाम ॥

संकर सिव हर सिंभु ईस उमापति सधर ।
त्रिलोचन अरिमैंन नीलकंठ स्रब धूसर ॥
भवज पिनाकी तिपुर बांमदेव हरि सुनियै ।
जटि गंगाधर रुद्र महेसर भारग सुनिये ॥
सूल धरन ईसर मृदुल पसुपति महादेव जुअ ।
ध्यान धरत बद्री असे कपटी ताकौं कहत तुअ ॥

—बद्रीदास विरचित मानमंजरी से।

॥ महादेव नाम ॥

गंगाधर हर शूलधर ससिधर शंकर वाम ।
सर्वेश्वर सिव भीम भव, भार्ग कामरिपु नाम ॥
त्रिनय अंबक त्रिपुर अरि, ईस उमापति होइ ।
जटी पिनाकी धूर्जटी, रुद्र वृषध्वज सोइ ॥

उग्र कपर्दी भूतपति, पशुपति मृड इसान ।
नीलकंठ श्रीकंठ सित कंठ सकल कल्यान ।।
महादेव से देव बलि, जाको धरत धियान ।
सो कपटी कान्हा दइ, ह्वैहै कबहु सयान ।।

—नाममाला 'ख' से ।

उपर्युक्त उद्धरणों से महादेव के लिये गंगाधर, हर, शूलधर, शंकर, शिव, रुद्र, त्रिपुरारि, ईश, उमापति, जटी, पिनाकी, पशुपति, नीलकंठ, तीनों नाममालाओं में प्रयुक्त हुए हैं। शूली तथा कामरिपु केवल नन्ददास में, मृदुल, ईसर, त्रिलोचन, अरिमैन, स्रब, भवज, महेश्वर केवल बद्रीदास में, तथा भीम, त्रिनय, वृषध्वज, उग्र, कपर्दी, भूतपति, मृड-इसान, श्रीकंठ, सितकंठ केवल नाममाला 'ख' में आये हैं। मान-प्रसंग के सम्बन्ध में सखी की उक्ति—कि ऐसे नायक श्रीकृष्ण को, जिनकी महादेव जैसे महान देव आराधना करते हैं, नायिका द्वारा 'कपटी' बताना उचित नहीं—तीनों मानमालाओं में समान रूप से मिलती है। विवेच्य शब्द के लिए नन्ददास ने 'शिव नाम', बद्रीदास ने 'महादेव के नाम' तथा नाममाला 'ख' के रचयिता ने 'महादेव नाम' शीर्षक दिया है।

इन समानताओं तथा असमानताओं के अतिरिक्त नन्ददास ने दोहा, बद्रीदास ने सोरठा-छप्पय तथा नाममाला 'ख' के रचयिता ने दोहे के माध्यम से नाम शब्दों को छन्दबद्ध किया। नाममाला 'ख' प्रारम्भ तथा अन्त में अपूर्ण और त्रुटित है फिर भी ऐसा प्रतीत होता है कि यह नाममाला नन्ददास की नाममाला की ही कोई परिवर्द्धित या परिष्कृत प्रति है। नन्ददास की नाममाला में क्षेपकों की मात्रा कितनी बढ़ गई थी इसका उल्लेख पीछे किया जा चुका है। बद्रीदास की 'मानमंजरी' में मान का प्रसंग प्रायः नन्ददास के ही अनुकरण पर है परन्तु उसमें वह क्रमबद्धता तथा स्पष्टता नहीं जो नन्ददास की 'नाममाला' में दिखाई देती है। समग्र रूप से तीनों मानमालायें एक ही मूल उद्देश्य को सामने रखकर निर्मित की गई हैं। तीनों का उद्देश्य नाम पर्याय संकलन के साथ-साथ कथा की भी नियोजना करना था परन्तु विभिन्न रचनाकारों तथा उनमें समयान्तर के कारण तीनों के निखार में भी परिवर्तन मिलता है। नन्ददास की नाममाला सबसे प्राचीन है अतएव परवर्ती नाममालाओं पर उसकी आंशिक छाया पड़ जाना स्वाभाविक है।

मानमाला एवं समानार्थी कोश : एक तुलना

सभी मानमालायें समानार्थी कोश हैं। इनको अनुवादित कोश भी कहा जा सकता है क्योंकि नन्ददास तथा बद्रीदास दोनों ने 'अमरकोश के भाय' पर इनको

निर्मित बताया। न तो इनमें अमरकोश के सभी नामपर्याय आये हैं और न वर्ग या काण्ड विभाजन है। पर्यायवाची शब्द भी अत्यन्त कम मात्रा में हैं। सभी दृष्टियों से तीनों मानमालायें समानार्थी कोश विश्वनाममाला या आतमबोधनाममाला के अधिक समीप हैं। अन्तर इतना ही है कि मानमालाओं में प्रच्छन्न रूप से 'मान' की कथा भी जोड़ दी गई है जैसा कि अन्य समानार्थी या अनुवादित कोशों में नहीं किया गया।

अनेकार्थी कोश

नन्ददासकृत अनेकार्थ, विनयसागर उपाध्याय विरचित अनेकार्थनाममाला, चन्दनराम द्वारा निर्मित अनेकार्थ, सागर कवि प्रणीत अनेकार्थ एवं उदयराम द्वारा लिखा गया 'अनेकारथी' कोशों को नानार्थी कोश कहा जा सकता है। अमरकोश के अनुकरण पर निर्मित चार कोशों—प्रकाशनाममाला, नामप्रकाश, कर्णाभरण एवं उमरावकोश—में से कर्णाभरण को छोड़कर अन्य तीनों कोशों के तृतीय काण्ड के अन्तर्गत भी 'अनेकार्थ वर्ग' के नाम से शब्दों के अनेक अर्थ दिये गये हैं। इनके अतिरिक्त आगे एक भिन्न शीर्षक में वर्णित एकाक्षरी कोशों को भी अनेकार्थी कोश ही कहा जा सकता है क्योंकि उनमें एक अक्षर के अनेक अर्थ छन्दोबद्ध हैं।

'अनेकार्थ' से इन कोशकारों का क्या अभिप्राय था यह स्पष्ट नहीं है। नन्द दास ने कहा है कि एक शब्द के 'नाना अरथ' होते हैं,[1] एक ही वस्तु के समय, स्थान, वक्ता और प्रसंग के अनुसार अनेक नाम (अर्थ प्रयोग) हो जाते हैं। उदाहरण के लिये 'कञ्चन' को किंकिनी, कंकन और कुण्डल के नाम से भी अभिहित किया जाता है, क्योंकि ये समस्त आभूषण कञ्चन से ही बने होते हैं।[2] सुवंश शुक्ल ने उमराव-कोश में 'अर्थ' शब्द का प्रयोग न कर केवल 'एक (शब्द) के अनेक नाम (अर्थ)' विवेचन करना 'अनेकार्थ वर्ग' का उद्देश्य बताया।[3] भिखारीदास ने अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट कर दिया कि उनके नामप्रकाश के 'अनेकार्थ वर्ग' में एक-एक शब्द के अनेक अर्थ दिये गये हैं।[4] मियाँ नूर ने भी प्रकाशनाममाला के अन्तर्गत विवेचित 'अनेकार्थ

---

१. **शब्द एक नाना अरथ, मोतिन कैसी दाम।
जो नर करिहै कण्ठ सो, ह्वै है छवि को धाम॥ —अने० नन्द०, पंक्ति ७–८।**

२. **एकै वस्तु अनेक है, जगमगात जग धाम।
जिमि कन्चन के किंकिनी, कंकन कुण्डल नाम॥ —वही, पंक्ति ३-४।**

३. **अब एक नाम अनेक को, भाषो महा अनंद ते।
\+ + +
एक नाव बहुत्यन विषै, लहि कवि होत समर्थ।
याते रचत सुवंस कवि, वर्ग अनेका अर्थ॥ —उ० को०, ३।२।१-२।**

४. **कादि वर्न द्वय अन्तक्रम, समुझो बुद्धि समर्थ।
इक इक शब्दनि को कहो, प्रगटि अनेकन अर्थ॥ —ना० प्र०, पृ० ३०५।**

प्रकास' में 'बहुअर्थजुत' शब्द रूपी मुक्ताओं को हार रूप में पिरोया जिससे जिज्ञासु उस 'अपूरब हार' को 'कंठ' में डाल सकें—स्मरण कर सकें।[१] उदैराम ने अपने 'अनेकारथी' के आमुख में बताया कि ग्रंथ का उद्देश्य एक शब्द या पद में 'उठे' 'अनेक अरथ' का वर्णन करना है। अतएव एक शब्द के विविध नाम इसमें छन्दबद्ध हैं।[२] चन्दनराम ने अपने अनेकार्थ में एक ही (शब्द) के 'बहु नाम' का महत्त्व देखकर ही इनको छन्द में नियोजित करना अपना लक्ष्य माना।[३]

"अनेकार्थ" शब्दों की महत्ता वेदों से ही चली आ रही है। इस संसार की समस्त वस्तुयें जगत हैं, चल हैं[४]। भाषा और अर्थ का साक्षात् सम्बन्ध मनुष्य से है। मनुष्य मर्त्य है अतएव उससे सम्बद्ध वस्तुओं की भी वही गति होती है, उसमें परिवर्तन और चलत्व आता है। कैयट ने अर्थ के विषय में लिखा है कि यदि एक शब्द का एक ही अर्थ नियमित रूप से प्रयोग होता तो अर्थ विषयक सन्देह ही उत्पन्न न होता परन्तु ऐसा नियम नहीं है—शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं[५]—यहाँ तक कि प्रकृति और प्रत्यय के भी अर्थ अनियत हैं।[६] इसी अनियतता के आधार पर पतंजलि ने कहा है कि शब्द के नानार्थ होते हैं।[७] एक शब्द अनेक अर्थों का बोध कराता है, यह न्याय है।[८] भर्तृहरि ने इसी मत को और विस्तृत किया और लिखा कि "सर्वे सर्वार्थवाचकाः" अर्थात् शब्द सर्व-शक्तिमान है, उसमें समस्त अर्थों के बोध की शक्ति है। जिनको मुख्य और गौण अर्थ कहा जाता है वह प्रसिद्धि और अप्रसिद्धि के आधार पर ही है। जो अर्थ प्रसिद्ध है उसे मुख्य कहते हैं और जो अप्रसिद्ध है उसे गौण।[९]

---

१. **अमरकोष के भाय सों, कीने नाम प्रकास।**
अनेकार्थ के अर्थ लै, कहौं अनेक उलास।।
शुद्ध बरन बहु अर्थ जुत, मुकता सबद सुढार।
कंठ करहु गुनवंत नर, नूर अपूरब हार।। —प्र० ना० मा०, पृ० ३७५।

२. **एक सबद पद में उठे, अरथ अनेक उपाय।**
अनेकारथ "उदा" उकत, बिबधा नांम बणाय।। —अने०, उदै०, छन्द १।

३. **नामार्णव एह उदधि में, एक को है बहु नाम।**
एक बचन ही कहत हौं, कहियो योगी राम।। —अने०, चन्द०, पृ० ४०।

४. **"यत्किंच जगत्यां जगत्"—यजुर्वेद, ४०, १।**

५. **"यद्येकः शब्द एकस्मिन्नर्थे नियतः स्यात्, तत एतद् युज्यते वक्तुम्, यतस्त्वनियमः ततः प्रकृतेरेव सर्वे अर्थाःस्युः।"—प्रदीप, महाभाष्य—१, २, ४५।**

६. **"प्रकृतिप्रत्ययोरर्थवत्ताया अनैयत्यं दर्शयति"—उद्योत, महाभाष्य, १, २, ४५।**

७. **"एकश्च शब्दो बह्वर्थः"—महाभाष्य १, २, ४५।**

८. **"एषोऽपि न्याय्य एव यदप्येकेनानेकस्याभिधानं भवति।"—महाभाष्य, १, २, ६४।**

९. **वाक्यपदीय, २, २५५।**

पाश्चात्य विद्वानों का यह मत कि अनेकार्थ नाम का कोई शब्द नहीं होता[1], भारतीय परम्परा के विरुद्ध पड़ता है। अनेकार्थ शब्दों का विशिष्ट महत्त्व देखकर ही संस्कृत के विभिन्न कोशों और उन्हीं के अनुकरण पर हिन्दी में अनेकार्थी कोशों का निर्माण हुआ।

विवेच्य अनेकार्थी कोशों के मुख्य रूप से दो विभाग किये जा सकते हैं—(१) शब्दों के अनेकार्थ देने वाले कोश और (२) अक्षरों के नानार्थ देने वाले कोश। द्वितीय प्रकार के कोशों को 'एकाक्षरी कोश' भी कहा जाता है। इनका विवरण आगे भिन्न शीर्षक के अन्तर्गत किया गया है। विवेच्य हिन्दी कोशों में एक भी ऐसा कोश न मिला जिसमें—संस्कृत में महिपकृत 'अनेकार्थतिलक' के समान—एकाक्षरी से लेकर चतुराक्षरी शब्दों तक के विभिन्न अर्थ एक ही मेंदिये गये हों।

सामान्य तुलनात्मक विशेषताएँ

(१) समस्त कोश छन्दों में निर्मित हैं। नन्ददास, चन्दनराम, विनयसागर, मियाँ नूर, उदैराम, तथा सागर कवि ने अनेकार्थ निरूपण के लिये दोहे का माध्यम लिया। उमरावकोश और नामप्रकाश में अनेकानेक छन्द हैं।

(२) नन्ददास, मियाँ नूर, सुवंश शुक्ल तथा सागर कवि ने एक छन्द में केवल एक ही शब्द के नानार्थ दिये हैं परन्तु चन्दनराम, भिखारीदास, विनयसागर और उदैराम ने अपने कोशों में आवश्यकतानुसार एक, दो, तीन और यहाँ तक कि चार-चार शब्दों तक के भी अनेक अर्थ एक छन्द में दिये हैं।

(३) शब्दों के संकलन में किसी ने कोई भी मौलिकता नहीं दिखाई। प्रायः प्रत्येक कोश का आधार या तो कोई पूर्ववर्ती हिन्दी कोश रहा है या कोई संस्कृत कोश। शब्द सभी में परम्पराश्रुत और रूढ़ हैं।

(४) उमरावकोश के नानार्थ वर्ग और नन्ददास विरचित अनेकार्थ में भरती के शब्द अधिक संख्या में आये हैं। इनमें भी उमरावकोश में छन्दपूर्ति के आग्रह से और नन्ददासकृत अनेकार्थ में हरिमहिमा, भगवद्‌भजन या ईश्वर सम्बन्धी उक्तियों के कथन के लिये भरती के शब्द आये हैं।

---

१. "When we say that one word may mean several things, we are in a sense the dupes of an illusion. Among the diverse meanings a word possesses, the only one that will emerge into consciousness is the one determined by the context, all the others are abolished, extinguished, non existent..."

—वेन्ड्राइज (Vendryes), लेंग्वेज पृ० १७७।

(५) शब्द-नियोजन में कोई मौलिकता नहीं है। सभी कोशों में शब्दों का संकलन बिना किसी पद्धति या आधार पर हुआ है। किसी शब्द की स्थिति ढूँढ़ना अत्यन्त दुष्कर है। केवल नामप्रकाश में भिखारीदास ने अंतिमवर्णानुसारी पद्धति पर शब्द संकलन किया। यह भी अमर आदि संस्कृत कोशों के अनुकरण पर है।

(६) विनयसागर तथा चन्दनराम ने अपने कोशों को 'अधिकारों' में विभक्त किया परन्तु अन्य कोशों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है। भिखारीदासकृत नामप्रकाश के अनेकार्थ वर्ग में एक अक्षर से समाप्त होने वाले शब्दों को अवश्य एक वर्ग के अन्तर्गत कहा जा सकता है जैसे 'च' से समाप्त होने वाले या 'श' से समाप्त होने वाले शब्द। अन्य कोशों में ऐसा कोई विभाजन नहीं है।

(७) सागर और चन्दनरामकृत अनेकार्थी कोशों में मूल विवेच्य शब्द प्रत्येक अर्थ के साथ संयुक्त है परन्तु अन्य कोशों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं मिलती।

(८) एक शब्द के अनेक अर्थों की कुल संख्या गिनाने की पद्धति केवल उमराव-कोश के 'अनेकार्थ वर्ग' में और एक दो स्थान पर नन्ददास और चन्दनराम ने अपने अनेकार्थ कोशों में अपनाई है। अन्य किसी भी कोशकार ने कुल नामों की संख्या नहीं दी।

(९) विवेच्य शब्द को प्रत्येक अनेकार्थ के रचयिता ने 'नाम' शीर्षक से रखा, यथा'—अर्जुन नाम' या 'सत्रु नाम'। सागर कवि ने 'नाम' से पहले 'शब्द' और जोड़ दिया है यथा 'गौरी शब्द नांव' या 'द्विज शब्द नांव'। नन्ददास ने 'नाम' उड़ा दिया है और चन्दनराम ने उसके स्थान पर शब्दार्थ रखा, यथा—'अथ सीता शब्दार्थ दोहा'।

(१०) चन्दनराम ने 'सारंग शब्दार्थ' में अर्थों को आदिवर्ण के आधार पर एक साथ रखा है, 'प' से प्रारम्भ होने वाले अर्थ-शब्द एक साथ तो 'त' से प्रारम्भ होने वाले दूसरे अर्थ दूसरे स्थान पर।[१] यह शैली अन्यत्र नहीं मिलती।

---

१. ॥ अर्थ सारंग शब्दार्थ दोहा ॥

पावक पंकज पीक पट, धन धनु घन घट क्षीर।
कनक कठिन कुच कीर करि, नभ नग नव निसि नीर ॥
दादुर द्विज दृग दीप द्युति, बिधु बिषबीना बच्छ।
मदन मयुर मृदु मृग मधुप, गो हय हरि धनु स्वच्छ ॥
तारा तरुणी तनु तडित, तरणि तेज रितु राज।
अर्थ अहै सारंग कै, चौआलिस कवि राज ॥ —अने०, चन्द०, पृ० १३।

अनेकार्थी कोशों में अर्थों के दो स्वरूप

विवेच्य 'अनेकार्थी' कोशों में दिये गये शब्दों के अर्थ दो प्रकार के दिये गये हैं: प्रथम प्रकार के अर्थों को निश्चित या रूढ़ अर्थ कहा जा सकता है इसमें परम्पराश्रुत अर्थ ही शब्द-विशेष के साथ दिये गये हैं, उनमें किसी प्रकार की अस्पष्टता या नवीनता न होगी। उदाहरण के लिये 'गो शब्दार्थ' देखिये—

॥ अथ गो शब्दार्थ, दोहा ॥

दृष्टि किरण दिशि स्वर्ग पशु, बज्र बचन भू बारि ।
तरु जल इन्द्रिय जन निषंग, धन गो अर्थ बिचारि ॥[1]

इस दोहे में दिये गये पन्द्रहों नाम शब्द 'गो' के अर्थ हैं अर्थात् 'गो' शब्द से इनका 'भाव' भी व्यक्त हो जाता है। यदि वाक्य विशेष में इनमें से किसी शब्द का प्रयोग 'गो' के स्थान पर कर दें तो अर्थ के तारतम्य में कोई व्यवधान न पड़ेगा। इसी प्रकार एक और उदाहरण लीजिये :

॥ हरि नाम ॥

बाजी किरिन जमराज मारुत, विष्नु मघवा जानिये ।
ससि सिंह पन्नग और वानर, भानु दादुर मानिये ।
गनि स्वर्न वर्न समेत भीरु, ककीर सहित सिहारि कै ।
ए पन्द्रहौं को नाम हरि, भाष्यौ सुवंस विचारि कै ॥[2]

उपर्युक्त 'हरिगीत' छन्द में 'हरि' शब्द के प्रचलित पन्द्रह अर्थ दिये गये हैं। ये सभी अर्थ काव्य-साहित्य में प्रयुक्त होते आये हैं अतएव इनमें से यदि किसी के भी स्थान पर 'हरि' शब्द का प्रयोग करें तो मूल अर्थ में कोई मुख्य परिवर्तन न आयेगा।

अनिश्चित या अस्पष्ट अर्थ—कुछ स्थलों पर—और विशेष रूप से सागर कृत 'अनेकार्थी' में—कुछ शब्दों के अर्थ द्योतन की अपेक्षा उनके सम्बन्ध में सामान्य उक्तियाँ कही गई हैं। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

॥ बाहन सब्द नांव ॥

ससि बाहन मृग सिवा सिंघ, रवि बाहन हय होइ ।
रथ गनेस मंजार-भख, गजमुख है पुंन सोइ ॥
चतुरानंन रथ हंस है, बाहन वृषभ महेस ।
अैरापत गन इन्द्र रथ, हरि बाहन अरि सेस ॥

---

१. अने०, चन्द० पृ० २।
२. उ० को० ३।२।६।

ता बांहन मन कमल बन, पांणी जलज भृंग रथ प्रांन ।
गौरी रथह संघरी, मृगपवन विरहा रथ हित मांन ।।[१]

उक्त दोहों में वाहन शब्द के 'नाम' दिये गये हैं परन्तु अन्य 'नामों' की भाँति इसमें 'वाहन' के अनेक अर्थ नहीं हैं, केवल चन्द्रमा, पार्वती, सूर्य, गणेश, ब्रह्मा, महेश, इन्द्र, विष्णु, आदि देवों के भिन्न वाहनों का उल्लेख करना लेखक को अभीष्ट था। इन सूचनाओं को 'ज्ञान कोश' की सीमा में लिया जा सकता है। न तो ये शब्दकोश के वर्ण्य विषय हैं न अर्थ कोश के। इसी प्रकार एक अन्य दृष्टान्त निम्न छन्दों में है :

।। सुत शब्द नांम ।।

सिव सुत आहि गणेस पुन, रवि सुत कर्ण जु नांम ।
हरि सुत चंचल परद मन, कहै पिंडत तिह कांम ।।
षट आंनन सिव सुत वियो, जोइ वाहन जिह होइ ।
सोइ मयूर रथ सरस्वती, कहि बुधि जन सब कोइ ।।
भीम कहै सुत पवन कों, विध अंबुज सुत आहि ।
ससि मुक्ता दोउ उदध सुत, जे अचंभ कहै ताहि ।।[२]

इन दोहों में भी पूर्व उद्धृत प्रणाली के ही अनुकरण पर 'सुत' शब्द के 'नाम' दिये गये हैं। यह 'नाम' अन्य 'नामों' की भाँति अर्थों का द्योतक नहीं। इसमें केवल यही बताना कोशकार को अभीष्ट था कि महादेव का पुत्र गणेश है और सूर्य का पुत्र कर्ण, हरि का पुत्र काम है और शिव का कार्तिकेय, आदि। इस प्रसंग में अचानक सरस्वती के वाहन 'मयूर' (?) का उल्लेख व्यतिक्रम उपस्थित कर देता है जिसका कोई कारण स्पष्ट ज्ञात नहीं होता।

एकाक्षरी कोश

आलोच्य कोशों में कनककुशलकृत 'लखपतमंजरी नाममाला', वीरभाण द्वारा विरचित 'एकाक्षरी नाममाला', फ़कीरचन्द प्रणीत 'सुबोध चन्द्रिका' तथा उदैराम द्वारा निर्मित 'एकाक्षरी नाममाला' एकाक्षर कोश हैं। प्रकाशनाममाला के अन्तिम प्रकाश में भी कुछ एकाक्षरों के अर्थ दिये हैं।

अक्षर से इन कोशकारों का क्या तात्पर्य था—इसे स्पष्ट नहीं किया गया है। उदैराम के कथनानुसार उन्होंने अपने कोश में ऐसे अक्षरों के 'अरथ अनेक' दिये हैं

---

१. अने०, सागर, छन्द ४८—५० ।
२. वही, छन्द ५१-५३ ।

जिनमें स्वर और मात्रा दोनों संयुक्त हैं।[1] फ़कीरचन्द ने अक्षर का प्रयोग न कर 'वर्ण' का प्रयोग किया, जिनके 'अनत अर्थ' के लिये उन्होंने समस्त शब्द रूपी सिन्धु को मथा और तदुपरान्त उनको भाषा में निबद्ध किया।[2]

इन वर्णों या अक्षरों के दो मुख्य स्वरूप हैं—(१) लखपतमंजरी नाममाला, एकाक्षरी नाममाला (वीरभाण), सुबोध चन्द्रिका, तथा एकाक्षरी नाममाला (उदैराम) में वर्णों के द्वादश अनुक्रम के अन्तर्गत आये वर्ण में से आवश्यकतानुसार वर्णों को लेकर उनके अर्थ दिये हैं। (२) प्रकाशनाममाला के अन्तर्गत संकलित एकाक्षरी कोश में केवल अव्यय एकाक्षरों के अनेक अर्थ दिये गये हैं। फ़कीरचन्द ने सुबोध चन्द्रिका में तथा उदैराम ने अपने एकाक्षरी कोश के उत्तरार्द्ध में कुछ अव्यय एकाक्षरों का भी निरूपण किया है।

प्रथम प्रकार के एकाक्षर कोशों के भी दो स्वरूप हैं—वीरभाणकृत एकाक्षर नाममाला और कनककुशल विरचित लखपतमंजरी नाममाला में अक्षरों के समस्त वर्णों के अनेकार्थ नहीं दिये गये हैं। इन्होंने आवश्यकतानुसार अक्षरों का ग्रहण और त्याग किया है। दोनों को यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो लखपतमंजरी अधिक स्पष्ट और व्यवस्थित है, इसके क्रम में असम्बद्धता कहीं नहीं आई। परन्तु वीरभाण ने अपने कोश में एकाक्षरों का संकलन बिना किसी आधार के किया है। इसके अतिरिक्त वीरभाण ने केवल अक्षरों के अर्थ ही दिये हैं परन्तु कनककुशल ने उनके व्याकरणिक प्रयोग एवं रूप भी देने का प्रयास किया है।

फ़कीरचन्द की सुबोध चन्द्रिका और उदयरामकृत एकाक्षरी नाममाला अधिक विस्तृत और पूर्ण हैं। वीरभाण और कनककुशल ने सभी के नहीं प्रत्युत कुछ ही अक्षरों के अनेकार्थ या व्याकरणिक रूप देना उचित समझा परन्तु सुबोध चन्द्रिका और उदैराम की एकाक्षरीनाममाला में प्रत्येक अक्षर के द्वादश वर्णों के अनेकार्थ दिये गये हैं। विसर्गान्त अन्तिम वर्ण (:) मात्र छोड़ दिया गया है। प्रत्येक वर्ण के यथासम्भव अर्थ दोहे में दिये गये हैं। आवश्यकतानुसार अर्थों की संख्या देखते हुये कहीं-कहीं एक से अधिक दोहे भी प्रयुक्त हैं।

अक्षर, उनकी नियोजन-प्रणाली, अर्थ देने की व्यवस्था और संख्या लगभग दोनों में एक सी है। अव्यय एकाक्षरों की संख्या और निरूपण व्यवस्था में भी कोई अन्तर

---

१. **सुर अच्छर मात्रा सहित, एके अरथ अनेक।**
जुदी जुदी वरणो जुगत, वरणो नांम विवेक।। —एका०, उदै० छन्द ३।

२. **सब्द सिंधु सब मथ्य कै, रंच्यौ सु भाषा आंनि।**
अर्थ अनत इक वर्न के, द्वादश अनुक्रम बांन।। —सु० च०, छन्द ४।

नहीं। कवि उदयराम ने अपनी 'एकाक्षरीनाममाला' के अन्त में फ़कीरचन्द का स्मरण बड़ी श्रद्धा से किया है।[1] फ़कीरचन्द ने सुबोधचन्द्रिका का स्रोत संस्कृत के आचार्य 'सौभरि' को बताया अतएव यह निश्चित है कि इन एकाक्षरी कोशकारों में से उदैराम फ़कीरचन्द से प्रभावित थे। यदि दोनों में अन्तर है तो इतना ही कि फ़कीरचन्द ने नामनिरूपण के अतिरिक्त भगवद्‌महिमा सम्बन्धी उक्तियाँ आवश्यकता से अधिक मात्रा में कही हैं। अक्षरों के अर्थ कम और धार्मिक या आध्यात्मिक चर्चा अधिक की गई है। नीचे दोनों कोशों से 'घौ' अक्षर के अर्थ तुलनार्थ उद्‌धृत किये जा रहे हैं:

।। घौ नांम ।।

घौ कलाल कौ बास गनि, रवि विवांन मुनि जांनि ।
अरु पताल के देव सब, फिर पापी तह मांनि ।।
पापी सो जग मध्य है, पाप धर्म नहि फेर ।
महा दुष्ट परजीव कौं, घात करति ह्वै सेर ।।
प्रगट पदारथ छांड़ि कै, रांम नांम सुख धांम ।
पापी सो नर जगत मैं, करैं दुगनि के कांम ।।

—सुबोध चन्द्रिका, छन्द १३१—१३३।

।। घौ नाम ।।

अरुख ताल देता अघी, रव विवाण रट नाम ।
कहि वल वासकलाल को, सो तज भज घणस्यांम ।।

—एकाक्षरीनाममाला (उदै०), छन्द ७२।

अनेकार्थी कोश और एकाक्षरी कोश : एक तुलना

एकाक्षरी कोश भी एक प्रकार से 'अनेकार्थी' कोश ही हैं। दोनों की रचना छन्दों में हुई है। भरती के शब्द दोनों में पर्याप्त संख्या में आये हैं। दोनों प्रकार के कोशों में साहित्य में प्रचलित अनेक अर्थों को संकलित किया है। विवेच्य शब्द का शीर्षक दोनों में 'नाम' से निर्दिष्ट है।

यदि अन्तर है तो इतना ही कि अनेकार्थी कोशों में शब्दों के अर्थ हैं और 'एकाक्षरी' में वर्ण या अक्षरों के वैसे कई अनेकार्थी कोशों में स्थान-स्थान पर एकाक्षर भी आ गये हैं यथा 'कं नाम'। एकाक्षरीकोश अधिकांशतः आंशिक वर्णानुक्रम में नियोजित

---

१. अव्यय भेद अपार है, वरण अरथ विसतार ।
कवि औ फ़कीरचन्द, उदै कियो उचार ।। —**एका० उदै०, अन्तिम अंश ।**

हैं जिनमें व्याकरणिक विवेचना भी प्रस्तुत की गई है, परन्तु 'अनेकार्थी' कोशों में ऐसा कुछ नहीं।

समानार्थी एवं अनेकार्थी कोश : एक तुलना

उक्त दोनों प्रकार के कोश संस्कृत कोशों के अनुकरण पर निर्मित हुये हैं। दोनों में छन्द विधान है। दोनों में संकलित शब्द प्रायः साम्प्रदायिक एवं रूढ़ हैं, विवेच्य शब्द को दोनों में 'नाम' से अभिहित किया गया है, पर्याय या अनेकार्थी से नहीं। दोनों प्रकार के कोशों में शब्द बिना किसी निश्चित क्रम के आये हैं।

परन्तु दोनों प्रकार के कोशों में एक मूलभूत अन्तर है—समानार्थी कोशों में जिस शब्द के पर्याय दिये गये हैं उन पर्यायों को भी—स्थान विशेष को छोड़कर—एक दूसरे के स्थान पर प्रयुक्त किया जा सकता है परन्तु अनेकार्थी कोशों में ऐसा नहीं। इतना अवश्य है कि समस्त अर्थों के स्थान पर मूल शब्द—जिसके अर्थ दिये गये हैं—को निस्संकोच स्थानान्तरित किया जा सकता है। समानार्थी कोशों में भाषा के तद्भव, देशज और यहाँ तक कि विदेशी शब्दावली का संकलन पर्याय रूप में हुआ है परन्तु अनेकार्थी कोशों में केवल संस्कृत के तत्सम शब्द ही हैं जिसके फलस्वरूप समानार्थी कोश आकार में बड़े एवं अधिक उपादेय हैं।

वर्णक

मध्यकालीन कोशों का एक अन्य प्रकार वर्णक[१] भी है। ज्योतिरीश्वर कविशेखराचार्य[२] कृत 'वर्णरत्नाकर' इसी प्रकार का एक कोश ग्रन्थ हिन्दी (मैथिली) में निर्मित मिला है[३], जो संस्कृत तथा हिन्दी भाषा के एक भाव या क्रम के द्योतक विविध शब्दों का संग्रह है। शब्दों के संग्रह के अतिरिक्त वर्णरत्नाकर में अनेकानेक उपमाओं, विभिन्न रीतिरिवाजों, प्रथाओं एवं काव्य-ग्रन्थों में प्रयुक्त होने वाले

---

१. हेमचन्द्र, हलायुध तथा मल्लिनाथ के अनुसार 'वर्णक' का शाब्दिक अर्थ है—'गीत क्रम' (बोथलिंक तथा रोथ का कोश) परन्तु प्रस्तुत संग्रह में किसी गीत या कविता का इतना क्रम नहीं निभाया गया है जितना रूढ़ शब्दावली का जिनका ऐसी कविता या गीतों में उपयोग करना हो।

२. कविशेखराचार्य ज्योतिरीश्वर ठाकुर १४वीं शती के प्रसिद्ध कवि थे। 'धूर्त समागम' तथा 'पंच सायक' इनके अन्य काव्य ग्रन्थ हैं।
—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, भूमिका, पृ० १३।

३. डॉ० उमेश मिश्र ने इस प्रकार के कुछ अन्य वर्ण संग्रह भी दिखाये थे परन्तु वे सभी हस्तलिखित रूप में होने के फलस्वरूप उपयोग में न आ सके।

उपादानों का भी भरपूर संग्रह किया गया है।[1] 'व्रर्णकों' की भारतीय साहित्य में एक सुनिश्चित परम्परा है। जैन धर्मशास्त्रों के अर्द्धमागधीय सूत्र में इस प्रकार के "वण्ण" (—वर्णक) सामान्य रूप से पाये जाते हैं। संस्कृत टीकाओं में भी "वण्ण" का अर्थ 'वर्णक' ही लगाया जाता था।[2] बाण कृत 'हर्षचरित' तथा 'कादम्बरी' ने पर्याप्त समय तक पुरानी गुजराती में निर्मित व्रर्णक संग्रहों को प्रेरणा दी।

उपलब्ध 'व्रर्णरत्नाकर' गद्य में निर्मित है। अन्य कोश पद्य में निर्मित मिलते हैं जिनका विभाजन 'कांड' या 'व्रर्ग' शैली में किया गया है। परन्तु व्रर्णरत्नाकर में 'कल्लोल' (तरंग या लहर) शीर्षक देकर इस कोश ग्रंथ को सात कल्लोलों में विभाजित किया है—समस्त ग्रंथ 'रत्नाकर' (समुद्र) है। प्रत्येक कल्लोल में विशिष्ट वस्तुओं के 'नाम' न देकर 'वर्णन' दिये गये हैं, यथा—नगर व्रर्णन, नायिका व्रर्णन या श्मशान व्रर्णन। इन वर्णनों का संग्रह प्रसिद्ध काव्यग्रंथों तथा तत्कालीन कवि प्रसिद्धियों के आधार पर हुआ है। इनका उपयोग अन्य कोशों की भाँति काव्य साधकों के लिये असीम था। कविता में प्रयुक्त होने वाली, शब्दावली, उपमान तथा रूढ़ प्रयोगों की एक लम्बी तालिका प्रस्तुत व्रर्णक-संग्रह जैसे कोश ग्रंथ में उपलब्ध हो जायगी जिसका आवश्यकतानुसार तत्काल उपयोग किया जा सकता है। एक नौसिखिये कवि के लिये इस पद्धति पर निर्मित संदर्भ-ग्रंथ आवश्यक उपादान प्रस्तुत करते हैं।

कुछ विशिष्टताएँ

उपलब्ध 'व्रर्णरत्नाकर' में कुछ ऐसी प्रमुख विशेषताएँ हैं जो अन्य सामान्य कोशों में नहीं मिलतीं। कई वर्णनों में न तो क्रमानुसार शब्द-संग्रह का ध्यान रक्खा गया है और न अर्थ देने का। वे केवल 'वर्णन' मात्र हैं यथा 'नगर व्रर्णन' या 'प्रभात व्रर्णन', 'स्थान वर्णन' या 'नायिका व्रर्णन' जो एक कोश ग्रन्थ का शुद्ध रूप से मान्य वर्ण्य विषय न होगा। आठ प्रकार के हाथी, चौबीस प्रकार के घोड़े, आठ प्रकार की भैंसें, दस प्रकार के शिकारी कुत्ते[3] जैसे व्रर्णन 'आइने अकबरी' का स्मरण दिलाते हैं। फिर भी दोनों के दृष्टिकोण में अन्तर है। आइने अकबरी ऐतिहासिक भौगोलिकी

१. "... a sort of Lexicon of vernacular and Sanskrit terms, a repository of Sanskrit similes and conventions dealing with the various things in the World and ideas which are usually treated in poetry..."

—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी, भूमिका, पृ० २१।

२. "सम्प्रते अस्या नगर्या वर्णक्रम आह, 'यावक' शब्दकरणात्······औपपातिक-ग्रन्थ प्रसिद्ध वर्णक परिग्रहः"—रायपसैणय सूत्त से।

३. वर्णरत्नाकर (मूल), पृ० ३५-३९।

है, जब कि वर्णरत्नाकर एक साहित्य कोश।[1] इस साहित्य कोश की उपादेयता इसी बात में है कि इनसे कवियों को अनल्प सहायता प्राप्त होती है।[2] समय या अवस्था विशेष का चित्रण करते समय किन-किन उपादानों का विवरण अपेक्षित है, इसका सहज ज्ञान इन 'वर्णनों' की सहायता से हो सकता है। वर्णरत्नाकर के ये वर्णन कभी-कभी इतने सूक्ष्म तथा सजीव हो गये हैं कि पाठक इन्हें कोश सा न समझकर कादम्बरी के समान काव्य ही समझने लगता है, परन्तु वस्तुस्थिति इससे भिन्न है।[3]

स्थान विशेष के वर्णनों के अतिरिक्त प्रस्तुत वर्णक को उपमानों का कोश भी कहा जा सकता है। वस्तु विशेष या अंग विशेष के वर्णन में कितने उपमानों का प्रयोग हो सकता है, इसका वर्णरत्नाकर के अतिरिक्त दूसरा कोई संग्रह ग्रंथ कदाचित् ही उपलब्ध होगा। नायिका के हास्य वर्णन में सम्पूर्ण श्वेत उपमानों का एक स्थान पर संग्रह कर उपमा-प्रिय कविगणों के लिये उसने एक अतुलनीय भांडार उपस्थित कर दिया है—कुमुद, कुन्द, कदम्ब, कास, भास (भासो हासः, कालिदासो बिलासः) कैलास, कर्पूर, पीयूषक, कान्ति में से कोई भी छूटने नहीं पाया है। पुनः वर्णनकर्ता के अनुसार नायिका की हँसी क्षीरसागर में मलयाचल द्वारा उद्वेलित तरंगों के समान है। वह शृंगारराज कामदेव के दर्प का प्रकाशक है, वह तीनों लोकों के युवकों के हृदयों को चकनाचूर करने की क्षमता रखती है। समस्त अंश दृष्टव्य है:

> **कुमुद, कुन्द. कदम्ब. कास. भास. कैलास. कर्प्पूर. पीयूषक. कानि (—कान्ति) प्रसारीसन. क्षीर समुद्रक दाक्षिणानिले चालल तरंग सन क लहरी अइसन; अमृतक सरोवर तरंगक सहोदर सन; शरतक पूर्णिमा चान्दक ज्योत्स्ना अइसन; अमिन व प्रकाशित कमल कोष प्रसारि शोभा सन; कन्दर्प्पक दर्प्प प्रकाशन सन; त्रैलोक्यक नागरजन युवजन हृदयमोहन मन्त्रसन———।**[4]

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : वर्णरत्नाकर (भूमिका) पृ० ३३।

२. "———भावी कवि ओ कत्थक लोकनिक निमित्त एकटा पथ प्रदर्शक ग्रन्थ बनाएव छलन्हि, यथा यदि नायकक वर्णन करबाक हो तं कोन कोन विषयक उल्लेख करब उचित, यदि नायकाक वर्णन करबाक हो तं की सभ निरूपण करब आवश्यक···"
—बबुआ जी मिश्र : वर्णरत्नाकर, भूमिका, पृ० ४।

३. "एहि वर्णरत्नाकर के काव्य ग्रन्थ नहि काव्योपयोगी ग्रन्थ कहि सकैत छी······ अनेक अनुच्छिष्ट उपमाक संग्रह भाषा उपभाषा भेदक उल्लेख द्वारा भाषा विज्ञान सम्बन्धी अनेक सामग्री····· विशद रूपें एहि ग्रन्थ में उपलब्ध होइछ···।"
—बबुआ जी मिश्र : वर्णरत्नाकर, भूमिका, पृ० ३-४।

४. वर्णरत्नाकर (मूल) द्वितीय कल्लोल, पृ० ७।

इसी प्रकार नायिका के अधर, नासिका, दन्तावलि, बाँह, हाथ, पयोधर एवं चरणों की भी सुन्दर उपमायें प्रस्तुत की गई हैं :

पूर्णिमाक चान्द अमृत पूरल अइसन मुह । श्वेत पंकजकाँ दल भ्रमर वइसल अइसन आँखि······परवाक पल्लव अइसन अधर, कनिअराक कर अइसन नाक । सीन्दुर मोति लोटाएल अइसन दान्त । वेटक साट अइसन बाँह. पारिजातक पल्लव अइसन हाथ. छोलंग छोलल अइसन पयोधर······विकशित स्थलपद्म अइसन चरण······।[1]

उपमानों के भाण्डार के अतिरिक्त काव्य में वर्णित विभिन्न वस्तुओं के भेदोपभेदों का भी यह रत्नाकर है। चौसठ कलायें, चौरासी सिद्ध, षोडष महादान, अष्टादश रत्न, बत्तीस उपमणि, तीस प्रकार के वस्त्र[2], दस शृंगारिक दशायें, कामदेव के पाँच बाण, आठ सात्विक दशा, चार प्रकार के कोमलालिंगन, सात प्रकार के कठिनालिंगन दस प्रकार के चुम्बन, पाँच प्रकार के नख विन्यास, पाँच प्रकार के दसन विन्यास,[3], सात प्रकार के गायन दोष, चौदह प्रकार के गीत दोष एवं बारह प्रकार के मुरज वाद्य[4] तथा इसी प्रकार के विषयों की लम्बी-लम्बी सूचियाँ सुव्यवस्थित रूप में प्रस्तुत की गई हैं। निस्संदेह इस प्रकार की सूचियाँ रीतिकालीन शृंगारिक कवियों के लिये अत्यन्त उपादेय एवं महत्त्वपूर्ण रही होंगी।

अन्य कोशों से तुलना

उपर्युक्त विशिष्टताओं को देखते हुये वर्णरत्नाकर वा इसी प्रकार के अन्य वर्णक-साहित्य को रूढ़ परिभाषा में कोश मानना कुछ सन्देहास्पद हो सकता है और आंशिक रूप से यह सत्य भी है। परन्तु उपर्युक्त सामान्य वर्णन वा वस्तुओं के प्रकार या उपभेद कई संस्कृत और आलोच्यकालीन हिन्दी कोशों में मिल जायेंगे। इसके अतिरिक्त वर्णरत्नाकर में प्रस्तुत कुछ 'वर्णन' पिछले पृष्ठों में विवेच्य समानार्थी कोशों से पर्याप्त साम्य रखते हैं। उदाहरण के लिये वर्णरत्नाकर का 'महासिद्धि वर्णन' तथा उमरावकोश के अन्तर्गत संकलित 'अष्टसिद्धि के नाम' तात्त्विक रूप से एक हैं :

"अथ नायक वर्णना·········अणिमा. महिमा. गरिमा. लघिमा. उशिद्ध. वशिद्ध प्राकाम्य. कामावशायिता आठहो जे महासिद्धि तंक पराग·········।"

—वर्णरत्नाकर, द्वितीय कल्लोल पृ० ३।

---

१. वर्णरत्नाकर (मूल) द्वितीय कल्लोल, पृ० ५।
२. वही, चतुर्थ कल्लोल, पृ २१—२२।
३. वही, द्वितीय कल्लोल, पृ० ७-८।
४. वही, पृष्ठ कल्लोल, पृ० ५०-५२।

॥ अष्ट सिद्धि के नाम ॥

अणिमा महिमा प्राप्ति कहि, औ प्राकाम्य वसित्व ।
गरिमा लघिमा आठ ए, सिद्धि जुतई सत्व ॥

—उमरावकोश १।२।३०

वर्णरत्नाकर के 'नदी वर्णना' तथा उदैरामकृत समानार्थी कोश अवधानमाला के 'नदी नाम' प्रायः एक ही प्रकार से संकलित हैं। कवियों वा अध्येताओं के लिये दोनों का उपयोग समान है :

"अथ नदी वर्णना—गंगा. गोमती. गोदावरी. गण्डकी. रेवती. वितस्ता. विपासा. विदिसा. बेत्रवती. तापी. तपसा. ताम्रपर्णी. चन्द्रभागा. चित्रा. चित्रकूढ़ा. नम्रद. सरयू. सरस्वती. करतोया. सिप्रा. पारा. कौशिकी. तुंगभद्रा. कावेरी कर्म्मनासा. सारावती. वाग्वती. देवनदी. देविका. त्रिश्रोता. मधुश्रवा प्रभृति अनेक नदी।"

—वर्णरत्नाकर, सप्तम कल्लोल, पृ० ५६।

\+ + + +

॥ नदी नाम ॥

सरज्यु गंगा सरसुती जमना सफरा जोय ।
गया नरबदा गोमती तापी गिलका तोय ॥
भीम चन्द्रभागा भुजौ सिंधु अरक सुनीर ।
काबेरी कालीनदी साब्रती पयसीर ॥

—अवधानमाला, छन्द ११३-११४।

इसी प्रकार 'वर्णरत्नाकर' में संकलित 'नायकाक अपरः प्रकारः' भिखारीदास द्वारा विरचित नामप्रकाश में वर्णित 'देव वेश्या के नाम' से पर्याप्त साम्यता रखते हैं :

"नायकाक······अपरः प्रकारः॥ सहजन्या .चित्रलेखा. घृताची. उर्व्वशी. मेनका. रम्भा. तिलोत्तमा. देवजानी इये आठहो नायिका अथिकह सेहओ मन्दि होथि जकरे रूपे·········।"

—वर्णरत्नाकर, द्वितीय कल्लोल, पृ० ५।

॥ देव वेश्या के नाम ॥

घृताची जु रंभा बनी मेनका है। सुकेशी सुनो उर्वसी अप्सरा है।
तिलोत्मा मिलै मंजुघोषा बखानी। एई आठ है दे वेश्या सयानी॥

—नामप्रकाश, पृ० ११।

तुलनात्मक निष्कर्ष

तुलना एवं समानता की दृष्टि से वर्णक कोशों को एक नितान्त भिन्न एवं विशिष्ट स्थान प्रदान करना पड़ता है क्योंकि न तो इनमें पिछले पृष्ठों में वर्णित समानार्थी कोशों की शैली में शब्दों के पर्याय संकलित किये गये हैं और न अनेकार्थी कोशों के समान एक शब्द के अनेक अर्थ ही। पुनः न तो इन वर्णक कोशों में अगले पृष्ठों में विवेचित एकभाषीय कोश के अनुकरण पर उसी भाषा के कठिन शब्दों को सरल शब्दों के माध्यम से समझाया गया है और न ही अन्य द्विभाषीय कोशों की शैली पर इनमें हिन्दी शब्दों के विदेशी भाषा में अर्थ दिये गये हैं। ये न 'अर्थ' कोश हैं न 'ज्ञान' कोश। अन्य कोशों की भाँति न तो इनमें संकलित शब्द छन्दों में बद्ध हैं और न अकारादि क्रम में नियोजित।

इतना नितान्त भिन्न मार्ग अपनाते हुये भी ये वर्णक शब्द-संग्रह करने वाले कोश हैं और डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी इनको स्पष्ट रूप से कोश मान चुके हैं।[1] ये एक प्रकार के गद्य में बद्ध शब्द भण्डार हैं जिनमें समान जाति, अवस्था एवं लाघव के आधार पर शब्दों का काव्यात्मक संग्रह किया गया है। इस प्रकार वर्णक कोशों को समानार्थी कोशों के समकक्ष रखा जा सकता है। वर्णक एक प्रकार के 'शब्द' कोश हैं जिनका विवेचन 'अर्थ' वा 'ज्ञान' कोश के प्रसंग में आगे दिया गया है।[2]

भाषा का आधार

वर्गीकरण का द्वितीय आधार भाषा का है। भाषा से तात्पर्य यहाँ दो पक्षों से है—प्रथम कोशों में संकलित मूल, अभिधेय शब्दावली किस विशिष्ट भाषा से सम्बन्ध रखती है, द्वितीय उन मूल शब्दों के अर्थ आदि किस भाषा में दिये गये हैं।

ख़ालिक़बारी, अल्लाख़ुदाई और तुहफ़तुलहिन्द में हिन्दी शब्दों के अर्थ अरबी-फ़ारसी में तो दिये ही गये हैं, अर्थ सम्बन्धी अन्य उक्तियाँ भी फ़ारसी में ही हैं। इसी प्रकार गिलक्राइस्ट एवं टेलर के हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोशों में हिन्दुस्तानी शब्दों के अर्थ वा तत्सम्बन्धी अन्य विवरण अंग्रेज़ी भाषा के माध्यम से हैं। डिंगल कोशों में राजस्थानी भाषा व्यवहृत हुई है और अन्य समानार्थी वा अनेकार्थी कोश ब्रजभाषा में हैं। अतः इन समस्त कोशों को भाषा की दृष्टि से निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:

(१) 'भाखा' या ब्रजभाषा के कोश, (२) हिन्दवी भाषा के कोश, (३) हिन्दुस्तानी कोश, (४) डिंगल कोश, (५) द्विभाषीय कोश, (६) एक भाषीय कोश।

---

१. डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : वर्णरत्नाकर, भूमिका, पृ० २१।
२. देखिये, आगे, पृ० १३४-१४०।

'भाखा' के कोश

भिखारीदास ने अपने नामप्रकाश का दूसरा नाम 'अमरकोश भाषा' भी रखा है। आमुख में उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि प्रस्तुत कोश में 'संस्कृत-नामानि' के अतिरिक्त 'औरो नाम आनि भाषा ग्रन्थन सौं हरि कै' अर्थात् भाषा के ग्रंथ भी नाम संकलन के आधार रहे हैं। कोश के अन्तर्गत भी उन्होंने स्थान-स्थान पर स्पष्ट कर दिया है कि अमुक शब्द भाषा का है और अमुक संस्कृत का।[१] प्रकाशनाम-माला में भी स्थल विशेषों पर मियाँ नूर ने भाषा के शब्दों का उल्लेख किया है।[२] कर्णाभरण कोश के टीका अंश में हरिचरणदास ने 'केतनें भाषा वारे' वक्ताओं द्वारा प्रयुक्त शब्दावली का विवरण दिया है।[३] सुवंश शुक्ल ने संस्कृत शब्दों को न समझने वाले जिज्ञासु पाठकों के ही लिये भाषा में कोश रचा था।[४] नन्ददास और बद्रीदास ने भी अपने कोशों को भाषा-भाषियों के निमित्त निर्मित किया। इसके अतिरिक्त ख़ालिक़बारी, अल्लाखुदाई और तुहफ़त में भी भाषा के ही शब्द अधिक आये हैं।

'भाषा' से तात्पर्य इन समस्त कोशों में ब्रजभाषा से है जिसको प्रारम्भ में 'पिंगल' तथा 'भाषा' नामों से अभिहित किया जाता था।[५] तुहफ़तुलहिन्द में 'बिर्ज' प्रदेश मथुरा और चन्दावा के आसपास की भूमि बताई गई है।[६] इस प्रदेश की भाषा के लिये आलोच्य कोशकारों द्वारा ही नहीं, मध्यकालीन हिन्दी कवियों[७] द्वारा भी 'भाषा' अथवा 'भाखा' शब्द ही प्रयुक्त होता रहा है जिसका तात्पर्य केवल ब्रज क्षेत्रीय भाषा तक ही सीमित न था अपितु यह समूचे हिंदी प्रदेश की साहित्यिक भाषा के लिये प्रयुक्त होता था।[८] तुहफ़तुलहिन्द में दी गई शब्दावली और रूपान्तर एवं लिप्यंतरण पद्धति ब्रजभाषा की ही है।

हिन्दवी भाषा के कोश

ख़ुसरो की ख़ालिक़बारी में भारतीय शब्दों के लिये तीस बार 'हिन्दवी' और पाँच बार 'हिन्दी' शब्द प्रयुक्त हुआ है। अल्लाखुदाई में भी इन शब्दों के लिये

---

१. "बैहरि बयारि भाषा निवाह"— ना० प्र०, पृ० १३।
२. "वक्ष वत्स उर को कहै भाषा छाती जान"— प्र० ना० मा०, पृ० ३१३।
३. "अधर ओष्ट पर्जाय है, केतनें भाषा वारे कहत हैं"—कर्णा०, पृ० ३९ मू०।
४. "पढ़ि सकत जे नहिं संस्कृत तिन हेत भाषा छंद तें"—उ० को० १।१।३१।
५. हिन्दी साहित्य कोश (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ४४५।
६. बिर्ज····· नाम शर जमीने अस्त व आँ मौज़ा मथुरा ऊ चन्दावा दर् नवाही बूदः·········।— तुहफ़तुलहिन्द, पृ० २०४ मूल।
७. दे० तुलसी: दोहावली पद्य ५७२, नन्ददास : रास पंचाध्यायी, अध्याय १, पंक्ति ४०, केशव: रामचन्द्रिका प्रकाश १, पद्य ५, वृन्द सतसई : दोहा ७०५।
८. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा: ब्रजभाषा, पृ० १६-१७।

पैंतालीस बार 'हिन्दवी' या 'हिन्द्वी', और पन्द्रह बार 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया गया है। पादरी आदम ने अपने कोश का शीर्षक 'हिन्दवी भाषाका कोश' अंकित किया है

भारत में रहने वाले मुसलमान फ़ारसी लेखक हिन्दी की देसी भाषा के लिये 'हिन्दी' या 'हिन्दवी' (हिन्दवः+कि या इक्>हिन्दवी) शब्द का प्रयोग करते हैं। फ़ारसी कवियों में औफ़ी (१२२८ ई०) ने सर्वप्रथम हिन्दवी शब्द का प्रयोग हिन्द की (सम्भवतः मध्यप्रदेश की) देसी भाषा के लिये किया है।[१] मध्यकाल में दिल्ली के आसपास से लेकर अवध तक के प्रान्त की देसी भाषा को हिन्दी या हिन्दवी नाम सामान्य रूप से दिया जाता था,[२] जो यहाँ के शिष्ट और शिक्षित मुसलमानों की बोलचाल तथा 'हल्के फुल्के' साहित्यिक प्रयोगों की भाषा थी।[३]

विवेच्य तीनों कोशकारों ने भी 'हिन्दवी' शब्द को इसी अर्थ में लिया है। अल्ला-ख़ुदाई के रचयिता ने हिन्दी या हिन्दी के स्थान पर कहीं-कहीं इसको "हिन्द-ज़बान"[४] के नाम से भी अभिहित किया है। 'हिन्द' से भी यहाँ मध्यप्रदेश का ही तात्पर्य है। तीनों कोशों में संस्कृत के तद्भव, देशज या बोलचाल के शब्द ही अधिक आये हैं जिनमें से संस्कृत के तत्सम शब्द केवल पादरी आदम के कोश में पाये जाते हैं। निष्कर्ष यह कि इन तीनों कोशों की शब्दावली 'भाखा' या 'हिन्दी' कोशों की शब्दावली से भिन्न नहीं है। सामान्य धारणा भी यही है कि ये तीनों शब्द समानार्थक से हैं।[५]

हिन्दुस्तानी कोश

डॉ० गिलक्राइस्ट तथा टेलर के द्विभाषीय कोश 'हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी' कोश के नाम से प्रकाशित हैं। 'हिन्दुस्तानी' से इन कोशकारों का क्या तात्पर्य है, यह आगे के विवेचन से स्पष्ट हो जायेगा। १८वीं शती के पूर्वार्द्ध तक तो हिन्दी, हिन्दवी और हिन्दुस्तानी शब्द सामान्यतया समानार्थक थे परन्तु फ़ोर्ट विलियम कालेज की स्थापना के साथ डॉ० गिलक्राइस्ट की देखरेख में 'हिन्दुस्तानी' में पुस्तकें लिखवाने से यह शब्द एक नया बाना धारण कर आया। फ़ोर्ट विलियम कालेज के लेखकों को ऐसी भाषा तैयार करने के लिये नियुक्त किया गया जो सर्वसाधारण की

---

१. "यके ब ताजी ब यके ब फ़ार्सी व यके ब हिन्दवी"
—अलालु बाब, मुहम्मद औफ़ी, जिल्द दोयम, पृ० २४६।

२. हिन्दी साहित्य कोश (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ८८८।

३. पं० चन्द्रवली पाण्डेय : उर्दू का रहस्य, पृ० ४०-४८।

४. "जामा कपड़ा बुवद ब हिन्द जबान।"
+ + +
"जोहरा रा गोई सुख ब हिन्द जबान।"
—अल्लाख़ुदाई, पंक्ति २६, ७३।

५. हिन्दी साहित्य कोश (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ८८९।

भाषा हो—न मौलवियाना उर्दू-ए-मुअल्ला और न पण्डिताऊ संस्कृतनुमा हिन्दी । "......गिलक्राइस्ट......ने फ़रमाया कि क़िस्से को ठेठ हिन्दुस्तानी गुफ़्तगू में, जो उर्दू के लोग हिन्दू मुसलमान औरत मर्द लड़के बाले, ख़ासो आम आपस में बोलते-चालते हैं—तर्जुमा करो......।"[१]

गार्सां द तासी "अहले-यूरोप लफ़्ज़ हिन्दी से हिन्दुओं की बोली मुराद लेते हैं जिसके लिये हिन्दवी बिहतर है और मुसलमानों की बोली के वास्ते 'हिन्दुस्तानी' का नाम करार दे लिया है......।"[२] इसी प्रकार डॉ० गिलक्राइस्ट भी हिन्दी से हिन्दवी भाषा का व्यापक अर्थ लेते हैं, हिन्दी और हिन्दुस्तानी को समानार्थक समझते हैं, किन्तु हिन्दी से 'हिन्द्वी', 'हिन्दवी', 'हिन्दुई' का भ्रम हो सकता है अतएव हिन्दुस्तानी नाम का ही समर्थन करते हैं ।[३] वे जिस भाषा को हिन्दुस्तानी नाम देते हैं उसके विकास का सिद्धान्त उनके मत से इस प्रकार है—हिन्दवी + अरबी + फ़ारसी = हिन्दुस्तानी । इस प्रकार गिलक्राइस्ट का हिन्दुस्तानी नाम ज़बान रेख़्तः उर्दू-ए-मुअल्ला का समानार्थक है । इसी मत का समर्थन डब्ल्यू० बी० बेली ने अपने मसविदे में किया है ।[४] 'हिन्दुस्तानी' के अन्तर्गत गिलक्राइस्ट तीन शैलियों की गणना करते हैं—दरबारी शैली (उर्दू), मध्यम शैली (वास्तविक हिन्दुस्तानी) तथा ग्रामीण शैली (हिन्दवी) किन्तु विशिष्ट अर्थ में उनका तात्पर्य उर्दू से ही था ।[५]

'हिन्दुस्तानी' शब्द सम्बन्धी इस धारणा के फलस्वरूप गिलक्राइस्ट के समस्त कोश में एक भी संस्कृत का तत्सम शब्द नहीं आया है । जबकि हिन्दी के तद्भव और देशज शब्द पर्याप्त मात्रा में हैं । अरबी-फ़ारसी के शब्द अपेक्षाकृत अधिक संख्या में हैं परन्तु उनमें से प्रचलित शब्द ही प्रायः मिलेंगे ।

इस धारणा का विकास टेलर के कोश में अधिक विस्तार से हुआ । यद्यपि इस विशाल द्विभाषीय कोश में कई संस्कृत के तत्सम एवं संस्कृत से व्युत्पन्न शब्द पर्याप्त संख्या में आये हैं परन्तु इसमें अरबी-फ़ारसी शब्द तो हैं ही, इनके अतिरिक्त, तुर्की, ग्रीक, उज़बेगी, फ्रान्सीसी, पुर्तगाली, लैटिन, अंग्रेज़ी, चीनी और बंगाली शब्द मूल रूप या विकृत रूप में आये हैं ।

---

१. मीर "अम्मन" : बागो बहार ।
२. रिसाला "उर्दू" (त्रैमासिक) जुलाई, १९२३ ई० ।
३. गिलक्राइस्ट : डिक्शनरी, प्राक्कथन ।
४. "हिन्दुस्तानी ज़बान कि जिसका ज़िक्र मेरे दावे में है उसको हिन्दी, उर्दू और रेख़्तः भी कहते हैं ।"—मसविद : डब्ल्यू० बी० बेली : विशाल भारत १९४०, भाग २५, पृ० २८—२४ ।
५. हिन्दी साहित्य कोश, पृ० ८९६ ।

डिंगल कोश

आलोच्य कोशों में डिंगल नाममाला (हरराज), नागराज डिंगल कोश (नागराज पिंगल), हमीरनाममाला (हमीरदान रतनू), अवधानमाला (उदैराम), तथा नाममाला "क" डिंगल के समानार्थी कोश हैं। उदैराम विरचित अनेकारथी कोश एवं वीरभाण रतनू कृत एकाक्षरी नाममाला भी डिंगल भाषा के ही कोश हैं। इन सभी का यथास्थान विवेचन हो चुका है।

डिंगल कोशो की सामान्य तुलनात्मक विशेषताएँ

(१) सभी कोश काण्ड और वर्ग रहित समानार्थी कोशों की पद्धति पर नियोजित हैं। उदैरामकृत अनेकार्थ, नन्ददास विरचित अनेकार्थ और एकाक्षरी नाममाला, फ़क़ीरचन्द प्रणीत एकाक्षरी कोश सुबोधचन्द्रिका के अनुसरण पर निर्मित हैं।

(२) आकार में हरराज का डिंगलकोश और नागराज पिंगल का नागराज डिंगलकोश अत्यन्त लघु हैं--प्रथम में कुल २७ और द्वितीय में २० छन्द हैं। इस दृष्टि से उदैराम विरचित अवधानमाला में सबसे अधिक शब्दों का संकलन है। इसमें कुल ५६१ छन्द हैं।

(३) सभी कोश छन्दों में हैं डिंगलकोश और नागराजकोश में छप्पय, हमीर नाममाला और नाममाला "क" में बेलियो तथा अवधानमाला में दोहे आये हैं।

(४) पर्याय दिये जाने वाले विवेच्य शब्द को सभी कोशों में शीर्षक बनाया गया है।

(५) हमीरनाममाला में गौण प्रसंग अत्यधिक संख्या में आये हैं, प्रत्येक शब्द के पर्याय देने के अनन्तर हरिमहिमा सम्बन्धी उक्तियाँ पर्याप्त मात्रा में आई हैं। इस दृष्टि से उदैरामकृत अवधानमाला में छन्दपूर्ति आदि के लिये पर्यायवाची शब्दों के अतिरिक्त बहुत कम निरर्थक शब्दों का प्रयोग हुआ है।

(६) शब्दों के नाम-पर्याय तथा रूप प्रायः सभी कोशों में मिलते-जुलते हैं। इसीलिये कई परवर्ती कोश अपने पूर्ववर्ती कोशों के परिष्कृत एवं परिवर्द्धित संस्करण से प्रतीत होते हैं। यहाँ तक कि हिन्दी नाम-पर्यायों के अन्तर्गत अरबी-फ़ारसी के वही शब्द प्रायः कई कोशों में उपलब्ध होते हैं। उदाहरण के लिये बुधी (बुद्धि) के लिये, अरबी "अकलि" (अक़्ल) हमीरनाममाला, अवधानमाला तथा नाममाला "क" में और धरती के लिय फ़ारसी 'जमी' (ज़मीं) डिंगलनाममाला, नागराज डिंगलकोश, हमीरनाममाला, अवधानमाला एवं नाममाला "क" में समान रूप से मिलते हैं।

(७) नामों के कुल पर्याय केवल नागराजडिंगलकोश में गिनाये गये हैं, अन्य किसी में नहीं।

(८) शब्द रूप प्रायः सभी कोशों में एक से हैं—'न' का प्रायः 'ण' हो गया है और अनुनासिक वर्ण के पहले अक्षर पर अनुस्वार रख दिया है। शब्दों की रूप विकृति प्रायः स्थान-स्थान पर दृष्टिगत होती है।

(९) कई स्थानों पर पर्यायवाची शब्दों का रूप एकवचनात्मक से बहुवचनात्मक कर दिया गया है जसे तलवार के लिये करवांणां, करवालां; घोड़े के लिये हयां, रेवतां, साकुरां, अस्सां, जंगमां, पमंगां, हैवरां, आदि।

डिंगल कोशों की शब्दावली

प्रायः समस्त डिंगल कोशों का मूल आधार संस्कृत कोश हैं जिनके तत्सम या तद्भव रूप स्थान-स्थान पर आये हैं। आवश्यकतानुसार अरबी-फ़ारसी शब्द भी पर्याय रूप में संकलित कर लिये गये हैं। परन्तु इन कोशों में कुछ ऐसे स्थानीय या देशज पर्याय शब्द भी हैं जो अन्य ब्रजभाषीय, एकभाषीय या द्विभाषीय कोशों में उपलब्ध नहीं होते। डिंगल कोशों में संकलित यह विशिष्ट शब्दावली दृष्टव्य है—

अंकहूतलेखाल (मंत्री)[१], आखू (मूसा)[२], आखणक (सूअर)[३], उदैभोर (चन्द्र)[४], ऊडंड (घोड़ा)[५], ऊझेल (भाला)[६], कमधांण (जोधा)[७], कह्लार (फूल)[८], कांटारखी (जूता)[९], कांमधीठ (नेत्र)[१०], कुलायतौ (मकरी)[११], केकांण (घोड़ा)[१२], कोलीवाड़ (मकरी)[१३], खगक (मूसा)[१४], खीरकंठ (बालक)[१५], खेयारा (नखत्र)[१६], गाडोलो (रथ)[१७], गाबड़ि (ग्रीवा)[१८], गुणयल (चंद्र)[१९], गढ़ावाच (मंत्री)[२०], घणी-चोधार (मंत्री)[२१], घणी-भिड़ (जोधा)[२२], घड़ूस (सेना)[२३], घोड़ांघटा (सेना)[२४], चड़तत्र (समुद्र)[२५], चोडोलो (हाथी)[२६], चौपड़ (घृत)[२७], जंभालणी (नदी)[२८], जड़ाग (घोड़ा)[२९], जाखोड़ो (ऊँट)[३०], झंकारी (भ्रमर)[३१], झलल (भाला)[३२], टातंब (पानी)[३३]

---

१. डिं०ना०मा०, छं० २। २. ह०ना०मा०, छं० ५। ३. वही, छं० ६९।
४. ना०मा० "क", छं० ७४। ५. ना०डिं०, छं० ७। ६. वही, छं० ११।
७. डिं०ना०मा०, छं० ३। ८. ह०ना०मा०, छं० ६२। ९. अ०मा०, छं० ५१९।
१०. ना०डिं०, छं० १३। ११. अ०मा०, छं० ४०६। १२. ना०डिं०, छं० ७।
१३. अ०मा०, छं० ४०६। १४. ह०ना०मा०, छं० ५। १५. वही, छं० १५९।
१६. ना०मा० "क", छं० ७५। १७. डिं०ना०मा०, छं० ६। १८. ह०ना०मा०, छं० १७३।
१९. ना०मा० "क", छं० ७४। २०. डिं०ना०मा०, छं० २। २१. वही, छं० १।
२२. डिं०ना०मा०, छं० ३। २३. अ०मा०, छं० २६४। २४. वही, छं० २६४।
२५. ना०डिं०, छं० ६। २६. डिं०ना०मा०, छं० ४। २७. अ०मा०, छं० ३९०।
२८. ह०ना०मा, ०छं० ३७। २९. ना०डिं०, छं० ७। ३०. ना०डिं०, छं० ५।
३१. ह०ना०मा, ०छं० ६४। ३२. ना०डिं०, छं० ११। ३३. वही, छं० ५।

टोगड़ा (बछ)[१], टोघड़ी (बाछड़ा)[२], डागालां (बुरझी)[३], डिगर (चाकर)[४], डूँगर (पहाड़)[५], ढलकतो (हाथी)[६], ढीलढालो (हाथो)[७], तुकला (मोर)[८], तोतला (पार्वती)[९], दाढ़ालह (सिंह)[१०], दिलरखी (दासी)[११], धणी-माल (राजा), धणी-चोधार (राजा)[१२], नरजपूरी (चन्द्र)[१३], नाकवा (खेवटिया)[१४], नुतकली (तरंग)[१५], प्राझोपुरस (मंत्री)[१६], फोणनाखतो (ऊँट)[१७], फोजगाहणां (जोधा)[१८], बणेसुर[१९], भगतण (वेस्या)[२०], भाखर (पर्वत)[२१], भुभारब (सिंह)[२२], मंगहदी (सिंह)[२३], माल बन्धण (तलवार)[२४], मोहितचखां (केस)[२५], रख्यातण (फरी)[२६], रहण (घर)[२७], लवुअसग (गरुड़)[२८], लोहतोड़ो (ऊँट)[२९], लोहलाठ (सेर)[३०], साथण-क्रोध (अग्नि)[३१], साथग-समीर (अग्नि)[३२], सांभलण (श्रवण)[३३], सारङ्गकोला (युद्ध)[३४], सहड़ (हाथी)[३५], सुंडाडंड (हाथी)[३६], सुधवट्टी (तलवार)[३७], हथ्थहेक (कटारी)[३८]।

द्विभाशीय कोश

विदेशियों द्वारा भारत पर शासन एवं तदुपरान्त यहाँ की सभ्यता एवं संस्कृति को अपनाने की आवश्यकता के फलस्वरूप कुछ द्विभाषीय कोशों का प्रादुर्भाव हुआ। शासकीय कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिये विजेता और विजित दोनों पक्षों ने एक दूसरे की शब्दावली को समझने की चेष्टा की। अकबर के राज्यकाल में कृष्णदास द्वारा निर्मित 'पारसीप्रकाश', वेदांगराय विरचित 'पारसीप्रकाश', व्रजभूषणकृत

१. अ० ना० मा०, छं० ३८६।
२. ह० ना० मा०, छं० २५३।
३. डि० ना० मा०, छं० ११।
४. ह० ना० मा०, छं० २४०।
५. वही, छं० ८७।
६. ना० डि, छं० ४।
७. वही, छं० ४।
८. ना० मा० "क", छं० १०४।
९. ह० ना० मा०, छं० ४।
१०. ना० डि०, छं० २०।
११. अ० मा०, छं० ४६६।
१२. डि० ना० मा०, छं० १।
१३. ना० डि०, छं० १९।
१४. अ० मा०, छं० ४४०।
१५. ह० ना० मा०, छं० ३९।
१६. डि० ना० मा०, छं० २।
१७. ना० डि०, छं० ५।
१८. डि० ना० मा०, छं० ३।
१९. ना० डि०, छं० १७।
२०. अ० मा०, छं० ५०२।
२१. ना० मा० "क", छं० १२१।
२२. ना० डि०, छं० २०।
२३. वही, छं० २०।
२४. वही, छं० ९।
२५. अ० मा०, छं० ३०२।
२६. डि० ना० मा०, छं० १०।
२७. अ० मा०, छं० २०४।
२८. ना० डि० छं०, १५।
२९. वही, छं० ५।
३०. वही, छं० १४।
३१. वही, छं० १।
३२. वही, छं० १।
३३. अ० मा०, छं० २९७
३४. वही, छं० ११४।
३५. ना० डि०, छं० ४।
३६. डि० ना० मा०, छं० ४।
३७. ना० डि०, छं० ९।
३८. डि० ना०मा०, छं० ९।

'पारसी विनोद' एवं महाराज शिवाजी की प्रेरणा से निर्मित 'राज व्यवहार कोश' का उल्लेख पीछे किया जा चुका है।[1] इन सभी कोशों का उद्देश्य संस्कृत तथा फ़ारसी और अरबी भाषा-भाषियों को एक दूसरे की शब्दावली से परिचित कराना था।

उक्त कोशों की पृष्ठभूमि पर आलोच्यकाल में हिन्दी के भी कुछ ऐसे कोश निर्मित हुये जिनमें हिन्दी शब्दावली के तदर्थी विदेशी शब्द दिये गये हैं। विवेच्य हिन्दी कोशों में खुसरो की ख़ालिक़बारी, गुमनाम लेखक कृत अल्लाखुदाई, मिर्ज़ा ख़ाँ विरचित तुहफ़तुलहिन्द, कुंवरकुशल द्वारा निर्मित पारसीपारसातनाममाला, डॉ० गिलक्राइस्ट द्वारा संकलित 'ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' तथा टेलर और हण्टर के युगल प्रयासों के फलस्वरूप निर्मित 'ए डिक्शनरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' इसी प्रकार के द्विभाषीय कोश हैं।

सामान्य तुलनात्मक विशेषताएँ

(१) समस्त कोशकारों का उद्देश्य विदेशी अध्येताओं को हिन्दी की शब्दावली से परिचित कराना था। फलतः दो भाषा के ऐसे शब्द, जो एक ही भाव या विचार को व्यक्त करते हों, इनमें संकलित किये गये हैं। पूर्व वर्णित कुछ समानार्थी कोशों में विदेशी शब्द आये हैं, परन्तु वहाँ उनका संकलन मूल संस्कृत या हिन्दी के पर्याय के रूप में किया गया है यथा—'धरती' के अन्य पर्याय गिनाते समय फ़ारसी 'ख़ाक' और 'ज़मी' को भी 'धरती' का ही एक अन्य पर्याय मान लिया गया है।[2] परन्तु द्विभाषीय कोश ख़ालिक़बारी में स्पष्ट रूप से ज़मीं को हिन्दी शब्द धरती का फ़ारसी तदर्थी शब्द बताया गया है।[3] इसी प्रकार भिखारीदासकृत नामप्रकाश में 'सेना' के समानार्थी शब्द छन्दोबद्ध करते समय फ़ारसी 'फौज़' भी संकलित कर लिया गया है।[4] परन्तु विवेच्य द्विभाषीय कोशों में एक शब्द के न तो कई पर्याय हैं और न कई अर्थ ही। इनमें केवल एक हिन्दी शब्द लेकर उसी भाव का विदेशी रूप प्रस्तुत किया गया है। इतना अवश्य है कि मिर्ज़ा ख़ाँ, गिलक्राइस्ट तथा टेलर के कोशों में एक ही हिन्दी शब्द के कई विदेशी शब्द दिये गये हैं।

(२) पूर्व वर्णित समस्त कोश छन्दों में निर्मित हैं परन्तु विवेच्य द्विभाषीय कोशों में कई कोश पद्य में न होकर गद्य में रचे गये हैं।

---

१. देखिये पीछे—संस्कृत में कोश ग्रंथ, भूमिका।
२. तुंगी वसुधा इला भोम भरथरी भण्डारी।
   खाक जमी दरदरी धरैती धूतारी॥ —ना० डि०, छन्द ८।
३. "अरज धरती फ़ारसी बाशद जमीं" —ख़ा० बा०, पंक्ति २३।
४. ना० प्र०, पृ० २०८।

(३) समानार्थी या अनेकार्थी कोशों का आधार कोई न कोई एक या इससे अधिक संस्कृत वा पूर्ववर्ती हिन्दी कोश रहा है परन्तु द्विभाषीय कोशों पर ऐसा कोई प्रभाव नहीं है।

(४) समस्त समानार्थी एवं अनेकार्थी कोशों में रूढ़, परम्परानुगत एवं साम्प्रदायिक शब्दावली का ही संकलन किया गया है। उनमें संस्कृत के तत्सम शब्द ही अधिकांश संख्या में आये हैं। परन्तु आलोच्य द्विभाषीय कोश में संस्कृत के तत्सम शब्द कम और तद्भव एवं देशज शब्द अधिक संख्या में संकलित किये गये हैं।

(५) पूर्व विवेचित समानार्थी वा अनेकार्थी कोशों में नाम संज्ञाओं का ही संकलन किया गया है। विशेषण कम मात्रा में आये हैं। कुछ क्रियाओं के पर्याय हैं, परन्तु उनका भी संज्ञारूप ही प्रस्तुत किया गया है। इसके विपरीत आलोच्य द्विभाषीय कोशों में केवल संज्ञा ही नहीं, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रियाविशेषण, एवं अव्यय भी पर्याप्त मात्रा में समाहृत हैं। इस दृष्टि से द्विभाषीय कोश अधिक पूर्ण हैं। समस्त द्विभाषीय कोशों का शब्द-संकलन सम्बन्धी आधार नितान्त मौलिक एवं स्तुत्य है।

(६) कोश सम्बन्धी आवश्यक उपादानों की दृष्टि से द्विभाषीय कोश अधिक महत्त्वपूर्ण हैं। शब्दों का अकारादिक्रम से नियोजन, व्याकरणिक टिप्पणियाँ तथा शब्द-सम्बन्धी अन्य आवश्यक ज्ञातव्य बातों से भी यथासम्भव परिचित कराया गया है, परन्तु समानार्थी वा अनेकार्थी कोशों में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं।

(७) अर्थ देने का वास्तविक प्रयास केवल द्विभाषीय कोशों में ही है।

(८) शब्द कोश के अतिरिक्त व्यर्थ के गौण प्रसंग केवल समानार्थी वा अनेकार्थी कोशों में ही आये हैं, द्विभाषीय में नहीं।

तुलनात्मक वर्गीकरण

विवेचन की सुविधा के लिये आलोच्य द्विभाषीय कोशों को निम्न वर्गों में विभाजित किया जा सकता है—(१) पद्यबद्ध और गद्यबद्ध कोश, (२) हिन्दी-फ़ारसी और हिन्दी-अँग्रेज़ी कोश।

(१) पद्यबद्ध और गद्यबद्ध कोश—ख़ालिक़बारी, अल्लाख़ुदाई तथा पारसी-पारसातनाममाला पद्यबद्ध द्विभाषीय कोश हैं, और तुहफ़तुलहिन्द, 'ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' (गिलक्राइस्ट) तथा 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' गद्यबद्ध द्विभाषीय कोश। यहाँ 'गद्यबद्ध' शब्द कुछ भ्रामक प्रतीत होता है, किंतु गद्यबद्ध उन्हें इसलिये कहा गया है कि ये कोश पहले तो पद्य में नहीं हैं, दूसरे शब्दों के सम्बन्ध में दी गई टिप्पणियाँ गद्य में हैं। ख़ालिक़बारी और अल्लाख़ुदाई में बरवै तथा रहिम छन्दों का प्रयोग है परन्तु पारसातनाममाला में केवल दोहे हैं।

(अ) पद्यबद्ध कोशों में एक हिन्दी शब्द का एक ही तदर्थी फ़ारसी या अरबी शब्द दिया गया है, परन्तु गद्य में निर्मित कोशों में आवश्यकतानुसार एक से अधिक फ़ारसी, अरबी या अँग्रेज़ी शब्दों का आश्रय लेकर मूल हिन्दी शब्द के यथासम्भव अर्थ बताये गये हैं। 'तेज' शब्द का ख़ालिक़बारी[1] में केवल 'चर्मर' तदर्थी दिया गया है परन्तु उसी 'तेज' को मिर्ज़ा ख़ाँ ने सात अरबी-फ़ारसी समानार्थी शब्दों द्वारा स्पष्ट किया है।[2] इसी प्रकार टेलर के कोश में 'ढब' शब्द को सोलह अँग्रेजी शब्दों के माध्यम से समझाने का प्रयास है।[3]

(आ) पद्यबद्ध कोशों में हिन्दी और विदेशी शब्दों का कोई क्रम नहीं है। पहले हिन्दी शब्द है या विदेशी इसका कोई सुनिश्चित नियम नहीं अपनाया गया है। तीनों पद्यबद्ध कोशों में स्थान-स्थान पर कहीं पहले हिन्दी शब्द आता है और उसके बाद फ़ारसी या अरबी रूप। कहीं पहले अरबी-फ़ारसी शब्द है और तत्पश्चात हिन्दी शब्द। परन्तु गद्यबद्ध कोशों में यह स्थिति नहीं है। गद्य में निर्मित विवेच्य तीनों कोश पहले हिन्दी और फिर उसका विदेशी रूप प्रस्तुत करते हैं।

(इ) पद्यबद्ध द्विभाषीय कोशों में शब्द-संकलन का कोई वैज्ञानिक आधार नहीं है। ख़ालिक़बारी में समस्त शब्द अस्त-व्यस्त रूप से छन्दों में बद्ध किये गये हैं। अल्ला-ख़ुदाई के रचयिता ने कुछ अधिक व्यवस्थित क्रम अपनाने की चेष्टा की परन्तु उसका भी कोई सुसम्बद्ध दृढ़ आधार नहीं है। पारसीपारसातनाममाला अपेक्षाकृत दस वर्ग की शब्दावली को समेटने केक ारण दस "बाब" में विभाजित है। इसके विपरीत गद्य में निर्मित तीनों कोश पूर्णतः अकारादिक्रम में हैं। गिलक्राइस्ट ने अँग्रेज़ी वर्णक्रम और टेलर ने उर्दू तथा मिर्ज़ा ने फ़ारसी वर्णक्रम का प्रयोग अपने कोशों में किया।

(ई) पद्यबद्ध द्विभाषीय कोशों में हिन्दी शब्दों के तदर्थी अरबी-फ़ारसी शब्द देने के अतिरिक्त अन्य कोई आवश्यक बातें नहीं बताई गई हैं। गिलक्राइस्ट की 'वाके-बुलेरी' भी एक सीमा तक इस सम्बन्ध में इन्हीं कोशों का अनुकरण करती है परन्तु तुहफ़तुलहिन्द और 'ए डिक्शनरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' केवल हिन्दी शब्दों के

---

१. **जिफ्त ऐंठन चर्ब चीकन शोर खार।**
तेज चर्मर जीभ जाने यह विचार॥ —ख़ालिक़बारी, पंक्ति ५६।

२. **तेज······ब माना आफ़ताब व ताबिश व तेज़ी व तुन्दी व इक़बाल व जाहो जलाल बुवद······। —तुह०, पृ० २२६ मू०।**

३. **ढब**...n.s.m. shape, form, manners, breeding, behaviour, mode, method, knock, knowledge, fashion, style, way, address, dexterity, art, position.

—ए डिक्शनरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश II, पृ० ९४।

विदेशी अर्थ ही नहीं देते, इन कोशों में शब्दों की व्याकरणिक टिप्पणियाँ, आवश्यक निरुक्तियाँ तथा शब्द विशेष की पूर्ण सांस्कृतिक वा ऐतिहासिक पृष्ठभूमि भी विस्तार से वर्णित की गई है।

(२) **हिन्दी-फ़ारसी और हिन्दी-अँग्रेज़ी कोश**—वर्गीकरण का दूसरा आधार भाषा है। विवेच्य द्विभाषीय कोशों में से ख़ालिक़बारी, अल्लाख़ुदाई, पारसीपारसातनाममाला और तुहफ़तुलहिन्द में हिन्दी शब्दों के फ़ारसी तदर्थी शब्द दिये गये हैं, इन्हीं कोशों में आवश्यकतानुसार अरबी शब्द भी आ गये हैं। पारसीपारसातनाममाला में देवनागरी लिपि और अन्य तीनों में नस्ता'लीक़ लिपि का प्रयोग किया गया है।

इसके विपरीत डॉ० गिलक्राइस्ट कृत 'ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' तथा टेलर विरचित 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' में हिन्दी या हिन्दुस्तानी शब्दों के अंग्रेज़ी समानार्थी शब्द हैं। दोनों की लिपि रोमन है। टेलर के कोश में मूल शब्द को नस्ता'लीक़ लिपि में भी अंकित किया गया है। इसके अतिरिक्त यदि शब्द संस्कृत का तत्सम है तो उसको या उसके मूल रूप को देवनागरी लिपि में भी लिखा गया है।

कुछ द्विभाषीय कोशों की एक विशिष्टता

उपर्युक्त विवेचन से यह ज्ञात होता है कि सामान्यतः विवेच्य द्विभाषीय कोशों में मूल हिन्दी शब्द के विदेशी तदर्थी शब्द दिये गये हैं। ये तदर्थी शब्द फ़ारसी, अरबी या अँग्रेज़ी भाषा में से कोई भी हो सकते हैं परन्तु टेलरकृत 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' तथा मिर्ज़ा खाँ विरचित तुहफ़तुलहिन्द में स्थान विशेषों पर इस नियम की अवहेलना कर हिन्दी शब्द का दूसरे बहुप्रचलित हिन्दी शब्द द्वारा भी अर्थ देने का प्रयास किया गया है। व्यक्तिवाचक शब्दों के सम्बन्ध में तो यह प्रणाली अत्यन्त ही फलदायी सिद्ध हुई। यहाँ पर इतना निर्दिष्ट करना आवश्यक है कि जो हिन्दी शब्द मूल हिन्दी शब्द के अर्थ देने के लिये प्रयुक्त हुये हैं, उनका विदेशी तदर्थी रूप भी यथाक्रमानुसार अवश्य दिया गया है। तुहफ़तुलहिन्द में व्याध के लिये भीलों की जाति (पृ० २०४ पी०), इन्द्रबधू के लिये बीरबहूटी (पृ० १९९ पी०), बरुन के लिये दिक्पाल (पृ० २१० मू०), जसोमत(ति) के लिये जसोदा (पृ० २३१ पी०), चूनर के लिये बाँधनू (पृ० २३६ पी०), चात्रिक के लिये पपीहा (पृ० २३७ पी०), पारजातक के लिये कल्पबिच्छ (पृ० २३८ पी०), कौस्तुभ के लिये मनि (२३८ मू०), छीमर के लिये झींट (२४० मू०), दुज(द्विज) के लिये बराहमन (पृ० २४१ मू०), सारदा के लिये सरसती (पृ० २५० मू०), श्रीफल के लिये नारजल (पृ०

२५५ पी०), किंसुक के लिये पलास (२६४ मू०) मार के लिये कामदेव (२७७ पी०), एवं मराल के लिये हंस (२८० मू०), इस प्रकार के कुछ उदाहरण पर्याप्त हैं। यही नहीं, विशिष्ट हिन्दी शब्दों का सामान्य हिन्दी शब्द देकर भी अर्थ देने का प्रयास इस बहुमूल्य द्विभाषीय कोश में किया गया है। युधिष्ठिर के लिये राजा (२४१ मू०), और नन्द के लिये ग्वाल (२८३ पी०) इसी प्रकार के कुछ सत्प्रयास हैं।

द्विभाषीय कोशों की कुछ अस्पष्टताएँ

एक निश्चित परम्परा, प्रयोग एवं वैज्ञानिक आधार न रहने के कारण आलोच्य द्विभाषीय कोशों में, समानार्थी कोशों के ही समान, सभी हिन्दी शब्दों के विदेशी भाषा में उचित रूप से तदर्थी शब्द नहीं दिये गये हैं। अल्लाख़ुदाई में 'गंगा' के लिये 'जेहूं' और 'यमुना' के लिये 'सेहूं'[1] वास्तविक रूप से एक दूसरे के तदर्थी नहीं कहे जा सकते। गंगा, यमुना व्यक्तिवाचक संज्ञा हैं; यह अवश्य हो सकता है कि जो महत्त्व इन दोनों पवित्र नदियों का हिन्दुस्तान में है वही महत्त्व उक्त तदर्थी नदियों का ईरान के लिये भी हो। तुहफ़तुलहिन्द में भक्त[2] और भित्त (भृत्य)[3] के लिये एक ही फ़ारसी शब्द 'खादिम' से काम चलाया गया है जो ऊपरी दृष्टि से उचित होते हुये भी मूल हिन्दी शब्दों का यथार्थ भाव प्रकट नहीं कर सकता। 'जात्रा' की पवित्रता 'मज्मा' एवं 'हंगामः' ने मटियामेट कर दी है।[4] 'कीर्तन' की आध्यात्मिकता केवल 'रक़्स' (नृत्य)[5] से नहीं प्रकट हो सकती। 'होम' में केवल आग ही नहीं जलाई जाती (आतश अफ़रोख़्तन)।[6] 'कामुक' का अर्थ 'शौहर'[7] सामान्य रूप से मान्य न होगा। 'पुरोहित' लोग भोजन अवश्य बनाते हैं परन्तु उनको 'बाबरची'[8] कहना उनका उपहास करना है। इस प्रकार के अस्पष्ट अर्थों की सभी द्विभाषीय कोशों में भरमार है।

एकभाषीय कोश

वैसे तो समस्त समानार्थी, वर्गात्मक, मानमाला, अनेकार्थी एवं एकाक्षरी कोश एकभाषीय कोश कहे जा सकते हैं, परन्तु यहाँ पर 'एकभाषीय' शब्द को 'द्विभाषीय' के वज़न पर ग्रहण किया गया है। जहाँ द्विभाषीय कोशों में हिन्दी शब्दों के अर्थ उसी भाव के द्योतक विदेशी या अन्य भाषीय शब्दों द्वारा व्यक्त किये गये हैं, वहाँ एकभाषीय कोश में हिन्दी शब्द का अर्थ अन्य हिन्दी शब्द द्वारा ही स्पष्ट किया गया है। आलोच्य

---

१. "हस्त गंगा ब फ़ार्सी जेहूं, जमुना रा नेज नाम सेहूं"—अल्लाख़ुदाई, पृ० २३।
२. तुहफ़तुलहिन्द, २१३ मू०।
३. वही, पृ० २१५ मू०।
४. वही, पृ० २३१ मू०।
५. वही, पृ० २६६ मू०।
६. वही, पृ० २८६ पी०।
७. वही, पृ० २६४ मू०।
८. वही, पृ० २१८ मू०।

कोशों में 'पादरी आदम साहीब का संग्रह कीया हूआ' हिन्दवी भाषा का कोश इसी प्रकार का कोश है।

तुलनात्मक दृष्टि से प्रस्तुत कोश को टेलर कृत 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' का परिष्कृत हिन्दी संस्करण कहा जा सकता है। 'हिन्दवी भाषा का कोश' में हिन्दी के ही प्रचलित शब्द आये हैं, जिनको देवनागरी वर्णक्रम में नियोजित किया गया है। दोनों कोशों का तुलनात्मक अध्ययन आगे "शब्दनियोजन" शीर्षक अध्याय में प्रस्तुत किया गया है; यहाँ पर इतना ज्ञातव्य है कि यदि द्विभाषीय कोशों में हिन्दी शब्द 'बांधना' के विदेशी तदर्थी रूप[1] होंगे तो विवेच्य एकभाषीय कोश में उसी क्रिया के वाचक अन्य हिन्दी शब्द होंगे।[2]

अर्थ का आधार

आलोच्य कोशों को वर्गीकृत करने का एक अन्य आधार शब्द के सम्बन्ध में दी गई उक्तियाँ या अन्य संकेत भी हैं। सामान्यतः विवेच्य कोश ग्रंथों को शाब्दिकी मात्र समझ कर टाल दिया जाता है। निस्सन्देह कुछ शब्द-कोश केवल "शाब्दिकी" मात्र हैं परन्तु कुछ ऐसे भी कोश ग्रंथ हैं, जिनमें शब्दों के अर्थ ही नहीं, अन्यान्य ज्ञातव्य बातों से भी पाठक को परिचित कराया गया है। सुविधा के लिये अर्थ की मात्रा का आधार मानते हुये इनको 'शब्दकोश', 'अर्थकोश' एवं 'ज्ञानकोश' की संज्ञा देना उचित होगा।

'शब्द' कोश

इसका तात्पर्य 'डिक्शनरी' या 'लेक्सिकन' से नहीं अपितु ऐसे कोशों से हैं जिनमें शब्दों का संकलन मात्र ही विशेषरूप से कोशकारों को अभिप्रेत रहा। शब्दों को गिनाने के अतिरिक्त इस प्रकार के कोशों में शब्द सम्बन्धी अन्य किसी भी प्रकार की जानकारी देने का तनिक भी प्रयास नहीं किया गया है। यहाँ तक कि शब्दों के विभिन्न रूपों का निर्देश भी इनमें नहीं हो पाया है।

आलोच्यकालीन समस्त समानार्थी कोशों को 'शब्द' कोशों की सीमा में रखा जा सकता है। इन कोशों में शब्द विशेष के अनेक 'नाम' प्रस्तुत किये गये हैं। कभी-कभी उन नामों का पारस्परिक सूत्र भी अत्यन्त ही सूक्ष्म होता है—इतना सूक्ष्म कि उस सूत्र में पिरोये समस्त शब्दों का कोई पूर्वापर सम्बन्ध या तारतम्य भी आसानी

---

१. बांध····· बमाना······अत्र अज्ञ बस्तन बुवद।
—तुह०, पृ० २०४ पी०।

२. बांधना—जकड़ना, गांठना, लगाना, बन्द कर्ना, बनाना, अटकाना, लपेटना, उठाना, तकाना
—हिन्दवी० पृ० २२१।

से लक्षित नहीं होता। उदैरामकृत समानार्थी कोश 'अवधानमाला' से एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

॥ सुरब्रख नांम ॥

सुरतर गोरक सिंसपा देवदार मंदार ।
सिवाहलद केसर सुभंग वट पीपल विसतार ॥
आंबा चांपा आंबली निगड नींब नालेर ।
फणस बिजौरा जांमफल कृष्णा साग कणेर ॥
नीबू दाड़म नारंगी सीताफल सहतूत ।
काठ ठीबरू कंदली यल अनास अदभूत ॥
वेलीदाखां पेमदी खारक ताड़ खिजूर ।[1]

उक्त छन्दों में गिनाये गये शब्द भिन्न-भिन्न वृक्षों के नाम हैं। शीर्षक 'सुरब्रखनाम' भी अत्यन्त भ्रामक है। वट, पीपल, श्रीफल, या कदली को इनकी पवित्रता के कारण सुरवृक्ष माना जा सकता है, परन्तु 'ताड़-खिजूर' देववृक्ष किस सीमा तक हैं इसका निर्धारण आसान न होगा। उपर्युक्त छन्दों में संकलित नामों के सम्बन्ध में पाठक को इन नाम विशेषों के अलावा अन्य कोई भी सूचना नहीं मिलती। शब्द अपने तक ही सीमित हैं इसके अतिरिक्त उनमें अन्य कोई विशेषता नहीं। अतएव 'शब्द' मात्र का संकलन करने के उद्देश्य पर निर्मित कोशों को 'शब्द'-कोश की संज्ञा देना उचित है।

'अर्थ' कोश

जिन कोशों में संकलित शब्दों को आधार मानकर उनके सम्बन्ध में अन्य उपादेय सूचनाएँ देने का प्रयास किया गया है, उन समस्त कोशों को "अर्थ" कोश के नाम से अभिहित किया जा सकता है। प्रत्येक शब्द किसी पदार्थ की प्रतीति कराता है।[2] उस पदार्थ की प्रतीति शब्दकोश किसी अन्य शब्द या शब्द समूहों के माध्यम से कराते हैं। ये माध्यम कई प्रकार के हो सकते हैं। जिनका विस्तृत विवरण एक अगले अध्याय में दिया गया है।[3] इन माध्यमों का आश्रय लेकर अर्थ कोशों में शब्दों के अन्तर्निहित भाव की व्यंजना की गई है।

'अनेकार्थी' कोशों में एक शब्द के अनेक अर्थ छन्दबद्ध किये गये हैं जिनके स्थान पर मूल शब्द का भी प्रयोग किया जा सकता है, 'जलज' शब्द के रत्न, मोती, कमल,

---

१. अवधानमाला, छन्द १२९-१३२।
२. "प्रतीति पदार्थको लोके ध्वनिः शब्दः इत्युच्यते"—महाभाष्य।
३. दे० आगे "अर्थ-विवेचन के माध्यम", पंचम अध्याय।

चन्द्रमा, विष, शंख, बड़वाग्नि, लक्ष्मी, कमलिनी, पानी, प्राणी एवं मीन आदि कई अर्थ हैं,[१] इन सभी शब्दों को मूल शब्द 'जलज' ध्वनित करता है। स्थल विशेष को छोड़कर इन शब्दों के स्थान पर 'जलज' शब्द प्रयुक्त किया जा सकता है। एकाक्षरी कोशों में भी एक अक्षर के कई अर्थ दिये गये हैं, जैसे 'प' के लिये पापी, सूर्य, रक्षक, वायु, वृक्ष, शिक्षक, नृपति, शेर, काम एवं पीना,[२] वृषण और आत्मज।[३] आदमकृत एकभाषीय हिन्दवी कोश में क्लिष्ट हिन्दी शब्दों को उसी भाव के द्योतक एक या अधिक सुपरिचित शब्दों के द्वारा समझाया गया है यथा 'छल' का अर्थ है कपट, ठगाई, धोखा, धांधल।[४] समस्त द्विभाषीय कोशों में हिन्दी शब्दों के तदर्थी या लगभग उसी भाव के द्योतक विदेशी शब्द एक स्थान पर रखे गये हैं यथा आ, बया; बैठ, बनशीं; देख, बेनी; खा, वखुर; पीस, बेसा;[५] या बक्काल, बनिया; कश्नीज़, धनिया; हज्जाम, नाऊ[६] आदि। कभी-कभी एक शब्द के कई अर्थ भी इन द्विभाषीय कोशों में दिये गये हैं, यथा तुहफ़तुलहिन्द में हिन्दी शब्द 'बीर' के चार 'माना' दिये गये हैं—बरादर, शुज़ाअत, बहादुरी या बहादुर, और मुवक्किल या जिन। गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी और टेलरकृत 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एंड इंग्लिश' में हिन्दुस्तानी शब्दों के अंग्रेज़ी समानार्थी शब्द दिये गये हैं।

उपर्युक्त समस्त कोशों को "अर्थ" कोश की संज्ञा से अभिहित किया जा सकता है। इन समस्त कोश ग्रंथों में हिन्दी शब्दों के अनेक अर्थ या विदेशी रूप आदि ही नहीं प्रस्तुत हैं, प्रत्युत स्थान-स्थान पर शब्दों का यथार्थ प्रयोग या प्रभाव आदि बताकर भी उस शब्द का सम्यक् महत्त्व प्रदर्शित किया गया है।

---

१. जलज रत्न मोती कमल, बिधु विष शंख अगीन।
जलजा पद्मा पद्मिनी, जलज तोय जिव मीन॥

—अने० चन्द०, पृ० ११।

२. ॥ प नांम ॥
पापी रव रक्षक पवन, व्रख गुर भूप बखांण।
सिंघ काम पीवन सुणौ, पढ़ प नाम प्रमाण॥

—एका० उदै०, छन्द, १९०।

३. "पः पापो पूषा वृषण आत्मजः"— एकार्थनाममाला, सौभरि, छन्द ६९।

४. हिन्दवी भाषा का कोश, पृ० ९०।

५. विया आ, बनशी बैठ बिरोजा। बेनी देख, विदेह दे बखुर खा॥
बेसा पीस, बेकश खींच, बेचश चाख। बेजन मार वेदर फाड़ बेनेह राखा॥

—खा० बा०, पंक्ति ८८-८९।

६. हस्त बक्काल हिन्दी बनिया, हम तू कश्नीज रा ब गो धनिया।
हस्त हज्जाम हिन्दी नाऊ, तरबुज़ अस्त हिन्दवाना गज झाऊ॥

—अ० खु०, पं० ३३-३४।

'ज्ञान' कोश

कई कोशों में अर्थ तो दिये ही गये हैं, आवश्यकतानुसार शब्द के सम्बन्ध में समस्त प्रायोगिक शाब्दिक, पौराणिक, ऐतिहासिक, वा इतर प्रसंगों का भी पूर्ण रूप से विवेचन किया गया है। शब्दों के सम्बन्ध में इतनी विस्तृत जानकारी सामान्य कोश नहीं, केवल विश्वकोश ही दे सकते हैं। जब शब्द का रूप, व्याकरणिक निर्देश एवं सामान्य अर्थ वा आन्तरिक भाव का निर्देशन करने के उपरान्त कोई कोश शब्द सम्बन्धी अनेक ज्ञातव्य बातों का उल्लेख कर अन्य विषयों—इतिहास, पुराण, लोकाचार आदि से सम्बद्ध सामग्री प्रस्तुत करने लगते हैं तो वे 'अर्थ' कोश की सीमा से निकल कर 'ज्ञान' कोश के क्षेत्र में आ जाते हैं। आलोच्य कोशों में मिर्ज़ाखाँकृत तुहफ़तुलहिन्द और टेलर विरचित 'ए डिक्शनरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' इसी प्रकार के कोश हैं।[1]

तुहफ़त् में पौराणिक शब्दावली के प्रसंग में कोशकार ने इतनी रुचि ली है कि प्रत्येक ऐसे शब्द का सामान्य अर्थ देने के उपरान्त तत्सम्बन्धी समस्त कथाओं वा अन्तर्कथाओं, सम्बद्ध पात्रों एवं घटनाओं का विस्तार से वर्णन किया गया है। ब्रह्मा केवल देवता ही नहीं उस देवता पर आधारित हिन्दुओं का 'एत्तिक़ाद' कि वह समस्त सृष्टि का कर्त्ता एवं नियामक है तथा यह किंवदन्ती कि ब्राह्मणों की उत्पत्ति उन्हीं के मुख से हुई—समस्त प्रसंगों का उल्लेख तुहफ़त् में दिया गया है।[2] 'हरनाकुस' (हिरण्यकश्यपु) के प्रसंग में उसकी धार्मिक अनास्था, नास्तिकता तथा उसके पुत्र "परहलाद" की प्रगाढ़ भक्ति एवं दृढ़ आस्था जिसके फलस्वरूप उसका अपने पिता द्वारा खम्भे पर बाँधा जाना, खंभे से नृसिंह अवतार एवं तत्पश्चात् हिरण्यकश्यपु की मृत्यु एवं प्रहलाद का उद्धार आदि विवरण सामान्य 'अर्थ' कोशों में नहीं दिये जा सकते हैं। ऐसी ज्ञान कथाओं का उल्लेख करने के पश्चात् मिर्ज़ा ने उनकी पूर्ण यथार्थता पर 'वास्तविकता ईश्वर जाने (वल्ला आलम)' उक्ति कहकर एक दीर्घ प्रश्नवाचक चिह्न भी लगा दिया

---

१. **यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि ये दोनों कोश पूर्ण रूपेण ज्ञान कोश नहीं हैं, अधिकांश शब्दों के विस्तृत अर्थ मात्र दिये गये हैं। केवल पौराणिक शब्दावली ही विस्तार से वर्णित की गई है।**

२. **ब्रम्भ······नामे देवतायेस्त व आँ ब एत्तिक़ादे हुनूद मख़्लूके अस्त क़ि हक सुबहानहू ताला अव्वल कसे कि आफ़रीद ऊ बूद व खिलक़ते कुल मख़्लूक़ात व ओहदये ऊस्त व बराहमन अज़ औलादे ऊयन्द व अज़ दहानः ऊ बहमरसीद:।**
—तुह०, पृ० २०३ मू०।

है ।[1] इस प्रकार के अनेकानेक प्रसंग 'तुहफ़त्' में आते हैं जिनमें से कुछ का विवरण षष्ठ अध्याय में दिया गया है ।

तुहफ़त् की ही भाँति टेलर व हण्टर के द्विभाषीय कोश 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' में भी पौराणिक तथा ऐतिहासिक कथानकों से सम्बद्ध शब्दावली का बहुत ही विस्तार से विवरण दिया गया है। रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता, परशुराम, रावण, गौतम एवं अन्य अवतारों या महापुरुषों के सम्बन्ध में कई पृष्ठों तक के उल्लेख उपलब्ध होते हैं। रति के प्रसंग में उसके पति कामदेव तथा कामदेव के पिता विष्णु रुक्मणी, महादेव द्वारा कामदहन, रति की प्रार्थना पर महादेव द्वारा काम को पुनः जीवित करने का वचन, रति का मायावती के वेश में राजा शम्बर की सेवा करना, वहाँ मछली के मुँह से कामदेव का उत्पन्न होना और तत्सम्बन्धी अनेक जनश्रुतियों एवं विश्वासों का उल्लेख इसमें किया गया है ।[2]

तुलनात्मक विवेचन

कोशों को शब्द, अर्थ एवं ज्ञान की निश्चित सीमा में बाँधना अत्यन्त दुष्कर है। इन तीनों वर्गों के लिये एक स्पष्ट विभाजक रेखा खींचना नितान्त ही असम्भव कार्य है। शब्द के बिना अर्थ नहीं और अर्थ शब्द तथा ज्ञान के बीच की कड़ी है। शब्द के साथ

---

१. **हरन्नाकुस .....नामे मर्दे मुन्किर जाते हक़ अव्वज व जल्ल बूदः दावाये उलूहियत मी कर्द आवुर्दः कि ऊ, परहलाद नाम पिसरे दाश्त ऊ मुवह्हिद बूदः रोज हरनाकुस परहलादे पिसरे खुदरा ब सुतूने बस्तः व ख्वास्तः कि ब कुशद के नागाह अज हुमाँ सुतूने कि ऊ रा बर्दं बस्तः बूदः शेरे बर आमदः शिकम् हरनाकस दरीद व हलाक साख्तः व ऊरहलाद अज दस्ते ऊ न जात याफ़्तः वल्ला आलम···।"**

—तुह०, पृ० २८६ मू०।

२. Rutee - The Venus of the Hindoos, wife of Kamdevu (or Cupid), who was son of Vishnoo and Rookminee. He was consumed by the fiery rage of Muhadeva for interupting him in his devotions; and Rutee, disconsolate for the loss of her husband, implored Muhadevu's mercy, who promised that she would meet him again in the house of Shumburu raja, whither she repaired and took service under the name of Mayavutee. Here as she was one day cleaning a large fish, she discovered a child in its belly which she immediately knew to be her husband Cupid or Kamdevu, whom (under the name of Prudyoomnu) the tyrant had thrown into the ocean. He at first took Rutee for his mother, but remembering the promise of Muhadevu, he knew his wife and the god of love was again united to the goddess of pleasure. Hence, however, Rutee is conisdered as both mother and wife of Kamudevu.

—हिन्दु०, द्वितीय खंड, पृ० ११७।

अर्थ सम्पृक्त रहता है और अर्थ को आवश्यकता से अधिक विस्तार देने के फलस्वरूप उसे 'ज्ञान' कोश कहा जा सकता है। इन तीनों क्षेत्रों के दार्शनिक पक्ष की अवहेलना करते हुये प्रस्तुत विभाजन का उद्देश्य केवल विवेचन की सुविधा है। केवल अर्थ की उपस्थिति या मात्रा देखकर ही ऐसी विभाजक रेखायें निर्धारित कर उपर्युक्त शीर्षकों से उनको अभिहित किया गया है। तीनों शीर्षकों के भिन्न-भिन्न क्षेत्र को अधिक स्पष्टता से समझने के लिये नीचे एक ही शब्द का विवरण शब्दकोश, अर्थकोश, एवं ज्ञानकोश से दिया गया है। 'अर्जुन' शब्द तीनों प्रकार के कोशों में तीन विभिन्न आवरण पहन कर आया है :

(१) हमीरदानकृत 'हमीरनाममाला' शब्दकोश में अर्जुन के विभिन्न पर्यायवाची शब्द देकर इतिश्री कर दी गई है—'अर्जुन' शब्द के अन्य पर्यायों के अतिरिक्त उसमें कोई विवरण नहीं :

।। अरजुण नांम ।।

धनंजय अरिजन जिसन कपीधज, निरकार-रूपी ब्रहनट ।
पारथ सव्यसाची मधिपंडव, सक्रनंदन विभच्छ सुभट ।
गुड़ाकेस व्रखसेन फालगुण, सुनर मोक वेधी-सबद ।
राधावेधा सुगत किरीटी, महीसूर मरदां-मरद ।[1]

(२) अर्थद्योतन को लक्ष्य बनाने वाले कोशों में 'अरजुन' शब्द के या तो कई अर्थ दिये गये हैं[2] या व्यक्ति विशेष अर्जुन के सम्बन्ध में यह विवरण है :

अर्जुन—यह महाभारत के एक नायक का नाम है।[3]

(३) परन्तु शब्दों से सम्बन्धित समस्त ज्ञातव्य बातों का यथाशक्य विवरण देने के उद्देश्य से निर्मित तुहफ़त् जैसे ज्ञान कोश केवल इतनी सूचना से सन्तुष्ट न होगा, उसमें कुछ अधिक विस्तार है :

अर्जुन—यह एक देवता का नाम है जो अपनी वीरता एवं शौर्य के कारण अत्यन्त प्रसिद्ध है। यह वीर पुरुष पाँच भाइयों में से एक थे। इन पाँच भाइयों को समग्र रूप से 'पांडो' कहा जाता है।[4]

---

१. ह० ना०मा०, छन्द १२३-१२४ ।
२. अर्जुन द्रुम अर्जुन धवल, सहसा अर्जुन तत्थ।
अर्जुन बहुंवो पांडुसुत, हरि खेलत जेहि सत्थ ।।
—अने० नन्द०, पंक्ति १९-२०।
३. हिन्दु० प्रथम भाग, पृ० ५९ ।
४. अर्जुन······नामे देवतायेस्त मशहूर ब दिलावरी व मर्दानगी व आँ यके अज़ पंज बरादर बूदः कि आहाँ रा पांडो गोयन्द —तुह०, पृ० १९९ मू०।

निरंजनदासकृत 'हरिनाममाला' का उल्लेख खोज विवरणों में उपलब्ध होता है।[1] यह विष्णुसहस्रनाम के अनुकरण पर निर्मित कोश है। ५८ छन्दों में निर्मित यह कोश केवल हरि या विष्णु के पर्यायवाची शब्द गिनाने के उद्देश्य से निर्मित हुआ। इसी प्रकार एक अन्य कोश 'विराहबुध चन्द्रिका' प्रयाग के साहित्य सम्मेलन पुस्तकालय[2] से उपलब्ध हुआ है, जिसका रचयिता शारंगधर है। १७१७ ई० में रचे गये प्रस्तुत कोश के १२ पत्रों में स्वर्णकारी विद्या से सम्बद्ध शब्दावली संकलित की गई है। जयगोपालदासकृत 'तुलसी शब्दार्थ प्रकाश' (१८१७ ई०) में अन्य विषयों के साथ-साथ रामायण में प्रयुक्त शब्द और गूढ़ भावों का विवेचन किया गया है।[3]

इन कोशों के अतिरिक्त कुछ वैद्यक निघण्टु भी दृष्टव्य हैं। संस्कृत कोशों की परम्परा में निर्मित संस्कृत के वैधक निघण्टु कोशों का विवरण उपलब्ध होता है।[4] इन्हीं के अनुकरण पर निर्मित संस्कृत भाषा में 'मदनपालकृत मदन निघण्टु' का भाषानुवाद संभवतः ईश्वरीप्रसाद बोहरे ने किया। हस्तलिखित प्रति का लिपिकाल १८४९ ई० खोज रिपोर्ट[5] में मिलता है। यह समस्त औषधियों का कोश है, जिसमें प्रायः अनेक जड़ी बूटियों के नाम एवं गुण भी वर्णित हैं। इसी प्रकार का एक अन्य कोश लक्ष्मण प्रसादकृत 'नामचक्र' (१८४३ ई०) है, जो आंशिक रूप से वैद्यक कोश है।[6]

—०—

१. खो० वि० (१९०६-८), क्र० चि० २०२।
२. हस्तलिखित ग्रंथ, संख्या १८८५।
३. खो० वि० (सन् १९००-१९११ ई०), पृ० ६०।
४. रामावतार शर्मा : कल्पद्रु कोश, भूमिका।
५. खो० वि० (सन् १९३२-३४ ई०), पृ० १७४।
६. खो० वि० (सन् १९००-१९११ ई०), क्रमसंख्या १६२।

अध्याय ३

शब्दावली का अध्ययन

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत 'शब्द' से तात्पर्य उस मूल, अभियेय तथा विवेच्य शब्द से है जिसके पर्याय या अर्थ कोशकारों ने प्रस्तुत किये हैं। छन्दों में निर्मित समानार्थी वा अनेकार्थी कोशों में पदपूर्ति के आग्रह-वश संकलित शब्द या द्विभाषीय कोशों में मूल हिन्दी शब्द के अर्थ या व्याख्या देने के निमित्त प्रयुक्त विदेशी शब्द इस अध्ययन के वर्ण्य-विषय नहीं हैं। पुनः कुछ कोशकारों ने शब्द-कोशों के माध्यम से धार्मिक चर्चा, हरिगाथा, भगवत-माहात्म्य, शृंगारिक कथायें आदि विषयों पर भी उक्तियाँ दी हैं, परन्तु इन वर्णनों के निमित्त प्रयुक्त शब्दावली भी प्रस्तुत अध्ययन की दृष्टि से गौण है। अतएव शब्द से तात्पर्य यहाँ मुख्य अभिधेय तथा मूल हिन्दी शब्द मात्र से है, जिसके नाम, पर्याय या अनेकार्थ-संकलन वा किसी अन्य शब्द द्वारा अर्थ-कथन कोशकार को अभिप्रेत था।

इस सम्बन्ध में एक सम्भव भ्रान्ति का निराकरण करना भी आवश्यक प्रतीत होता है। शब्दावली का समग्रतः निःशेषण करना प्रस्तुत तुलनात्मक और विवेचनात्मक अध्ययन की क्षेत्र-सीमा के अन्तर्गत सम्भव न था। अतः समस्त शब्दावली का विश्लेषण करने के उपरान्त जो सिद्धान्त प्रादुर्भूत हुये उन्हीं की पुष्टि के लिये अकारादिक्रम में मूल उदाहरण प्रस्तुत किये गये हैं। उदाहरणों की मात्रा व्यापक होते हुये भी ऐसा समझना नितान्त भ्रामक होगा कि इनके अन्तर्गत उस वर्ग के सभी शब्द पूर्णतः आ गये हैं।

विवेचन-सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत अध्ययन की निम्न पाँच दिशायें निर्धारित की गई हैं :

(१) शब्दों का संकलन, उसके आधार एवं स्रोत

(२) शब्दावली का परिमाण

(३) शब्दावली का भाषा, शब्द-रूप एवं अर्थ की दृष्टि से वर्गीकरण

(४) शब्दों के रूप

(५) शब्दों की उच्चारण-व्यवस्था।

शब्दों का संकलन, उनके आधार एवं स्रोत

विवेच्य कोशों के शब्द-संकलन सम्बन्धी आधार एवं स्रोत मुख्य रूप से पाँच रहे हैं : (१) संस्कृत के कोश (२) पूर्ववर्ती हिन्दी कोश (३) साहित्यिक ग्रंथ (४) सामान्य जनजीवन में प्रचलित शब्दावली तथा (५) कोशकार का व्यक्तिगत ज्ञान एवं रुचि।

संस्कृत के कोश ग्रन्थ

आलोच्यकालीन अधिकांश कोशोंकी शब्दावली संस्कृत के कोशों पर आधारित है। शब्दावली के क्षेत्र में इन संस्कृत कोशों से प्रभावित हिन्दी कोशों को दो मुख्य भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(१) कुछ कोश किसी एक संस्कृत कोश के अनुवाद मात्र हैं जिनमें आवश्यकतानुसार गौण रूप से अन्य स्रोतों को भी आधार बनाया गया है। अमरकोश से प्रभावित चार हिन्दी कोश—प्रकाशनाममाला, नामप्रकाश, कर्णाभरण एवं उमरावकोश—पिछले अध्याय में विवेचित हैं। नन्ददास तथा बद्रीदास ने भी अपनी मानमालाओं को आंशिक रूप से अमरकोश के अनुकरण पर निर्मित बताया। द्वितीय अध्याय में अंकित अनुपलब्ध कोशों में से भी अधिकांश कोश संस्कृत के अमरकोश पर आधारित बताये गये हैं। फ़कीरचन्द को अपने एकाक्षरी कोश सुबोधचन्द्रिका के निर्माण में अमरकोश से नहीं, प्रत्युत सौभरिकृत एकाक्षर नाममाला[1] से प्रेरणा मिली।

(२) कुछ कोशों में शब्द-संकलन केवल एक ग्रंथ पर आधारित न होकर कई संस्कृत कोशों पर आधारित है। उदाहरण के लिये हमीरनाममाला के रचयिता ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि उनका समानार्थी कोश संस्कृत के 'अनेकार्थ' (?), धनंजय (कृत नाममाला) मानमंजरी, हेमीकोश आदि ग्रंथों पर आधारित है।[2] चन्दनराम ने भी अपने अनेकार्थ के अंतिम अंश में स्वीकार किया है कि उन्होंने क्षपणक द्वारा विरचित अनेकार्थ समुच्चय, अमरकोशान्तर्गत अनेकार्थ, एवं धनजंय कृत अनेकार्थ, इन तीनों ग्रन्थों के 'सार' से अपना कोश निर्मित किया।[3]

पूर्ववर्ती हिन्दी कोश

शब्द-संकलन के क्षेत्र में पूर्ववर्ती कोशकारों का पर्याप्त योगदानरहा है। सच तो यह है कि प्रत्येक कोशकार ने अपनी कृति को पूर्ण एवं उपादेय बनाने के

---

१. **सौभरि नाम अचार्य कृतं हुती नाम की माल।**
ताही के परमान कछु, बरनौ जुगति रसाल॥ —सु० च०, छन्द २।

२. **जोइ अनेकारथ धनंजय माणमंजरी हेमी अमर।**
नाम तिकां माहे निसरिया, उवै भेला भेलाया आखर॥—ह०ना०मा०, छन्द ३०९।

३. **छपनक अमर धनंजयो, तिह ग्रंथ को सार।**
अनेकार्थ भाषा विषै, यह हौं कियो विचार॥ —अने० चन्द० पृ० ४०।

लिये अपने पूर्वाचार्यों द्वारा किये गये श्रम का यथाविधि लाभ उठाया है। प्रचलित परिपाटी भी यही है कि कोई बड़ा कोश उठा लिया या दो चार छोटे मोटे कोश सामने रख लिये और कोश तैयार हो गया।[1] विवेच्य कोशों में बद्रीदासकृत मानमंजरी एवं नाममाला "ख", नन्ददास की नाममाला के थोड़े परिवर्तित संस्करण मात्र प्रतीत होते हैं। नाममाला "ग" भी गरीबदासकृत अनभैप्रबोध का लघुरूप है। उदैराम विरचित एकाक्षरीनाममाला कोश, फ़क़ीरचन्दकृत सुबोध चन्द्रिका का डिंगल संस्करण प्रतीत होता है। टेलर के द्विभाषीय कोश में गिलक्राइस्ट की समस्त हिन्दुस्तानी 'वाकेबुलेरी' संकलित कर ली गई है। पादरी आदम ने अपने हिन्दवी कोश के लिये टेलर कृत 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' के अतिरिक्त अन्यत्र भटकना उचित न समझा। शेक्सपियर तथा टामसन के कोशों में संगृहीत शब्दावली भी मुख्य रूप से टेलर के कोश पर आधारित हैं।

साहित्यिक ग्रन्थ

भिखारीदास ने स्पष्ट उल्लेख किया है कि उन्होंने 'भाषा ग्रन्थों'[2] से भी शब्द-संकलन के लिये सहायता ली। सुवंश शुक्ल ने अपने उमराव- कोश में स्थान-स्थान पर काव्यकारों के मतों का उल्लेख किया है।[3] नागराज डिंगलकोश में अनेक साहित्यिक ग्रन्थों के 'सार' ग्रहण कर लिये गये हैं।[4] फ़क़ीरचन्द ने अपने एकाक्षरी कोश सुबोध चन्द्रिका को यद्यपि सौभरि के एकाक्षरी कोश पर आधारित बनाया फिर भी अन्य कवियों के मुख से सुने गये शब्द इस कोश में संकलित कर लिये गये हैं।[5] द्विभाषीय कोशों के रचयिताओं में से कुछ को छोड़कर अन्य सभी आलोच्य कोशकार अच्छे कवि भी थे अतएव यह नितान्त स्वाभाविक था कि इन कोशों में साहित्यिक शब्दावली का संकलन हो गया है।

सामान्य जन-जीवन में प्रचलित शब्दावली

दैनिक बोलचाल की भाषा एवं शब्दावली का अपने कोशों में सभी आलोच्य कोशकारों ने संकलन नहीं किया। संस्कृत कोशों की परम्परा में निर्मित समानार्थी या अनेकार्थी कोशों के क्षेत्र का यह कार्य न था क्योंकि इनमें केवल वही शब्द संकलित किये जा सकते थे जिनके या तो कई पर्याय या भिन्न-

१. रामचन्द्र वर्मा : कोशकला, पृ० २०।
२. "......औरो नाम आनि भाषा ग्रंथन सों हरि कैं।" —ना० प्र०, पृ० १।
३. कल्प प्रलै कल्पान्त अरु द्वय कहि सवर्त।
पांच नाम ए कहत हैं जे कविता को कर्त॥ —उ० को १।४।२१।
४. 'ग्रन्थ आदि देखे मतां सबल नाम सारां सही' —ना० डि०, छन्द ७।
५. अधिक और कवि मुखन ते सुनि कै किये प्रमान।
सो प्रमान ह्याँ लायकै कहै महा बुधिवान॥ —सु० च०, छन्द ३।

भिन्न अर्थ हों। परन्तु द्विभाषीय कोशों—खालिक़बारी, अल्लाखुदाई, पारसी-पारसात नाममाला, तुहफ़तुलहिन्द, व्राकेबुलेरी तथा टेलर की डिक्शनरी में इस प्रकार के बोलचाल के शब्द पर्याप्त मात्रा में संगृहीत किये गये हैं।

कोशकार का व्यक्तिगत ज्ञान एवं रुचि—शब्दों के संकलन में कोशकार का व्यक्तिगत ज्ञान तथा विषय विशेष या क्षेत्र विशेष में रुचि का भी अत्यधिक प्रभाव पड़ा है। ज्ञान-विज्ञान के जिस क्षेत्र से उसका अधिक निकट सम्पर्क रहता है उस क्षेत्र से अपेक्षाकृत अधिक शब्दावली का आ जाना नितान्त स्वाभाविक है। मिर्ज़ा खाँ कृत तुहफ़त् में कुछ विशिष्ट शब्दों का संकलन इसी प्रवृत्ति के फलस्वरूप हुआ है। लुग़त (कोश) के अतिरिक्त प्रस्तुत ग्रन्थ के 'बाबेचहारुम्' में 'दर् इल्मे सिरंगार रस' (शृंगार रस विषयक ज्ञान) और 'बाबे पंजुम्' में 'दर् इल्मे संगीत' तथा 'बाब सशुम्' के अन्तर्गत 'दर् इल्मे कोक' का विवेचन किया गया है। इन सभी इल्मों के क्षेत्र में मिर्ज़ा खाँ की प्रर्याप्त पहुँच एवं रुचि थी जिसके फलस्वरूप इन विषयों के शब्द अधिक संख्या में आ गये हैं, जो अन्य किसी द्विभाषीय कोश में नहीं मिलते। संगीत आदि विषयक जो शब्दावली अन्य समानार्थी कोशों में संकलित की गई है उसका आधार केवल अमरकोश का द्वितीय अध्यायान्तर्गत नाट्यवर्ग है, परन्तु मिर्ज़ा खाँ द्वारा संकलित शब्दावली उनके अपने निजी संगीत ज्ञान के फलस्वरूप है।[1] यही बात शृंगार तथा कोक विषयक शब्दावली पर भी लागू होती है।

१. "तुहफ़त" में संकलित कुछ संगीत विषयक शब्दावली द्रष्टव्य है:
बंकाल (नामे रागिनी भैरों राग) पृ० २०९ मू०; बांसुरी (नय) पृ० २११ पी०; पंचम (नामे सरगम) पृ० २२२ मू०; तबिरा (सुर) पृ० २२५ पी०; ताण्ड (क़िस्मे-रक़्स) पृ० २२६ मू०; तुम्बर (नामे मुग़न्नीस्त); तूर (मिरदंग); त्यौनार (अदा व अन्दाज़े निगाह् वक्ते नग्म व सरोद); तान पृ० २२६ पी०; टोपा (बुलन्दी व औज़े अहंग बुवद दर नग्म व सरोद) पृ० २२८ पी०; टोड़ी पृ० २२९; चीन (क़िस्मे रक़्स) पृ० २३८ मू०; छती (सुर पंजुम) पृ० २४० पी०; देसकार (नामे रागिनी) पृ० २४१ पी०; द्यौसख (नामे रागिनी......) पृ० २४२ मू०; धनासरी (नामे रागिनी) पृ० २४४ पी०; काझ (लिबासे मर्दाना......क़ि रक्कासा दर वक़्ते रक़्स पेशन्द......) पृ० २६२ मू०; कुशल (राग) पृ० २६४ पी०; कमल (सुरहाय दीपक राग); कुन्तल (सुरहाय दीपक राग) पृ० २६५ मू०; कल्यान (मेघ राग) पृ० २६५ पी०; कीर्तन (रक़्स) पृ० २६६ मू०; खेम (मेघ राग) पृ० २६९ मू०; गन्ध्रप (मुत्रिब) पृ० २७० मू०; लास (किस्मे रक़्स) पृ० २७४ पी०; मज़ीरा (साज) पृ० २७५ पी०; मिरदंग पृ० २७९ पी०; मेघ (नामे राग) पृ० २७९ पी०; नगा (ज़ने रक्कासा व मुत्रिबा) पृ० २८२ मू०; निर्त; नाच्च, पृ०, २८३ मू०; नारद (मुत्रिब), निरवाद (सुर); नाद पृ० २८३ पी०; माधव (भैरों राग) पृ० २८० पी०; नन्द (माल कौस राग) पृ० २८३ पी०; हहा (मुत्रिब), हरख (भैरों राग) पृ० २८६ पी०।

शब्दावली का परिमाण

शब्दों की संख्या

शब्द-संख्या के सम्बन्ध में कोशकारों ने किसी निश्चित सिद्धान्त को नहीं अपनाया है। किसी संस्कृत कोश को आधार बना कर शब्द-संकलन करने वाले कोशकार ने प्रायः सभी शब्दों को संगृहीत कर दिया है, चाहे वे हिन्दी में प्रचलित हों या नहीं। चारों अनुवादित कोश, और समस्त अनेकार्थी और समानार्थी कोशों में ऐसे संस्कृत शब्द पर्याप्त संख्या में आ गये हैं जिनका प्रचलन अब हिन्दी में नहीं है। ऐसे कुछ शब्द आगेउद्धृत किये गये हैं। इस प्रकार के शब्दों का संग्रह इसी उद्देश्य से किया गया था कि वे शब्द हिन्दी में भी प्रयुक्त होंगे परन्तु ऐसा हुआ नहीं। आजकल केवल प्रचलित, सामान्य और काम के शब्दों का संग्रह ही कोश का वास्तविक महत्त्व बढ़ाता है।[1]

शब्द-संख्या सम्बन्धी एक विशिष्टता तुहफ़तुलहिन्द में दृष्टिगत होती है। इसमें एक ही शब्द के अनेक रूपों को अपने क्रम में प्रत्येक स्थान पर प्रायः उसी मात्रा और विवरण सहित विवेचित किया गया है। बाल (२०९ मू०), बाला (२०० मू०); बाम (२०९ पी०), बामा (२०९ मू०); भामन (२१५ मू०), भामिनी (२१५ पी०), भाम (२१५ मू०); पोख (२२१ मू०), पोखन (२२२ पी०); तापसी (२२८ मू०), तपसी (२२८ मू०); जसोधा (२३१ मू०), जसोमत (२३१ पी०); जिभ्या (२३१ मू०), जीभ (२३१ पी०); छैला (२३९ पी०), छैल (२४० मू०); माता (२७५ पी०), मात (२७६ पी०); मानुस (२७८पी०), मानुख (२७९ मू०); ताप (२२५ पी०), तप (२२५ पी०); टार (२२९ पी०), टाल (२३० पी०); दामिन (२४२ पी०), दामिनी (२४२ पी०); कामिन (२६५ पी०), कामिनी (२६७ मू०) आदि शब्दों के दोनों रूप लगभग उन्हीं विवरणों सहित आये हैं। वास्तव में मिर्ज़ा खाँ साहित्य में प्रचलित प्रत्येक शब्द का संकलन अपने कोश में करना चाहते थे जिससे शब्द-संख्या में ही वृद्धि हुई।

शब्दों की संख्या के सम्बन्ध में एक अन्य प्रवृत्ति आदम कृत हिन्दवी कोश में लक्षित होती है। इस कोश में अंकना, अंगूठी, अंत, अंतर, अंधेरा, अंतरिक्ष अंतर्पट, कंकर, कंचनी, कंजर आदि शब्द अनुस्वार से भी आये हैं और अङ्कना, अङ्गठी, अन्त, अन्तर, अन्धेरा, अन्तरिक्ष, अन्तर्पट, कङ्कर, कञ्चनी, कञ्जर[2] आदि पंचम वर्णों के रूप में भी। इसके फलस्वरूप भी शब्दों की संख्या में अकारण वृद्धि हुई है।

---

१. रामचन्द्र वर्मा : कोशकला, पृ० ३६।

२. ये सभी शब्द अकारादिक्रम में संकलित हैं।

साहित्य में और विशेष कर काव्यशास्त्र में—भाव एवं छन्दादि के आग्रहवश शब्दों के कई रूप व्यवहृत होते हैं उन सभी को कोश विशेष में कितना स्थान मिलना चाहिये यह कुछ अधिक स्पष्ट नहीं ।

शब्द संख्या सम्बन्धी एक अन्य द्रष्टव्य

पर्याय कोशों में शब्दों की संख्या में एक अन्य कारण से भी अनावश्यक रूपसे वृद्धि हुई है। हिन्दी में—संस्कृत के अनुकरण पर—कुछ शब्दों के पर्याय कुछ अन्यशब्दों के माध्यम से भी बनते हैं । हाथी के लिये दंती, दंताल, दंती, दंतुल[1] एक ही शब्द 'दन्त' निर्मित हुये हैं। हरा, संकरी, ईसरी, सिवा, माहेस्वरी, त्रिलोचना[2], हरा, रुद्राणी, भैरवी[3], प्रभृत्ति पार्वती के पर्याय नाम केवल शिव के समानार्थी शब्दों के स्त्रीलिंग रूप मात्र हैं । इसी प्रकार मेघ के पर्याय शब्द—जलढ़, जलमंडल, जलहर, जलवहण, नीरद[4], जलधरण, जलवह, तोईद, तोयसद, नीरद, जलमुक[5], जलमंड, तोयद, जलद[6], जलधर[7] —'जल' के पर्याय शब्दों से निर्मित हुये हैं । एक मूल शब्द से अनेकानेक पर्याय बनाकर उनको प्रायः सभी समानार्थी कोशों में स्वतंत्र स्थान मिला है।

नये शब्द बनाने की प्रक्रिया मात्र

कुछ पर्याय कोशों में उपर्युक्त प्रवृत्ति नहीं मिलती । उनमें मूल शब्द देकर उसके आधार पर निर्मित अन्य सभी शब्दों का स्वतंत्र रूप से निर्देशन न कर कुछ उदाहरणमात्र दे दिये गये हैं, और उन नियमों का विस्तार से उल्लेख कर दिया गया है । संस्कृत कोश 'धनंजय नाममाला' में यह पद्धति अत्यधिक व्यवहृत है ।

आलोच्य उपलब्ध कोशों में डिंगलनाममाला में एक बार, उमरावकोश में तीन स्थलों पर और धनजीनाममाला तथा कर्णाभरण के टीका अंश में अनेक स्थलों पर यह युक्ति प्रयोग में लाई गई है। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

(१) घोड़े के पर्यायवाची नामों के आगे मुखवाची पर्याय जोड़िये तो 'किन्नर' शब्द के पर्याय बन जाते हैं ।[8]

(२) जितने 'कमल' के नाम हैं वही सब 'सारस' के भी समझने चाहियें ।[9]

---

१. डिं० ना० मा०, छन्द ४ ।
२. ह० ना० मा०, छन्द २-४ ।
३. अ० मा०, छन्द २०-२१ ।
४. ना० डि०, छन्द १८ ।
५. ह० ना० मा०, छन्द २९८-३०० ।
६. अ० मा०, छन्द ४३०-४३२ ।
७. नाममाला "क", छन्द ५३ ।
८. ।। किन्नर नाम ।।

अस्वमुखा किन्नर कहो जे छोहड़ हंदे नांम ।
ते मुख हूती जोड़ि जै मयु किन्नर अभिरांम ।। —डिं० ना० मा०, छन्द १८ ।

९. ज्यतने कहत कमल के नाम, त्यतने सारस के बुधि धाम।—उ० को०, २।५।२३।

(३) 'चन्द्रमा' के सभी पर्याय 'कपूर' के भी समानार्थी होते हैं ।[१]

(४) 'रात्रि' के जितने नाम पर्याय हैं वही सब 'हलदी' के भी माने जाने चाहिये ।[२]

कर्णाभरण के उदाहरण इस प्रकार हैं :

(१) "जलवाचक शब्द होय ताके आगे 'धर' आदि लगाइये तो मेघ के नाम होय । यथा—वारिधर, नीरधर, अब्धर, पयोधर,...।

धर १ भृत २ वाह ३ रु भुक ३ द ४ जहाँ,
जल वाचि परें सनि होत सु घन को नाम ।

उदाहरण के लिये—पयोभृत १, कीलाभुत २, पयोवाह, कमलवाह, कवाह, पयोमुक १, अम्मुक २, भुवनमुक ३, पयोद ।[३]

(२) "...पांच नाम दिन के। इनके आगे 'मनि', 'कर' लगाये सूर्ज को नाम, यथा—वासरमनि, वासरकर है ।[४]"

(३) "...भूमि के एकतीस नाम कहे दोय नाम दोहा में—,

रुह १ ज कार २ भू परें लगाय ।
वृच्छ नांम सो जांनि सभाय ॥

उदाहरण के लिये—भूमिरुह १, अचलारुह २, भूमिज १ धरनीज २ भाषा में धरित्रीजात इत्यादि...।

(४) **धर १ भृत २ भू वाचक परें दरी परें सु लगाय ।**
कूटवान शृंगी कहैं पर्वत नाम लखाय ॥

उदाहरण के लिये अवनीधर, अचलाधर, रसाभृत, क्ष्माभृत, दरीधर, कंदरभृत इत्यादि ।[५]

(५) "भूमि वाची ते परें 'रुह', 'भव', 'रज' इत्यादि लगाए वृछी (वृक्ष) को नाम (यथा) रसारुह १, धराभव, धराज इत्यादि ।[६]"

(६) मनवाचक के आगे 'भव' लगायें यथा—मनोभव १ चित्तभव २, स्वातोद्भव ३ मनोज ४...मनोभू ७ इत्यादि—।[७]

---

१. और चन्द के ज्यतने नाम, ते कपूर के हैं बुधि धाम । —उ० को०, २।६।२०३ ।
२. औ निसि के हैं ज्यतने नाम, ते हरदी के हैं बुधि धाम —वही ।
३. कर्णा०, पृ० ९ मूल ।
४. वही, पृ० ११ मूल ।
५. वही, पृ० २३ पीठ ।
६. वही, पृ० २४ ।
७. वही, पृ० ३ मूल ।

(७) "—षट के आगे मुखवाची लावै षडानन इत्यादि, अग्निवाचक तें सुतवाची पावकसुत पावकि; पार्वतीवाची आगे पुत्रवाची होय सो प्रसंग सो कार्तिकेय जानीए, मयूरवाची आगे वाहनवाची के जांन—इत्यादि, सर के आगे —द्भव जातभू इत्यादि सरजात, तारक आगे अरिवाची जित जयी इत्यादि...।"[१]

(८) "...सत के आगे जज्ञवाची लावें इन्द्र को नाम होय (यथा) सतऋतु, सतमष इत्यादि। — स्वर्गवाची आगे 'ईष', 'पति' लगावे इन्द्र को नाम (यथा) नाकनायक, त्रिदिवपति, स्वर्गराज इत्यादि—। देववाची आगे ईस, पति-वाची (का योग करें, उदाहरण के लिये) अमरपति, त्रिदसनाथ, विबुधेश्वर—।"[२]

(९) "—यम सूर्ज को पुत्र है यातें वैवस्वत रवितनय रविनन्दन इत्यादि (भी यम के पर्याय हो सकते हैं)।"[३]

(१०) "—किरनवाचि हिमवाचि पर धरें इन्दु को नाम लसु...।[४]"

(११) 'नदी नीर तें पति परें जल तें धिरु निधि लाय पुनि।
वह लषौ नाम सो उदधि को जल १ कवंध २ पय उदक सुनि॥[५]'

धनजीनाममाला में नये पर्याय बनाने की प्रक्रिया का वर्णन है। संस्कृत में धनंजय नाममाला के ही अनुकरण पर प्रस्तुत कोश में शब्दों के सभी पर्याय न गिनाकर उनके सम्बन्ध में नियम मात्र का निर्देश कर दिया है:

(१) पृथ्वी के समस्त पर्याय (जिनका परिगणन किया गया है) के साथ यदि 'धर' लगा दिया जाय तो उस यौगिक शब्द का अर्थ पर्वत से है और यदि 'पृथ्वी' के पर्यायों पर 'पति' का योग करें तो 'राजा' के अर्थ निकलते हैं, पुनः 'भू' के पर्यायों पर 'रुह' लगाने से 'वृक्ष' के पर्याय बन जाते हैं।[६]

(२) 'पांणी' के पर्याय कथन के अनन्तर बताया गया है कि यदि इन नाम शब्दों पर 'चर' लगायें तो 'मीन' हो जाता है, और यदि 'द' लगायें तो मेघ बन

---

१. कर्णा०, पृ० ४ पी०। २. वही, पृ० ५ पी०।
३. वही, पृ० ६ पी०। ४. वही, पृ० ९ मू०।
५. वही, पृ० १९ मूल।
६. जऊ धरनी कों धर लगई तउ पर्बत करि मांनि।
जउ पृथ्वी कों पति लगैं कहु राजा जीय जांनि॥
वृक्ष ताहि कै मांनीऐ जउ भू रुह लगांहि।
मनि विचारि तेई कहों जे धर साधि मिलांहि॥

—ध० ना० मा०, छन्द १०-११।

जाता है, पुनः पानी के पर्यायों पर 'भव' जोड़ें तो कमल, और 'धिर' (धि) जोड़ने पर सागर के पर्याय बन जाते हैं।[१]

(३) नदी के पर्याय शब्दों पर 'पति' शब्द लगाने से सागर के नाम शब्द बन जाते हैं।[२]

(४) रात्रि के आगे 'चर' लगाने से चोर के पर्याय, और अंधकार शब्द के आगे 'चर' लगाने से कुर्कुट या मोर के पर्याय बन जाते हैं।[३]

(५) पर्वत के जितने पर्याय शब्द हैं उनके आगे नृप, गुरु, राज या नाथ का योग करने से सुमेरु पर्वत के पर्याय बन जाते हैं।[४]

शब्दावली का विभाजन

आलोच्य कोशों में संकलित अपार शब्द-समूह को बाह्यतः बोधगम्य बनाने के उद्देश्य से यह वर्ग विभाजन निम्न तीन दिशाओं पर आधारित किया गया है : (१) भाषा सम्बन्धी आधार, (२) व्याकरणिक आधार, (३) अर्थ सम्बन्धी आधार।

(१) भाषा सम्बन्धी आधार

शब्दावली को भाषा के आधार पर वर्गीकृत करने का सर्वाधिक महत्त्व है जिसके माध्यम से विवेच्य शब्दों का स्रोत ही नहीं उनका भाषा-साहित्य में सम्यक् मूल्य भी निर्धारित किया जा सकता है। विवेच्य कोशों में संकलित शब्द-राशि के भाषा सम्बन्धी आधार को यहाँ निम्न दो उपभेदों में विभाजित किया जा सकता है—(अ) स्वदेशी भाषा के शब्द एवं (आ) विदेशी भाषा के शब्द। स्वदेशी भाषा के भी पुनः उपभेद किये जा सकते हैं यथा—(१) संस्कृत की तत्सम शब्दावली (२) तद्भव, भाषा की या स्थानिक या प्रान्तीय शब्दावली। इसी प्रकार विदेशी भाषा के शब्दों को भी कई उपविभागों में वर्गीकृत किया जा सकता

१. जउ पानी को चर लगई ताहि मीन ह्वै जाई।
मेघ नांम तउ उच्चरों जउ जल पर दलगाई।
जउ पानी उत भव लगई सो तुम्ह कवलु विचारि।
जउ जल माहि धिरं लगई सो कहुं बुधि अकारि।।
—ध० ना० मा०, छन्द २१-२२।

२. जे जे लागहि तरंगनी नृप स्वामी पति नाथा।
तेई समुद्र बखानी अहि सागर बरनत गाथा।। —वही, छन्द ३३।

३. जउ रजनी कों चर लगई तेहि होहि सम चोर।
जउ अंधार को चर लगई जांनहु कुर्कट मोर।। —वही, छन्द ४७।

४. जे पर्वत के नाम है, सागर वरनत गाथि।
लागे ईनहि सुमेर ह्वै, नृप गुरराज सु नाथ।। —वही, छन्द ८२।

है, उदाहरण के लिये—(१) अरबी भाषा के शब्द (२) फ़ारसी के शब्द (३) तुर्की, ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच, इंग्लिश, उज़बेगी, चीनी आदि भाषाओं के शब्द जो अरबी फ़ारसी के माध्यम से हिन्दी या हिन्दुस्तानी के शब्द समझकर विवेच्य कोशों में संकलित कर लिये गये हैं। अगले पृष्ठों में प्रत्येक भाषा के शब्दों का क्रमिक परिचय प्रस्तुत किया गया है।

संस्कृत के तत्सम शब्द

जैसा कि पिछले पृष्ठों में उल्लेख किया गया है, विवेच्य हिन्दी कोशों में से प्रायः सभी समानार्थी और अनेकार्थी कोश संस्कृत कोशों से ही प्रभावित हैं जिनमें अधिकांश शब्द तत्सम रूप में संकलित किये गये हैं। द्विभाषीय कोशों में से भी ख़ालिक़बारी, अल्लाखुदाई, पारसीपारसातनाममाला और गिलक्राइस्ट की वॉकेबुलेरी को छोड़कर शेष तुहफ़तुलहिन्द और टेलर के कोश में पर्याप्त तत्सम शब्द संकलित हैं। पादरी आदम के हिन्दवी कोश में भी संस्कृत शब्दावली प्रचुर संख्या में संकलित की गई है। इन तत्सम शब्दों की संख्या अत्यधिक है जिसका अल्पांश भी उदाहरण रूप में देना अधिक लाभप्रद नहीं।

मिर्ज़ा ख़ाँ तथा टेलर ने तत्सम शब्दों का संकलन करते समय इस बात का ध्यान सदैव रखा है कि केवल ऐसे तत्सम शब्द ही समाहृत हों जिनका हिन्दी में पूर्ण प्रचलन है और जिनको अब हिन्दी का शब्द माना जा सकता हैं। परन्तु अन्य कोशों में संस्कृत के ऐसे शब्द भी संकलित कर लिये गये हैं जिसका प्रयोग कुछ अपवादों को छोड़कर हिन्दी में आजतक उपलब्ध नहीं होता। बिना किसी आधार तथा विवेक के यह शब्दावली हिन्दी या 'भाषा' की बताई गई है। सभी अनेकार्थी कोशों में तथा नन्ददास, बद्रीदास, सागर और बालकराम ने अपने समानार्थी कोशों में, स्थान-स्थान पर अप्रचलित तत्सम शब्द संगृहीत किये हैं। वर्गात्मक कोशों में, प्रकाशनाममाला, नामप्रकाश तथा उमरावकोश में तो ऐसे शब्दों की संख्या अत्यधिक है। सम्भवतः ये कोशकार इन शब्दों का प्रचलन हिन्दी में भी करना चाहते थे किन्तु वे अपने इस सत्प्रयास में सफल न हुये।

यहाँ ऐसे कुछ शब्दों के उदाहरण दिये गये है:

अगंदकर[१], अधिविन्ना[२], अनुतुध्त्री[३], अनेहा[४], अनोकह[५], अमृतांधा[६], अवाची[७], अर्कान्हि[८],

---

१. ना० प्र०, पृ० ११।
२. वही, पृ० १३६।
३. प्र० ना० मा०, पृ० २७५।
४. उ० को० १।४।१।
५. ध० ना० मा०, छं० १५।
६. कर्णा०, पृ० २ पी०।
७. उ० को० १।३।२।
८. ना० प्र०, ९९।

अश्मसार[१], अष्पद[२], अस्मर[३], अस्फुर्जथु (स्फूर्जथु)[४], आक्षीव[५], आमिक्षा[६], आम्रातक[७], आशयास[८], इध्मा[९], उपराग[१०], उषर्बुध[११], ऋभुक्षा[१२], कपर्द[१३], कलिष्ण[१४], कर्करेटु[१५], कर्पराल[१६], कीलाल[१७], कुत[१८], कुतप[१९], कुपीट[२०], कौणप[२१], क्रव्यात[२२], ऋभुक[२३], क्लोम[२४], क्षूद्रा[२५], गांतक[२६], ग्लौ[२७], घस्त्र[२८], जातवेद[२९], जीक्या[३०], तक्षा[३१], तार्क्ष्य[३२], त्वट[३३], त्रिविष्टप[३४], दंभोलि[३५], दायाद[३६], धातृ,[३७] धिष्ण[३८] धुनी[३९], ध्वांत[४०], धृश्नि,[४१] निर्युह[४२], निस्त्रिंश[४३], परिवृढ़[४४], पारिभद्रक[४५], पुरिध्र[४६], पुलिन्द[४७], प्रथुरोमा[४८], प्रहि[४९], पृषत्व[५०], बर्त्मष[५१], बर्हिबीत[५२], बादित्र[५३], प्लवंगम[५४], प्राज्यी[५५], मृत्सा[५६], मृत्स्ना[५७],

---

१. ना० प्र० २४४ ।
२. उ० को० १।२।५९ ।
३. ना० प्र०, पृ० ६ ।
४. उ० को० १।३।१४ ।
५. ना० प्र०, पृ० ८७ ।
६. उ० को० २।७।३५ ।
७. उ० को० २।३।४३ ।
८. प्र० ना० मा०, पृ० २७० ।
९. उ० को० २।३।२१ ।
१०. प्र० ना० मा०, पृ० २८४ ।
११. वही, पृ० २७० ।
१२. ना० प्र० पृ० १० ।
१३. अने० विनय०, छं० १०३ ।
१४. वि० ना० मा०, छं० ५४ ।
१५. अने० चन्द०, पृ० २४ ।
१६. ना० प्र०, पृ० ८६ ।
१७. अने० उदै०, छं० ८६ ।
१८. अने० चन्द०, पृ० ४ ।
१९. अने० उदै०, छं० ८४ ।
२०. प्र० ना० मा०, पृ० २७० ।
२१. उ० को० १।२।५३ ।
२२. प्र० ना० मा०, पृ० २७१ ।
२३. ना० प्र०, पृ० ८९ ।
२४. ना० प्र०, पृ० १५२ ।
२५. अने० विनय०, छं० १२ ।
२६. प्र० ना० मा०, पृ० २६६ ।
२७. प्र० ना० मा०, पृ० २७३ ।
२८. उ० को० १।४।२ ।
२९. प्र० ना० मा०, पृ० २७० ।
३०. अने० चन्द०, पृ० ३३ ।
३१. उ० को० २।१०।१६ ।
३२. अने० चन्द० पृ० ३९ ।
३३. प्र० ना० मा०, पृ० २७५ ।
३४. उ० को० १।२।१ ।
३५. ना० प्र०, पृ० १० ।
३६. अने० चन्द०, पृ० २१ ।
३७. वही, पृ० ९ ।
३८. वही, पृ० १९ ।
३९. ध० ना० मा०, छं० ३२ ।
४०. उ० को० १।८।४ ।
४१. प्र० ना० मा०, पृ० २७५ ।
४२. अने० चन्द०, पृ० १९ ।
४३. अने० चन्द०, पृ० ३० ।
४४. ध० ना० मा०, छं० १४ ।
४५. ना० प्र०, पृ० ९२ ।
४६. वि० ना० मा०, छं० ७ ।
४७. ध० ना० मा०, छं० १९ ।
४८. वि० ना० मा०, छं० १५ ।
४९. अने० चन्द०, पृ० ३७ ।
५०. ना० प्र०, पृ० २११ ।
५१. प्र० ना० मा०, पृ० २७२ ।
५२. वही, पृ० २७० ।
५३. वही०, पृ० २८४ ।
५४. वि० ना० मा०, छं० ४९ ।
५५. वही, छं० ९८ ।
५६. ना० प्र०, पृ० ६८ ।
५७. वही०, पृ० ६८ ।

म्लुच[1], रोमंथ[2], वर्त्म[3], वध्र[4], वस्त्य[5], विहायस[6], वीर्भावसु[7], बृत्रहा[8], रुक[9], लक्ष्म[10], शौक्लिकेय[11], श्लक्षण[12], श्रुक[13], सप्ताश्व[14], सप्तर्चि[15], सध्रीची[16], सिलोचय[17] सूक्ष्ग[18], सोचिष्केस[19], स्थाणु[20], स्पोनाक[21], हार्दि[22], हुतभुक[23], हृषीक[24]।

तद्भव या भाषा के शब्द

संस्कृत के तत्सम शब्दों के अनन्तर आलोच्य कोशों में संख्या की दृष्टि से द्वितीय स्थान तद्भव शब्दों का आता है, जिनको भिखारीदास, हरिचरणदास व मियाँ नूर ने 'भाषा' शब्द के नाम से अभिहित किया है[25]। विवेच्य कोशों में केवल नन्ददास, विनयसागरोपाध्याय, चन्दनराम तथा उदैरामकृत अनेकार्थी कोशों तथा वीरभाण, फकीरचन्द और उदैराम द्वारा विरचित एकाक्षरी नाममालाओं को छोड़ कर शेष समस्त समानार्थी तथा द्विभाषीय कोशों में 'तद्भव' या 'भाषा के शबद संकलित किये गये हैं। द्विभाषीय कोशों में तो ऐसे शब्दों की संख्या अत्यधिक मात्रा में है। ख़ुसरो की ख़ालिक़बारी में संस्कृत के तत्सम शब्द केवल ये हैं—अंजन (पंक्ति ४२), मंगल (पं० १५३), मेघ (१६१), लक्ष्मी (१३१) तथा सेवक (पं०४२)। इनके अतिरिक्त अन्य समस्त शब्द तद्भव रूप में संकलित किये गये हैं। अल्लाख़ुदाई में आकाश (पंक्ति १६), आनन्द (पं० १७), गंगा (२३), नदी (२२), विष (१३), सिंह (८१), स्नेह (पं० २०), जैसे संस्कृत के तत्सम शब्दों को छोड़कर शेष सभी भाषा में प्रचलित तद्भव शब्द हैं। इसी प्रकार पारसीपारसातनाममाला में भी उत्तर (छन्द ३२३), एक (छं० २९९), कन्या (२४६), कर्क (२४६), कुम्भ

---

१. ना० प्र०, पृ० २५४।
२. अने० चन्द० पृ०, २६।
३. वही, पृ० २१।
४. वही, पृ० १३।
५. वि० ना० मा०, छं० २७।
६. उ० को० १।२।६६।
७. प्र० ना० मा०, पृ० २७५।
८. ना० प्र०, पृ० १०।
९. प्र० ना० मा०, पृ० २७५।
१०. अने० चन्द० पृ० २८।
११. ना० प्र०, पृ० ५५।
१२. वही, पृ० २७८।
१३. प्र० ना० मा०, पृ० २७०।
१४. उ० को० १।३।३४।
१५. वि० ना० मा०, छं० ४।
१६. वही, पृ०, छं० ७३।
१७. वि० ना० मा०, छं० ४७।
१८. प्र० ना० मा०, पृ० २७०।
१९. वही, पृ० २७०।
२०. उ० को० १।२।१९।
२१. ना० प्र०, पृ० ९३।
२२. वही, पृ० ५०।
२३. उ० को० १।२।४७।
२४. वही, १।५।९।
२५. ये बीस संस्कृत में बिचारि, बैहरि बयारि भाषा निवाह।—ना० प्र०, पृ० १३।
अधर ओष्ट पर्जाय है, केतने भाषा वारे कहत हैं। —कर्णा०, पृ० ३९ म०।
वक्ष बत्स उर कौ कहै, भाषा छाती जान। —प्र० ना० मा०, पृ० ३१३।

(२४७), पंचदश (३०२), मंगल (२४४), मीत (२४८) षट (छं० ३००), के अलावा अन्य सभी शब्द तद्भव रूपों में समाहृत किये गये हैं। मिर्ज़ा ख़ाँ के 'तुहफ़त्' व टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश में तत्सम व तद्भव शब्दों की संख्या लगभग बराबर है। गिलक्राइस्ट की वॉकेबुलेरी में संस्कृत का एक भी शब्द तत्सम रूप में नहीं है सभी शब्द तद्भव रूप में ही आये हैं।

विवेच्य कोशों में संकलित कुछ संस्कृत के तद्भव या 'भाषा' के शब्दों के उदाहरण इस प्रकार हैं :

अंगड़ाई[१], अंगेठी[२], अंगनई[३], अंटारी[४], अंध्यारो[५], अटवाड़ा[६], अमरुत[७], अर्र[८], आँखि[९], आक[१०], आगि[११], आम[१२], उमराउ[१३], एरंड[१४], औधोमुख[१५], कंकई[१६], कंघी[१७], कजरौटी[१८], कबड्डी[१९], करछी[२०], करौंदा[२१], कर्छुलि[२२], काँटा[२३], काका[२४], कानु[२५], काठ[२६], किसान[२७], कोड़ा[२८], कुंदरू[२९], कुढ़नि[३०], कुतिया[३१], कुम्हार[३२], कुलाल[३३], कुंजड़ा[३४], कोड़ा[३५], कौआ[३६], खप्पर[३७], खाडा[३८], खाब[३९], खाज[४०], खिलाड़ी[४१], खुरपी[४२], खेह[४३], खोंटर[४४], खोज[४५],

---

१. खा० बा०, पं० १८४।
२. ना० प्र०, पृ० २२६।
३. वही, पृ० ७५।
४. वही, पृ० ७५।
५. वही, पृ० ५३।
६. वाके०, पृ० ६०।
७. उ० को० २।४।४३।
८. वाके०, पृ० ५९।
९. ना० प्र०, पृ० १५९।
१०. वही, पृ० ९९।
११. मा० मं०, छं० १२१।
१२. ना० प्र०, पृ० ८७।
१३. पा० पा०, छं० ४४।
१४. ना० प्र०, पृ० ९२।
१५. वही, पृ० २७०।
१६. वही, पृ० १०८।
१७. अ० खु०, पं० १३६।
१८. तुह०, पृ० २६७ मू०।
१९. हिन्दु० II, पृ० ४११।
२०. ना० प्र०, पृ० २२७।
२१. वही०, पृ० ९५।
२२. उ० को० २।९।६७।
२३. ना० प्र०, पृ० २२६।
२४. पा० पा० छं० १४।
२५. ना० प्र०, पृ० १५९।
२६. तुह०, पृ० २६२ मू०।
२७. उ० को० २।९।१२।
२८. खा० बा०, पं० ७५।
२९. ना० प्र०, पृ० ११४।
३०. वही, पृ० ५०।
३१. हिन्दु० II, पृ० ४०७।
३२. अ० खु०, पं० ४५।
३३. पा० पा० ना० मा०, छं० ३१।
३४. वही, छं० ४९।
३५. हिन्दु० II, पृ० ४५७।
३६. खा० बा०, पं० १३।
३७. तुह० पृ० २६८ पी०।
३८. खा० बा० पं० २१।
३९. तुह०, पृ० २६८ मू०।
४०. वही, पृ० २६८ मू०।
४१. वही, पृ० २६९ मू०।
४२. हिन्दु० II, पृ० ४६९।
४३. ना० मा० "ख" छं० ४४।
४४. ना० प्र०, पृ० ८२।
४५. खा० बा०, पं० १४५।

खोट[१], गंड़ासा[२], गप[३], गयन्द[४], गाँव[५], गात[६], गाभ[७], गारुरि[८], गुटका[९], गुबरौड़ा[१०], गूलरि[११], गोंफा[१२], गोहराइबो[१३], घड़ी[१४], घाम[१५], घाव[१६], घुड़की[१७], घूरी[१८], घोड़ी[१९], घ्यू[२०], चमड़ा[२१], चा[२२], चाई[२३], चाउ[२४], चाबी[२५], चाम[२६], चाव[२७], चिचिढ़ा[२८], चीकड़[२९], चुल्हि[३०], चूतड़[३१], चूहा[३२], छकड़ा[३३], छज्जा[३४], छप्पर[३५], छलावा[३६], छाँह[३७], छान[३८], छानि[३९], छोकड़ा[४०], छौना[४१], छौर[४२], जलकिनका[४३], जराव[४४], जाँघ[४५], जामुन[४६], जिव[४७], जुनय्या[४८], जूती[४९], जुवा[५०], जोंक[५१], झगरा[५२], झरना[५३], झाँई[५४], झाँज[५५], झाँपी[५६], झारू[५७], झिटी[५८], झींगुर[५९], झूठ[६०],

---

१. हिन्दु० II, पृ० ४७७।
२. वही, II, पृ० ५१३।
३. वही, II, पृ० ४९०।
४. तुह०, पृ० २७० पी०।
५. वही, २७१ पी०।
६. तुह०, पृ० २७० मू०।
७. तुह०, पृ० २७० मू०।
८. ना० प्र०, पृ० ५५।
९. तुह०, पृ० २६९ पी०।
१०. अ० खु०, पं० ११०।
११. उ० को०, २।४।३४।
१२. ना० प्र०, पृ० ८३।
१३. वही, पृ० ३७।
१४. खा० बा०, पं० १०५।
१५. तुह०, पृ० २७३ मू०।
१६. वही, पृ० २७३ मू०।
१७. हिन्दु०, II, पृ० ५२७।
१८. ना० प्र०, पृ० २१३।
१९. वही०, पृ० २००।
२०. खा० बा०, पं० १७।
२१. अ० खु०, पं० ८९।
२२. वाके० पृ० ६७।
२३. तुह०, पृ० २३९ मू०।
२४. वही, पृ० २३६ पी०।
२५. वाके०, पृ० ६७।
२६. तुह०, पृ० २३७ पी०।
२७. वही, पृ० २३८ मू०।
२८. ना० प्र०, पृ० १०८।
२९. ध० ना० मा०, छं० १००।
३०. ना० प्र०, पृ० २२५।
३१. पा० पा०, छं० ९२।
३२. वही, छं० २१९।
३३. ना० प्र०, पृ० २०१।
३४. उ० को० २।२।२२।
३५. ना० प्र०, पृ० ७६।
३६. तुह०, पृ० २३९ मू०।
३७. वही, पृ० २४० मू०।
३८. वही, पृ० २४० मू०।
३९. उ० को० २।२।२१।
४०. वाके०, पृ० ६७।
४१. तुह०, पृ० २४० मू०।
४२. वही, पृ० २४० मू०।
४३. ना० प्र०, पृ० १८।
४४. तुह०, पृ० २३३ मू०।
४५. वही, पृ० २३२ पी०।
४६. ना० प्र०, पृ० ८४।
४७. वही, पृ० २१८।
४८. तुह०, पृ० २३१ मू०।
४९. ना० मा० "ख", छंद० १३१।
५०. तुह०, पृ० २३१ मू०।
५१. वही, पृ० २३२ पी०।
५२. वही, पृ० २३४ मू०।
५३. ना० प्र०, पृ० ७९।
५४. तुह०, पृ० २३५ मू०।
५५. वही, पृ० ३२४ मू०।
५६. कर्णा०, पृ० ४४ मू०।
५७. ना० प्र०, पृ० ७६।
५८. वही, पृ० ९८।
५९. प्र० ना० मा०।
६०. ना० मा० "ख", छं० ५३।

टहलवा[१], टाँग[२], टीला[३], टेंट[४], टेर[५], टेव[६], ठकुराई[७], ठगिया[८], ठगोरी[९], ठाँव[१०], ठाँस[११], ठाकुर[१२], ठाठ[१३], डंडा[१४], डाकू[१५], डायन[१६], डीह[१७], डुबकी[१८], डेहरी[१९], डेहरौटा[२०], डोल[२१], ढलहा[२२], ढाख[२३], ढाउस[२४], ढिटाई[२५], ढेरा[२६], ढेलवांस[२७], ढोटा[२८], ढोल[२९], तनी[३०], तरुवा[३१], तारू[३२], थन[३३], थनैल[३४], थरथरी[३५], थूनी[३६], थान[३७], थाली[३८], दही[३९], दाढ़ी[४०], दादुर[४१] दिया[४२], दुलार[४३], दूध[४४], धमार[४५], धूरि[४६], धोबी[४७], नमक[४८], नाऊ[४९], नाह[५०], नाड़ा[५१], निंद्या[५२], नियर[५३], नेबुआ[५४], नेवता[५५], नौका[५६], पंखा[५७], पंछी[५८], पगड़ी[५९], परोस[६०], पहाड़[६१], पाँत[६२],

---

१. तुह०, पृ० २२ मू० ।
२. वही, पृ० २२९ पी० ।
३. वही, पृ० २२९ मू० ।
४. वही, पृ० २२९ मू० ।
५. ना० प्र०, पृ० ३७ ।
६. तुह०, पृ० २३० मू० ।
७. वही, पृ० २३० पी० ।
८. वही, पृ० २३० पी० ।
९. वही, पृ० २३१ मू० ।
१०. वही, पृ० २३१ मू० ।
११. वही, पृ० २३० पी० ।
१२. वही, पृ० २३० पी० ।
१३. वही, पृ० २३० पी० ।
१४. हिन्दु० II, पृ० ८९ ।
१५. वही, II, पृ० ८५ ।
१६. तुह०, पृ० २४५ पी० ।
१७. ना० प्र०, पृ० ७० ।
१८. अ० खु०, पं० ३१ ।
१९. ना० प्र०, पृ० ७५ ।
२०. वही, पृ० ७५ ।
२१. तुह०, पृ० २४५ पी० ।
२२. ना० प्र०, पृ० २०६ ।
२३. वही, पृ० ८६ ।
२४. तुह०, पृ० २४६ मू० ।
२५. वही, पृ० २४६ पी० ।
२६. ना० प्र०, पृ० ८६ ।
२७. कर्णा०, पृ० ३९ मू० ।
२८. तुह०, पृ० २४५ पी० ।
२९. ना० प्र०, पृ० २१६ ।
३०. तुह०, पृ० २२८ मू० ।
३१. वही, पृ० २२५ पी० ।
३२. वही, पृ० २२८ मू० ।
३३. वही, पृ० २२८ पी० ।
३४. वही, पृ० २२८ पी० ।
३५. ना० प्र०, पृ० ५३ ।
३६. तुह०, पृ० २२८ पी० ।
३७. वही, पृ० २२८ पी० ।
३८. वही, पृ० २२८ पी० ।
३९. वही, पृ० २४३ मू० ।
४०. पा० पा०, छं० ७५ ।
४१. तुह० पृ० २४१ मू० ।
४२. हिन्दु० II, पृ० ७९ ।
४३. तुह०, पृ० २४१ पी० ।
४४. वही, पृ० २४१ मू० ।
४५. वही, पृ० २२४ मू० ।
४६. मा० म०, छं० १०८ ।
४७. पा० प्र०, पृ० २५० ।
४८. खा० बा०, पं० ७६ ।
४९. ना० मा० "ख", छ० ४० ।
५०. तुह०, पृ० २८५ पी० ।
५१. पा० पा०, छं० १०४ ।
५२. तुह०, पृ० २८२ पी० ।
५३. ना० प्र०, पृ० २७९ ।
५४. वही, पृ० ८५ ।
५५. तुह०, पृ० २८२ पी० ।
५६. उ० को० १।९।१२ ।
५७. वही, २।६।२१८ ।
५८. तुह०, पृ० २२४ मू० ।
५९. अ० खु०, पं० १२५ ।
६०. तुह०, पृ० २२० पी० ।
६१. आ० बो०, छं० ६२ ।
६२. अ० ख०, पं० ७७ ।

पाय[१], पैडो[२], फरसा[३], फाँक[४], फाँद[५], फूँक[६], फूस[७], बंटैत[८], बंधुवा[९], बकरा[१०], बच्ची[११], बटोर[१२], बड़हर[१३], बदली[१४], बनराई[१५], बनिया[१६], बबा[१७], बयार[१८], बलमां[१९], बरतन[२०], बरिस[२१], बहू[२२], बाँझ[२३], बाई[२४], बाती[२५], बाप[२६], बारू[२७], बिछुआ[२८], बिछौना[२९], बिनास[३०], बिरछ[३१], बीजुरी[३२], बेटी[३३], बेसर[३४], बैल[३५], भतार[३६], भपारा[३७], भलसुघड़ा[३८], भांटा[३९], भांड़ा[४०], भात[४१], भाव्रज[४२], भीत[४३], भैंसा[४४], भौंरा[४५], भौंह[४६], मनुस[४७], महावत[४८], माँझ[४९], मांस[५०], माई[५१], माखन[५२], माड़ौ[५३], मीत[५४], मूछ[५५], मूरत[५६], मेढ़की[५७], मेहरारू[५८], रांड[५९], रात[६०], रार[६१], राह[६२], रिनिया[६३]।

---

१. तुह० पृ० २२३ मू०।
२. ना० प्र०, पृ० ७०।
३. वही, पृ० २१२।
४. तुह०, पृ० २२५ मू०।
५. वही, पृ० २२४ पी०।
६. वही, पृ० २२५ मू०।
७. वही, पृ० २२५ मू०।
८. वाके०, पृ० ६४।
९. ना० प्र०, पृ० २१८।
१०. पा० पा०, छं० २०३।
११. वाके०, पृ० ६०।
१२. ना० प्र०, पृ० २९९।
१३. वही, पृ० ९४।
१४. अ० खु०, पं० १९।
१५. ध० ना० मा०, छं० १८।
१६. पा० पा०, छं० ५२।
१७. ना० मा० नन्द०, पं० ३७९।
१८. तुह०, पृ० २०६ मू०।
१९. मा० मं०, छं० ८७।
२०. ना० प्र०, पृ० २७७।
२१. वही, पृ० २८।
२२. तुह०, पृ० २११ मू०।
२३. वाके०, पृ० ६४।
२४. वही, पृ० ६०।
२५. वही, पृ० ६५।
२६. अ० खु०, पं० १।
२७. ना० प्र०, पृ० ७०।
२८. खा० बा०, पं० १६१।
२९. अ० खु०, पं० ४६।
३०. तुह०, पृ० २०६ पी०।
३१. वही, पृ० २०४ पी०।
३२. मा० म०, छं० ८३।
३३. वाके०, पृ० ६६।
३४. तुह०, पृ० २०६ मू०।
३५. उ० को० २।९।११५।
३६. वाके०, पृ० ६६।
३७. वही, पृ० ६४।
३८. वही०, पृ० ६३।
३९. ना० प्र०, पृ० १०७।
४०. अ० खु०, पं० ११४।
४१. उ० को० २।९।९६।
४२. तुह०, पृ० २१३ पी०।
४३. वही, पृ० २१२ पी०।
४४. उ० को० २।५।७।
४५. तुह०, पृ० २१२ पी०।
४६. पा० पा०, छं० ७६।
४७. खा० बा०, पं० ७।
४८. पा० पा०, छं० ५६।
४९. तुह०, पृ० २७७ मू०।
५०. पा० पा०, छं० १४६।
५१. खा० बा०, पं० १२।
५२. पा० पा०, छं० १३३।
५३. ना० प्र०, पृ० ७४।
५४. अ० खु०, पं० २१।
५५. पा० पा०, छं० ७३।
५६. तुह०, पृ० २७६।
५७. खा० बा० पं० ९४।
५८. तुह०, पृ० २८१ मू०।
५९. वही, पृ० २४७ पी०।
६०. अ० खु०, पं० ५५।
६१. तुह०, पृ० २४७ पी०।
६२. वही, पृ० २४९ पी०।
६३. हिंदु II, पृ० १२९।

रीठी[१], रोटी[२], रोरी[३], लंगर[४], लहँगा[५], लखाव[६], लड़ाका[७], लसोढ़ा[८], लाड़[९], लालची[१०], लौकी[११], वीवाह[१२], सहरी[१३], सांप[१४], सांस[१५], साग[१६], सामने[१७], सूरिज[१८], सेहुँड[१९], सेहरा[२०], सौंधा[२१], सौंह[२२], हँसी[२३], हड्डी[२४], हथियार[२५], हथेली[२६], हरिआनी[२७], हरियाली[२८], हलुवा[२९], हाड़[३०], हास[३१], हिजरा[३२], होठ[३३], होड़[३४]।

स्थानिक, या देशज एवं प्रान्तीय शब्द—स्थानिक या देशज शब्दों के सम्बन्ध में कुछ निश्चित रूप से कहना अत्यन्त कठिन है क्योंकि उक्त दोनों शब्द अधिक स्पष्ट नहीं हैं। इन शीर्षकों के अन्तर्गत आने वाली कुछ शब्दावली पीछे तद्भव या भाषा के प्रसंग में भी उल्लिखित हो चुकी है।

तुहफ़तुलहिन्द में 'दो' के लिये (गुजराती) 'बिब' तथा 'बीब', शर्म एवं हया के लिये 'कान' (पंजाबी कांण), नफ़ा एवं सूद के लिये 'लाहा' को भी संकलित कर दिया है। टेलर के कोश में प्रान्तीय शब्द पर्याप्त मात्रा में आये हैं इस प्रकार के शब्दों के लिये विशेष रूप से डिंगल कोशों में संकलित शब्दावली दृष्टव्य है जिसके कुछ उदाहरण द्वितीय अध्याय में दिये जा चुके हैं।

हरिचरणदास ने अपने कोशग्रंथ कर्णाभरण में स्थान विशेष का नाम न देते हुए 'पूरब' और 'इहाँ' व्यवहृत शब्दावली का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। यथा नीलकमल के लिये कमल, कोका, कुमुद के लिये पूर्व में 'कोई' तथा इनके

---

१. ना० प्र०, पृ० ८७।
२. खा० बा०, पं० ९१।
३. तुह०, पृ० २४९ पी०।
४. वही, पृ० २७४ पी०।
५. वही, पृ० २७३ मू०।
६. वही, पृ० २७५ मू०।
७. वाके०, पृ० ९१।
८. ना० प्र०, पृ० ८८।
९. तुह०, पृ० २७३ मू०।
१०. ना० प्र०, पृ० २६६।
११. हिन्दु० II, पृ० ५६७।
१२. मा० मं०, छं० १४८।
१३. ना० प्र०, पृ० ६१।
१४. अ० खु०, पं० ३७।
१५. हिन्दु० II, पृ० १७७।
१६. हिन्दु० II, पृ० १७३।
१७. वही, पृ० १७६।
१८. मा० मं०, छं० ११०।
१९. उ० को० २।४।१०२।
२०. तुह०, पृ० २५० मू०।
२१. वही, पृ० २५० पी०।
२२. ना० प्र०, पृ० २८।
२३. हिन्दु० II, पृ० ८०५।
२४. वही, II, पृ० ८११।
२५. पा० पा०, छं० ११८।
२६. वही, छं० ८३।
२७. ना० प्र०, पृ० ३३।
२८. खा० बा०, पं० १६९।
२९. उ० को० २।९।१०।
३०. ना० प्र०, पृ० १५३।
३१. तुह०, पृ० २८६ मू०।
३२. ना० प्र०, पृ० १८९।
३३. पा० पा०, छं० ७६।
३४. तुह०, पृ० २८६ मू०।

प्रकोष्ट में स्थित पदार्थ को 'रुकी' कहते हैं।[1] ढेलवांस को इहाँ (राजस्थान में) गोफन कहते हैं,[2] आदि।उ नकी जीवनी को देखते हुये 'पूरब' बिहार से एवं 'इहाँ' राजस्थान (कृष्णगढ़) से सम्बन्धित है।

विदेशी शब्द

विदेशी शब्दों में फ़ारसी व अरबी शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत अधिक है। यहाँ पर फ़ारसी या अरबी शब्दों का तात्पर्य उन शब्दों से नहीं है जो हिन्दी शब्दों के अर्थ देने के लिये कुछ द्विभाषीय कोशों में व्यवहृत हुये हैं। उदाहरण के लिये ख़ालिक़बारी, अल्लाखुदाई, तुहफ़तुलहिन्द, एवं पारसीपारसातनाममाला में संकलित हिन्दी शब्दों के समानार्थी फ़ारसी या अरबी शब्द दिये गये हैं परन्तु ऐसे शब्द प्रस्तुत अध्ययन के आधार नहीं हैं। यहाँ पर केवल उन्हीं शब्दों के सम्बन्ध में विवेचना की जायेगी जिनको कोशकारों ने हिन्दी का शब्द मान कर अपने कोशों में संकलित किया। कुछ समानार्थी कोशों में अन्य पर्यायों की भाँति ऐसे शब्दों को भी गिना लिया गया है। इसी प्रकार अन्य द्विभाषीय कोशों में अन्य संस्कृत के तत्सम व तद्भव शब्दों की भाँति इनको भी वही स्थान प्रदान किया गया है, जो अन्य हिन्दी संस्कृत शब्दों को।

तीनों मानमालाओं (नन्ददास की नाममाला, बद्रीदासकृत मानमंजरी, तथा नाममाला "ख"), धनजीनाममाला, विश्वनाममाला, अनेकार्थी एवं एकाक्षरी कोशों को छोड़कर सामान्यतः अन्य समस्त पर्याय कोशों में हिन्दी शब्दों के साथ फ़ारसी या अरबी के शब्द प्रकीर्ण रूप से छंदोबद्ध किये गये हैं। केवल गरीबदास ने अपने अनभैप्रबोध में 'परमेश्वर जी के तुरकी नाम' स्वतंत्र रूप से एक स्थान पर छंदोबद्ध किये हैं,[3]

---

१. "...औ (र) जो रात्रि विकासी नील कमल सो इंदीवर कहावै ओ नीलांबुज भी जानिये। कमल कोंका पूरब में कहत हैं। सित जो सफेद सो कुमुद कैरव जानिये—पूरब में कोई कहत हैं इनको भीज(त?)रि सालूक पूरब में रुकी कहत हैं...।" —कर्णा०, पृ० २० पीठ।

२. वही, पृ० ३९ मूल।

३. ॥ परमेश्वर जी के तुरकी नाम ॥
अलिफ आप पाक महबूब, साफ लतीफ खुलासा खूब।
मिहरवान मालिक करीम, राजिक रब साँई रहीम ॥
मादर पिदर मासूक खांन, काइम करता तूं दिवान।
दसतगीर दोसत सतार, हाजिर नाजर जहाँदार ॥
मीरां मीयाँ सुलतान, गनी सलौना सुवहाल।
सुरजन साँई दिलदार, अजब अजायब आले यार ॥
—अनभै प्रबोध, पृ० २५।

जिनमें तुर्की ही नहीं फ़ारसी-अरबी नाम भी आ गये हैं। अन्य समानार्थी कोशों में ऐसे शब्द तदर्थी हिन्दी शब्दों के साथ प्रासंगिक रूप में ही आये हैं। कुछ शब्द दृष्टव्य हैं:

फ़ारसी—आवाज (आवाज़),[१] कारखाना (कारख़ानः),[२] खाक (ख़ाक़),[३] खुसियाली (ख़ुशहाल)[४], जमी (ज़मीं)[५], जहर (ज़ह्रः)[६], जहान (जहाँ)[७], दरखत (दरख़्त)[८], दरवाजो (दरवाज़ः),[९] बंदगी[१०], बखतर (बक्तर)[११], बाग[१२], बजार (बाज़ार)[१३], हुसियारक (होशयार)।[१४]

अरबी—अकलि (अक़्ल)[१५], उमदा (उम्दः)[१६], खबरि (ख़बर)[१७], गरूर[१८], ज्वाब (जवाब)[१९], जहाज[२०], जालिम[२१], तमाशा[२२], नजर[२३], फरस (फ़र्श)[२४], फिकर (फ़िक्र)[२५], फिराक (फ़िराक़)[२६], फौज[२७], हुकम (हुक्म)।[२८]

उपर्युक्त शब्द अत्यन्त सामान्य हैं जो हिन्दी के ही मालूम होते हैं। तत्कालीन साहित्य में भी इनका प्रयोग मिल सकता है, इसलिये इनको हिन्दी कोशों में स्थान मिलना एक शुभ लक्षण का प्रतीक है। परन्तु फ़ारसी-अरबी शब्दों को संकलित करने की यह प्रवृत्ति अंग्रेज़ी कोशकारों में कुछ अधिक मात्रा में दिखाई देती है। गिलक्राइस्ट कृत 'ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' तथा टेलर द्वारा विरचित 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' में अरबी-फ़ारसी शब्दों की संख्या संस्कृत के तत्सम या तद्भव शब्दों की अपेक्षा अधिक है। गिलक्राइस्ट भारत की प्रधान भाषा के लिये सामान्य रूप से 'हिन्दोस्तानी' शब्द का ही प्रयोग करते थे। किंतु

---

१. ह० ना० मा०, छं० २१६।
२. ना० प्र०, पृ० ७५।
३. डिं० ना० मा०, छं० १४।
४. ना० प्र०, पृ० ५०।
५. डिं० ना० मा०, पृ० १४।
६. ह० ना० मा०, छं० २३८।
७. ना० प्र०, पृ० ६९।
८. आ० बो०, छं० २१८।
९. उ० को० २।२।२२।
१०. अ० प्र०, पृ० १४।
११. उ० को० २।८।११।
१२. ना० प्र०, पृ० ८०।
१३. कर्णा०, पृ० २२ मू०।
१४. ह० ना० मा०, छं० ११३।
१५. वही, छं० ८।
१६. ना० डिं०, छं० ५।
१७. ना० प्र०, पृ० ३७।
१८. ह० ना० मा०, छं० २०५।
१९. ना० प्र०, पृ० ३८।
२०. प्र० ना० मा०, पृ० २९०।
२१. अ० मा०, छं० ३६२।
२२. ना० प्र०, पृ० ५१।
२३. ना० डिं०, छं० १३।
२४. ना० प्र०, पृ० ७६।
२५. अ० प्र०, पृ० १४।
२६. वही, पृ० १४।
२७. ह० ना० मा०, छं० ९८।
२८. आ० बो०, छं० १९२।

विशिष्ट अर्थ में उनका तात्पर्य उर्दू से ही था। और अंग्रेज़ों द्वारा हिन्दुस्तानी से उर्दू का अर्थ ही लिया जाता रहा।[1]

उपर्युक्त धारणा के फलस्वरूप इन दोनों कोशकारों के हिन्दुस्तानी कोशों में बहुत से ऐसे विदेशी शब्द भी संकलित हो गये हैं जिनको किसी भी हिन्दी कोश में स्थान नहीं मिल सकता। तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखा जाय तो गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी में अरबी-फ़ारसी के ऐसे अप्रचलित शब्द बहुत कम संख्या में आये हैं, जबकि टेलर के कोश में वे अत्यधिक मात्रा में समाहृत हैं। अकारादिक्रम में नियोजित कुछ शब्दों के उदाहरण नीचे उद्धृत हैं :

फ़ारसी के अप्रचलित शब्द

गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी से—फ़लाखुन, फ़ील, बिसियार, बेहुर्मत।

टेलर विरचित हिन्दुस्तानी कोश से—आज़ूर, आबिश्त, आमेज़, इस्पन्द, ऐवान, खागीन, खाम, खावर, खुनकखंद, जिश्त, ज़ुमुर्रुद, झिन्द, दरेघु, सराज़ीर, सिपर, शस्त, शुस्त-ओ-शू।

अरबी के अप्रचलित शब्द

गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी से—बदाँ, बिदूँ, रक्स।

टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश से—अजल, अब्रद, अल-अजमत्तु-लिल्लाही, अशजार, इक़लीम, इक़लील-उल-जबल, इजमाउ-ए-उम्मत, इत्तिसाफ़, खुसम्मत, ज़कर, ज़ल्क, तअक्कुल, तनासुब, तसहहुस, तहस्सुर, तारवीर, यमीन, रक़ीक, रफ़्फ़, राफ़िज़ी, वुसअत्, शफ़ीअ्, सम्क, सरोश, सालिम, सिज्जील, हल्लाज, हस्व, हिस्न, हैज।

अन्य भाषीय विदेशी शब्द

अन्य भाषीय विदेशी शब्दों में मुख्य रूप से वही शब्द हैं जो अरबी-फ़ारसी के माध्यम से आये। नामप्रकाश में केवल एक अंग्रेज़ी शब्द 'बंगला' राज प्रासाद के पर्याय के रूप में प्रयुक्त किया गया है। अरबी-फ़ारसी के अतिरिक्त अन्य भाषीय विदेशी शब्दों की संख्या टेलरकृत 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंगलिश' में अधिक आई है। उसमें इन शब्दों के मूल रूप कम और अरबी-फ़ारसी में प्रचलित रूप अधिक आये हैं। तुर्की शब्द क़ज़लबाशी, तूपक, चपक़लिश, सज़ावल, क़रौल, कल्लाच, मुचल्का आदि अरबी-फ़ारसी के से ही लगते हैं। उज़बेगी भाषा के तद्भव

१. हिन्दी साहित्य कोश (सं० डॉ० धीरेन्द्र वर्मा), पृ० ८९६।

शब्द कुर्मसाक़, क़ज़्ज़ाक़, मुक्कैश, नर्गा; ग्रीकभाषा के तद्भव शब्द सिकबीनज, क़ीतार, माखूलिया, नूह, यूनस; अंग्रेज़ी कारतूस; चीनी लीची; लैटिन अलमान; पुर्तगाली फ़ीत, मार्तुल, मासकबार कुछ दृष्टव्य उदाहरण हैं। ये सभी शब्द अपने उर्दू अक्षरों के वर्णानुक्रम में संकलित किये हैं अतएव प्रसंग देने की आवश्यकता नहीं है।

(२) व्याकरणिक आधार

प्राचीन काल में संस्कृत में निरुक्तकार यास्क ने शब्दों को चार विभागों में विभक्त किया—(१) नाम (२) आख्यात (३) उपसर्ग एवं (४) निपात[१]। महर्षि पाणिनि ने निपात और उपसर्ग दोनों को एक ही वर्ग में रख कर केवल तीन ही भेद किये—नाम, आख्यात व अव्यय। आधुनिक हिन्दी व्याकरण में यह पद-विभाग दो प्रकार से किया जाता है। कुछ वैय्याकरण पाँच विभेद मानते हैं—संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, विशेषण और अव्यय। ये लोग अव्यय के भेद नहीं करते और विस्मयादिबोधक पदों को अव्यय के अन्तर्गत नहीं मानते। परन्तु कामता प्रसाद गुरु ने आठ प्रकार के पद-विभाग माने हैं—संज्ञा, सर्वनाम, विशेषण, क्रिया, क्रिया-विशेषण, सम्बन्धसूचक, समुच्चयबोधक और विस्मयादिबोधक।[२] किशोरीदास बाजपेयी ने भी अपने 'हिन्दी शब्दानुशासन' में गुरू का ही अनुकरण किया है। आधुनिक अंग्रेज़ी व्याकरणों में भी आठ विभेद माने जाते हैं। वस्तुतः पद-विभाग के सम्बन्ध में कोई निश्चित व सर्वमान्य मत नहीं उपलब्ध होता, क्योंकि यह विभाजन-पद्धति किसी शुद्ध वैज्ञानिक पृष्ठभूमि पर आधारित नहीं है।

नाम व आख्यात—नाम, आख्यात, उपसर्ग व निपातों में से नाम व आख्यात ही प्रधान पद हैं, उपसर्ग व निपात गौण हैं। नाम व आख्यात, उपसर्ग व निपात के बिना भी अपना अर्थ प्रकट कर सकते हैं। परन्तु उपसर्ग व निपात बिना नाम या आख्यात की सहायता के अर्थ प्रकाशित नहीं कर सकते। इसीलिये वाक्य विशेष में नाम तथा आख्यातों को ही प्रधानता दी जाती है। उपसर्ग व निपात दोनों अप्रधान हैं। नाम और आख्यात वाच्य अर्थ वाले कहलाते हैं और उपसर्ग व निपात द्योत्य अर्थ वाले। नाम, आख्यात एक दूसरे पर आधारित रहते हैं। यदि हम 'यज्ञदत्त' कहें तो वक्ता का अभिप्राय तब तक स्पष्ट नहीं होता जब तक उसके आगे 'पचति' या 'पठति' इत्यादि शब्द न लगा दें। दूसरी बात यह है कि दोनों ही वाच्य अर्थ से अर्थवान

---

१. **"नामाख्याते चोपसर्ग निपातश्च" —यास्क।**
२. **कामता प्रसाद गुरु : हिन्दी व्याकरण, पृ० ६८-७६।**

होते हैं। मैक्समूलर ने बताया है कि प्लेटो व अरिस्टाटल के मत से संज्ञा तथा क्रिया, भाषा के दो प्रधान अंग हैं।

नाम की प्रधानता—नाम व आख्यातों में भी नाम शब्दों की ही प्रधानता है, इसके कई कारण हैं। सर्वप्रथम आख्यात का प्रयोग नाम के ही अधीन होता है।[1] फिर नाम शब्दों के प्रयोग की जितनी अधिकता व विविधता पाई जाती है उतनी आख्यातों या क्रियापदों की नहीं। नाम पद के तीन विभाग होते हैं—प्रकृति (धातु), प्रत्यय (अक् आदि), और विभक्ति (प्रथमा आदि)। उदाहरण के लिये 'पाचक' शब्द में 'पच्' धातु, अक् प्रत्यय तथा प्रथमा विभक्ति है। इसमें 'पच्' धातु की अप्रधानता व प्रत्यय तथा विभक्ति की ही प्रधानता है।

नाम में क्रिया या आख्यात धातु रूप में अवश्य विद्यमान रहता है। आख्यात क्रिया प्रधान होता है, उसमें लिंग आदि का विशेष स्थान नहीं। तीनों पुरुषों और कालों का जो योग आख्यात में रहता है उसका कारण भी यह है कि आख्यात के मूल में क्रिया रहती है।[2] आख्यात क्रिया प्रधान है[3] और नाम शब्द द्रव्य या सत्त्व प्रधान।[4] दोनों का स्थान विशिष्ट और स्वतन्त्र है। भाषा के बन्धन में बाँधने से दोनों एक दूसरे के पूरक बन जाते हैं। यही नहीं, वाक्य के सूत्र में बंधने से आख्यात की प्रधानता भी दृष्टिगत होती है[5] परन्तु शब्द-समूह की दृष्टि से प्रचलन व लोकप्रियता तथा आधिक्य को माध्यम मानते हुये 'नाम' शब्द ही अधिक प्रधान व महत्त्वपूर्ण हैं।

आलोच्यकालीन कोशों को 'कोश' नाम न देकर 'नाममाला' नाम अधिकतर दिया गया है। स्पष्ट है कि इनमें नाम संज्ञाओं को माला के समान गूँथा गया है।[6] एक नाम शब्द के कितने अन्य प्रचलित पर्याय हैं इसी को प्रदर्शित करना इन नाम कोशों का उद्देश्य था। अनेकार्थी कोशों में भी एक शब्द के भिन्न-भिन्न संज्ञा-अर्थ दिये गये हैं। यदि यथार्थ दृष्टि से देखा जाय तो द्विभाषीय कोश व आदम कृत 'हिन्दवी कोश' को छोड़कर अन्य समस्त कोशों में केवलमात्र नाम संज्ञाओं को ही पिरोया गया है— या तो पर्याय संकलन पद्धति या

---

१. "आख्यातस्य नामपदवाच्यार्थाश्रयक्रियोपलक्ष्यत्वात्"—दुर्ग, निरुक्त टीका, १।१।
२. क्रिया वाचकमाख्यातं लिंगतो न विशिष्यते।
त्रीनत्र पुरुषान्विद्यात् कालतस्तु विशिष्यते॥ —हिन्दी निरुक्त, पृ० २३।
३. "क्रियाप्रधानमाख्यातम्"—वही।
४. "सत्त्व प्रधानि नामानि"—वही, पृ० २६।
५. "तद्यत्रोभे भाव प्रधानो भवतः"—वही, पृ० ३०।
६. "गूँथनि माला नाम की अमरकोश के भाय"—ना० मा०, नन्द०, पंक्ति० ५.

अनेकार्थ शैली से। यथा :

॥जमराज नाम॥

काल डंडभ्रत सुमन कतेलं, अंतक जमनभ्रात जम अंतं।
प्रांण हरण सौरण क्रमपासी, धरमराज जमराज क्रिधासी।
साधदेव कीनास भांणसुत, जमहरं सुमनं प्रतिपलि गंजत।
ब्रखभधुजी भ्रतकर समब्रती, प्रेतराट संजमनी पत्री।[1]

इसी पद्धति पर समस्त नाम-संज्ञायें बद्ध हैं। द्विभाषीय कोशों में भी नाम-संज्ञाओं की ही अपेक्षाकृत अधिकता है।

इन कोशों में केवल संज्ञाओं को ही संकलित करने का एक दूसरा मुख्य कारण यह भी है कि समस्त कोश मुख्यतः छंदों में रचे गये हैं जिसके फलस्वरूप भाषा में प्रचलित सभी प्रकार के शब्द इनमें संकलित करना रचना की दृष्टि से भी संभव न था। यही कारण है कि अत्यन्त आवश्यक व प्रचलित क्रियाओं के भी भाववाचक संज्ञा रूप बनाकर ही पर्याय दिये गये हैं, यथा :

॥मारन नाम॥

हनन प्रमापन और निकारन, पिजन वर्हण बहुरि विसारण।
प्रतिघातन आलंभ प्रवासन, निस्तरहण पुनि प्रथम परासन॥
क्षणन संज्ञपन घात उपासन, क्रथन निषूदन वध निर्वासन।
कदन निहंसन गनि उद्वासन, विससन विनवोपन उज्जासन॥[2]

कुछ अधिक प्रचलित नाम शब्द—नाम-संज्ञाओं में भी सम्भाव्य व प्रयुक्त प्रत्येक नाम के पर्याय भी नहीं गिनाये गये हैं। प्रत्येक क्षेत्र से कुछ शब्द विशेष हैं जिनको प्रायः प्रत्येक कोश में स्थान मिलता है। शब्दों के स्रोत भिन्न-भिन्न होने पर भी कुछ शब्द प्रायः प्रत्येक कोश में आये हैं। देवताओं, पौराणिक महापुरुषों, धार्मिक महत्त्व को लिये हुये प्राकृतिक उपकरणों एवं वनस्पतियों तथा पशु-पक्षियों के पर्याय अधिकांश कोशों में आये हैं। तत्कालीन साहित्य में व्यवहृत शब्दावली भी उपर्युक्त शीर्षकों के अंतर्गत आ जाती है। अतः इस दृष्टिकोण से भी इन कोशों ने अपने कर्त्तव्य की ही पूर्ति की। निम्न परिच्छेदों में कुछ ऐसे सर्वाधिक व्यवहृत शब्दों का परिचय दिया गया है :

तीस कोशों में प्रयुक्त नाम संज्ञा

(१) **अग्नि**—डिंगलनाममाला, एकाक्षरीनाममाला (वीर०) और धनजी-नाममाला को छोड़कर अन्य समस्त कोशों में यह शब्द आया है।

---

१. नाममाला 'क', छन्द १०७-१०८।
२. उ० को० २।८।१८९-१९०।

(२) **चन्द्र**—डिंगलनाममाला, नाममाला 'ख' एवं धनजीनाममाला के अतिरिक्त अन्य सब कोशों में।

(३) **सूर्य**—डिंगलनाममाला, एकाक्षरीनाममाला (वीर०) तथा धनजीनाममाला के अतिरिक्त अन्य सब कोशों में।

उनतीस कोशों में प्रयुक्त नाम संज्ञा

(१) **आकाश**—नाममाला 'ग', धनजीनाममाला, नाममाला 'ख' एवं नागराजडिंगलकोश के अलावा शेष समस्त कोशों में।

(२) **महादेव**—धनजीनाममाला, अल्लाखुदाई, ख़ालिक़बारी एवं पारसीपारसातनाममाला के अतिरिक्त सभी में।

अठाईस कोशों में प्रयुक्त नाम संज्ञा

(१) **बानर**—डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश, लखपतमंजरी, एकाक्षरीनाममाला (वीर०) तथा सुबोधचन्द्रिका को छोड़ कर अन्य सभी में।

सत्ताईस कोशों में प्रयुक्त नाम संज्ञा

(१) **घोड़ा**—नाममाला 'क', धनजीनाममाला, नाममाला 'ख', अनेकार्थी (विनयसागर), वाकेबुलेरी लखपतमंजरीनाममाला, के अतिरिक्त अन्य सभी कोशों में।

(२) **हाथी**—नाममाला 'क', धनजीनाममाला, नाममाला 'ख', एकाक्षरीनाममाला (वीर०), लखपतमंजरीनाममाला और अनेकार्थ (विनय०) को छोड़ कर शेष समस्त कोशों में।

छब्बीस कोशों में प्रयुक्त नाम संज्ञा

(१) **देव**—नागराजडिंगलकोश, नाममाला 'ख', धनजीनाममाला, अल्लाखुदाई, पारसातनाममाला, वाकेबुलेरी तथा लखपतमंजरी के अतिरिक्त अन्य समस्त कोशों में।

(२) **सर्प**—डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश, हमीरनाममाला, नाममाला 'क', धनजीनाममाला तथा लखपतमंजरी के अलावा अन्य समस्त कोशों में।

पच्चीस कोशों में व्यवहृत नाम संज्ञा

(१) **चंदन**—डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश, नाममाला 'ग', एकाक्षरी नाममाला (वीर०), ख़ालिक़बारी, अल्लाखुदाई, लखपतमंजरी,

तथा पारसीपारसातनाममाला को छोड़ कर अन्य समस्त कोशों में।

(२) **पर्वत**—नागराजडिंगलकोश, अवधानमाला, नाममाला 'क', एकाक्षरी नाममाला (वीर०), अल्लाखुदाई, पारसीपारसातनाममाला, लखपतमंजरी तथा नाममाला 'ग' के अतिरिक्त अन्य सभी कोशों में।

इसी प्रकार अन्य शब्दों तथा सम्बन्धी कोशों के विस्तृत उदाहरण दिये जा सकते हैं। परन्तु इस अध्ययन का दृष्टिकोण केवल मध्यकालीन साहित्य की शब्द-रुचि दिखाना मात्र है। सभी शब्दों का अध्ययन किया जा सकता है परन्तु उससे कलेवर वृद्धि के अतिरिक्त अन्य कोई लाभ न होगा। संक्षेप में **चौबीस कोशों में**—धरती, मेघ, वृक्ष, समुद्र, सेना; **तेईस कोशों** में—कमल, तीर, पवन, भ्रमर, राजा, सिंह; **बाईस कोशों में**—गंगा, पार्वती; **इक्कीस कोशों में**—कामदेव, माता, मोर; **बीस कोशों में**—आँख, ब्रह्मा, युद्ध, लक्ष्मी, वन, हंस, इन्द्र, कृष्ण, तलवार, नदी, पिता शब्द या इनके पर्यायवाची शब्द मूल रूप से आये हैं।

विशेषण—नाम-संकलन के पश्चात् शब्द संख्या की दृष्टि से विशेषण शब्दों का क्रम है। चारों वर्गात्मक कोशों के तृतीयकाण्डान्तर्गत एक भिन्न वर्ग 'विशेष्य-निघ्नवर्ग' के नाम से है, जिसमें केवल विशेषण शब्दों के पर्याय श्लोकबद्ध किये गये हैं। साहित्य में भी रीतिकालीन प्रवृत्तियों को दृष्टि में रखते हुये शृंगार आदि के वर्णन के लिये विशेषण शब्द एवं उनके उपयुक्त पर्याय शब्दों का महत्त्व 'नामों' से किसी भी प्रकार कम नहीं था। विशेषण शब्दों की इस सुदीर्घ परम्परा तथा उनकी महत्ता के फलस्वरूप विवेच्च कोशों में विशेषण शब्द भी पर्याप्त संख्या में आये हैं।

समानार्थी कोशों में—डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश, नाममाला 'क' और अनभै-प्रबोध तथा नाममाला 'ग' के अतिरिक्त सभी कोशों में विशेषण शब्द हैं। इतना अवश्य है कि इन विशेषणों से कोशकारों का उद्देश्य विशेषणयुक्त नामों (संज्ञाओं) से था। एक उदाहरण उमरावकोश से लीजिये—

।। सुन्दर नाम (हरिगीत) ।।

मंजुल मनोहर साधु सोभन सौम्य सुभग सिहारिये ।
रमणीय रम्य रुचिर मनोरम मंजु भद्र विचारिये ।।
अरु चारु रुच्य मनोज्ञ गनि सौंदर्ज्य कांतौ जानिए ।
ए नाम नाम सुन्दर के सुवंस कहे अठारह गानिए ।।

—उ० को० २।१। ९४।

उपर्युक्त छंद में गिनाए गये अठारह नाम मूल रूप से सुन्दर व्यक्ति या वस्तु संज्ञा के पर्याय मान कर छंदबद्ध किये गये हैं जिनका महत्त्व इन कोशकारों की दृष्टि में अन्य नाम-संज्ञाओं के ही समान है। द्विभाषीय कोशों में अवश्य हिन्दी विशेषणों को विशेषणवत् ही माना गया हैं।

पारसीपारसातनाममाला, अल्लाखुदाई, खालिक़बारी, अनेकार्थी तथा एकाक्षरी कोशों में विशेषण नहीं हैं।

क्रियाएँ—तृतीय स्थान क्रिया शब्दों का है। परन्तु इन क्रिया शब्दों को भी विवेच्य कोशकारों ने भिन्न-भिन्न रूप से विवेचित किया है। अनेकार्थी तथा एकाक्षरी कोशों, अनभै-प्रबोध, नाममाला 'ग' तथा डिंगलनाममाला, नागराजडिंगलकोश एवं अल्लाखुदाई और पारसीपारसातनाममाला में एक भी मूल क्रिया शब्द नहीं आया है। शेष समानार्थी एवं द्विभाषीय कोशों में क्रिया शब्द संकलित हैं परन्तु दोनों में इनका स्वरूप भिन्न-भिन्न है।

समानार्थी कोशों ने क्रियाओं को नाम संज्ञा के ही समान समझ कर उनको भाववाचक संज्ञारूपों में ही संकलित किया है, यथा :

॥ दांन (दान देना) नांम ॥
प्रतिपायण निरवधुण उछरंजण।
जपि विसरारण विसरजण ॥
विलसण बगसण मौज विहाइति।
वितरण दत समपण व्रवण ॥

—ह० ना०, मा०, छं० १३।

द्विभाषीय कोशों में से खालिक़बारी तथा तुहफ़तुलहिन्द ने क्रियाओं को केवल आज्ञार्थक रूप में संगृहीत किया है। कुछ उदाहरण दृष्टव्य हैं :

आ[1], आव[2], खा[3], खींच[4], चाख[5], जा[6], टर[7], टर्ल[8], टाँग[9], टार[10], टाल[11], दे[12], देख[13], पीस[14], फाड़[15], बटोर[16], बिफर[17], बैठ[18], मार[19], राख[20], लेख[21], हेर[22]।

१. खा० बा०, पंक्ति ७८।
२. वही, पं० १२।
३. वही, पं० ७८।
४. वही, पं० ७९।
५. वही, पं० ७९।
६. वही, पं० ७८।
७. तुह०, पृ० २२९ पी०।
८. वही, पृ० २३० मू०।
९. वही, पृ० २३० मू०।
१०. वही, पृ० २३० मू०।
११. वही, पृ० २३० मू०।
१२. खा० बा०, पं० ७८।
१३. वही, पं० ९।
१४. वही, पं० ७९।
१५. वही, पं० ७९।
१६. तुह०, पृ० २०५ पी०।
१७. वही, पृ० २०५ पी०।
१८. खा० बा०, पं० ७८।
१९. वही, पं० ७९।
२०. वही, पं० ७९।
२१. वही, पं० ९।
२२. तुह०, पृ० २८५ मू०।

तुहफ़तुलहिन्द में कहीं कहीं क्रिया का मुख्य रूप यथा 'तच' (ताफ़ता शुदन)[१] एवं 'प्रस्न' (पुर्सीदन व सवाल कर्दन)[२] भी आये हैं। खालिक़बारी के रचयिता ने स्थल विशेषों पर क्रिया के भूतकालिक रूप यथा 'कहूया' 'रहूया'[३] या कुछ अस्पष्ट रूप जैसे 'उठाव' 'चलाव'[४] भी आये हैं।

डॉ० गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी, टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश एवं पादरी आदम विरचित हिन्दवीकोश में क्रिया शब्द पर्याप्त संख्या में आये हैं। और उन सभी में क्रिया रूप आधुनिक हिन्दी कोशों के समान संज्ञारूप में प्रयुक्त हुये हैं।

सर्वनाम—हिन्दी वैय्याकरणों ने सर्वनाम को संज्ञा का ही एक भेद[५] तथा संज्ञा के स्थान पर प्रयुक्त[६] व्याकरणिक रूप बताया है। परन्तु सर्वनामों की संख्या नाम-संज्ञाओं के बराबर नहीं है। न तो इनके पर्याय रूप मिलते हैं और न ही भिन्न-भिन्न अर्थ। अतएव आलोच्यकालीन समानार्थी वा अनेकार्थी कोशों में सर्वनामों के संकलन का प्रश्न ही नहीं उठता था। इनका संकलन अल्लाखुदाई को छोड़कर समस्त द्विभाषीय कोश एवं पादरी आदम के हिन्दवी कोश में किया गया है। कुछ सर्वनाम उदाहरणस्वरूप प्रस्तुत हैं :

अपना[७], आप[८], इतना[९], ईन[१०], इन्हों[११], इसु[१२], ईश[१३], उसको[१४], कहाँ[१५], कहे[१६], का[१७], केता[१८], क्यों[१९], जा[२०], जाहि[२१], जे[२२], जो[२३], ताहि[२४], तुझ[२५], तुम्हें[२६], तू[२७], तूँ[२८], तो[२९], मैं[३०], मो[३१], यह[३२], वह[३३], वही[३४], वे[३५], वोह[३६], हम[३७]।

---

१. तुह०, पृ० २२६ मू०।
२. वही, पृ० २२२ मू०।
३. खा० बा०, पं० ११।
४. वही, पृ० २४।
५. पं० कामता प्रसाद गुरु : हिन्दी व्याकरण, पृ० ८९।
६. वही, पृ० ८६।
७. वाके०, पृ० ५९।
८. वही, पृ० ५९।
९. वही, पृ० ७५।
११-१०. वही, पृ० ७४।
१२. पा० पा०, छं० ३६।
१३. वही, छं० ३७।
१४. वही, छन्द ३७।
१५. वाके०, पृ० ५३।
१६. हिन्दवी० ४६।
१७. वही, पृ० ४४।
१८. हिन्दु० II, पृ० ४८२।
१९. वाके०, पृ० ८३।
२०. हिन्दवी०, पृ० ९९।
२१. वही०, पृ० ११।
२२. वही, पृ० १०३।
२३. वही, पृ० १०४।
२४. तुह०, पृ० २२८ मू०।
२५. खा० बा०, पं० ११।
२६. पा० पा०, छं० ३६।
२७. खा० बा०, पं० ११।
२८. तुह०, पृ० २२८ मू०।
२९. वही, पृ० २२८ मू०।
३०. खा० बा०, पं० ११।
३१. पा० पा० छं० ३६।
३२. वही, छं० ३६।
३३. वही०, छं० ३६।
३४. हिन्दु० II, पृ० ७९७।
३५. वाके०, पृ० ११५।
३६. वाके० पृ० ११५।
३७. वाके० पृ० ७९।

अव्यय—विवेच्य कोशों में अव्ययों की स्थिति कुछ भिन्न रही है। उदैराम, मियाँ नूर, तथा फ़कीरचन्द ने द्वादशवर्ण-एकाक्षरों के अनेकार्थ देने के पश्चात् एकाक्षर अव्ययों का भी विवेचन किया है। लखपतमंजरी नाममाला में केवल अव्यय एकाक्षरों को ही संकलित किया गया है। तुहफ़तुलहिन्द के रचयिता ने भी फिट[1], धन[2], हहा[3] आदि को अव्ययार्थक रूप में प्रयुक्त किया है। गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी, टेलरकृत हिन्दुस्तानी कोश एवं पादरी आदम विरचित हिन्दवी कोश में अव्यय शब्द आजकल के से हिन्दी कोशों के समान संकलित किये गये हैं।

समानार्थी एवं अनेकार्थी कोशों में कोई अव्यय शब्द नहीं हैं।

लोकोक्तियाँ, मुहावरे और कहावतें—आधुनिक कोशों में लोकोक्तियों का भी संकलन किया जाता है, क्योंकि ये जीवन्त भाषा के प्राण[4], विविध विषयों पर समझ और अनुभव के प्रतीक[5] तथा मानवीय ज्ञान के चोखे और चुभते हुये सूत्र[6] हैं। मुहावरों के कारण भाषा की प्राञ्जुलता, प्रवाहिता तथा अभिव्यंजना-शक्ति में वृद्धि होती है।[7] कहावतों में जाति के समस्त जीवन का दीर्घकालीन अनुभव संचित रहता है—ये व्यावहारिक जीवन की कुंजियों का काम देती आयी हैं।[8]

विवेच्य समानार्थी या अनेकार्थी कोशों का क्षेत्र अत्यन्त सीमित था। जिसके फलस्वरूप इनके संकलन का प्रश्न ही इन कोशों में नहीं उठा। छन्दबद्ध द्विभाषीय कोशों को भी छन्द के आग्रह तथा फ़ारसी-अरबी में उपर्युक्त तदर्थी न मिलने से इनको छोड़ देना पड़ा। 'तुहफ़तुलहिन्द' में भी लोकोक्तियों या मुहावरों को कोई स्थान नहीं मिल पाया।

---

१. फिट······क़ल्मये नफ़री बुवद"—तुह०, पृ० २२४ पी०।
२. धन······कल्मये अस्त कि दर महल तहसीन व आफ़्रीं इस्तेमाल कुनन्द······।"
—वही, पृ० २४४ पी०।
३. हहा······क़ल्मा अस्त क़ि दर महल इज्जो इलहा इस्तेमाल कुनन्द······।
—वही, पृ० २८५ पी०।
४. डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी : मुहावरे और कहावतें (सं० बालमुकुन्द), भूमिका।
५. पं० लक्ष्मीलाल जोशी : मेवाड़ की कहावतें, प्रस्तावना।
६. वासुदेवशरण अग्रवाल : मेवाड़ की कहावतें (सं० लक्ष्मीलाल जोशी) भमिका, पृ०१।
७. भोलानाथ तिवारी : हिन्दी मुहावरा कोश, भूमिका।
८. मुरलीधर व्यास : राजस्थानी कहावताँ, भाग १, अवतरिणका।

केवल गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी, टेलर विरचित हिन्दुस्तानी कोश तथा पादरी आदम कृत 'हिन्दवीकोश' में लोकोक्तियों, मुहावरों और कहावतों को स्थान मिला है। इनमें से भी टेलर न अत्यधिक मुहावरों को संकलित कर काव्य-साहित्य में उनके प्रचलित प्रयोग भी दिखाये हैं।

(३) अर्थ संबंधी आधार

नामों का अर्थ से क्या सम्बन्ध है इसका विवेचन पंचम अध्याय में यथास्थान किया गया है। । यहाँ पर शब्दावली मात्र को अर्थ की दृष्टि से दस उपवर्गों में विभाजित किया गया है :

पिता के नाम पर पड़ने वाले नाम शब्द—अंजनीसुत[१], आदित्य[२], इन्द्रसुत[३], केसरीसुत[४], गरुड़ात्मज[५], गिरजा[६], जनकजा[७], जनकात्मजा[८], जानकी[९], जह्नुसुता[१०], दासरथी[११], दीपसुत[१२], दैत्य[१३], द्रोपदजा[१४], द्रोपदी[१५], पर्वतजा[१६], पवनसुत[१७], पाण्डुसुत[१८], पुलोमजा[१९], ब्रह्मसुत[२०] भूजा[२१], भारगव[२२], मरुतपुत्र[२३], मारुति[२४], रविसुत[२५], वासुदेव[२६], वेनतनय[२७], शिवतनय[२८], सिन्धु-सुता[२९], सूर-सुता[३०], सौधोदनि[३१], आदि।

माता के नाम पर पड़ने वाले शब्द—अशतीसुत[३२], उमानन्दन[३३], कौंतयस[३४], कौलटेय[३५], कौलटेर[३६], गंगानन्द[३७], गिरजानन्द[३८], गौरिनन्द[३९], जसोदानन्द[४०], द्वैमातुर[४१],

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
२. ना० मा० "क", छं० ५९।
३. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
४. वही, पृ० ३२७।
५. वही, पृ० २७५।
६. ह० ना० मा०, छं० २।
७. अ० मा०, छं० ९६।
८. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
९. अ० मा०, छं० ४४५।
१०. प्र० ना० मा०, पृ० २९३।
११. अ० मा०, छं० ९४।
१२. प्र० ना० मा०, पृ० ३२०।
१३. ना० मा०, "क" छं० १०९।
१४. अ० मा०, छं० २५७।
१५. वही, छं० २५७।
१६. ह० ना० मा०, छं० ३६।
१७. वही, छं० १२२।
१८. अने० नन्द० पं० २०।
१९. प्र० ना० मा०, पृ० २६९।
२०. अ० मा०, छं० ९।
२१. अ० मा०, छं० ४४५।
२२. वही, छं० ४७०।
२३. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
२४. ना० मा० "क", छं० ९।
२५. अ० मा०, छं० ८९।
२६. ह० ना० मा०, छं० १३।
२७. ना० रा०, छं० १५।
२८. प्र० ना० मा०, पृ० २६८।
२९. आ० बो०, छं० १२०।
३०. उ० को०, १।१०।३८।
३१. प्र० ना० मा०, पृ० २६६।
३२. ना० प्र०, पृ० १४१।
३३. उ० को०, १।२।२६।
३४. ह० ना० मा०, छं० ११९।
३५. ना० प्र०, पृ० १४१।
३६. वही, पृ० १४१।
३७. ना० मा० "क", छं० १००।
३८. मा० मं०, छं० १००।
३९. अ० मा०, छं० ६।
४०. वही, छं० ३९।
४१. वही, छं० ६।

पारस्त्रैनेय[1], पार्थ[2], पार्वती नन्दन[3], मातृष्वश्रेय[4], मायादेवीसुत[5], मेनकजा[6], राधासुत[7], वेमात्रेय[8], सौमंत्रेय[9], आदि।

पति के नाम पर पड़ने वाले शब्द—त्रिलोचना[10], ब्रह्माणी[11], भैरवी[12], माहेश्वरी[13], रघुवरतीय[14], रुद्राणी[15], विष्णु-प्रिया[16], संकरी[17], सची[18], सिवा[19], हरिवाम[20], हरा[21] आदि।

पत्नी के नाम पर पड़ने वाले नाम शब्द—उमापति[22], उषापति[23], कमलाकंत[24], गिरजापति[25], रंभापति[26], रतिपति[27], सचीपति[28], सचीराट[29], सीतापति[30], सुभद्रेस[31], श्रीपति[32] आदि।

गोत्र या वंश के आधार पर पड़ने वाले नाम शब्द—कात्यायनी[33], कौरव[34], जदूवंसी[35], जमदग्नि[36], भाणभाणकुल[37], राघव[38], साक्य[39] आदि।

देश के आधार पर पड़ने वाले नाम शब्द—अरबी[40], कांबोजो[41], केकयी[42], कौशल्या[43], गोकलेश,[44] द्वारकानाथ[45], पंचाली[46], बलख्खी[47], मैथिली[48], वैदेही[49], लंकापती[50], सैंधव[51] आदि।

---

१. ना० प्र०, पृ० १४१।
२. ह० ना० मा०, छं० १२३।
३. प्र० ना० मा०, पृ० २६८।
४. ना० प्र०, पृ० १४१।
५. प्र० ना० मा०, २६६।
६. आ० बो०, छं० ११९।
७. प्र० ना० मा०, पृ० ३२८।
८. ना० प्र०, पृ० १४१।
९. ना० मा० "क", छं० ८।
१०. ह० ना० मा०, छं० ४।
११. वही, छं० ६।
१२. अ० मा०, छं० २०।
१३. वही, छं० २२।
१४. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
१५. अ० मा०, छं० २०।
१६. प्र० ना० मा०, पृ० २६७।
१७. अ० मा०, छं० २२।
१८. ना० मा० "क", छं० ४२।
१९. ह० ना० मा०, छं० ४।
२०. अ० मा०, छं० ४।
२१. वही, छं० २०।
२२. ना० मा० "ख", छं० ४६।
२३. प्र० ना० मा०, पृ० २६७।
२४. अ० मा०, छं० ३५।
२५. ना० डि०, छं० १०।
२६. अ० मा०, छं० ६६।
२७. मा० मं०, छं० ८६।
२८. ना० डि०, छं० २।
२९. वही, छं० ३।
३०. अ० मा०, छं० ९४।
३१. ह० ना० मा०, छं० १२५।
३२. कर्णा०, पृ० २ पी०।
३३. ह० ना० मा०, छं० ४।
३४. हिन्दवी० क्रम में।
३५. ह० ना० मा०, छं० १३।
३६. अने० विनय०, छं० ५२।
३७. ना० मा० "क", छं० ३।
३८. ह० ना० मा०, छं० १५।
३९. उ० को० १।२।८।
४०. ह० ना० मा०, छं० १४३।
४१. डि० ना० मा०, छं० ५।
४२. तुह०, पृ० २६७ पी०।
४३. तुह०, २६० पी०।
४४. ना० मा० "क", छं० १७।
४५. तुह०, पृ० २४० पी०।
४६. अ० मा०, छं० २५७।
४७. डि० ना० मा०, छं० ५।
४८. ना० मा० "क", छं० ६।
४९. वही, छं० ६।
५०. अ० मा०, छं० ९९।
५१. डि० ना० मा०, छं० ५।

राशि या नक्षत्र पर पड़ने वाले नाम शब्द—कार्तिकेय[१], फाल्गुनी[२], रोहिणेय[३], विशाख[४]।

प्राचीन कथानकों के आधार पर पड़ने वाले नाम शब्द—अघबकादिहंता[५], अन्धकारि[६], कीचकारि[७], कैलाशउथाल[८], कौरवदलण[९], गजतार[१०], जाह्नवी[११], त्रिपुरारि[१२], त्र्यम्बक[१३], दानवारि[१४], दैत्यारि[१५], पीअणजहर[१६], पुरन्दर[१७], भ्रमावणकुंजर[१८], भागीरथी[१९], मधुसूदन[२०], मधुरिपु[२१], वृत्रहा[२२], मुरारि[२३], रावनरिपु[२४], संवरारि[२५], सीताहरण[२६], हरसिरा[२७], हरिपदी[२८]।

कर्म के आधार पर पड़ने वाले नाम शब्द—कूखधारण (माता)[२९], चलण (पग)[३०], जलधारण (मेघ)[३१], दहनमनोज (शिव)[३२], देखण (नेत्र)[३३], प्रजापालगर (राजा)[३४], प्रतपायण(दातार)[३५], प्राणहर (यमराज)[३६], बगसण (दातार)[३७], बरसण (दातार)[३८], बीजाकरण (पिता)[३९], बोलण (मुख)[४०], भरणनद (घन)[४१], भवतारण (कृष्ण)[४२], भूखण(खर)[४३], मारण (विष)[४४], म्रगमारण (सिंह)[४५],

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० २६८।
२. आ० बो०, छं० ७७—७८।
३. ना० मा० "क", छं० ८८।
४. ना० प्र०, पृ० १५।
५. अ० मा०, छं० २७।
६. कर्णा०, पृ११।
७. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
८. ह० ना० मा०, छं० ९९।
९. वही, छं० १२२।
१०. अ० मा०, छं० ३४।
११. ह० ना० मा०, छं० ४४।
१२. अ० मा०, छं० १३।
१३. उ० को० १।२।२०।
१४. प्र० ना० मा०, पृ० २६९।
१५. वही, पृ० २६६।
१६. ह० ना० मा०, छं० २५।
१७. वही, छं० २६२।
१८. वही, छं० १२२।
१९. अ० मा०, छं० १०३।
२०. वि० ना० मा०, छं० १।
२१. प्र० ना० मा०, पृ० २६६।
२२. उ० को० १।२।३१।
२३. अ० मा०, छं० २७।
२४. ह० ना० मा०, छं० १९।
२५. प्र० ना० मा०, पृ० २६७।
२६. ना० मा० "क", छं० १११।
२७. ह० ना० मा०, छं० ४४।
२८. वही, छं० ४४।
२९. अ० मा०, छं० २७६।
३०. ह० ना० मा०, छं० १६५।
३१. अ० मा०, छं० ४३०।
३२. वही, छं० ४३०।
३३. ह० ना० मा०, छं० १७९।
३४. डि० ना० मा०, छं० १।
३५. अ० मा०, छं० २३९।
३६. वही, छं० ९०।
३७. वही, छं० २३९।
३८. वही, छं० २३९।
३९. वही, छं० २७५।
४०. वही, छं० २८१।
४१. वही, छं० ४३०।
४२. वही, छं० ३५।
४३. वही, छं० २६७।
४४. वही, छं० ३६९।
४५. ह० ना० मा०, छं० ७२।

रछाकरण (माता)[१], रातजगण (स्वांन)[२], लादणभार (खर)[३], सुणण (कान)[४]।

रूप वा आकार के आधार पर पड़ने वाले नाम शब्द—अनंग[५], आनन-पंच[६], एकदंत[७], कुंडली (सर्प)[८], कुंतलमुखी (कटारी)[९], गजमुख (गणेश)[१०], गूढ़पद (सर्प)[११], चतुर्भुज[१२], चन्द्रशेखर[१३], चरणचतु (हाथी)[१४], चलकर्ण (घोड़ा)[१५] जटधारी[१६], त्रिलोचन[१७], दंताल[१८], दंती[१९], दसग्रीव[२०], दससिर[२१], द्विरद[२२], दुवजीह[२३], दीर्घजंघ (ऊँट)[२४], धूरजटी[२५], नितंबिनि[२६], नीलकंठ[२७], पंचमुख[२८], पुंडरीकाक्ष[२९] बामलोचना[३०], बीसहथ्थी[३१], भुजबीस[३२]. महिखजीह (कटारी)[३३], लंबोदर[३४], बक्रगती (सर्प)[३५], बक्रदस (रावण)[३६], बलतपूंछ (कूकर)[३७], बृकोदर[३८], श्रीकंठ[३९], सर्पजीह[४०], सहस्राक्ष (इन्द्र)[४१], सावकर्ण (घोड़ा)[४२], सिसमत्थ (शिव)[४३], सुंडाल (हाथी)[४४] हथ्थहेक (कटारी)[४५]।

---

१. अ० मा०, छं० २७६।
२. वही, छं० ३६४।
३. वही, छं० ३६७।
४. ह० ना० मा०, छं० १८२।
५. मा० मं०, छं० ८६।
६. ना० रा०, छं० १४।
७. उ० को० १।२।२७।
८. डि० ना० मा०, छं० ४।
९. वही, पृ० ९।
१०. ह० ना० मा०, छं० १।
११. अ० मा०, छं० २१९।
१२. उ० को० १।२।११।
१३. अ० मा०, छं० १३।
१४. डि० ना० मा०, छं० ४।
१५. डि० ना० मा०, छं० ५।
१६. ना० डि०, छं० १०।
१७. उ० को० १।२।१९।
१८. डि० ना० मा०, छं० ४।
१९. वही, छं० ४।
२०. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
२१. वही, पृ० ३२७।
२२. डि० ना० मा०, छं० ४।
२३. वही, छं० ९।
२४. ना० प्र०, पृ० २३८।
२५. ह० ना० मा०, छं० २३।
२६. ना० प्र०, पृ० १३५।
२७. ह० ना० मा०, छं० २४।
२८. वही, छं० २३।
२९. कर्णा०, पृ० २ पी०।
३०. ना० प्र०, पृ० १३५।
३१. ह० ना० मा०, छं० २।
३२. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
३३. डि० ना० मा०, छं० ९।
३४. आ० बो०, छं० १३३।
३५. अ० मा०, छं०२१९।
३६. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
३७. अ० मा०, छं० ३६४।
३८. ह० ना० मा०, छं० १२२।
३९. वही, छं० २४।
४०. डि० ना० मा०, छं० ९।
४१. ना० प्र०, पृ० १०।
४२. डि० ना० मा०, छं० ५।
४३. ना० डि०, छं० १०।
४४. डि० ना० मा०, छं० ४।
४५. वही, छं० ९।

तुलनात्मक निष्कर्ष

विवेच्य कोशों में संकलित विस्तृत शब्द-समूह पर यदि तुलनात्मक दृष्टि से विचार करें तो ज्ञात होगा कि संस्कृत कोशों के अनुकरण पर निर्मित समस्त समानार्थी व अनेकार्थी कोशों की शब्दावली परम्पराश्रुत, धार्मिक एवं आध्यात्मिक विषयों से ही मूलतः सम्बद्ध है। समस्त समानार्थी, अनेकार्थी एवं एकाक्षरी कोशों में देवता, अवतार, आध्यात्म, धर्म और अधिक हुआ तो सामाजिक या तत्कालीन शासन सम्बन्धी वा आश्रम तथा वर्णव्यवस्था विषयक शब्दों के ही पर्याय दिये गये हैं। पुनः पर्याय कोशों की दृष्टिकोण संकुचित होने के कारण इनमें अधिकांशतः ऐसे शब्द ही आये हैं जिनके समानार्थी अधिक होते हैं। वैद्यक निघण्टुओं के प्रभाव से अवश्य कुछ वनस्पति वर्ग के भी शब्द हैं, परन्तु उनका महत्त्व भी एकदेशीय है।

संस्कृत कोशों की परम्पराश्रुत शब्दावली के अतिरिक्त समानार्थी कोशों में आवश्यकतानुसार 'भाषा' के या विदेशी तथा स्थानिक या प्रान्तिक शब्द भी यथा-शक्य पर्यायरूप में संकलित हुये हैं परन्तु ऐसे शब्दों की संख्या अत्यन्त न्यून है। डिंगल कोशों में डिंगल भाषा की कुछ विशिष्ट स्थानिक शब्दावली संगृहीत है।

शब्द-समूह के क्षेत्र में द्विभाषीय कोशों ने अवश्य एक नई दिशा का सूत्रपात किया। खालिक़बारी तथा अल्लाखुदाई एवं पारसीपारसातनाममाला में जहाँ प्रत्येक विषय सम्बन्धी शब्दों, यहाँ तक कि संख्याओं का भी संकलन किया गया, वहाँ तुहफ़त के रचयिता ने तत्कालीन ब्रजभाषा साहित्य एवं जनबोली से सम्बद्ध प्रायः प्रत्येक शब्द देने का प्रयास किया है। गिलक्राइस्ट और टेलर के कोश प्रचुर मात्रा में अरबी, फ़ारसी शब्दों को संगृहीत कर एक नई दिशा का संकेत देते हैं। आदम ने अब तक के समस्त कोशों का सार संकलित कर आधुनिक कोशों की दिशा में प्रथम चरण रखा।

यह सब होते हुये भी काव्यसाहित्य से इतर राजनीति, विज्ञान, अर्थशास्त्र, वाणिज्य, आदि विषयों से सम्बद्ध शब्दावली का संकलन किसी भी कोश में नहीं किया गया है। यह इनकी सबसे बड़ी कमी है।

शब्दों के रूप

शब्दों के शुद्ध, व्याकरणसम्मत एवं परिनिष्ठित रूपों का देना भी कोशों का उद्देश्य होता है। कोश तथा व्याकरण का अध्ययन इसीलिये आवश्यक बताया

गया है कि पाठक 'सकल' के स्थान पर 'शकल' और 'स्वजन' की अपेक्षा 'श्वजन' न लिखें या बोलें।[१]

वैसे तो संस्कृत के कई कोशों में शब्दों के रूप-भेद बताये गये हैं, परन्तु वे सब आंशिक प्रयास मात्र हैं। पुरुषोत्तमदेवकृत 'वर्णदेशना' इस क्षेत्र का एक विशिष्ट कोश है जिसमें वर्णों की भिन्नता पर ही विशेष प्रकाश डाला गया है। लेखक के व्यक्तव्यानुसार अनुभवहीन व्यक्ति 'ख' तथा 'क्ष' का आन्तरिक सूक्ष्म भेद न जान 'खुर' तथा 'क्षुरप' को एक ही समझ लेते हैं। इसी प्रकार 'ह'-'घ', एवं 'ह'-'ड़' को भी पारस्परिक स्थानों पर अज्ञानवश प्रयुक्त कर लिया जाता है—इसी भ्रान्ति के निराकरणार्थ 'वर्णदेशना' कोश का प्रणयन किया जा रहा है।[२]

रूप-सम्बन्धी व्यतिक्रम—विवेच्य हिन्दी कोशों में शब्दों की रूप-सम्बन्धी अनेकानेक उच्छृंखलतायें एवं विविधतायें पाई जाती हैं। कोई भी शब्द एक सर्वमान्य रूप में नहीं आया है। एक ही शब्द भिन्न-भिन्न कोशों में भिन्न वर्तनी से युक्त है, जिससे पाठक को भ्रान्ति होना स्वाभाविक है।

निम्न पंक्तियों में कुछ तुलनात्मक उदाहरण दिये जा रहे हैं:

(१) अग्न[३], अगनी[४], अगन[५], अग्नी[६], अगिन[७], अगिनी[८], अगीन[९], अग्नि[१०], अग्गि[११], अगनि[१२]।

---

१. "यद्यपि बहु नाधीषे तथापि पठ पुत्र ! व्याकरणम्।
स्वजनः श्वजनो मा भूत सकलं शकलं सकृच्छकृत ॥ —(लोकप्रचलित)

२. "……अत्र हि प्रयोगेऽबहुदृश्वनां श्रुतिसाधारण्यमात्रेण गृह्णतां खुरक्षुरपादौ खकारक्षकारयोः। शिहाशिङ्घानकादौ हकारघकारयोः।……तथा गौडादिलिपिसाधारण्याद् हिण्डीरगुडाकेशादौ हकारडकारयोः भ्रान्तय उपजायन्ते। अतस्तद्विवेचनायक्वचिद् धातुपारायणे धातुवृत्तिपूजादिषु प्रव्यक्तलिखनेन प्रसिद्धोपदेशेन धातुप्रत्ययोणादिव्याख्यालिखनेन क्वचिदाप्तवचनेन श्लेषादिदर्शनेन वर्णदेशनेयमारभ्यते……।"
—Catalogue of Sanskrit MSS. in the library of the India Office, by Julius Eggeling, Ph. D. London, 1837.

३. तुह०, पृ० १९८ पी०।
४. ह० ना० मा०, छं० ८१।
५. अ० मा०, छं० ३९७।
६. अ० प्र०, पृ० ९।
७. हिन्दु० O, पृ० ११०।
८. हिन्दवी, पृ० ५७।
९. अने० चन्द, पृ० ११।
१०. सु० च०, छं० ३९२।
११. अने० विनय०, छं० १६।
१२. अने० उदय०, छं० ८।

(२) अर्जुन[१], अरजुण[२], अर्युन[३], अर्जन[४], अज्र्जुन[५], अरजन[६] ।

(३) कृष्ण[७], कृसन[८], कृष्न[९], किशन[१०], कृश्न[११], क्रसन[१२], क्रसण[१३], किसनं[१४]।

(४) कामिनी[१५], कामनी[१६], कांमणि[१७], कांमण[१८], कामिन[१९], कामनि[२०] ।

(५) गरुड[२१], गरुड़[२२], गुरुड़[२३], गुरड़[२४], गरड़[२५], गरूड़[२६], गरूण[२७], गरूड[२८], गरुर[२९] ।

(६) दुधिश्ठर[३०], जुधिष्ठिर[३१], युधिष्ठिर[३२], जुजठल[३३], जिजिठल[३४], जुधिठ्ठर[३५], युधिष्टर[३६], जुधिष्टर[३७] ।

(७) ब्रिक्ष[३८], बिर्छ[३९], ब्रख[४०], ब्रिख[४१], बछ[४२], बृछ[४३], वृक्ष्य[४४], ब्रिक्ष[४५], वृच्छ[४६], बिरख[४७], ब्रख[४८] ।

---

१. तुह०, पृ० १९८ ।
२. ह० ना० मा०, छं० १२३ ।
३. आ० बो०, छं० ७७ ।
४. सु० च०, छं० ८२ ।
५. अने० विनय०, छं० २९ ।
६. अ० प्र०, पृ० १२ ।
७. ह० ना० मा०, छं० ९ ।
८. अ० मा०, छं० २५ ।
९. सु० च०, छं० ७८९ ।
१०. हिन्दु० II, पृ० ४३२ ।
११. प्र० ना० मा०, पृ० २६६ ।
१२. एका० उदै०, छं० १६ ।
१३. वही, छं० ३० ।
१४. डि० ना० मा०, छं० २२ ।
१५. हिन्दवी०, पृ० ४५ ।
१६. तुह०, पृ० २६७ मू० ।
१७. ह० ना० मा०, छं० १९४ ।
१८. अ० मा०, छं० ३१९ ।
१९. हिन्दु० II, पृ० ३९३ ।
२०. वि० ना० मा०, छं० ७ ।
२१. तुह०, पृ० २७० पी० ।
२२. ना० डि०, छं० १५ ।
२३. ह० ना० मा०, छं० २९१ ।
२४. अ० मा०, छं० १५८ ।
२५. अ० प्र०, पृ० ७ ।
२६. आ० बो०, छं० ७१ ।
२७. प्र० ना० मा०, पृ० २६६ ।
२८. अने० चन्द०, पृ० १५ ।
२९. सु० च०, छं० ३६ ।
३०. तुह०, पृ० २४१ मू० ।
३१. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७ ।
३२. हिन्दवी०, पृ० ३८४ ।
३३. अ० मा०, छं० २०८ ।
३४. ह० ना० मा०, छं० १२० ।
३५. सु० च०, छं० ६९ ।
३६. आ० बो०, छं० ७९ ।
३७. मा० मं०, छं० ७७ ।
३८. हिन्दु० I, पृ० २१५ ।
३९. तुह०, पृ० २०४ पी० ।
४०. ह० ना० मा०, पृ० ५९ ।
४१. अ० मा० छं० ११९ ।
४२. मा० मं०, छं० १५३ ।
४३. अ० प्र०, पृ० १७ ।
४४. ध० ना० मा०, छं० १५ ।
४५. सु० च०, छं ६८२ ।
४६. अ० प्र०, पृ० १८ ।
४७. अने० उदै०, छं० १२ ।
४८. वही, छं० २१ ।

(८) विष्णु[1], बिश्न[2], बिसन[3], बिसनु[4], बिशन[5], बिष्णु[6], विस्णु[7], बिश्नु[8], विस्नू[9], विस्नु[10]।

(९) सरसती[11], सुरसती[12], सरस्वती[13], सरसत[14], सुरसुति[15], सरखति[16]।

(१०) साम कार्तिक[17], स्यांमकारतिकेय[18], स्यामकारतक[19], स्वामिकार्तिक[20], कार्तिकय:[21], स्यांमी कारतिक[22], स्यामकार्तिक[23], स्वामीकारत[24], स्वांमी कार्तेय[25]।

शब्दों के रूप से सम्बद्ध सामान्य विशेषताएँ—सभी कोशकार भाषा में शब्दों को लिख रहे थे, अतएव भाषा की प्रवृत्ति के अनुसार ही उन्होंने ध्वनियों को परिवर्तित किया। संस्कृत शब्दों को स्थान-स्थान पर हिन्दी (भाषा) शब्दों का रूप दे दिया गया है। भिखारीदास ने अपनी इस योजना को कोश के प्रारम्भ में ही स्पष्ट कर दिया था।[26] समग्र रूप से विवेच्य कोशों में शब्द रूप सम्बन्धी निम्न विशेषताएँ मिलती हैं :

(१) संस्कृत शब्दों का 'य' हिन्दी के समस्त कोशों में 'ज' हो गया है। तुहफ़त् में तो 'य' से प्रारम्भ होने वाले शब्दों के लिये मिर्ज़ा खाँ ने कोई स्वतन्त्र 'बाब' नहीं रखा। समस्त शब्द 'ज' अध्याय (बाब-जीमेताज़ीये खफ़ीफ़ा) के अन्तर्गत लिये गये हैं।

(२) संस्कृत शब्दों में आये 'ण' को भाषा में सामान्यतः 'न' कर दिया गया है। तुहफ़त् में भी यद्यपि 'ण' के लिये 'नूने मुसक़्क़िला' ध्वनि आई है, परन्तु उसका प्रयोग केवल एक-दो स्थलों पर ही हुआ है। अन्य समस्त शब्द 'न' से ही लिखे गये

---

१. हिन्दवी०, पृ० ३८९।
२. तुह०, पृ० २१० मू०।
३. ह० ना० मा०, छं० १३।
४. अ० मा०, छं० ३०।
५. हिन्दु० I, पृ० २३२।
६. सु० च०, छं० ३२।
७. डि० ना० मा०, छं २२।
८. प्र० ना० मा०, पृ० २६६।
९. एका० वीर०, छं० १।
१०. वही, छं० २।
११. मा० मं०, छं० ६।
१२. तुह०, पृ० २५८ मू०।
१३. हिन्दवी, पृ० ३९१।
१४. अ० मा०, छं० ८।
१५. सु० च०, छं० ३८६।
१६. वही, छं० ९००।
१७. ना० प्र०, पृ० ९।
१८. ह० ना० मा०, छं० २८७-२८८।
१९. अ० मा०, छं० ४१५।
२०. प्र० ना० मा०, पृ० २६८।
२१. वि० ना० मा०, छं० ४४।
२२. ना० मा० "क", छं० १००।
२३. उ० को० १।२।२६।
२४. एका० उदे०, छं० १२।
२५. सु० च०, छं० १६।
२६. य ज रि ऋ स श ष ख छ क्ष न ण ग्य ज्ञ ठान्यो एक।
भाषा वर्नन बूझि कै कियौ न तनिक विवेक ॥
—ना० प्र०, पृ० १

(आ) स्वरागम—नस्तालीक़ लिपि में लिखे गये आधे 'स' से प्रारम्भ होने वाले समस्त शब्दों के प्रारम्भ में 'अ' लगा दिया गया है। यथा—अस्थान (स्थान), अस्तन[1] (स्तन), अस्नान[2] (स्नान), आदि। पूर्व स्वरागम के कुछ उदाहरण अन्य कोशों में भी मिलते हैं। यथा—भुजन[3] (भजन), गुरुड़[4] (गरुड़), आदि।

मध्य स्वरागम प्रायः समस्त कोशों में हुआ है इसके लिये किसी भी कोश में कोई स्पष्ट नियम निर्धारित नहीं किया गया है। अन्त्य स्वरागम अपेक्षाकृत संस्कृत के अनुकरण पर निर्मित शब्दों के लिये अधिक हुआ है। अधमो (अधम), रकारो (रकार), मूलो (मूल), खुरो[5] (खुर) कुछ द्रष्टव्य उदाहरण हैं।

(इ) स्वर लोप—पूर्व-लोप अपेक्षाकृत कम हुआ है यथा बचार[6] (विचार), ससोभिति[7] (सुशोभित), आदि। मध्यलोप के उदाहरण भी कम मिलते हैं। अन्त्य स्वर लोप कई स्थलों पर प्रचुरता से मिलते हैं। तुहफ़त् में ह्रस्व स्वर—इ, उ, का उच्चारण शब्द के अन्त में नहीं दिया गया है; जिसके फलस्वरूप ऐसे बहुत शब्दों को व्यंजनांत ही पढ़ना पड़ता है। कुछ शब्दों के उदाहरण अगले पृष्ठों में दिये गये हैं। डिंगलकोशों में भी अन्त्य-स्वर-लोप के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं, यथा—सत्र[8] (शत्रु), वप[9] (वपु), जलपत[10] (जलपति), उदध[11] (उदधि), अत[12] (अति), आदि।

(९) सिद्धान्ततः संज्ञायें और विशेषण सदा एकवचन और पुँल्लिंग रूप में ही अंकित किये जाने चाहिये[13], परन्तु विवेच्य कोशों में कहीं-कहीं शब्दों को एकवचनात्मक से वहुवचनात्मक कर दिया गया है यथा करवांणां, करवालां[14], हयां, रेवतां, साकुरां, अस्सां, पयंगां, हैवरां[15], विपनां, गहनां, कांननां[16] आदि।

(१०) क्रियायें अपने साधारण अकाल-क्रिया वा संज्ञा-रूप में संकलित न हो कर तुहफ़त् में आज्ञार्थक रूप में, और खालिक़बारी में कई रूपों में संकलित की गई हैं।

---

१. तुह०, पृ० १९९ मू०।
२. हिन्दु० I, पृ० ७७-७८।
३. तुह०, पृ० २०५ पी०।
४. ह० ना० मा०, छं० २९१।
५. ना० प्र०, पृ० ३३६।
६. तुह०, पृ० २०५ पी०।
७. ह० ना० मा०, छं १९८।
८. वही छं० १४४।
९. वही, छं० १८३।
१०. अ० मा०, छं० १०७।
११. वही, छं० १०६।
१२. वही, छं० ५१७।
१३. रामचन्द्र वर्मा-कोशकला-पाद टिप्पणी, पृ० ५०।
१४. डि० ना० मा०, छं० ८।
१५. डिंगलकोश, छं० ८१।
१६. ध० ना० ना०, छं० १८।

समानार्थी कोशों में क्रिया का भाववाचक संज्ञा रूप मिलता है। ग्रिलक्राइस्ट, आदम तथा टेलर के कोशों में क्रियायें आधुनिक कोशों के समान साधारण रूपों में संकलित की गई हैं।

शब्द-रूपों में विकृति के कारण—उपर्युक्त परिच्छेदों में वर्णित शब्दों की रूप सम्बन्धी विशेषताओं का उल्लेख करने के उपरान्त यहाँ इतना निर्देश करना आवश्यक है कि इन को ों ने तत्कालीन काव्य-साहित्य, जनभाषा एवं सामान्य दिन प्रतिदिन की बोली में उच्चरित शब्द-रूपों को ही अपने कोशों में संकलित किया है। रूप सम्बन्धी जितने विकार आये हैं, उनको कोशकारों ने स्वेच्छा से नहीं गढ़ा है, शब्दों का वह रूप किसी न किसी काव्यसाहित्य, जनसमुदाय या सम्प्रदाय विशेष में अवश्य प्रचलित रहा होगा। हिन्दी में रूपान्तर और विकार कई कारणों से अपेक्षाकृत अधिक होते हैं। इनमें व्याकरणिक नियमों के अनुसार होने वाले रूपान्तर तो हैं ही, एक ही शब्द के अनेक स्थानिक या प्रान्तिक रूप भी मिलते हैं। इनके अतिरिक्त कवियों ने भी अपनी स्वाभाविक निरंकुशता के कारण शब्दों के रूप बदलने या तोड़ने-मरोड़ने में कोई कसर नहीं रखी और इन विकृत शब्दरूपों को इन कोशकारों ने तद्वत संकलित कर लिया है।

यदि इनके अतिरिक्त भी कोई अन्य परिवर्तन या विकार आये हों तो उनके निम्न कारण थे :

(१) छन्द में निर्मित कोशों में तुक-पूर्ति के आग्रह वश शब्दों को आवश्यकतानुसार विकृत कर दिया गया है।

(२) हिन्दी शब्दों को विदेशी लिपि में अंकित करने के फलस्वरूप भी शब्दों के रूप में विकार आ गये हैं। नस्तालीक़ लिपि में उर्दू के ३५ अक्षरों की वर्णमाला भारतीय भाषा हिन्दी के लिये नितान्त अनुपयोगी है।[१] ख़ालिक़-बारी, अल्लाखुदाई, तुहफ़त्, और टेलर विरचित कोशों में इसी कारण शब्द-विकृति आयी है। मिर्ज़ा ख़ाँ ने अत्यन्त परिश्रमपूर्वक हिन्दी ध्वनियों की लिप्यंत्रण-व्यवस्था का प्रतिपादन किया परन्तु पूर्णतः निर्दोष वह भी नहीं है। इसके अतिरिक्त रोमन लिपि में अंकित किये गये शब्द भी पर्याप्त मात्रा में विकृत हो गये हैं। जब तक कुछ ध्वनि संकेत या नये वर्ण नहीं अपनाये जाते यह

---

१. सुनीति कुमार चटर्जी : भारत की भाषाएं और भाषा सम्बन्धी समस्याएँ, पृ० ११५।

लिपि भी देवनागरी ध्वनियों के लिए अपूर्ण ही है।[1]

(३) विवेच्यकाल में हिन्दी शब्दों का कोई भी परिनिष्ठित और मानक रूप न था, अतएव किसी मान्य आदर्श के अभाव में भी कोशकारों को अपने ज्ञान अथवा विवेक का ही उपयोग करना पड़ा।[2]

वैकल्पिक-रूप-निर्देश—कभी-कभी एक शब्द के कई रूप दृष्टिगोचर होते हैं और यदि विशेष निर्देश न हो तो सभी की साधुता समान रूप से अभ्युपगत होती है। अनेक शब्दों के इस प्रकार वैकल्पिक रूप होते हैं। परन्तु संस्कृत के बहुत कम कोशों में इनके संकलन का प्रयास किया गया है। तारपाल के कोश में वैकल्पिक शब्द निर्देश अपेक्षाकृत अधिक थे। 'शब्दार्णव' में 'नारायण' शब्द के साथ अप्रसिद्ध 'नरायण' शब्द का भी संकलन है।[3] 'द्विरूप कोश' में जटा, जटि, संसारावर्त में हर-हीर; ऋषि-रिषि इत्यादि द्विविध-वैकल्पिक-रूप द्रष्टव्य हैं। उत्कृष्ट कोशों में ह्रस्व-दीर्घ मात्र के भेद वाले शब्दों को भी इसी श्रेणी में गिना दिया गया है[4]।

वाचस्पति कोश में 'सलिल' के तीन रूप मिलते हैं— सरिल, सलिर तथा सलिल। द्विरूप कोश में इसी प्रकार 'हलाहल' तथा 'एडूक' के तीन-तीन रूप प्रस्तुत किये गये हैं।[5]

विवेच्य हिन्दी कोशों में से पद्य-बद्ध द्विभाषीय कोशों तथा अनेकार्थी और एकाक्षरी कोशों में किसी भी शब्द के विविध रूप नहीं दिये गये हैं। संस्कृत कोशों के अनुकरण पर कुछ समानार्थी कोशों में शब्दों के द्विविध या त्रिविध रूप—यथा भृकुटी, भ्रकुटी, भ्रकुटि[6]; भुजग, भुजंग, भुयंग, भुजंगम[7]; पलवग, पलवंगम, पलवंग[8] आदि रूप प्रस्तुत किये गये हैं, परन्तु उनकी संख्या अधिक

---

१. सुनीति कुमार चैटर्जी : भारत की भाषाएं और भाषा सम्बन्धी समस्याएं, पृ० १२१।
२. आजकल के कोशकार शब्दों के परिनिष्ठित रूप स्थिर करके उसी के साथ मुख्य अर्थ, व्याख्या आदि देते हैं, आदमकृत हिन्दवी कोश में यह नियम नहीं अपनाया गया है।
३. "अथ नारायणो विष्णुरूर्ध्वकर्मा नारायण :"—शब्दार्णव।
४. "वीचिः पंक्तिः महिः केलिः इत्याद्या ह्रस्वदीर्घयोः"—वाचस्पति।
५. "हालाहलं हालहलम् वदन्त्यपि हलाहलम्", "भवेदेडोकमेडूकमेडुकं च" —द्विरूप कोश।
६. ना० मा०, नन्द०, पंक्ति १६१।
७. अ० मा०, छं० २१९।
८. ना० मा० "क", छं० १२९।

नहीं है। संभव है, ग्रंथ में संक्षिप्तता लाना कोशकार का उद्देश्य रहा हो या उसकी दृष्टि में वे शब्द साधु न रहे हों, या एकदेशीय साधु होने के कारण उसने उन वैकल्पिक रूपों का संकलन उचित न समझा हो। यह भी सम्भव है कि इन वैकल्पिक रूपों की अप्रसिद्धि के कारण उसे ये रूप ज्ञात न रहे हों।

मिर्ज़ा ख़ाँ और गिलक्राइस्ट तथा टेलर के कोशों में शब्दों के वैकल्पिक रूप अधिक मात्रा में दिये गये हैं। अन्तिम दो कोशों में ये वैकल्पिक रूप प्रायः पिछले परिच्छेदों में वर्णित ध्वनियों के ही विपर्यय पर आधारित हैं। परन्तु तुहफ़त् में अपेक्षाकृत कुछ अन्य विशिष्टतायें भी हैं। उदाहरण के लिये निम्न शब्द और उनके वैकल्पिक रूप द्रष्टव्य हैं :

बेसा बेसवा (पृ० २०२); पद्मावत पदमावती (२१५ मू०); तिरिया तिया (२२५ पी०); तुला तुल (२२५ पी०); तार ताल (२२६ पी०); तू तूं (२२८ मू०); प्रीतम पीतम (२२२ मू०); टोटा टोट (२२९ मू०); चपल चपला (२३७ मू०); दसरत जसरत (२४१ मू०); दुधिष्ठर जुधिष्ठर (२४१ मू०); राधा राधिका (२४६ पी०); रमा रामा (२४८ पी०); स्वास सांस (२५४ पी०); सांग स्वांग (२५५ मू०); सुबरन सबरन (२५७ पी०); कुंकुमां कुंकुम (२६६ मू०); गनेश गणेश (२७० पी०); मुरार मुरारी (२७८ मू०); निन्द्रा निद्रा (२८२ मू०); होली होरी (२८६ पी०); नाम नाँव (२८५ मू०); सास्तर शास्तर (२५२ मू०); थाँभ थंभ (२२८ पी०); कामनी कामिनी (२६७ मू०); झाँज झाँझ (२३४ मू०) इत्यादि। इन शब्द-युग्मों में से मिर्ज़ा ख़ाँ ने पहले मुख्य और शुद्ध रूप और उसके पश्चात् उस शब्द की अर्थ-व्याख्या आदि देकर अन्त में उसका वैकल्पिक रूप भी निर्देशित कर दिया है।

शब्दों की उच्चारण व्यवस्था

शब्दों के रूप के साथ ही उनके उच्चारण की समस्या भी है। हिन्दी का यह दावा रहा है कि इसमें जो लिखा जाता है वही पढ़ा जाता है और जो बोला जाता है वही लिखा भी जाता है[1], परन्तु यह सदैव सत्य नहीं होता। "हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति अपने व्याकरण-कषापित कण्ठ से कहें पर्सोत्तम दास और हर्किसन लाल और उनके पिट्ठू छापें ऐसी तरह कि पढ़ा जाय पुरुषोत्तमअ

१. डॉ० श्रीकृष्णलाल : हिन्दी शब्दानुशासन (कि० दा० वाजपेयी), भूमिका, पृ० ९-१०।

दासअ और हरिकृष्ण लालअ।"[1] "हम बोलते हैं—सिंघ, भूक, हात, पर लिखते हैं सिंह, भूख और हाथ।"[2] यह समस्या वास्तव में बड़ी विकट है जिसका समाधान आज तक के किसी हिन्दी कोश में नहीं किया गया है। एक आधुनिकतम कोश में अवश्य इस प्रकार का श्लाघनीय प्रयास किया गया है।[3]

विवेच्य हिन्दी कोशों में कहीं भी शब्दों को उच्चारण के अनुसार अंकित नहीं किया गया है। तुहफ़त् में अवश्य कुछ शब्द उच्चारण के अनुसार लिखे गये हैं, यथा—बट्मार[4] (बटमार), तुल्सी[5] (तुलसी), घन्स्याम[6] आदि। पादरी आदम ने भी अपने हिन्दवी कोश में कुछ शब्दों को उनके उच्चारण के अनुसार अंकित किया है। अकारादिक्रम में नियोजित नट्, नट्खट्, नातिन्, पल्टन, पहिर्ना, फुर्ती, फुलकार्ना, बच्पन, भगवान्, मचलाहट्, मट्कना, मटक्ना, ललकार्ना, सुन्ना (सुनना) इत्यादि शब्द द्रष्टव्य हैं। परवर्ती किसी भी कोश ने इस व्यवस्था से लाभ नहीं उठाया।

पाणिनि ने अपने व्याकरण में शब्दों के बलाघात पर विशेष ज़ोर दिया है। इन्द्रशत्रु[7] शब्द के प्रथम और अंतिम अंश पर क्रमशः बल देने से 'इन्द्र है शत्रु जिसका' और 'इन्द्र का शत्रु' अर्थ निकलते हैं। हिन्दी कोशों में विशेषतः यौगिक शब्दों के प्रसंग में इस तरह के चिह्न या डैश आदि का व्यवहार होना चाहिये था परन्तु विवेच्य कोशों में से गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी के अतिरिक्त किसी भी अन्य कोश में शब्दों की उच्चारण सुविधा के लिये बलाघात के चिह्न आदि नहीं दिये गये हैं।

---

१. चन्द्रधर शर्मा गुलेरी : बुद्धू का कांटा।
२. डॉ० बाबूराम सक्सेना : सामान्य भाषा विज्ञान, पृ० २६।
३. विश्वनाथदिनकर नरवणे द्वारा विरचित 'राजव्यवहारकोश'। इस वृहत् कोश में ४०,००० शब्दों तथा ३५० वाक्यों के दो रूप दिये गये हैं : एक तो विशुद्ध व्याकरण सम्मत और दूसरा व्यवहार प्रयुक्त। यथा :

चमड़ा तथा चम्ड़ा (हिन्दी में)
चामड़े तथा चाम्ड (मराठी में)
चांमरा तथा साम्रा (असमिया में)

वाक्यों के दो रूप के लिये भी एक उदाहरण देखिये :

"दो सप्ताह तक तो आप जगह से हिल नहीं सकते"।
दो सप्ताहँ तक् तो आप् जगा से हिल् नईं सकते।
—धर्मयुग २९ जनवरी १९६१, पृ० ५३।

४. तुह०, पृ० २०५ पी०।
५. वही, पृ० २२८ मू०।
६. वही, पृ० २७३ मू०।
७. पाणिनि : अष्टाध्यायी ६,१,२२३।

विदेशी लिपि के माध्यम से हिन्दी शब्दों का उच्चारण

हिन्दी शब्दों का उच्चारण देने का एक भिन्न प्रयास द्विभाषीय कोशों में व्यवहृत विदेशी लिपि के माध्यम से किया गया है। ये समस्त कोशकार इस तथ्य से विज्ञ थे कि हिन्दी भाषा उनके लिये विदेशी है जिसके उच्चारण में पूर्णतः प्रवीणता पाना अत्यन्त दुष्कर है।[१] विशेषतः ठीक विदेशियों के लहज़े या टोन में हिन्दी शब्दों का उच्चारण करना तो बिलकुल असम्भव है।[२] फिर भी इन्होंने हिन्दी ध्वनियों के लिये एक सुनिश्चित लिप्यन्तरण व्यवस्था का आयोजन किया जिसके माध्यम से हिंन्दी शब्दों को इन कोशों में संकलित किया गया है।

इस लिप्यन्तरण व्यवस्था के दो विभाग किये जा सकते हैं। (१) रोमन लिपि के माध्यम से और (२) नस्ता'लीक़ लिपि के द्वारा।

रोमन लिपि--गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी और टेलर कृत 'डिक्शनरी' में रोमन लिपि के माध्यम से हिन्दी शब्द संकलित किये गये हैं। गिलक्राइस्ट ने इस दिशा में विलियम जोन्स के प्रयासों को गति दी। उन्होंने इस कोश में 'सर्वाधिक शुद्ध और अत्यन्त लोकप्रिय एवं उपयोगी' उच्चारण को प्राथमिकता देने का दावा किया है। यद्यपि वे भलीभाँति जानते थे कि एक ही शब्द बंगाल और दिल्ली तथा बनारस में भिन्न-भिन्न प्रकार से बोला जाता है।[३] उच्चारण में उन्होंने परिश्रम और सफलता से एक सुदृढ़ एकरूपता लाने का प्रयास किया है, भले ही

---

१. हैरोल्ड ई० पामर : कन्सनिंग प्रोनन्सिएशन, पृ० २-४।

२. वही, पृ० १।

३ "…. That pronunciation which has been deemed the most pure and correct, at the same time of the greatest popular utility has generally the preference and may be treated as the standard mode, should the varieties be omitted; but the reader never ought to forget that sound perfectly congenial to a Bungalee ear would shock a native of Dilhee and another in harmonious union with the articulation at Bunarus would present a very discordant note to the inhabitants on the two opposite shores of the Indian Peninsula, and while their prolation, or tones may excite the harshest vibrations and remarks in the metropolis of Behar, they might nevertheless be found occasionally to re-echo in tolerable concordance from the mountains of Kobool, through the plains of Lahour and the hyperborean regions of Hindoostan…."

—गिलक्राइस्ट : दि ऑरियण्टल लिंग्विस्ट, वाकेबुलेरी की भूमिका।

'श्वसुर' और 'कृष्ण' जैसे अनेकानेक रूपों वाले शब्दों के सम्बन्ध में यह योजना अधिक सफल न हो सकी हो।[१] पुनः अच्छा, बच्चा, कच्चा, मक्खी, ठट्ठा जैसे कुछ संयुक्त व्यंजनों का उच्चारण गिलक्राइस्ट इसलिये शुद्ध रूप से नहीं दे सके क्योंकि ऐसा उच्चारण करने से अंग्रेजी-भाषा-भाषियों का दम घुटने लगता[२], अतएव ऐसे स्थलों पर शुद्धता की अपेक्षा सुविधा का ही विशेष ध्यान रखा गया है।

डॉ० गिलक्राइस्ट द्वारा प्रयुक्त रोमन लिप्यंतरण व्यवस्था को टेलर ने भी थोड़े परिवर्तन सहित अपनाया। निम्न तालिका में दोनों का तुलनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है।

स्वर		हिन्दुस्तानी कोश (टेलर)	वाकेबुलेरी (गिलक्राइस्ट)
प्रारम्भिक	मध्यस्थ		
अ		u यथा uchul में	u यथा ub में
आ	ा	a यथा mala में	a यथा akas में
इ	ि	i यथा ikla में	i यथा idhur में
ई	ी	ee यथा eerkha में	ee यथा eent में

१. "...A rigid Uniformity in the Orthographical department has been more strenuously than successfully aimed at, but to secapitulate the numerous causes of failure herein, would be as unnecessary, as it would prove unavailing and fastidious to bewail in this place the imperfection diversity and caprice of Hindoostani enunciation in words like susoor soosur soosoor, soosra—a father-in-law, and Krishn, Krishoon, Krishun, Krishna, Kishin, Kisun etc. the Indian Appollo..."

—डॉ० गिलक्राइस्ट : दी ओरियन्टल लिंग्विस्ट, भूमिका, पृ० १८।

२. "...Properly wch, hah, ha but here as well as in buchchu, kuch-cha, muk, khee, thut, ht, ha etc. I have sacrificed rigid accuracy to general conveniency, knowing as I do, that men who are startled at the aspirate of muukhee alone would be apt to consider muk, hk, hee—a monster or fly of the boar and elephant kind which they never could attempt to pronounce without thc risk of suffocation."

—डॉ० गिलक्राइस्ट : दि ओरियन्टल लिंग्विस्ट, भूमिका, पृ० ५७, पाद टिप्पणी।

स्वर		हिन्दुस्तानी कोश (टेलर)	वाकेबुलेरी (गिलक्राइस्ट)
प्रारम्भिक	मध्यस्थ		
उ	ु	oo यथा oodar में	oo (तिरछे) यथा choogna में
ऊ	ू	oo यथा oon में	oo (सीधे) यथा dhool में
ऋ	ृ	ṛi यथा ṛitoo में	ri यथा rin में
ॠ	ॄ	— —	ree — —
ऌ	ॢ	— —	lri — —
ॡ	ॣ	— —	lree — —
ए	े	e यथा ek में	e यथा ek में
ऐ	ै	ue यथा uerawat में	{ y यथा Bykoonth में
ओ	ो	o यथा or में	o { ae यथा os aena में
औ	ौ	uo यथा uoshudh में	ou यथा ourut में

व्यंजन	हिन्दुस्तानी कोश (टेलर)	वाकेबुलेरी (गिलक्राइस्ट)
क्	k यथा kulunk में	k यथा Kul में
ख्	kh यथा kheer में	kh यथा Khana में
ग्	g यथा gugun में	g यथा Gobur में
घ्	gh यथा g,hora में	gh यथा Ghee में
ङ	n यथा kulunk में	n यथा punung में
च्	ch यथा chit में	ch यथा chor में
छ्	ch,h यथा ch,haya में	ch,h यथा ch,hulee में
ज्	j यथा jungul में	j यथा jo में
झ्	j,h यथा j,hanj,ha में	j,h यथा j,hunda में
ट्	ṭ यथा peṭ में	t (तिरछा) यथा tang में
ठ्	ṭ,h यथा ṭ,hat,h में	th (तिरछा) यथा theek में
ड्	ḍ यथा ḍanḍ में	d (तिरछा) यथा dand में
ढ़्	ṛ यथा laṛka में	r (तिरछा) यथा lura,ee में

व्यंजन	हिन्दुस्तानी कोश (टेलर)	वाकेबुलेरी (गिलक्राइस्ट)
ढ्	ḍh यथा dhol में	dh (तिरछा) यथा dhol में
ढ़्	ṛh यथा daṛ,,hee में	rh (तिरछा) यथा Charhna में
ण	ṇ यथा Kṛishṇu में	n यथा pun में
त	t यथा til में	t यथा til में
थ	t,h यथा thalee में	th यथा thalee में
द	d यथा dada में	d यथा din में
ध	d,h यथा dhobee में	dh यथा dhobee में
न्	n यथा nam में	n यथा nam में
प्	p यथा panee में	p यथा pan में
फ्	p,h यथा phag में	ph यथा phool में
ब्	b यथा bat में	b यथा bat में
भ्	b,h यथा b,hajan में	bh यथा bhasee में
म्	m यथा man में	m यथा mukan में
य्	y यथा yachuk में	y यथा yar में
र्	r यथा rag में	r यथा ramram में
ल्	l यथा lalit में	l यथा lala में
व्	w यथा Warpar में	w यथा war में
श्	Sh यथा Shutroo में	Sh यथा Shytan में
ष्	Sh यथा Vursha में	—
स्	S यथा Sagar में	S यथा Sala में
ह्	h यथा Hur में	h यथा hat में
अनुस्वार चन्द्रविन्दु	ṇ यथा paṇw में	n तिरछा यथा banh में

विवेचन—लल्लूलाल ने बोर्थविक गिलक्राइस्ट की लिप्यंतरण पद्धति को अपने व्याकरण में अत्युत्तम शैली (एक्सेलेंट सिस्टम) बताया है।[1] परवर्ती कोशकारों ने इन ध्वनियों में से समस्त स्वरों तथा पंचम वर्णो को छोड़कर शेष अन्य को इसी रूप में ग्रहण किया है।[2]

नस्ता'लीक़ लिपि—वैसे तो ख़ालिक़बारी तथा अल्लाख़ुदाई में भी हिन्दी शब्द नस्ता'लीक़ लिपि में लिखे गये हैं परन्तु उनकी भिन्न-भिन्न उपलब्ध प्रतियों में अलग-अलग व्यवस्था है अतएव यहाँ पर तुहफ़तुलहिन्द की वर्णान्तिर व्यवस्था पर विशेष प्रकाश डाला जायेगा।

मिर्ज़ा ख़ाँ कृत "तुहफ़तुलहिन्द" की सर्व प्रमुख विशेषता उसमें दी गई हिन्दी या व्रजमाषा ध्वनियों की उच्चारण तथा अनुलेखन एवं लिप्यंतरण व्यवस्था का प्रतिपादन है। एक सच्चे कोशकार की भाँति मिर्ज़ा ख़ाँ की यह प्रबल इच्छा थी कि उनके इस विशाल द्विभाषीय "लुग़त" का प्रयोग करने वाले फ़ारसी अध्येता तत्कालीन जन समाज या भाषा साहित्य में प्रचलित ब्रजभाषा या हिन्दी की ध्वनियों का यथावत् और नितान्त शुद्ध उच्चारण करें। मिर्ज़ा नहीं चाहते थे कि एक ही हिन्दी शब्द का उच्चारण हिन्दी भाषी एक प्रकार से करें और अहिन्दी भाषी फ़ारसी अध्येता दूसरे ढंग से। उनकी तीव्र इच्छा थी कि फ़ारसी पाठकों के लिये कोई ऐसी सुस्पष्ट व्यवस्था का आविष्कार करें जिससे हिन्दी ध्वनियाँ उनकी समझ में सरलता से आ जायें।

परन्तु यह कार्य बहुत आसान न था। हिन्दी तथा तत्कालीन फ़ारसी या अरबी ध्वनियों में बहुत कम ध्वनियाँ समान थीं। अधिकांश ब्रजभाषा ध्वनियों का उच्चारण फ़ारसी या अरबी के माध्यम से नहीं किया जा सकता था। परन्तु मिर्ज़ा इससे विचलित नहीं हुये। उन्होंने दोनों भाषाओं की प्रचलित ध्वनियों की पारस्परिक तुलना के माध्यम द्वारा अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से निरीक्षण कर उन पर गहन मनन, चिन्तन और विवेचन किया, उनके प्रचलित रूप को लिखित भाषा साहित्य में बारीकी से देखा और उनके उच्चरित रूप को जन साधारण के मुँह से अत्यंत ध्यानपूर्वक सुना। इस व्यापक पर्यवेक्षण के अनन्तर उन्होंने हिन्दी ध्वनियों को तीन भागों में वर्गीकृत किया। प्रथम प्रकार की ध्वनियाँ हिन्दी और फ़ारसी में एक समान ही लगीं जैसे 'र', 'ल' (लाम), 'न' (नून), 'व' (वाव) तथा 'ह'। द्वितीय प्रकार की ध्वनियाँ दोनों भाषाओं में मिलती तो थीं, परन्तु उनके साथ फ़ारसी या अरबी विशेषण लगाने पड़े जैसे 'च' (जीमे-अजमी ये-ख़फ़ीफ़ा=फ़ारसी

---

१. लल्लूलाल—ब्रजभाषा व्याकरण (ग्रंथ वीथिका में प्रकाशित), पृष्ठ १८९।
२. मोनियर विलियम्स (संस्कृत अंग्रेजी डिक्शनरी) ने "च" के लिये 'c' का प्रयोग किया।

हलका 'ज') तथा 'ग' (काफ़े-अजमीये-ख़फ़ीफ़ा=फ़ारसी हलका 'क')। तृतीय प्रकार की हिन्दी ध्वनियों का कोई भी रूप तत्कालीन फ़ारसी या अरबी अक्षरों में नहीं मिल पाया। ऐसी विशिष्ट ध्वनियों के लिये मिर्ज़ा ने कुछ मूल फ़ारसी ध्वनियों का आश्रय लिया और उन को कुछ प्रचलित वा स्वनिर्मित विशेषणों के योग द्वारा या पारिभाषिक शब्दावली के माध्यम से स्पष्ट किया। उदाहरण के लिये हिन्दी के 'थ', 'ट' 'ठ' के लिये मिर्ज़ा को फ़ारसी-अरबी का 'ताय-फ़ौकानी' अक्षर सबसे अधिक समान मिला। उक्त तीनों अक्षरों की मूल ध्वनि इस अक्षर से मिल जाती है, परन्तु पूर्णतः नहीं। अतएव यदि अरबी 'त' में थोड़ी महाप्राणता या भारीपन का मिश्रण कर दें तो मिर्ज़ा के मतानुसार यह हिन्दी 'थ' के लिये पर्याप्त होगा। इसीलिये 'थ' को मिर्ज़ा 'तायें-फ़ौकानीयें-सक़ीला' के नाम से अभिहित करते हैं। यदि उसी अरबी 'त' में कुछ अधिक महाप्राणता या क्लिष्टता का संयोग कर दें तो मिर्ज़ा की पद्धति के अनुसार यह हिन्दी 'ट' के लिये पर्याप्त होगा। अतएव वे 'ट' के लिये कहते हैं—'तायें-फ़ौक़ानीयें-मुसक़्क़िला'। इसी प्रकार यदि उसी अरबी 'त' को अधिकाधिक महाप्राणता, भारीपन वा क्लिष्टता से संयुक्त कर दें तो यह हिन्दी ध्वनि 'ठ' के लिये उचित होगा। अतएव मिर्ज़ा ने 'ठ' के लिये लिखा है—'तायें-फ़ौक़ानीये अस्क़ल'। हिन्दी की इन विशिष्ट ध्वनियों के लिये मिर्ज़ा ख़ाँ ने लुग़त में कुछ पारिभाषिक शब्दावली[1] का प्रयोग किया है जिनके माध्यम से इन ध्वनियों को फ़ारसी में समझाया गया है।

---

१. ख़फ़ीफ़ा—हल्का, कम, थोड़ा, अल्पप्राण।
सक़ीला—भारी, गुरु, बोझिल, महाप्राण।
मुसक़्क़िला—अधिक भारी, क्लिष्ट, (rendering itself into heavy)।
अस्क़ल—सबसे अधिक भारी।
अजमी—ईरानी, फ़ार्सी भाषा का।
ताज़ी—अरबी भाषा का।
फ़त्हः, मफ़्तूह—ज़बर, 'अ' की मात्रा, अकारान्त।
मम्दूदः—'आ' की मात्रा, आकारान्त।
कस्रः, मक्सूर—ज़ेर, इकारान्त, 'इ' की मात्रा।
ज़म्म, मज़्मूम—पेश, 'उ' की मात्रा, उकारान्त।
तहतानी, मुबह्ह्दा,
मो'जम—नुक़्ते वाला फ़ारसी या अरबी अक्षर।
फ़ौक़ानी—वह फारसी या अरबी अक्षर जिसके ऊपर नुक़्ते हों।
मुह्मल—वह अक्षर जिस पर बिन्दी न हो।
मवक़ूफ़—बिना बल दिया गया फ़ारसी या अरबी अक्षर।
सुकून, साकिन—अर्द्ध व्यंजन, व्यंजन जिसमें स्वर न हो।
तश्दीद, मुशद्दद—द्वित्व व्यंजन।

इन पारिभाषिक शब्दों के सम्बन्ध में इतना ज्ञातव्य है कि ये किसी परम्परागत, रूढ़ या ध्वनि-शास्त्र में प्रचलित नियम के अनुसार नहीं हैं। खफ़ीफ़ा (हलका), सक़ीला (भारी), मुसक़्क़िला (अधिक भारी क्लिष्ट) एवं अस्क़ल (सबसे भारी) शब्दों द्वारा निर्दिष्ट मात्रा सम्बन्धी भेद बहुत कुछ अनियमित और अनिश्चित मात्रा का बोध कराते हैं। डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी ने केवल कुछ अक्षरों को देखकर इसीलिये इस पद्धति को वैज्ञानिक की अपेक्षा लोकप्रिय[1] मानना अधिक उचित समझा।

ब्रजभाषा या हिन्दी ध्वनियों का फ़ारसी में उच्चारण तथा अनुलेखन और लिप्यंतरण-व्यवस्था के लिये मिर्ज़ा ने निम्नलिखित १८ फ़ारसी-अरबी अक्षरों का उपयोग किया है:—

अलिफ़, बाये-मुवह्हदा, पाये-अजमी, ताये-फ़ौक़ानी, जीमे-ताज़ी, जीमे-अजमी, दाल, रा, सीने-मुहमला, शीने-मो' जम, काफ़े-ताज़ी, काफ़े-अजमी, लाम, मीम, नून, वाव, हे तथा या।

इन अक्षरों पर ही कुछ आवश्यक विशेषण एवं पारिभाषिक शब्दावली का संयोग कर वांछित हिन्दी अक्षरों का रूपान्तर प्रस्तुत किया गया है। उच्चारण व्यवस्था की इस विस्तृत एवं जटिल पद्धति को यथावत् समझने के दृष्टिकोण से अगले पृष्ठों में तालिका का आश्रय लिया गया है। तुहफ़त् में क्रम फ़ारसी-अरबी अक्षरों का है परन्तु यहाँ देवनागरी क्रम रखना ही उचित समझा गया। इस तालिका का आधार तुहफ़तुलहिन्द के 'लुग़त' अंश के अतिरिक्त भूमिका भाग (दर बयाने मुस्तलहात् हुरूफ़े तहज्जियाये हिन्दिया) से भी सहायता ली गई है। समस्त उदाहरण कोश अंश से ही हैं।

---

१. ...."The author appears to have shown his originality in the Section on pronunciation and orthography.....and in the dictionary...But in the portion on the sounds of Hindi and their representation by means of Perso-Arabic letters, Mirza Khan has shown himself to be careful observer... His observation is careful but his deductions and definitions are not strictly Scientific—they are popular...These terms, i. e., Khafifah (lighter), Saquilah (heavy), musqihah (rendering itself heavy) and asqal (heaviest) etc. are as wide of the mark as 'hard' or 'soft' or 'strong' or 'weak' in the vague description of the unfamilier sounds given in English and other European grammar of Arabic Hindustani and other eastern languages...."

—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाषा, भूमिका, पृ० १० ।

प्रारम्भिक स्वर (पृ० १५ पीठ पर विवेचित)

अ	अलिफ़ के ऊपर हम्ज़ः तथा हम्ज़ः के ऊपर ज़बर-
आ	अलिफ़ के ऊपर मद
इ	अलिफ़ के ऊपर हम्ज़ः तथा नीचे ज़ेर
ई	अलिफ़ के नीचे ज़ेर तथा बाद में याय
उ	अलिफ़ के ऊपर हम्ज़ः तथा पेश
ऊ	अलिफ़ के ऊपर हम्ज़ः तथा पेश और आगे वाव
ऋ	रा तथा याय
ॠ	रा के नीचे ज़ेर तथा बाद में याय
ऌ	लाम और रा तथा याय
ॡ	लाम और रा तथा याय
ए	अलिफ़ के नीचे ज़ेर तथा याय
ऐ	अलिफ़ के ऊपर ज़बर तथा याय
ओ	अलिफ़ के ऊपर पेश और बाद में वाव
औ	अलिफ़ के ऊपर ज़बर और बाद में वाव

मध्यस्थ स्वर

(अ)	मफ़्तूह या फ़त्हः यथा थकत (पृ० २२८ पी) में
आ ा	मम्दूदः यथा तरुनाई (पृ० २२८ मू०) में
इ ि	कस्र या मक्सूर यथा फिरत (पृ० २२४ पी०) में
ई ी	मक्सूर तथा याय यथा तुरी (पृ० २२८ मू०) में मारूफ़
उ ु	ज़म्म या मज़्मूम यथा फुकार (पृ० २२४ पी०) में
ऊ ू	मज़्मूम तथा वाव यथा दूध (पृ० २४१ मू०) में मारूफ़
ए े	मक्सूर तथा याय मज्हूल यथा फेंट (पृ० २२४ पी०) में
ऐ ै	सुकूने याय तहतानी यथा वैध (पृ० २०५ मू०) में

ओ ो	मज्मूम तथा वाव मज्हूल	यथा	बोध (पृ० २०५ मू०)	में
औ ौ	सुकूने वाव	यथा	छौना (पृ० २४० मू०)	में

व्यंजन

क्	काफ़े-ताज़ीये-खफ़ीफ़ा	यथा	थकत (२२८ पी०)	में
ख्	काफ़े-ताज़ीये-सक़ीला	यथा	बिदूखक (२०८ पी०)	में
क्ख्	काफ़े-ताज़ीये-मुसक्किला	यथा	मुक्ख भूमिका भाग	में
ग्	काफ़े-अजमीये-खफ़ीफ़ा	यथा	तुंगल (२२७ पी०)	में
घ्	काफ़े-अजमीये-सक़ीला	यथा	घनघोर (२७२ पी०)	में
ङ	काफ़े-अजमीये-मग़नूना	यथा	— भूमिका भाग	में
च्	जीमे-अजमीये-खफ़ीफ़ा	यथा	बचार (२०६ मू०)	में
छ्	जीमे-अजमीये-सक़ीला	यथा	मिरिग छाला (२७५ पी०)	में
च्छ्	जीमे-अजमीये-अस्क़ल	यथा	मच्छ (भूमिका में)	
ज्	जीमे-ताज़ीये-खफ़ीफ़ा	यथा	ताजन (२२७ पी०)	में
झ्	जीमे-ताज़ीये-सक़ीला	यथा	झख (२३५ मू०)	में
न्	याये-तहतानी-ये-मग़नूना	यथा	— भूमिका भाग	में
ट्	ताये-फ़ौक़ानीये-मुसक्क़िला	यथा	टोटा (२२९ मू०)	में
ठ्	ताये-फ़ौक़ानीये-अस्क़ल	यथा	निठुर (२८४ मू०)	में
ड्	दाले-मुसक्क़िला	यथा	ढाढस (२४६ मू०)	में
ड्	राये-मुसक्क़िला	यथा	— भूमिका भाग	में
ढ्	दाले-अस्क़ल	यथा	— भूमिका भाग	में
ण्	नूने-मुसक्क़िला	यथा	गणेश (पृ० २७१ मू०)	में
त्	ताये-फ़ौक़ानीये-खफ़ीफ़ा	यथा	बर्तमान (पृ० २१० मू०)	में
थ्	ताये-फ़ौक़नीये-सक़ीला	यथा	बिथर (पृ० २०५ पी०)	में
द्	दाले-खफ़ीफ़ा	यथा	बादर (पृ० २०५ मू०)	में
ध्	दाले-सक़ीला	यथा	जलधर (पृ० २३२ मू०)	में
न्	नून	यथा	जुनय्या (पृ० २३१ मू०)	में
न्ह्	नूने-सक़ीला	यथा	कान्ह भूमिका भाग	में

प्	बाये-अजमीये-खफ़ीफ़ा	यथा विपत (पृ० २०३ मू०) में
फ्	बाय-अजमीये-सक़ीला	यथा फाटक (पृ० २२५ मू०) में
ब्	बाये-मुवह्हदा-खफ़ीफ़ा	यथा बिधना (पृ० २०१ पी०) में
भ्	बाये-मुवह्हदा-सक़ीला	यथा आभरन (पृ० १९८ मू०) में
म	मीम	यथा तमाल (पृ० २२७ मू०) में
म्ह	मीमे-सक़ीला	यथा ब्रह्म (भूमिका भाग) में
य्	याये-तहतानी	यथा बायब (पृ० २०२ पी०) में
र्	रा	यथा तारन (पृ० २२७ पी०) में
ल्	लाम	यथा बालक (२०७ मू०) में
ल्ह्	लामे-सक़ीला	यथा काल्ह (भूमिका भाग) में
व्	वाव	यथा फुबार (पृ० २२४ पी०) में
श	सीने मो'जमः	यथा जेशठा (पृ० २३१ पी०) में
ष्	काफ़े-ताज़ाये-अस्क़ुल	यथा ----- भूमिका भाग में
स्	सीने मुहमलः	यथा बिशाल (पृ० २२९ मू०) में
ह	हाय	यथा थरहराट (पृ० २२८ पी०) में
क्ष्	अजमी जीम अस्क़ल	यथा ----- भूमिका भाग से
त्र्	ताय फ़ौक़ानीये-राय मुत्तसिला	यथा त्रिया (पृ० २२८ पी०) में
ज्ञ्	काफ़े-अजमीये-मग़नूना	यथा ----- भूमिका भाग में

उपर्युक्त व्यवस्था पर यदि ध्यान दें तो ज्ञात होगा कि मिर्ज़ा खाँ ने 'क्ख', 'च्छ', 'न्ह', 'म्ह', 'ल्ह', 'क्ष' तथा 'ज्ञ' को स्वतंत्र ध्वनि माना है। इनमें से 'न्ह', 'म्ह' और 'ल्ह,' को डॉ० धीरेन्द्र वर्मा[1] एवं डॉ अम्बाप्रसाद सुमन[2] भी ब्रजभाषा की स्वतंत्र ध्वनियाँ मानते हैं। यह द्रष्टव्य है कि उक्त दोनों विद्वानों द्वारा मान्य 'र्ह' को मिर्ज़ा ने स्वतंत्र ध्वनि नहीं माना। इस ध्वनि का तुहफ़त में कहीं प्रसंग भी नहीं है। वैसे मिर्ज़ा के नियमानुसार इसे 'राय सक़ीला' होना चाहिये था। इसके अतिरिक्त 'क्ख', 'च्छ', 'क्ष' तथा 'ज्ञ' को स्वतंत्र ध्वनि मानना मिर्ज़ा का मौलिक

---

१. डॉ० धीरेन्द्र वर्मा : ब्रजभाषा, पृ० ३९।
२. डॉ० अम्बाप्रसाद "सुमन" : ब्रजभाषा उद्गम और विकास (राजर्षि पुरुषोत्तम अभिनन्दन ग्रंथ), पृ० ४३७।

प्रयास है। इसी प्रकार 'ङ्०' तथा 'ज्ञ' की उच्चारण भिन्नता को मिर्ज़ा खाँ समुचित रूप से नहीं समझ पाये इसीलिये दोनों को उन्होंने एक ही नाम 'काफ़े-अजमीये-मग़नूना' के नाम से अभिहित किया। 'त्र' को मिर्ज़ा ने 'त' एवं 'र' का संयोग (ताय फ़ौक़ानी व राय मुतसिला) माना है।

मिर्ज़ा के लुग़त में संगृहीत शब्दों के उच्चारण के सम्बन्ध में इतना और जान लेना चाहिये कि इन शब्दों के प्रथम और अंतिम अक्षर को मिर्ज़ा ने बिना उच्चारण दिये छोड़ दिया है। पहले अक्षर के केवल स्वर तथा अंतिम अक्षर के केवल दीर्घ स्वर का ही निर्देश प्रस्तुत कोश में किया गया है। इसके फलस्वरूप 'आ', 'ई', 'ऊ' स्वरों से समाप्त होने वाले शब्द तो शुद्ध रूप से अंकित हैं परन्तु 'इ' तथा 'उ' लघु स्वरों से समाप्त होने वाले शब्दों का उच्चारण बिगड़ गया है। छबि, भूमि, कपि, निधि, रिपु, कटु एवं रघु क्रमशः छब, भूम, कप, निध, रिप, कट, तथा रघ हो गये हैं।

शब्दों के प्रथम तथा अंतिम अक्षर का उच्चारण न देने का केवल मात्र कारण यह था कि मिर्ज़ा ने अपने "लुग़त" को फ़ारसी के १४ अक्षरों से निर्मित २७ ध्वनियों से प्रारम्भ होने वाले "बाब" (अध्याय) तथा २९ ध्वनियों से समाप्त होने वाले २९ फ़स्लों (प्रकरण) में विभाजित किया है। उदाहरण के लिये "बाबे-बाये-मुवह्हदा-ख़फ़ीफ़ा" (अर्थात् "ब" के अध्यायान्तर्गत) में 'ब' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्द हैं जैसे—बनिता, बनरा, बूता, बौना, बोरा, बहुरतना, बेला, बिरखभ, बात, बिपत (पृ० २०२) आदि। परन्तु इन शब्दों के प्रथम अक्षर 'ब' का उच्चारण कहीं भी नहीं दिया गया है केवल 'ब' के साथ संयुक्त स्वर—ऊ, औ, ए, इ, आ—का ही निर्देश मिलता है। अध्येता को यह ध्यान सदैव रखना पड़ता है कि प्रस्तुत बाब किस अक्षर का है।

ठीक यही स्थिति शब्द के अंतिम अक्षर के सम्बन्ध में है। प्रत्येक 'बाब' के अन्तर्गत कई 'फ़स्ल' (प्रकरण) हैं। ये फ़स्ल भी अक्षरों के नाम से हैं यथा 'फ़स्ले नून' ('न' का प्रकरण) या 'फ़स्ले मीम' ('म' का प्रकरण)। ये अक्षर उस प्रकरण में संकलित शब्दों के अंतिम अक्षर के द्योतक हैं। उदाहरण के लिये 'बाबे-जीमे-अजमीये-खफ़ीफ़ा' (अल्पप्राण 'च' के अध्याय जिसके अन्तर्गत 'च' से प्रारम्भ होने वाले शब्द हैं) के अन्तर्गत 'फ़स्ले काफ़-ताज़ीये-ख़फ़ीफ़ा' (अल्पप्राण 'क' से समाप्त होने वाले शब्दों का प्रकरण) के अन्तर्गत चाक, चपक, चटक, चक, चिलक, चमक, चम्पक, चन्द्रक, चौक, चौंक, चूक, तथा चेटक (पृ० २३७ मू०) शब्द समाहृत किये गये हैं। परन्तु इन शब्दों के प्रसंग में

भी, आदि वर्ण की ही भाँति, कोशकार ने अंतिम वर्ण 'क' का उच्चारण नहीं दिया है। यदि ये शब्द किसी दीर्घ स्वर से समाप्त होते तो उनका उच्चारण मिर्ज़ा खाँ ने भिन्न पद्धति पर दिया होता। 'आ', 'इ', 'ऊ', 'औ' से समाप्त होने वाले शब्द क्रमशः अलिफ़, याय तहतानी और वाव की फ़स्ल में रखे गये हैं। फ़स्ल मात्र का ध्यान रखने से अंतिम स्वर का अनुमान किया जा सकता है। ह्रस्व स्वर 'इ' तथा 'उ' का कोई अलग फ़स्ल नहीं है। इसलिये इन स्वरों से समाप्त होने वाले शब्द व्यंजनांत ही हो गये हैं।

पीछे दी गई तालिका में संकलित ध्वनियों में से क्ख् (काफ़े-ताज़ीये-मुसक़्क़िला), ङ् (काफ़े-अजमीये-मग़नूना), च्छ् (जीमे-अजमीये-अस्क़ल), न् (याये-तहतानी-ये-मग़नूना), ण् (नूने-मुसक्किला), न्ह (नूने-सक़ीला), म्ह (मीमे-सक़ीला), ल्ह (लामें-सक़ीला), श (सीने-मो जमः), ष (काफ़े-ताज़ीये-अस्क़ल), क्ष (अजमी-जीम-अस्क़ल) तथा ज्ञ (काफ़े-अजमीये-मग़नूना) ध्वनियों के कोई स्वतंत्र बाब या फ़स्ल नहीं हैं। लुग़ात में संकलित किसी भी शब्द के प्रारम्भ या अंत में ये ध्वनियाँ नहीं आतीं। इनका विवरण तुहफ़त की भूमिका में 'दर्-बयाने-मुस्तलहाते-हुरूफ़े-तहज्जियाये-हिन्दिया (हिन्दी वर्णमाला का पारिभाषिक विवरण) शीर्षक से किया गया है।

यद्यपि भूमिका भाग में मिर्ज़ा खाँ ने सानुनासिक व्यंजनों का स्वतंत्र विवरण दिया है परन्तु कोश के अन्तर्गत 'न' तथा 'म' को छोड़कर अन्य सानुनासिक नहीं आये हैं। फिर संयुक्ताक्षरों के प्रसंग के पाँचों अनुनासिकों को आधा (सुकून) न मानकर अनुस्वार (नून मग़नूना) का प्रयोग किया गया है। आधा 'न' के भी मिर्ज़ा ने दो उपभेद किये—'नूने-मग़नूना' तथा 'नूने मुनव्वना'। परन्तु इसका आधार अधिक स्पष्ट नहीं है। इनको अनुस्वार तथा चन्द्रबिन्दु के लिये भी प्रयुक्त नहीं कहा जा सकता, क्योंकि थाँब (२२८ पी०), बाँध (२०४ पी०), बूँद (२०४ पी०) में 'नूने-मुनव्वना' है तो फाँक (२२४ पी०), फाँट (२२४ पी०) में 'नूने-मग़नूना'। इसी प्रकार तुन्दल (२२७ पी०), तुंगल (२२७ पी०), बिन्द (२०४ पी०), और बींड (२०५ मू०) में 'नूने-मुनव्वना' है तो टेंट (२२९ मू०), फेंट (२२४ पी०) और फुँकार (२२४ पी०) में 'नूने-मग़नूना'।

उपर्युक्त ध्वनियों के अतिरिक्त संयुक्ताक्षरों में आये हुये अर्द्ध व्यंजनों के लिये 'सुकून' तथा द्वित्त वर्णों के लिये 'मुशद्दद' या 'तशदीद शब्द प्रयुक्त किये गये हैं।

'लुग़तये-हिन्दी' में दी गयी उच्चारण-व्यवस्था के कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है:

('अ' के अध्यायान्तर्गत 'व' के प्रकरण से)

इन्द्रबधू—इस शब्द का प्रथम अक्षर ('अ', जिसका यह अध्याय है) 'इ' स्वर के साथ (पढ़ा जाय), 'न' अनुस्वार मात्र है तथा हलका 'द' जिसके साथ 'र' भी संयुक्त है। हलके 'ब' में 'अ' स्वर मिला है इसके बाद उकारान्त महाप्राण 'द' (अर्थात् 'ध') पर खींचा हुआ 'व' (='व्'='ऊ' की मात्रा) लगायें......... ।"[1]

('ब' के अध्यायान्तर्गत 'र' के प्रकरण से)

ब्यौपार—(इस शब्द के) प्रथम (अक्षर 'ब' को) 'इ' स्वर के साथ (मिलाकर पढ़ा जाय) आधा 'ब' तथा हलका सा 'य' (भी प्रथम अक्षर 'ब' के साथ ही मिलाया जाय) फ़ारसी 'ब' (अर्थात्=प) अल्पप्राण तथा आकारान्त है (और अंतिम अक्षर 'र' जिसका यह प्रकरण है)[2]।

('द' के अध्यायान्तर्गत 'ज' के प्रकरण से)

द्विजराज—(इस शब्द के) प्रथम (अक्षर 'द' को) 'उ' स्वर सहित (पढ़ा जाय) तथा इसके आगे 'इ' (का उच्चारण करें) और अरबी अल्पप्राण 'ज' को आधा (पढ़ा जाय) 'र' आकारान्त है तथा 'ज' (जिसका यह प्रकरण है)[3]

('द' के अध्यायान्तर्गत 'र' के प्रकरण से)

दुधिष्ठिर—(इस शब्द के) पहले (अक्षर 'द' को) 'उ' स्वर के साथ (उच्चारण करें), इसके बाद भारी 'द' (=ध) को 'इ' स्वर सहित (पढ़ें) और आधा 'श' और भारी 'त' (=ठ) (तथा 'र' जिसका यह प्रकरण है)।[4]

('फ' के अध्यायान्तर्गत 'द' के प्रकरण से)

फनंद—(इस शब्द का) प्रथम (अक्षर 'फ') अकारान्त है तथा दो 'न' (जिनमें से) प्रथम 'न' अकारान्त है और दूसरा 'न' केवल अनुस्वार के रूप में (तथा अन्त में 'द' जिसका यह प्रकरण हैं)[5]।

---

१. इन्द्रबधू—बे अव्वले मक़सूर व नूने मग़नूना व दाले ख़फ़ीफ़ा मवकूफ़ व राय मुत्तसिला व फ़त्ह बाय मुवह्हदा ख़फ़ीफ़ा व ज़म्मे दाले सक़ीला व वाव मारूफ़—। —तुह०, पृ० १९९ पी०।

२. ब्यौपार—ब क़स्त्रे अव्वल व सुकूने वाव ब याय मशमूमा व बाय अजमीये-ख़फ़ीफ़ा मम्दूदः......"। —तुह०, पृ० २०६ पी०।

३. द्विजराज—ब ज़म्मे अव्वल व कस्त्र ब क़स्त्रः व सुकूने जीम-ताज़ीये-ख़फ़ीफ़ा व राय मम्मूदः......।" —वही, पृ० २४१ मू०।

४. दुधिष्ठर—ब ज़म्मे अव्वल व कस्त्रे-दाले-सक़ीला व सुकूने-सीन-मो' जमः व ताये फ़ौक़ानीये-मुसक़्क़िला......।" —वही, पृ० २४१ मू०।

५. फ़नंद—ब फ़त्हः अव्वल व नूनैन नूने अव्वल मफ़तूह व सानी मुनव्वना......।" —वही, पृ० २२४ पी०।

('त' के अध्यायान्तर्गत 'न' के प्रकरण से)

तिलोत्मां—(इस शब्द के) प्रथम (अक्षर 'त' को) 'इ' स्वर के साथ (पढ़ा जाय) तथा 'ल' को पहले 'उ', फिर खींचा हुआ 'व' (=वो=ओ) सहित (उच्चारण करें), इसके बाद 'त' इस पर अधिक बल न दें तथा आकारान्त 'म' और अन्त में 'न' जिसका यह प्रकरण है)[1]।

मिर्ज़ा खाँ ने अपने लुग़त में समस्त पद एवं समासों का उच्चारण देने की एक विशिष्ट पद्धति अपनाई है । इसमें मूल शब्द का उच्चारण अपने स्थान पर पूर्व उल्लिखित पद्धति पर दिया गया है परन्तु वही शब्द यदि पुनः किसी समस्त पद या समास में आये हैं तो उनका उच्चारण दुबारा नहीं होगा। उसके स्थान पर केवल 'ब हुरूफ़े-हरकाते-मज्कूरः' (इस शब्द के अक्षर पूर्व वर्णित जैसे ही हैं) अंकित होगा। इसके बाद समस्त पद में से बचे शेष अंश का उच्चारण दिया गया है। इन समस्त पदों में से अध्येता को इतना अवश्य ध्यान रखना पड़ता हैं कि किस शब्द का उच्चारण पहले दिया जा चुका है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा :—

('म' के अध्यायान्तर्गत 'न' के प्रकरण से)

मद्न— (इस शब्द का) पहला (अक्षर 'म') अकारान्त है, इसके पश्चात् (=म) व्यंजनांत हलका 'द' (तथा 'न' जिसका यह प्रकरण है) ।

मदन्सदन—(इस सामासिक पद में से प्रथम तीन) अक्षरों को वैसे ही (पढ़ा जाय) जैसे उपर्युक्त वर्णित अक्षरों (का उच्चारण हैं), (इसके बाद) अकारान्त 'स' तथा हलका अकारान्त 'द' (एवं, 'न' जिसका यह प्रकरण है।)

मदनमोहन—(इस सामासिक पद में से प्रथम तीन अक्षरों का उच्चारण वैसे ही करें) जैसे पूर्व वर्णित अक्षरों का (किया था), (इसके पश्चात्) 'म' पर पहले 'उ' फिर हलका 'व' (=ओ) तथा अकारान्त 'ह' (एवं 'न' जिसका यह प्रकरण है) ।[2]

---

१. तिलोतमां—ब क़स्रे अव्वल व अम्मे लाम व वाव मज्हूल व ताय-फ़ौक़ानीये-ख़फ़ीफ़ा मवक़ूफ़ व मीमे मम्दूदः······।" —तुह०, पृ० २२७ पी०।

२. मदन—ब फ़त्हः अव्वल व सुकूने दाले-ख़फ़ीफ़ा-मफ़्तूह—— ।
मदनुसदन—ब हुरूफ़े हरकाते मज्कूरः व सीन मुहमलः व दाले ख़फ़ीफ़ा मफ़्तूह···।
मदनमोहन—बहुरूफ़े हरकाते मज्कूरः व मीमे मज़मूमः व वाव मज्हूल व हाय मफ़्तूह······। —तुह०, पृ० २८० पी०।

("ब" के अध्याय तथा 'ज' के प्रकरण से)

बिर्ज— (इस शब्द का) प्रथम (अक्षर 'ब') इकारान्त है तथा आधा 'र' (एवं 'ज' जिसका यह प्रकरण है)।

बिर्जबाल— (इस सामासिक पद में से प्रथम दो अक्षरों को वैसे ही पढ़ें) जैसे ऊपर वर्णित अक्षरों का उच्चारण किया था, (उसके बाद) हलका आकारान्त 'ब' तथा अकारान्त 'ल'।

बिर्जगोपाल—(इस सामासिक पद में से प्रथम दो अक्षरों का वैसे ही उच्चारण करें) जैसे पूर्व वर्णित किया जा चुका है, (उसके पश्चात्) फ़ारसी हलका 'क' (='ग') जिस के साथ पहले 'उ' तथा बाद में हलका 'व' (=वो=ओ) संयुक्त है, तथा फ़ारसी हलका 'ब' (=प) जो आकारान्त है एवं 'ल'।[1]

इन सामासिक तथा समस्त पदों की उच्चारण पद्धति के विषय में इतना निर्देश करना आवश्यक है कि ऐसे पदों का अन्तिम अक्षर, सम्भव है विवेच्य प्रकरण के अन्तर्गत न आ सके। ऐसी परिस्थिति में मिर्ज़ा खाँ ने अन्तिम अक्षर का भी उच्चारण दे दिया है, उदाहरण के लिये उपर्युक्त अंशों में 'बिर्ज' शब्द 'ज' के प्रकरण से है अतएव बिर्ज में 'ज' को कोशकार ने बिना उच्चारण दिये छोड़ दिया है, परन्तु इसी के साथ आये सामासिक शब्द 'बिर्जबाल' तथा 'बिर्जगोपाल' का अन्तिम अक्षर 'ल' है जो विवेच्य प्रकरण के अन्तर्गत नहीं आता अतएव ऐसी स्थिति में 'ल' का भी उच्चारण दिया गया है।

उच्चारण सम्बन्धी एक अन्य विशेषता—एक शब्द का उच्चारण देने के उपरान्त यदि मिर्ज़ा खाँ के सामने कोई दूसरा ऐसा शब्द आया हो जिसका प्रथम अक्षर ही नहीं बल्कि उच्चारण भी बहुत कुछ पूर्व वर्णित शब्द से मिलता-जुलता हो तो ऐसे अवसर पर दूसरे शब्द का नियमानुकूल पूर्ण उच्चारण न देकर केवल भिन्नता मात्र निर्देशित कर दी गई है। निम्न उदाहरणों में बप, बिप्प, बिट, बिघू; तनुज, तेज, तीज, तथा चेत, चीत, चैत एक ही मुख्य शीर्षक में संकलित हैं।

---

१. बिर्ज—ब कस्त्रे अव्वल व सुकूनेरा······।"
बिर्जबाल—ब हुरूफ़े हरकाते मज्कूरः व बाय मुवह्दा खफ़ीफ़ा मम्दूद : व लाम······।"
बिर्जगोपाल—ब हुरूफ़े हरकाते मज्कूरः व जम्मे काफ़े अजमी खफ़ीफ़ा व वाव मजहूल व बाय अजमीये खफ़ीफ़ा मम्दूदः व लाम———।"
—तुह०, पृ० २०४ मू०।

बप—(अध्याय तथा प्रकरण के दोनों अक्षर 'ब' और 'प') अकारान्त हैं······ प्रथम अक्षर ('ब') को इकारान्त तथा (दूसरा अक्षर 'प' को) द्वित्व (उच्चारण करें=बिप्प)·········प्रथम (अक्षर 'ब' को) इकारान्त तथा दूसरा (अक्षर) भारी अकारान्त 'त' (=ट) है (=बिट)·········प्रथम (अक्षर 'ब') को 'इ' स्वर के साथ (पढ़ें), दूसरा अक्षर भारी 'द' (='ध') है जिस पर पहले 'उ' एवं बाद में खींचा गया 'व' (=वू) मात्रा लगायें (=बिधू)······"।

तनुज—पहला (अक्षर 'त') अकारान्त है, (इसके पश्चात्) 'न' को 'उ' के साथ (उच्चारण) करें (तथा अन्त में 'ज' जिसका यह प्रकरण है)······ पहले (अक्षर 'त' में) पहले 'इ' व फिर 'य' लगाकर (='ए') पढ़ें (तथा अन्त में 'ज' जिसका यह प्रकरण है =तेज) ----- (मज्हूल 'याय' =ए की जगह पर मारूफ 'याय' =ई पढ़ें (तथा अन्त में 'ज' जिसका यह प्रकरण है =तीज)·········।

चेत—पहले (अक्षर 'च' में) 'इ' तथा 'य' को मिलाकर (=ए) पढ़ें, और 'त' (जिस प्रकरण के अन्तर्गत यह शब्द संकलित है)·········(मजहूल याय के स्थान पर) मारूफ़ याय (=ई का उच्चारण करें =चीत)······(इस 'ई' के स्थान पर) आधा 'य' ('ऐ' का उच्चारण करें चैत)······"।

एक व्यतिक्रम—यहाँ पर यह ज्ञातव्य है कि एक ही मुख्य शीर्षक के अन्तर्गत उसी से मिलते-जुलते शब्दों का उच्चारण देने की यह पद्धति किसी

---

१. बप—(=बपु)—बिल फ़त्ह (तना व अन्दाम बुवद) व बिल क़स्र व तश्दीद (=बिप्प) (बरासन रा नामन्द) व ब कस्रे अव्वल व फ़त्हः ताय फ़ौक़ानीये मुसक्किला (=बिट) (दरख्त रा नामन्द) व ब अव्वले मक़्सूर व दाले सक़ीला मज्मूम व वावे मारूफ़ (=बिधू) (गुले दुपहरिया रा नामन्द)।
—तुह० २०३ मू०।

२. तनुज—ब फ़त्ह अव्वल व जम्मे नून (पिसर रा नामन्द) व ब अव्वले मक़्सूर व याय मज्हूल (=तेज) (ब माना आफ़ताब व ताबिश व तेजी व तुदी व इक़बाल जाहो जलाल बुवद) व ब याये मारूफ़ (=तीज) (सुबहम माह रा नामन्द)—
—तुह, पृ० २२६ मू०।

३. चेत—व अव्वले मक़्सूर व याय मज्हूल (होश व आगाही व शरूर बाशद) व व याये मारूफ़ (=चीत=चित्र।) (नक्श व निगार कर्दन बूवद) व सुकूने याये तहतानी (=चैत) (नाम माहे अव्वल अस्त अज बसन्त रित।)
—वही, पृ० २३६ मू०।

सुनिश्चित तथा सुनिर्दिष्ट प्रणाली पर आधारित नहीं है। उपर्युक्त उद्धरणों में 'बप' (बपु), 'बिप्प' (=विप्र), 'बिट' एवं 'बिधू' का तनिक भी पारस्परिक सम्बन्ध नहीं है। केवल प्रथम अक्षर के अतिरिक्त इनमें कुछ भी समानता नहीं, फिर भी इन शब्दों को मुख्य शीर्षक 'बप' के ही अन्तर्गत संकलित किया गया है। परन्तु अन्य अवसरों पर कई शब्दों के प्रारम्भिक और अंतिम अक्षर एक ही हैं केवल स्वरों की भिन्नता है। ऐसे शब्दों में केवल स्वर परिवर्तन मात्र से उच्चारण की भिन्नता प्रदर्शित की जा सकती थी, परन्तु ऐसा नहीं किया गया है। उदाहरण के लिये 'तिल' शब्द का उच्चारण देकर 'तल' तथा 'तुल' का उच्चारण तो मुख्य शीर्षक 'तिल' के ही अन्तर्गत दिया गया है परन्तु इसी प्रसंग में 'तूल' तथा 'तेल' को मिर्ज़ा ने स्वतंत्र रूप से ही लेना उचित समझा, यद्यपि मुख्य शीर्षक 'तिल' के ही साथ इन शब्दों को भी संगृहीत कर उनका उच्चारण दिया जा सकता था (पृ० २३७ पी०)। इसी प्रकार 'चाल' 'चल' 'चुल' तथा 'चील' को स्वतंत्र रूप से संगृहीत कर प्रत्येक का अलग-अलग उच्चारण दिया गया है (२३७ पी०)। इन शब्दों का प्रारम्भिक और अंतिम अक्षर ही समान नहीं, अन्तर केवल स्वरों का है।

अक्षरों की बनावट का निर्देश—तुहफ़तुलहिन्द में हिन्दी शब्दों की फ़ारसी के माध्यम से उच्चारण-व्यवस्था के अतिरिक्त उन शब्दों के अक्षरों को फ़ारसी अक्षरों के माध्यम से लिखने की पद्धति भी पूर्ण बारीकी एवं विस्तार से समझाई गई है। भूमिका-भाग के 'दर-बयाने-मुस्तलहाते-हुरूफ़े-तहज्जियाये-हिन्दिया' के अन्तर्गत भिन्न-भिन्न देवनागरी अक्षरों का फ़ारसी रूपान्तर तो प्रस्तुत है ही, देवनागरी अक्षरों की आकृति (शक्ल) को भी फ़ारसी अक्षरों के माध्यम से समझाया गया है। मिर्ज़ा खाँ की यह निरूपण एवं विवेचन शैली भी पूर्ण व्यापक एवं मौलिक है।

देवनागरी अक्षरों की इन 'शक्लों' को तीन भागों में बाँटा गया है :

(१) 'जुदा जुदा शक्ल' जैसे क+र=कर (पृ० ११ पी०)। (२) संयुक्त वर्णों में प्रयुक्त आधे (सुकून) अक्षर जैसे ह+स्+त='हस्त' या स्+वे+द= 'स्वेद,' या द्+यो+स='द्योस' (पृ०१२पी०)। इसी प्रसंग में मिर्ज़ा खाँ ने लिखा है कि 'अ' 'ब' तथा 'य' अक्षर शब्द के प्रारम्भ में आधे रूप में नहीं आयेंगे। (३) तृतीय प्रकार के अक्षर द्वित्त वर्ण हैं, जैसे 'क्क,' 'ठ्ठ,' 'गग', 'च्च', 'ज्ज', 'न्न', 'घ्घ', 'ट्ट', 'ठ्ठ्', 'ढ्ढ', 'म्म', 'प्प', 'फ्फ', 'ब्ब,' 'र्र', 'ल्ल', 'स्स', तथा 'श्श' (पृ० १३ पी०)। इन समस्त वर्णों को लिखने की भी एक विशिष्ट शैली तुहफ़त् के भूमिका-भाग में दी गई है। उदाहरण के लिये 'मुशद्दद' (द्वित्त वर्णों)

में से 'क्क' तथा 'न्न' को फ़ारसी अक्षरों के माध्यम से लिखने का तरीक़ा निम्न प्रकार से बताया गया है ; यथा:

क्क—हलके दो अरबी 'क'। ऐसे (अक्षरों की बनावट को) कहते हैं, (जो इस प्रकार बनती है कि) 'दो दाल' को तीनों भुजाओं सहित विपरीत दशा में (एक दूसरे के) ऊपर नीचे लिखते हैं—(इनको इस प्रकार लिखा जाय) कि ये उपर्युक्त दो 'दाल' शून्य की भाँति एक के ऊपर दूसरा दिखाई दे। (शेष अंश के लिये इस द्वित्त) वर्ण की आकृति ठीक उसी प्रकार है जैसे (यह अक्षर 'क') स्वतंत्र रूप से एक-एक अक्षर के प्रसंग में पहले ही वर्णित किया जा चुका है। (अधिक स्पष्टता के लिये, इस द्वित्त वर्ण की) आकृति ऐसी होती है—क्क

न्न—(इस द्वित्त वर्ण को लिखने की) पद्धति ऐसी होती है कि दो हलके 'न' (जिसका विस्तृत विवरण एक-एक अक्षर के प्रसंग में दिया जा चुका है) को अन्त में एक 'अलिफ़' के साथ (एक दूसरे के) ऊपर-नीचे लिखते हैं। (अधिक स्पष्टता के लिये) इसकी आकृति ऐसी है—न्न।

निष्कर्ष—उपर्युक्त परिच्छेदों में मिर्ज़ा ख़ाँ द्वारा तुहफ़तुलहिन्द में प्रतिपादित हिन्दीध्वनियों की अरबी-फ़ारसी अक्षरों के माध्यम से रूपान्तर-व्यवस्था का मूल्यांकन किया गया है। बताने की आवश्यकता नहीं कि आलोच्यकालीन कोशों में यह पद्धति अपनी शैली की एक ही है जिसकी तुलना किसी अन्य से नहीं की जा सकती। आंशिक रूप से अक्रमिक व अनियमित होते हुये भी यह प्रणाली अत्यन्त स्तुत्य है। हिन्दी ध्वनि-विश्लेषण के क्षेत्र में मिर्ज़ाख़ाँ का किया गया प्रयास ऐतिहासिक ही नहीं, वैज्ञानिक महत्त्व भी रखता है। तुहफ़तुलहिन्द के इस अंश का अध्ययन ध्वनि-विश्लेषण एवं नव्य आर्य-भाषाओं के ध्वनि तत्त्व के अध्ययन में बहुत बड़ा योगदान देगा।[३]

---

१. दो काफ़े-ताजीये-ख़फ़ीफ़ा चुनाँ बुवद कि दो दाल ख़ते मुल्स मा'कूस ज़ेरोबाला मुत्तसिल हम नवीसन्द चुनाँ कि अज़ हर दो दाले मज़कूर दो चश्मये ज़ेरोबाला हादिस ग्रर्दद शक्ले हर्फ़े हुमाँ बुवद कि साबिक़ दर मुफ़रदात ईराद पिज़ो रफ़्तः भी ज़यादत नुकसाने बर्दी शक्ल—क्क। —तुह० १२ पी०।

२. तरक़ीबे दो नूने ख़फ़ीफ़ा चुनाँ बुवद कि हर्फ़े मज़्कूर रा ब यक अलिफ़े आख़िर ज़रो-बाला हम मुकर्रर नवीसन्द बर्दी शक्ल—न्न।

—वही, पृ० १३ मू०।

३. "... Mirza's analysis of the sounds is well worth a careful study and it is to be hoped that this portion of his Tuhfat will be made available to the students of phonetics and IndoAryan Linguistics."

—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : ए ग्रामर ऑव् ब्रजभाखा, भूमिका, पृ० १०।

अध्याय ४

शब्दों का नियोजन

शब्द-नियोजन से तात्पर्य उन समग्र प्रक्रियाओं, शैलियों एवम् पद्धतियों से है, जिनके माध्यम से कोशों में शब्द संकलित किये गये हैं। विवेच्य कोशों में हमें शब्दों के रूप, लिंग, व्युत्पत्ति, अर्थ, प्रयोग, पर्याय आदि अनेकानेक तथ्यों का पूर्ण या आंशिक ज्ञान प्राप्त होता है, परन्तु इन सभी तथ्यों का संयोजन किसी न किसी पूर्वनिश्चित तथा विशिष्ट प्रणाली पर आधारित है।

आलोच्यकालीन अधिकांश कोश संस्कृत कोशों की परम्परा एवं अनुकरण--शैली पर निर्मित किये गये हैं, जिनका मूलभूत लक्षण 'शब्दों का संग्रह' है। परन्तु यह संग्रह-प्रक्रिया कोश का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण पक्ष है जो अपने प्रयोजन की विविधता तथा रचयिता के मेधा-प्रकर्ष के अनुसार अध्ययन की सजीव प्रतिमा बन गई है, और जिसके अध्ययन से भाषा-विषयक अनेक गूढ़ रहस्यों का ज्ञान भी प्राप्त होता है। आधुनिक परम्परा के अनुसार कोश के लाभदायक होने का सर्वप्रथम एवं आधारभूत लक्षण यह है कि उसमें संकलित शब्द सुगमता से ढूँढ़े जा सकें।[1] पुनः कोशों में न तो संकलित शब्द ही नये होते हैं और न अर्थ। कोई अन्य ऐसी विशिष्टता भी कोश में नहीं होती जिसके आधार पर कोशकार के यथार्थ कृतित्त्व का समवेत अध्ययन किया जा सके। शब्द, अर्थ एवं तत्सम्बन्धी अन्य विषयों को प्रस्तुत करने की विशिष्ट शैलियाँ या पद्धतियाँ ही कोश की उपादेयता बढ़ाती हैं। सत्य तो यह है कि यह योजना-प्रणाली ही वह माध्यम है जिसके द्वारा कोशकार अपनी मौलिकता एवं नवीनता का समुचित प्रयोग कर कोश को परमोपयोगी एवं आकर्षक बना सकता है।[2]

एक प्रसिद्ध आधुनिक हिन्दी कोशकार[3] के अनुसार चाहे किसी प्रकार का कोश या भण्डार हो यदि उसमें संगृहीत वस्तुयें किसी एक सुनिश्चित क्रम वा व्यवस्थित रूप में न संयोजित की जायँ तो वह कोश न होकर कूड़ाखाना हो जायेगा। बहुत सी वस्तुओं के अव्यवस्थित ढेर में न तो कोई चीज़ अच्छी तरह

---

१. एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड ९, पृ० ८७।
२. मोनियर विलियम्स : ए संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी, भूमिका, पृ० ५।
३. रामचन्द्र वर्मा : कोशकला, पृ० ६०।

देखी या पहचानी जा सकती है न शीघ्रता से ढूँढ़ी जा सकती है। यदि शब्द-कोश में भी शब्दों का ठीक, सुनिश्चित तथा व्यवस्थित क्रम न हो तो जिज्ञासुओं के लिये उसका उपयोग करना कठिन क्या प्रायः असम्भव हो जायगा। इसीलिये कोशकार को शब्दों का कोई न कोई क्रम निर्धारित करना और आदि से अन्त तक उस क्रम का पूर्ण पालन करना नितान्त आवश्यक है।

'शब्द' से तात्पर्य—इस अध्याय में वर्णित शब्दों को पिछले अध्याय में वर्णित 'शब्द' की अपेक्षा कुछ भिन्न तात्पर्य में ग्रहण किया गया है। पिछले अध्याय में मुख्य, मूल एवं विवेच्य तथा अभिधेय शब्दों को ही अध्ययन का आधार बनाया गया था परन्तु प्रस्तुत अध्याय में सामान्यतः सभी शब्दों को विवेचन का माध्यम बना लिया गया है।

विवेच्य कोशों के शब्द-संकलन तथा उनके नियोजन की प्रणालियों के चार निम्न प्रभेद किये गये हैं:—

(१) पर्याय शैली में शब्द-संकलन, (२) अनेकार्थ पद्धति पर शब्द-नियोजन, (३) पद्य-बद्ध द्विभाषीय कोशों की क्रमहीन प्रणाली, और (४) अक्षरानुक्रम में शब्द-संकलन।

अगले अनुच्छेदों में प्रत्येक का स्वतन्त्र रूप से सविस्तार एवम् सोदाहरण अध्ययन किया गया है।

पर्याय शैली

द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत वर्णित समस्त समानार्थी कोश, जिनके अन्तर्गत अनुवादित और डिंगल तथा अन्य सामान्य पर्यायकोश तथा मानमालायें भी विवेचित हैं, पर्याय शैली में व्यवस्थित हैं। इन कोशों में पर्याय से क्या तात्पर्य लिया जा सकता है, इसका विस्तृत अध्ययन उक्त अध्याय में किया जा चुका है।

पर्याय शैली के पुनः तीन उपभेद किये गये हैं: (१) वर्गात्मक संकलन, (२) वर्गरहित संकलन और (३) मानकथा पर आधारित संकलन।

अपेक्षाकृत अधिक वैज्ञानिक, प्राचीन, बहुप्रचलित एवं लोकप्रिय होने के कारण सर्वप्रथम चारों अनुवादित कोशों की शब्द-नियोजन पद्धति पर प्रकाश डालना श्रेयस्कर होगा, जिनकी नियोजन-प्रणाली को दूसरे शब्दों में वर्गानुक्रम के नाम से भी अभिहित किया जा सकता है।

वर्गानुक्रम—अमरकोश या इसी प्रकार की शैली पर नियोजित अन्य संस्कृत कोशों में व्यवहृत वर्गानुक्रम-पद्धति कोई नितांत नवीन आविष्कार न थी। इसकी बहुत प्राचीन एवं सुदृढ़ परम्परा है।

अस्त-व्यस्त तथा क्रमहीन वस्तुओं में से विशिष्ट उपकरणों में समान गुणों का अवलोकन कर उनको एक वर्ग के अन्तर्गत समाहृत कर देना सब से प्राचीन, सरलतम एवं वैज्ञानिक पद्धति है। भाषा इसकी साक्षी है कि किस प्रकार पूर्व-वैज्ञानिक-कालीन मानव ने विभिन्न वर्गीकरण करके इस पद्धति की उपादेयता समझी। सत्य तो यह है कि प्रत्येक जातिवाचक संज्ञा एक विशिष्ट वर्ग का प्रतीक है।[1] अतएव समान भावों या विचार के द्योतक शब्दों को एक साथ रखकर आन्तरिक भाव द्योतन कराना पूर्णतः वैज्ञानिक योजना है।

वर्गों के विभाजन की क्या आवश्यकता थी, इसके प्रसंग में यास्क कृत निरूक्त का प्रथम सूत्र द्रष्टव्य है :—

"ॐ समाम्नायः समाम्नातः। स व्याख्यातव्यः। तमिमं समाम्नायं निघण्टवः इत्याचक्षते। निघण्टवः कस्मात्। निगमा इमे भवन्ति। छन्दोभ्यः समाहृत्य समाम्नातास्ते निगंतवः एव सन्तौ निगमनात् निघण्टव उच्यते इत्यौपमन्यवः।"[2]

उक्त सूक्तों में से "छन्दोभ्य समाहृत्य समाहृत्य" (२–४) पर टिप्पणी करते हुये श्री वी० के० राजवाड़े ने मत व्यक्त किया है कि 'निघण्टु' में भी अन्यत्र से एकत्र कर उनको पुनः संकलित व वर्गीकृत कर दिया गया। 'निघंटु' में भी समाहृत्य का भाव विद्यमान है जो शब्दों के वर्गीकरण की प्रणाली की ओर इंगित करता है।[3]

१. **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका (१४वां संस्करण), बीसवाँ खण्ड, पृ० १२७।**
२. **यास्काचार्य प्रणीतं निरुक्तम्, प्रथमो भागः, पृ० १९।**
३. "…. The words in the **समाम्नाय** have been fetched from all the Vedas without exception and put together or classified **निगम्नात**—from guiding one in interpreting Vedic passages **निगन्तव : एव सन्तः निघन्टवः उच्यन्ते।** though really they (**निगमाः**) are Nigantus they are popularly called Nighantus, people are responsible for their misprounciation. The root in **निघन्टु** is **नि + गम्**; the reason for this derivation is given by the words **छन्दोभ्यः निगमनात्।**
The word Nighantu conveys the idea of (1) being fetched (2) compiled or classified and (3) being guides in the interpretation of RKS., Durga calls these three ideas **समाहरण, समाहनन** and **निगमन**. . .।"

—यास्काचार्य प्रणीतं निरुक्तम्, प्रथमो भागः, पृ० २१७।

निघण्टु का इस प्रकार वर्गीकरण करना साभिप्राय, सार्थक व अनिवार्य था। निघण्टु में समस्त शब्द एक ही क्षेत्र से संकलित किये गये थे। यह क्षेत्र वेदों का था जिनके एकमात्र अध्ययन व व्याख्या के लिये इसकी आवश्यकता प्रतीत हुई थी। निरुक्तम् के 'निघण्टवः कस्मात् निगमा इमे भवन्ति' की व्याख्या करते हुये उक्त टिप्पणीकार ने पुनः लिखा है कि 'निघण्टु' का अर्थ है—निगम् अर्थात ऐसे शब्द जिनके वर्गमात्र के ज्ञान से अर्थाभास हो जाता है।[1] यह व्याख्या स्पष्ट करती है कि वर्गीकरण पद्धति से दो प्रत्यक्ष लाभ हुए। प्रथम इस प्रणाली से अर्थ तक पहुँचने में सहायता मिली, दूसरे इससे शब्द का स्थान वा स्थिति ज्ञात करने में सुविधा रही।

वर्गीकरण-पद्धति के द्विविध लाभ का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा शब्द व अर्थ की चर्चा करने वाले अभिधान संग्रहों पर। लौकिक क्षेत्र में जब अमरसिंह ने अपने कोश की रचना की तो उसमें समाहृत नाम व लिंगों को वर्गीकृत[2] कर उन्होंने उत्तरवर्ती कोशकारों के सम्मुख एक नवीन शैली का अनावरण किया। वर्गों की यह उपादेयता वैदिक अभिधानों के लियें ही नहीं, वरंच लौकिक कोशों के लिये भी परम लाभप्रद प्रतीत हुई। लौकिक कोशों का क्षेत्र अधिक विस्तृत होने के कारण उनको वर्गानुसार विभाजित कर देना अधिक उपयोगी सिद्ध हुआ।

अमरकोश में प्रयुक्त यह वर्ग-व्यवस्था परवर्ती कोशकारों के लिये पथ-प्रदर्शक बनी जिसका प्रत्यक्ष अनुकरण आलोच्यकालीन चार उपलब्ध कोशों—प्रकाश- नाममाला, नामप्रकाश, कर्णाभरण एवं उमरावकोश में किया गया।

प्रकाशनाममाला—मियाँ नूर कृत इस कोश ग्रंथ में कांड एवं वर्ग-व्यवस्था अमरकोश के अनुकरण पर है। कोशकार ने एक स्थान पर उल्लेख किया है

---

१. "**निघण्टवः** shows that every word in these compilations is a निघण्टु i.e. one that determines the meaning of mantras in which it occurs .... the word **निघण्टु** comes from **नि+गम्** because the Ngs. are Nigamas i.e. the words whose meanings are determined by their classification and which therefore serve as guides in determining the meanings of Vedic sentences......"

—यास्काचार्य प्रणीतं निरुक्तम्, प्रथमो भागः, पृ० २१६-२१७।

२. "सम्पूर्णमुच्यतेवर्गैर्नामलिंगानुशासनम्" —अमरकोश १।१।२।

कि अमरकोश में तीन काण्ड हैं और प्रकाशनाममाला में तीन 'प्रकाश'।[1] इसके आधार पर यही भासित होता है कि इसमें कुल तीन 'प्रकाश' होंगे। परन्तु 'अनेकार्थ' विवरण के अन्त में 'चतुर्थ प्रकाश'[2] एवं एकाक्षर शब्दों के अर्थ देने के अनन्तर 'पंचम प्रकास'[3] का भी उल्लेख मिलता है जिसके फलस्वरूप इस कोश को पाँच प्रकाशों में विभक्त मानना पड़ेगा।

कोशकार के इस विरोधी कथन का एक कारण यह भी सम्भव है कि अमरकोश से प्रथम तीन प्रकाश ही प्रभावित हैं, अंतिम दो नहीं। अतएव अमरकोश के प्रसंग में 'याके तीन प्रकासु' मात्र बताना अधिक अनुचित नहीं।

प्रथम प्रकाश में दस वर्ग हैं—स्वर्ग, व्योम, दिक्, काल, धी, शब्दादि, नाट्य, पाताल, नर्क तथा वारि[4]।

द्वितीय प्रकाश में भी दश वर्ग हैं—भूमि, पुर, शैल, अरण्य, सिंहादि, मनुष्य, ब्रह्म, क्षत्रिय तथा वैश्य।[5]

तृतीय प्रकाश में केवल दो वर्ग हैं—विशेष्यनिघ्न वर्ग एवं संकीर्ण वर्ग। चतुर्थ प्रकाश में अनेकार्थ और पंचम प्रकाश में एकाक्षरों के अनेकार्थ दिये गये हैं।

नामप्रकाश—भिखारीदास कृत इस कोश ग्रंथ में कांड एवं वर्ग विभाजन पूर्णतः अमरकोश के ही आधार पर किया गया है। समस्त कोश तीन कांडों में विभक्त है। प्रथम कांड में स्वर्ग, व्योम, दिक्, काल, बुद्धि, शब्दादि, नाट्य, पाताल,

---

१. **तीन काण्ड हैं अमर के याके तीन प्रकासु।**
कोस उहै माला यहै नूर प्रकट कर जासु॥
—प्र० ना० मा०, पृ० ३७२।

२. **"इति मियाँ नूर विरचिते नाम प्रकासे अनेकार्थ प्रकरणे चतुर्थ वरणाधिकारे चतुर्थ प्रकासः समाप्तः।"** **—वही, पृ० ३९५।**

३. **"इति सकल अभिधान रत्न भूषणभूषित एकाक्षर प्रकरणे मियाँनूर कृत नाम प्रकासे पंचमः प्रकासेः समाप्तः।"** **—वही, पृ० ३९९।**

४. **स्वर्ग व्योम दिक काल धी सब्द नाट्य पाताल।**
नर्क वारि ये नूर भनि प्रथम खंड नां माल॥ **—वही, पृ० २९५।**

५. **पृथ्वी पुर गिर वन तरु मृगादिक नर वर्ग।**
ब्रह्म क्षत्र बिस शूद्र कहि नूर दूसरे सर्ग॥ **—वही, पृ० २९५।**

नरक तथा वारि नामक दस वर्ग हैं।[1] द्वितीय कांड में भूमि, पुर, शैल, वनौषधि, सिंहादि, नृ, ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र शीर्षक के दस वर्ग हैं।[2] तृतीय कांड में केवल तीन वर्ग हैं—विशेष्यनिघ्न, संकीर्न (र्ण) और अनेकार्थ वर्ग।[3] इसी अन्तिम वर्ग के साथ-साथ ग्रंथ भी समाप्त हो जाता है।[4]

कर्णाभरण—हरिचरणदास द्वारा विरचित यह समानार्थी कोश भी तीन कांडों तथा अनेक वर्गों में विभाजित है। प्रथम के लिये हस्तलिखित प्रति में 'स्वरादि कांड' नाम दिया गया है। इसमें दस वर्ग हैं—स्वर्ग, व्योम, दिक्, काल, धी, शब्दादि, नाट्य, पाताल, नर्क तथा वारि। उपलब्ध हस्तलिखित ग्रंथ के पृष्ठ २ से पृष्ठ २१ मूल तक यह काण्ड विवेचित है।

द्वितीय कांड में भी दस वर्ग हैं—भूमि, पुर, शैल, वनौषधि, सिंहादि, मनुष्य, ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। इस कांड को हरिचरणदास ने 'भूम्यादिक कांड' नाम दिया है। हस्तलिखित प्रति के पृष्ठ २१ मूल से लेकर पृष्ठ ४५ मूल तक यह कांड वर्णित है। तृतीय कांड में केवल दो वर्ग हैं—विशेष्यनिघ्न तथा संकीर्ण।

उमरावकोश—सुवंश शुक्ल विरचित इस हस्तलिखित कोश की कांड तथा वर्ग-व्यवस्था भी उपर्युक्त पद्धति पर है। समस्त कोश तीन कांडों में विभक्त है क्योंकि कोशकार के वक्तव्यानुसार—इसमें तीनों लोकों के शब्द संकलित किये गये हैं।[5]

---

१. **स्वर्ग व्योम दिग काल बुद्धि शब्दादि नाट्य लहि।**
   पातालो अरु नरक बारि दस प्रथम कांड कहि॥ —ना० प्र०, पृ० २।
२. **दुतिय भूमि पुर शैल अरु वनौषधी सिंहादि।**
   नृ ब्रह्म क्षत्री वैश्य अरु शूद्र वर्ग दस बादि॥ —वही, पृ० ६८।
३. **सविशेषनिघ्न संकीरनो अनेकार्थ त्रय वर्ग लिय।**
   तजि सासन भाषा योग लखि पूरन नाम प्रकाश किय॥ —वही, पृ० २।
४. **"इति श्री भिखारीदास कृते सोमवंशावतंस श्री १०८ महाराज छत्रधारी सिंहात्मज श्री बाबू हिन्दूपति सम्मते अमर तिलके नाम प्रकाशे तृतीय काण्डे अनेकार्थ वर्ग सम्पूर्णम्।" —वही, पृ० ३५९।**
५. **नाम कह्यौ त्रै लोक्य के करि के बुद्धि नवीनि।**
   या ही ते या ग्रंथ में कांड लसत हैं तीनि॥
   —उ० को०, १।१।३२।

प्रथम कांड में केवल नौ वर्ग हैं—वंश, स्वर्ग, दिक्, काल, धी, ब्राह्मी नाट्य, पाताल और वारि।[1] द्वितीय कांड में दस वर्ग हैं—पृथ्वी, पुर, शैल, वनौषधी, सिंह, मनुष्य, ब्रह्म, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र वर्ग ।[2] तृतीय कांड के 'द्वै से सतत्तरि' छंदों में केवल दो वर्गों के अन्तर्गत नाम-पर्याय आये हैं—विशेष्य-निघ्न वर्ग एवं अनेकार्थ वर्ग।[3] इसी अनेकार्थ वर्ग के साथ-साथ कोश-ग्रंथ भी समाप्त हो जाता है।[4]

तुलनात्मक तालिका—पीछे संकेत किया जा चुका है कि उक्त चारों कोशों की कांड एवं वर्ग-व्यवस्था कुछ अपवादों को छोड़ कर पूर्णतः संस्कृत के अमरकोश के अनुसार है। अधिक स्पष्टता के लिये अगले पृष्ठों में अमरकोश एवं विवेच्य चार कोशों की कांड एवं वर्ग-व्यवस्था को तुलनात्मक रूप से बोधगम्य कराने के लिये तालिका का आश्रय लिया गया है। प्रत्येक वर्ग के श्लोकों की संख्या भी यथास्थान निर्दिष्ट है—

---

१. वंस स्वर्ग दिग काल धी ब्रह्मी नाट्य सुजान ।
सहित पतालौ वारि ए हैं नव वर्ग प्रमान ॥

—उ० को०, १।९।५२ ।

२. पृथ्वी पुर पर्वत करि हेत । और वनौषधि सिंह समेत ।
पुनि नृ ब्रह्म क्षत्रिय को गानि । वैश्य सूद्र दस वर्ग वषानि ॥

—वही, २।१०।७६ ।

३. वर्ग विसेष निघ्न द्वै मित्र । सहित अनेकाअर्थ विचित्र ।
द्वै से छंद सतत्तरि अंतर । कांड तीसरे में है बुधिवर ॥

—उ० को०, ३।२।१०३ ।

४. "इति श्री विश्वनाथ पुराषंडयमंडल धराधीस चौधरी शिवसिंह वंसावतंस उमरावसिंह कारिते सुक्ल सुवंश विराचिते उमराउ कोशे तृतीय काण्डे अनेकार्थ वर्ग सम्पूर्णः ।"

—वही, अन्तिम पुष्पिका ।

प्रथम काण्ड

अमरकोश (संस्कृत)		प्रकाशनाममाला		नामप्रकाश		कर्णाभरण		उमरावकोश	
वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या
+		+		+		+		(१) वंश वर्ग	३२
१ स्वर्ग वर्ग	७१	स्वर्ग वर्ग	१००	स्वर्ग वर्ग	५५	स्वर्ग वर्ग	३९	(२) स्वर्ग वर्ग	६६
२ व्योम वर्ग	१½	व्योम वर्ग	२	व्योम वर्ग	१	व्योम वर्ग	१	+	
३ दिग्वर्ग	३५	दिग वर्ग	३९	दिग वर्ग	४१	दिग वर्ग	२२	(३) दिग वर्ग	४२
४ काल वर्ग	३१	काल वर्ग	३९	काल वर्ग	३९	काल वर्ग	१७	(४) काल वर्ग	३२
५ धी वर्ग	१७	धी वर्ग	५४	बुद्धि वर्ग	३२	धी वर्ग	५	(५) धी वर्ग	२१
६ शब्दादि वर्ग	२५½	शब्दादि वर्ग	४	शब्दादि वर्ग	३९	शब्दादि वर्ग	१०	(६) ब्राह्मोवर्ग	४४
७ नाट्य वर्ग	३८	नाट्य वर्ग	४८	नाट्य वर्ग	६७	नाट्य वर्ग	१८	(७) नाट्य वर्ग	५४
८ पातालभोगि-वर्ग	११	पाताल वर्ग	१४	पाताल वर्ग	१५	पाताल वर्ग	७	(८) पाताल वर्ग	१६
९ नरक वर्ग	३½	नर्क वर्ग	६	नरक वर्ग	१७	नर्क वर्ग	१	+	
१० वारि वर्ग	४३	वारि वर्ग	६४	वारि वर्ग	६५	वारि वर्ग	१२	(९) वारि वर्ग	५३

द्वितीय काण्ड

अमरकोश		प्रकाशनाममाला		नामप्रकाश		कर्णाभरण		उमरावकोश	
वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या
१ भूमि वर्ग	१८	भूमि वर्ग	२७	भूमि वर्ग	२५	भूमि वर्ग	६	पृथ्वी वर्ग	२८
२ पुर वर्ग	२०	पुर वर्ग	२०	पुर वर्ग	२९	पुर वर्ग	९	पुर वर्ग	३२
३ शैल वर्ग	८	शैल वर्ग	८	शैल वर्ग	१२१	शैल वर्ग	५	सैल वर्ग	१४
४ वनौषधि-वर्ग	१६९½	अरण्य वर्ग	४६	वनौषधि वर्ग	२६३	वनौषधि वर्ग	१३	वनौषधि वर्ग	२८१
५ सिंहादि वर्ग	४३	सिंहादि वर्ग	४७	सिंहादि वर्ग	५४	सिंहादि वर्ग	१४	सिंहादि वर्ग	६४
६ मनुष्य वर्ग	१३९½	मनुष्य वर्ग	१४२	नृ वर्ग	२१३	मनुष्य वर्ग	२९	मनुष्य वर्ग	२१८
७ ब्रह्म वर्ग	५७½	ब्रह्म वर्ग	६४	ब्रह्म वर्ग	८६	ब्रह्म वर्ग	७	ब्रह्म वर्ग	९२
८ क्षत्रिय वर्ग	११९½	क्षत्रिय वर्ग	१२९	क्षत्रिय वर्ग	१७७	क्षत्रिय वर्ग	३४	क्षत्रिय वर्ग	१९८
९ वैश्य वर्ग	१११	वैश्य वर्ग	११२	वैश्य वर्ग	१५७	वैश्य वर्ग	१९	वैश्य वर्ग	२१२
१० शूद्र वर्ग	४६½	शूद्र वर्ग	६३	शूद्र वर्ग	६१	शूद्र वर्ग	१९	शूद्र वर्ग	७६

तृतीय काण्ड

अमरकोश		प्रकाशनाममाला		नामप्रकाश		कर्णाभरण		उमरावकोश	
वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या	वर्ग का नाम	छन्द संख्या
१ विशेष्य-निघ्न वर्ग	११२½	विशेष्यनिघ्न वर्गः }	१८३	विशेष्यनिघ्न वर्गः	१८९	विशेष्यनिघ्न वर्ग	४	विशेष्यनिघ्न वर्ग	१७४
२ संकीर्ण वर्ग	४२½	संकीर्ण वर्ग }		संकीर्न वर्ग	६९	संकीर्न वर्ग	७	+	
३ नानार्थ वर्ग	२५७	+		अनेकार्थ वर्ग	६२२	+		अनेकार्थ वर्ग	१०३
४ अव्यय वर्ग	२३	+		+		+		+	
५ लिंगादि-संग्रह वर्ग	४६	+		+		+		+	

चतुर्थ प्रकाश

यह केवल प्रकाशनाममाला में है, जिसके अन्तर्गत अनेकार्थ प्रकरण का विवेचन है।

पंचम प्रकाश

यह भी केवल उक्त कोश में है। इसमें केवल एकाक्षरों के विभिन्न अर्थ संकलित हैं।

पर्यायों की परिगणना

वर्ग-विभाजन पद्धति पर आधारित उक्त चारों कोशों में से प्रकाशनाममाला के अतिरिक्त शेष तीनों में एक प्रमुख विशेषता यह है कि शब्दों के पर्याय गिनाकर अन्त में ऐसे पर्यायों की कुल संख्या भी निर्दिष्ट कर दी गई है। अमरकोश में संकलित कौन शब्द किसका पर्याय है इसके सम्बन्ध में भानुजी दीक्षित, क्षीरस्वामी, महेश्वर एवं रायमुकुट ने स्थान-स्थान पर मतभेद प्रकट किये हैं। इसी अस्पष्टता, संदिग्धता व भ्रान्ति के निवारणार्थ ही इन कोशों ने पर्यायों की कुल संख्या देने की प्रणाली का उपयोग किया। शब्द-विशेष अकेला है या इसके दो, तीन या पच्चीस पर्याय हैं, इसका निश्चित ज्ञान कराने के लिये ही गणनात्मक शैली इन कोशों में व्यवहृत हुई। भिखारीदास ने नामप्रकाश के प्रारम्भ में ही इस शैली के सम्बन्ध में अपना वक्तव्य स्पष्ट कर दिया था :

एकै शब्द कि दोय त्रय, यह भ्रम उपजत देखि।
नामन की संख्या धरी, लीजै सुमति सरेषि ॥[1]

इसी सिद्धान्त के अनुकरण पर इन कोशों में गिनाये गये पर्यायों की कुल संख्या का निर्देशन सामान्यतः छन्द के अन्त में कर दिया गया है। उदाहरणार्थ निम्न 'हरिगीत' में 'यमराज' के नामों की कुल संख्या 'चौदह' अन्त में स्पष्ट कर दी गई है :

॥ जम नाम ॥ हरिगीत ॥

जम समावर्ती श्राद्धदेव कृतान्त वैवस्वत भनो।
कहि काल अन्तक समन औ जमराज चितु दै कै गनो ॥
पुनि पित्रिपति औ धर्मराज परेतराज बषानिये।
ए नाम जमुनाभ्रातृ चौदह दंडधर जुत जानिये ॥[2]

कहीं यदि शब्द विशेष का एक ही पर्याय है तो ऐसा भी स्पष्ट उल्लेख नामप्रकाश में किया गया है। यथा:

ज्योत्सिनी नाम अकेलुई, उर आनि रैनि उज्यारियै[3]**।**

यद्यपि नाम-गणना की इस शैली ने पर्यायों के विषय में एक आंशिक व्यवस्था स्थापित कर दी, जिससे प्रयोग-कर्ताओं को निश्चय हो जाय कि प्रस्तुत छन्द में अमुक शब्द के इतने समानार्थी या पर्याय शब्द हैं, फिर भी यह व्यवस्था

---

१. ना० प्र०, पृ० २।
२. उ० को० १।२। ५२।
३. ना० प्र०, पृ० २४।

भी पूर्णतः दोषरहित नहीं है। उदाहरण के लिये सुवंश शुक्ल ने उपर्युक्त छन्द में यह तो स्पष्ट कर दिया कि 'यम' के चौदह पर्याय इस पद में गिनाये गये हैं, परन्तु ये चौदह पर्याय कौन-कौन हैं, इसका निश्चय कैसे होगा? उक्त छन्द में कुल मिलाकर उन्तीस शब्द आये हैं, जिनमें से कौन चौदह शब्द यम के पर्याय-वाची हैं, इसका निश्चय सामान्य पाठक नहीं कर सकता। वह तो भनो, औ चितु, दै, कैं, गनो, बषानिये, ए, नाम, जुत, जानिये आदि को भी यम के पर्याय मान सकता है। अतएव केवलमात्र नामों की संख्या का निर्देश करना पर्याप्त नहीं। कभी-कभी यह भ्रान्तिमूलक व संदेहास्पद भी हो सकता है।

हरिचरणदास ने प्रस्तुत पद्धति जनित दोष का अनुभव किया। अतएव उन्होंने अपने कोशग्रन्थ कर्णाभरण में नामों की गणना की एक अन्य पद्धति अपनाई। उक्त कोश में पर्यायों की गणना क्रमिक रूप से की गई है। प्रत्येक समानार्थी शब्द के आगे क्रमानुसार संख्यायें अंकित हैं। जो शब्द पर्याय नहीं हैं, या केवल छन्द के आग्रहवश लाये गये हैं, उनके आगे अंकांकन नहीं किया गया। इससे अध्येता सुविधापूर्वक पर्यायों का ज्ञान कर सकता है। एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

।। श्री नारायण नाम ।।

कृष्ण १ विष्णु २ वैकुण्ठ ३ भजौ केसव ४ नारायन ५
हृषीकेश ६ दैत्यादि ७ स्वभू ८ दामोदर ९ हृगन
गरुड़ध्वज १० गोविन्द ११ पुंडरीकाक्ष १२ सु माधव १३
पीताम्बर १४ अच्युत १५ उपेन्द्र १६ सांर्गी १७ सुनि सत्य १८ व
पुनि चक्रपाणि १९ इन्द्रावरज २० वासुदेव २१ रु सुनि हरि २३
पुरुषोत्तम २४ श्रीपति २५ रु सौरि २६ जनार्दन २७ हिये धरु

—कर्णा० पृ० ३ मू०।

इस छन्द की टीका हरिचरणदास ने इस प्रकार की है :

"।। कृष्ण इति ।। कृष्ण आदि जनार्दन अंत सताईस नाम नारायण के या छप्पै में कहे सत्य नाम वामनपुरान को अच्युताष्टक में हे (है)। 'हरि सत्यो जनार्दनः'। पंकजाक्ष १ कमलनयन २ रु माधव ३ रमा ४ सांर्गधन्वा ५ विश्वक्सेन ६ भी जानिये। संषपानि ७ गदापानि ८ चक्रकर ९ वसुदेवात्मज १० इत्यादि ।।"

—कर्णा० पृ० ३ मू०।

उर्युक्त छन्द व टीका में जो शब्द पर्याय नहीं हैं, उनके आगे क्रमसंख्या भी निर्दिष्ट न होंगी। अंकों का क्रम उन्हीं शब्दों के साथ है जो यथार्थ में कोशकार द्वारा पर्याय माने गये हैं। इस शैली के द्वारा पाठक अत्यन्त आसानी से समझ

सकता है कि उपर्युक्त पद में आये हुये भजौ, हगन, सुनि, पुनि, हिए, धरु, आदि शब्द मूल विवेच्य शब्द 'नारायण' के पर्याय नहीं हैं, क्योंकि इनके आगे अन्य शब्दों के समान कोई क्रम चिह्न नहीं है। ये केवल मात्र पद पूर्ति के आग्रहवश या अन्यत्र आंशिक स्पष्टता के लिये लाये गये हैं।

हरिचरणदास ने कहीं-कहीं गणनावाचक अंक पर्यायों को क्रमांकित करने के पूर्व भी अंकित कर दिया है जिसके पश्चात् नामपर्यायों के अंक भी पूर्ववत् आये हैं। यथा[1]:

।। अथ तरकस के पाँच नाम ।।

तुनीर १ तून २ सु निषंग ३ कहि उपासंग ४ जानो इषुधि ५ ।

ऐसे स्थल नामप्रकाश और उमरावकोश में नहीं हैं।

पद्य और गद्य का मिश्रण

वर्णानुक्रम पर आधारित उक्त चारों कोशों में से कर्णाभरण को छोड़कर शेष तीन पूर्णतः पद्य में हैं। परन्तु कर्णाभरण कोश का मूल अंश तो पद्य में है और टीका अंश अधिकांशतः गद्य में लिखा गया है। इस गद्य अंश में नाम पर्यायों का परिगणन कम, और शब्द सम्बन्धी सामान्य उक्तियाँ अधिक संख्या में आई हैं। इन उक्तियों द्वारा शब्दों के उपयुक्त भाव को बोधगम्य कराने की चेष्टा की गई है अतएव इनका महत्त्व बहुत है। एक-दो उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

"नर्तकी इति। सो अंक्य मृदंग। जाकी हरीतकी की सूरति होय, एक ओर मोटी होय बहुत होय एक ओर पतली जाकी जब की सूरति होय सो आलिंग्य (।) बीच मोटी गाय की पोंछ की आकृति होय चढ़ाव उतार सो ऊर्द्धक।

"—बीना इति। बडो डमरू सोमड कहावै झर्झर झालरि सारंगी कै सचक्र सों बाजति है डिंडिमडिमडिमीपन वसों गायन पट हहै ढोलक जानिये।[2]"

"—नगरी इति। जहाँ बजार नहीं रहै तहाँ वस्तु लै कै बेचै पैठ लगै बिना बजार ताहि ठौर को गैल यह छीर स्वामी में है कोई कहत हैं षद्या आदि चारि नाम हाट ही को हैं—।"[3]

टीका अंश में अमरकोश के टीकाकारों का उल्लेख

कर्णाभरण कोश की एक अन्य विशेषता यह भी है कि इसके टीका भाग में विवेचन करते समय क्षीरस्वामी, भानु जी दीक्षित, रायमुकुट या मुकुट, महेश्वर

१. कर्णा०, पृ० ३९ मू०।
२. वही, पृ० १५ पी०।
३. वही, पृ० २२ मू०।

आदि प्रशिद्ध टीकाकारों के मतों का भी उल्लेख किया गया है। सब दृष्टिकोणों का पर्याप्त रूप से समाहार एक श्लाघनीय प्रयास है।

तुलनात्मक विवेचन

प्रकाशनामनाला, नामप्रकाश, उमरावकोश व कर्णाभरण इन चारों कोशों में वर्गात्मक विभाजन अमरकोश के अनुकरण पर किया गया है। चारों में तीन काण्ड हैं, जिनमें से नूर मियाँ ने प्रकाशनाममाला में 'काण्ड' नाम न देकर 'प्रकाश' नाम देना अधिक उपयुक्त समझा।

(१) प्रथम काण्ड के 'व्योम वर्ग' को नाम प्रकाश व कर्णाभरण में अलग वर्ग माना परन्तु उमरावकोश में उसे स्वर्ग वर्ग के अन्तर्गत ही सम्मिलित किया गया है। वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाय तो 'द्यौ' की भी अन्य देवताओं के साथ गणना अधिक समीचीन व प्रासंगिक है।

(२) द्वितीय काण्ड में समान वर्ग व्यवस्था है। अन्तर केवल शीर्षक देने में है। यथा उमरावकोश में 'पृथ्वी वर्ग' मिलता है तो अन्यों में 'भूमि वर्ग'; इसी प्रकार प्रकाशनाममाला में 'अरण्य वर्ग' मिलता है तो अन्य तीनों में 'वनौषधि वर्ग'; नामप्रकाश के रचयिता को 'नृ वर्ग' अधिक उचित जँचा तो अन्यों को 'मनुष्य वर्ग'।

(३) तृतीय काण्ड में 'विशेष्यनिघ्न वर्ग' चारों कोशों में है। 'संकीर्ण वर्ग' केवल प्रकाशनाममाला, नाम प्रकाश व कर्णाभरण में है, एवं अनेकार्थ अंश केवल नामप्रकाश, उमरावकोश तथा प्रकाशनाममाला इन तीनों में विवेचित है। कर्णाभरण के रचयिता ने अनेकार्थ प्रकरण किसी 'सुकवि प्रवीन' के निमित्त[1] छोड़ दिया। एकाक्षर एवं अव्यय निरूपण केवल प्रकाशनाममाला में है।

(४) अनेकार्थ निरूपण की व्यवस्था भी तीनों कोशों में भिन्न-भिन्न है। भिखारीदास ने अपने नामप्रकाश में अमरकोश को आधार मान कर अन्त्य वर्णानुसारी पद्धति का मार्गानुसरण किया, परन्तु उमरावकोश व प्रकाशनाममाला में ऐसी कोई क्रमिक व निश्चित व्यवस्था नहीं अपनाई गई। दोनों में अनेकार्थ संकलन किसी सुस्पष्ट योजना पर आधारित नहीं है।

---

१. श्रुतिभूषन नानार्थ (?) की, पहले रचना कीन।
अनेकार्थ न लिष्यो इहाँ, लिषिहै सुकवि प्रवीन ॥
—कर्णा०, पृ० ५३ पी०–५४ मू०।

(५) वर्ग ज्ञान की शाखाओं के प्रतीक हैं, अतएव प्रत्येक वर्ग ज्ञान के एक क्षेत्र-विशेष पर प्रकाश डालता है। जितने अधिक वर्गों के नाम-शब्दों का परिचय एक कोश में होगा उसमें उतने ही अधिक ज्ञान का समाहार भी निश्चित है।

वर्ग-विभाजन के दोष

समान भावों के आधार पर शब्दों को वर्गों में विभाजित करने की पद्धति पूर्णतः वैज्ञानिक होते हुये भी नितान्त दोषरहित नहीं है।[१] वास्तव में शब्दों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं आन्तरिक प्रभेद इतने जटिल तथा सूक्ष्म हैं कि उनको पूर्णतः वर्गबद्ध नहीं किया जा सकता और न ही उनके नियोजन की सुसम्बद्ध एवं तार्किक पृष्ठभूमि निर्मित हो सकती है।[२]

संस्कृत कोशों में अमरकोश की वर्ग-विभाजन-पद्धति सर्वाधिक प्रचलित होते हुये भी अत्यन्त अपूर्ण वा भ्रामक[३] है। प्रस्तुत कोश की शब्द-नियोजना भी पर्याप्त दोषपूर्ण है, जिसमें बिना अनुसूची के कोई भी शब्द नहीं ढूंढ़ा जा सकता।[४]

ठीक यही उक्तियाँ अमरकोश के अनुकरण पर निर्मित चारों हिन्दी कोशों के सम्बन्ध में भी चरितार्थ होती हैं। चिता, मसानभूमि, मुरदा, प्रान और आत्मा

---

१. In Rogets Theasaurus the parallelism of opposites and some of the minor sub-divisions are so comprehensive as to have no obvious coherence. What may one not find under motion (e.g., eat, food) or Volition (e.g. clean). The fact is of course, that relations are too complex to admit any truly scientific and complete classification.

——डार्लिंग बक : ए डिक्शनरी ऑव सेलेक्टेड सिनानिम्जइन दि प्रिन्सिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजेज, भूमिका पृ० १३।

२. "On account of their utter complexity of the world around us and of the things and thoughts which language has to express, it is an extremely difficult thing to make a satisfactory arrangement of the whole vocabulary on a logical basis......"

—जेस्पर्सन : दि फ़िलासफ़ी ऑव ग्रामर, पृ० ३४।

३. **डॉ० पी० एस० राजेट : इन्टरनेशनल थेसारस, भूमिका, पृ० १५।**

४. The arrangement of the work is faulty and one finds it extremely difficult to trace a particular word in the Kosh without the help of an index.

——एम० एम० पाटकर : ए हिस्ट्री ऑव् संस्कृत लेक्सिकॉग्रॉफी, पृ० २४।

केवल 'क्षत्रियों' से ही सम्बद्ध नहीं, सामान्य 'मनुष्य', 'पशु', 'ब्राह्मण', 'वैश्य' व 'शूद्र' सभी पर समान रूप से लागू होते हैं। परन्तु इन शब्दों को बाद वाले वर्गों के अन्तर्गत न रखकर क्षत्रिय वर्ग में ही रखा गया है। 'क्षुधा' एवं 'पियास' केवल 'वैश्यों' को ही नहीं लगती, 'ब्राह्मण', 'क्षत्रिय' व 'शूद्र', सभी इससे पीड़ित होते हैं, परन्तु फिर भी ये शब्द वैश्य वर्ग के अन्तर्गत लिये गये हैं। वंशलोचन, ऊखजड़ और त्रिफला को सामान्य पाठक 'वनौषधि वर्ग' के अन्तर्गत खोजने का प्रयास करेगा परन्तु कोशकार की कृपा से वे भी वैश्य वर्ग के अन्तर्गत रखे गये हैं। फिर उपमा, उपमान व समान, शब्दों के पर्यायों का 'शूद्रों' से क्या सम्बन्ध है और ब्राह्मण, क्षत्रिय या शब्दादि ब्राह्मी, व नाट्य वर्ग से क्या नहीं, इसका निश्चित उत्तर कोशकार के पास भी नहीं। इस प्रकार का असंगत व क्रमहीन वर्ग-विभाजन एवं शब्द-संकलन भ्रामक एवं सदोष है।

निष्कर्ष–

इन सब न्यूनताओं के होते हुये भी वर्ग-विभाजन पद्धति का पूर्णतः तिरस्कार करना, अर्थात्मक वर्गीकरण प्रणाली जनित लाभों को तिलांजलि देना होगा। अतएव इस पद्धति के ऐतिहासिक व साहित्यिक मूल्य के अतिरिक्त अर्थ-सम्बन्धी महत्त्व भी असंदिग्ध है। इतना आवश्यक है कि ऐसे कोशों के अन्त में शब्दों की अकारादि-क्रम में अनुक्रमणिका देनी पड़ेगी जिसके बिना शब्द की स्थिति ज्ञात करना नितांत असम्भव है।[१]

वर्ग रहित पर्याय कोश

नाम पर्यायों को किसी वर्ग के अन्तर्गत संकलित करना पूर्णतः दोषरहित पद्धति नहीं है। संदिग्धता व अक्रमता की अवस्थिति उनमें पूर्णतः विद्यमान है। सम्भवतः इसी के फलस्वरूप कुछ पर्याय कोशों में एक भाव या नाम से मिलते-जुलते अन्य शब्दों को छन्दोबद्ध मात्र किया गया है। कोशकारों ने इनको किसी वर्ग या काण्ड के अन्तर्गत रखना उचित नहीं समझा। डिंगलनाममाला (हरिराज), अनभै प्रबोध (गरीबदास), नागराज डिंगलकोश, हमीरनाममाला (हमीरदान रतनू), विश्वनाममाला (बालकराम), आतमबोधनाममाला (चेतन विजय), धनजीनाममाला (सागर), अवधाननाममाला (उदैराम), नाममाला 'क' व नाममाला 'ग' में पर्याय-संकलन

---

१. डार्लिंग बक : ए डिक्शनरी ऑव सेलेक्टड सिनानिम्ज इन दि प्रिन्सिपल इण्डो-यूरोपियन लैंग्वेजेज, भूमिका, पृ० १३।

बिना किसी वर्ग या काण्ड के किया गया है। कोशकारों ने स्वेच्छा से शब्दों का चयन कर उनके समान भावों या नामों को गिना दिया है।

उक्त कोशों में संकलित मुख्य या आधार शब्दों में यदि कोई तारतम्य ढूँढ़ने का प्रयास किया जाय तो कहीं-कहीं वह भी उपलब्ध हो सकता है। उदाहरण के लिये हमीरदानरतनू कृत 'हमीरनाममाला' में पहले देवताओं के नामों के पर्याय हैं जिनको सामान्य रूप से 'स्वर्ग वर्ग' कहा जा सकता है। समुद्र के अनन्तर नदी, तरंग, गंगा, यमुना, फिर यमुना में पैदा होने वाले 'सरप' के पर्याय हैं, जिनको स्थूल रूप से 'वारि वर्ग' का नाम दिया जा सकता है। इसी प्रकार भूमि, धूल और वाट के पर्यायों को 'भूमि वर्ग' का नाम देना असंगत नहीं। इसके पश्चात् वर्णित वन और वन से उत्पन्न होने वाले वृक्ष, फूल और फलों को 'अरण्यवर्ग' कहा जा सकता है। हमीर-नाममाला के पशु, हिरण, सूअर, सिंघ व हाथी आदि को वर्गात्मक कोशों में 'सिंहादि वर्ग' नाम दिया गया है। इसी प्रकार आगे खनिज पदार्थ, शासकीय शब्द, पारिवा-रिक व शृंगारिक शब्दावली सामान्यतः क्रमशः दी गयी है। यह प्रयास अधिकांश कोशों में किया गया है। बिना वर्ग का नाम दिये एक जाति-विशेष के शब्द स्थान-स्थान पर एक के पश्चात् दूसरे आये हैं। परन्तु विशिष्ट क्रम न अपनाने के कारण अव्यवस्था प्रायः प्रत्येक कोश में है। देवताओं के नाम सर्वत्र बिखर गये हैं। पशुओं के पर्याय भी कुछ प्रारंभ में हैं व कुछ अन्त में। यह दृढ़ता से कहा जा सकता है कि एक बार कोश का आद्यन्त पारायण करने के उपरान्त भी यह निश्चय करना कठिन है कि शब्द विशेष कोश के पूर्वार्द्ध में आया है या उत्तरार्द्ध में। उदैराम विरचित अवधाननाममाला में 'घोड़ा' और 'शत्रु' के पर्यायों के बीच में द्रौपदी के समानार्थी, नूपुर तथा आरसी के पर्यायों के मध्य में पान-बीड़ा, संध्या एवं 'गिनका' (गणिका) के बीच पपीहा के पर्याय गिनाये गये हैं, जो अक्रमता के द्योतक व भ्रामकता के प्रतीक हैं।

वर्गात्मक व वर्गहीन कोशों की शब्द-योजना का तुलनात्मक विवेचन

(१) वर्गात्मक कोशों में शब्द किसी विशिष्ट काण्ड एवं वर्ग, यथा वारि वर्ग, शूद्र वर्ग शीर्षक देकर संकलित किये गये हैं, परन्तु वर्गहीन कोशों में ऐसे शीर्षक नहीं हैं।

(२) दोनों प्रकार के कोशों के प्रारम्भ में प्रायः देवताओं के नाम गिनाये गये हैं।

(३) पर्याय देने से पूर्व दोनों में पर्याय दिये जाने वाले शब्द का शीर्षक अंकित है।

(४) दोनों प्रकार के कोश छन्द में रचे गये हैं, अतएव भरती के शब्द दोनों में अत्यधिक मात्रा में आये हैं।

(५) शब्द-विशेष के पर्यायों की गणना तीन वर्गात्मक कोशों में हुई है। परन्तु वर्ग-रहित कोशों में ऐसी किसी व्यवस्था के दर्शन नहीं होते यद्यपि नागराज डिंगल-कोश एवं दो-चार स्थल-विशेषों में नन्ददास कृत नाममाला में भी छन्द के अन्त में कुल नामों का परिगणन कर दिया गया है, परन्तु वे स्थल अत्यल्प हैं। उक्त तीनों वर्गात्मक कोशों के समान नियमित अंकन नहीं है।

(५) वर्ग-विभाजन-पद्धति पर शब्द-संकलन करने के उपरान्त भी दोनों प्रकार के कोशों के अन्त में शब्दों की अकारादिक्रम से अनुक्रमणिका देना परम आवश्यक है, जिसके बिना शब्दों के पर्याय यथास्थान ढूंढ़ना नितान्त असम्भव है।

मानामलाओं में शब्द-संकलन प्रणाली

नन्ददासकृत 'नाममाला', बद्रीदास द्वारा रचित 'मानमंजरी' व नाममाला "ख" में शब्द-संकलन एक विशष्टि पद्धति पर किया गया है। जैसा कि पीछे कहा जा चुका है उक्त तीनों कोशों में गौण रूप से दोहे के द्वितीय चरण में राधिका के मान का प्रसंग भी नियोजित है। मानकथा का आधार अत्यन्त संक्षिप्त होते हुये भी शब्दों के पर्याय इस प्रकार गिनाये गये हैं कि कथा अप्रासंगिक न प्रतीत हो।

कोशों के प्रारम्भ में 'सखी' व 'शीघ्र' के पर्याय प्रथम चरण में इसलिये दिये गये हैं कि द्वितीय चरण में वृषभानु की 'कुंवरि' राधा की 'सखी' का प्रसंग है[१], जो नंदलाल की आतुरता अपनी आँखों न देख सकी, अतएव 'शीघ्रता' से राधिका तक पहुँचने का उपक्रम रचती है।[२] सखी 'भूप वृषभानु' के धाम तक पहुँची इसलिये 'धाम' के पर्याय भी दो दोहों में दे दिये गये हैं।[३] परन्तु सखी को राधा के पास जाते हुये कोई देख न ले इसलिये उसने तुरंत अपनी आँखों में लोपांजन मल दिया, अतएव इसी माध्यम से 'अंजन के नाम' दे दिये गये हैं।[४] कुँवरि तक पहुँचते ही उसने

---

१. बयसा सौरिन्ध्री, सखी, हितू सहचरी आहि।
अली कुंवरि वृषभान की, चली मनावन ताहि।। —ना०मा०, नन्द० पंक्ति ९-१०।

२. आसु झटित, द्रुत तूर्न, लघु छिप्र सत्वर उत्ताल।
तुरत चली चातुर अली, आतुर दिखि नंदलाल।। —वही, पंक्ति १५-१६।

३. गेह सदन संकेत सदम संथान आलै निलै।
तहाँ भवन सुख देत, पहुँची सखी ब्रिषभान घर।। —मा०मं०, बद्री०, छन्द ८।

४. पाटल कजला प्राहि नागभखी जग दीपसुत।
को नहीं देखे ताहि चली लुकंजन नैन दे।। —वही, छन्द ३१।

एक लम्बा सलाम दिया और इसी माध्यम से दोहे के प्रथम चरण में 'नमस्कार नाम' भी दे दिये हैं ।[1]

इसके अनन्तर शय्या, तकिया, केश, ललाट, नेत्र, अधर, दशन, ठोढ़ी, मुख, ग्रीवा, हाथ, उरोज आदि के तदर्थी शब्द तीनों कोशों में इसलिये पर्यायों में बद्ध हैं कि मानवती राधा के इन अंगों का वर्णन करना मानमालाकारों को अभिप्रेत था ।

सखी द्वारा नायक की प्रशंसा व महत्त्व को बताने के लिये धर्मराज, कुबेर, वरुण, दुर्गा, गणेश आदि के पर्याय गिनाये गये हैं। ये सब देव मानवती नायिका के पिय के चरणों पर नित्य प्रातः उठकर सर्वप्रथम अपना सिर रगड़ते हैं ।[2]

दूती के अनुनय-विनय के उपरान्त नायिका ने कृष्ण के पास अर्द्धरात्रि में जाना उचित न समझा इसीलिये पूर्वार्द्ध में 'अर्द्धरात्रि नाम' गिनाये गये हैं। अन्त में दोनों का मिलन हुआ और इसी मिलन के सहारे 'युगल'[3] के पर्याय भी संकलित हैं ।

वर्गात्मक कोश एवं मानमाला कोशों की संकलन-प्रणाली की तुलना

(१) पर्याय-संकलन दोनों प्रकार के कोशों का लक्ष्य था।

(२) छंद का माध्यम दोनों ने लिया है अतएव भरती के शब्द दोनों में हैं ।

(३) किस शब्द के पर्याय कहाँ उपलब्ध होंगे इसका ज्ञान स्थूल रूप से दोनों में नहीं होता। वर्गात्मक शैली पर आधारित कोशों में शब्द का स्थान अस्पष्ट रूप से अनुमित किया जा सकता है। यदि 'स्त्री' के पर्याय अपेक्षित हैं तो वर्गात्मक कोशों में हमें देखना पड़ेगा कि यह शब्द न स्वर्ग से सम्बद्ध है न नर्क से, न वारि से, न वनौषाधि से, न पशु से सम्बन्ध रखता है न पर्वतों से। अतएव इन वर्गों में कहीं भी यह शब्द उपलब्ध न होगा। यह शब्द मनुष्य जाति से सम्बन्ध रखता है। अतएव मनुष्य वर्ग में ही इसकी स्थिति होनी चाहिये ।

---

१. प्रनति जु बंदन नाम अभिवादन करि नमसक्रित ।
मुसकी चली वर भांभ कुंवरी तहाँ वृखभान की ॥—मा० मं० बद्री०, छन्द ३८।

२. नरवाहन, किन्नर अधिप, द्रव्याधीस, कुबेर ।
सो तुअ पिय पद परस कहुँ, पावत नांहिन बेर ॥ —ना०मा० "ख", छं० ३०।

३. द्वै जुगदंड जुगल बीय मिथुन अरु विवि उभै ।
नित ही सोर जुगल समरन बद्रीदास कै ॥ —मा०मं०, छं० २१३ ।

परन्तु नाममाला कोशों में यह आधार उपयोगी नहीं सिद्ध होगा। यहाँ हमें ज्ञात है कि सखी नायिका के पास जाती है और पहुँचकर नायिका के रूप गुण की प्रशंसा करती है। तुलना के लिये अन्य स्त्रियों का भी प्रसंग दिया गया है अतएव वहीं इसके पर्याय अंकित मिलेंगे।

यहाँ इतना निर्देश करना आवश्यक है कि मान प्रसंग को निकाल देने के उपरान्त मानमाला कोशों एवं वर्गहीन-पर्याय कोशों की शब्द-संकलन-पद्धति में अधिक अंतर नहीं है। अतः समग्र रूप से जो वर्गरहित पर्याय कोशों के सम्बन्ध में कहा गया है, वही मानमाला कोशों पर भी चरितार्थ होता है।

अनेकार्थी कोशों में शब्द-नियोजन

आलोच्य अनेकार्थी कोशों की शब्द संकलन-पद्धति को मुख्य रूप से तीन भागों में विभाजित किया जा सकता है:

भिखारीदासकृत नामप्रकाश के तृतीय काण्डान्तर्गत अनेकार्थ वर्ग अन्त्यवर्णानुसारी पद्धति पर नियोजित है। उक्त कोश की शैली पर आगे विस्तार से विचार किया गया है।

विनयसागरकृत अनेकार्थनाममाला व चन्दनराम द्वारा रचित अनेकार्थ में शब्द-संकलन एक विशिष्ट शैली पर आधारित है। चन्दनरामकृत अनेकार्थ के प्रथम भाग में ऐसे शब्द संकलित हैं जिसके अर्थ सम्पूर्ण दोहे में कहे गये हैं। उसके अनन्तर ऐसे शब्द हैं जिनके अर्थ दोहे के अर्ध भाग में कहे गये हैं, और अन्त में ऐसे शब्द हैं, जिनके अर्थ दोहे के चतुर्थांश में व्यक्त हैं:

सकल प्रथम पुनि अर्द्धमधि, चतुर्थांश अवसान।
एक शब्द के अर्थ बहु, कहो जु एहि विधान ॥[१]

इसी योजना के अन्तर्गत समस्त कोश तीन अधिकारों में विभक्त हैं। दोनों कोशों के प्रथम अधिकार में संकलित शब्दों के अनेकार्थ पूरे दोहों में व्यक्त किये गये हैं, यथा:

॥ अथ शुक्र शब्दार्थ दोहा ॥

शुक्र तेज भार्गव विसद, शुक्र जेष्ट को मास।
शुक्र वीर्य दृग रोग कहि तारक शुक्र हुतास ॥[२]

---

१. अने० चन्द०, पृ० १।

२. वही, पृ० ९।

प्रथम 'परिच्छेद' के उपरान्त—'अथ मध्यम दोहा विकारार्थ : कथ्यते'—दूसरा परिच्छेद प्रारम्भ होता है जिसके अन्तर्गत एक दोहे में दो शब्दों के अर्थ दिये गये हैं।

॥ अथ कुसुम, धव शब्दार्थ दोहा ॥

कुसुम कुसुम तिय रज कुसुम, कुसुम वृछ इक जान।
धव पति वृछ विशेष धव, धव कहि श्रेष्ट पुमान ॥[1]

प्रस्तुत परिच्छेद में २८२ शब्दों के अर्थ देने के पश्चात् अन्तिम परिच्छेद के अंतर्गत चार शब्दों के अर्थ एक ही दोहे में दिये गये हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा:

॥ अथ पंच, नार, जार, भीम शब्दार्थ दोहा ॥

पंच पंच संख्या वृहत, नार मनुज जल नार।
जार जार उपपति अरुण, भीम भीम भयकार ॥[2]

इस अन्तिम परिच्छेद में ८० शब्दों के अर्थ देने के उपरान्त यह कथन है:

"इति श्री मत्कवि राजाधिराज साहबराम सिंहस्यात्मजो बन्दीजनोऽम्बा ग्रामवासी श्रीकवि चन्दनराम बिरचितायां नामार्णवे अनेकार्थ ध्वनि मञ्जयां चतुर्थांस दोहाधिकारः समाप्तः।"[3]

लगभग यही शैली विनयसागरकृत 'अनेकार्थनाममाला' में व्यवहृत हुई है। चन्दनरामकृत अनेकार्थ की अपेक्षा यह अधिक प्राचीन है, अतएव इसी का प्रभाव चन्दनराम के अनेकार्थ पर पड़ना सम्भव है। चन्दनराम ने केवल शैली को अधिक स्पष्टता प्रदान की।

यद्यपि विनयसागर ने शैली के सम्बन्ध में कोई निश्चित वक्तव्य नहीं दिया, फिर भी संकलन का ढंग प्रायः एक सा है।

प्रस्तुत कोश भी तीन अधिकारों में विभक्त है। प्रथम अधिकार में सामान्यतः ऐसे शब्द संकलित हैं जिनके अर्थ समस्त दोहे में आ सकें, यथा:

॥ दुहो मेरु ॥ कुंतल नाम ॥

केशपाश पुनि देश कुं, सूत्रधार सु पवित्त।
भुजा दंड वडिभार कुं, कुंतल कहत विभत्त ॥

—अने० विनय०, पृ० ३ पी०।

---

१. अने० चन्द०, पृ० २२।
२. वही, पृ० ४०।
३. वही, पृ० ४१।

प्रथम अधिकार में केवल ८३ दोहे हैं जिनके अनन्तर 'अथ द्वितीयाधिकारो लिख्यते' आता है। इसमें एक शब्द के अर्थ दोहे के एक ही चरण में दिये गये हैं, जैसे:

।। नंदन व मानस नाम ।।

नंदन इह सुर बाग कुं अगज अपर जु नाम।
मानस कहत जु चित्र कुं, देव सरोवर ठाम ।।

—अने० विनय०, पृ० १० मू०।

द्वितीय अधिकार के अन्त में एक दोहा है जिसके अन्त में अधिकार समाप्ति की उक्ति दी हुई है, कुल मिलाकर इस अधिकार में ४७ दोहे हैं।

अन्त में 'अथ तृतीयाधिकार प्रारम्यते' आता है। इसमें एक दोहे के चतुर्थांश में एक शब्द के अर्थ दिये गये हैं और अन्य में ६८ दोहों के उपरान्त यह उक्ति है:

'इति श्री विनयसागरोपाध्याय विरचितायां दुहाबद्धानेकार्थनाममालायां तृतिया-धिकार सम्पूर्णः इति दूहा बद्ध नाममाला सम्पूर्णः।"

तुलना

उपर्युक्त विवेचन से यह आभास मिलता है कि दोनों कोश-ग्रंथ लगभग समान रूप से नियोजित हैं। ऊपरी रूप से यह सत्य होने पर भी दोनों में कई अंतर हैं। शब्दों के चयन का क्रम दोनों में भिन्न है। चन्दनराम का 'अनेकार्थ' परवर्ती रचना होने के फलस्वरूप अधिक व्यापक, सुस्पष्ट एवं संयत है। फिर भी बिना शब्दों की आरादिक्रम से नियोजित अनुक्रमणिका के, शब्दों की स्थिति ज्ञात करना दोनों में कठिन है।

नन्ददास कृत 'अनेकार्थ', प्रकाशनाममाला के अन्तर्गत अनेकार्थ वर्ग, उमराव-कोश में संकलित अनेकार्थ वर्ग, कवि उदैराम विरचित 'अनेकार्थी' एवं सागरकृत 'अनेकार्थी' कोशों का शब्द-संकलन किसी भी निश्चित पद्धति पर आधारित नहीं है। इनमें से नन्ददास व उदैराम के अनेकार्थी कोशों का शब्द-संकलन कुछ स्थलों पर आपस में मिलता है, परन्तु जहाँ नन्ददास ने दोहे के उत्तरार्द्ध में ब्रह्म-चर्चा, प्रार्थना या हरिकथा का प्रसंग भी प्रकीर्ण रूप से दिया है वहाँ उदैराम के अनेकार्थी में ऐसी कोई विशेषता नहीं। अन्य कोशकारों ने अनेकार्थी शब्द अनुमान व कल्पना के आधार पर संकलित किये हैं और निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि शब्द-विशेष के अर्थ कहाँ पर मिलेंगे।

सुवंश शुक्ल ने अपने पर्याय कोश की ही भाँति अनेकार्थ वर्ग में भी अर्थों की कुल संख्या गिना दी है यथा:

॥ रस नाम ॥
नव रस षट रस गादि विष पारा हर्षौं वारि।
ए रस के सातौं कहे नाम सुवंस विचारि ॥

—उ० को० ३।२।२०।

एक अन्तिम विशेषता भी अनेकार्थी कोशों के सम्बन्ध में द्रष्टव्य है। यद्यपि दोहे के शीर्षक में विवेच्य शब्द का नामांकन प्रायः प्रत्येक कोश में किया गया है यथा 'हर शब्द नांव', 'सनेह नाम' या अथ कमल, मंडल शब्दार्थ दोहा' जिससे भली-भाँति स्पष्ट हो जाय कि प्रस्तुत छंद में किस शब्द के अर्थ आये हैं फिर भी भ्रम के निवारण के लिये चन्दनराम ने यह नियम बताया है कि छंद में जो शब्द दो बार आ जाय उसी के अर्थ देना अनेकार्थ-रचयिता को अभिप्रेत है:

सकल अर्द्ध अर्द्धार्द्ध मह, जौन शब्द द्वै बार।
ताही को यह अर्थ है, या विधि करो विचार ॥[1]

पद्य-बद्ध द्विभाषीय कोशों का क्रमहीन एवं अव्यवस्थित संकलन

खुसरो कृत खालिक़बारी, गुमनाम लेखक द्वारा रचित अल्लाखुदाई, एवं कुँवर कुशल द्वारा संकलित पारसीपारसातनाममाला में शब्द-संकलन एक विशिष्ट पद्धति पर हुआ है। तीनों कोशों में हिन्दी व फ़ारसी तथा आवश्यकता पड़ने पर अरबी के तदर्थी शब्द एक साथ छंदोबद्ध किये गये हैं। उपर्युक्त तीनों भाषाओं में से पहले किस भाषा का शब्द रखा जाय यह तीनों कोशों में अनिश्चित है। तीनों कोशों के निम्न उदाहरणों में पहले हिन्दी शब्द हैं, उसके बाद फ़ारसी-अरबी शब्द हैं—

नीला पीला जर्द कबूद। ताना बाना तारो पूद ॥

—खा० बा०, पं० ६।

\+ + +

चांदनी रा तू माहताब बगो। धूप रा नेज़ आफ्ताब बगो ॥

—अ० खु०, पं० १८।

\+ + +

नाडा इजार बंद है, जूता कफ्स जनाय ॥

—पा० पा०, छं० १०४।

परन्तु यह क्रम सदैव नहीं चलता। तीनों कोशों में स्थान-स्थान पर अधिकांशतः पहले फ़ारसी-अरबी और फिर हिन्दी समानार्थी शब्द साथ रखे गये हैं। यथाः

---

१. अने० चन्द०, पृ० २।

चिरागस्त दीवा फ़तीलस्त बाती। बुवद जद्द दादा नबीरस्त नाती।

—ख़ा० बा०, पं० ६९।

काह रा घास गोई चोब ये काठ। जफ्तः प्याला लियावज़ू आठ।

—अ० ख़ु०, पं० १०२।

+ + +

नेकौ भला निहारिये, ख़ुश ख़ुर्रम है ख़ूब।

—पा० पा०, छं० ३१६।

सामान्यतः तीनों कोशों में एक शब्द के ही दूसरे तदर्थी शब्द दिये गये हैं परन्तु ख़ालिक़बारी में स्थान-स्थान पर शब्द-युग्म या वाक्य-खंडों के अनुवाद भी उपलब्ध होते हैं:

तुरा वो गुफ्तम् मैं तुझ कह्या। कुजा ब मांदी तू कित रह्या।
बया बिरादर आव रे भाई। बेनशीं मादर बैठ री माई।

—ख़ा० बा०, पं० ११-१२।

इस प्रारम्भिक विवरण के अनन्तर निम्न पंक्तियों में तीनों कोशों की संकलन-पद्धति की संक्षेप में विवेचना प्रस्तुत की गई है।

ख़ालिक़बारी—इस कोश में शब्दों का चयन किसी सुनिश्चित क्रम से नहीं किया गया है। आरम्भ में ईश्वर के द्विभाषीय नाम देने के पश्चात् फिर कोई क्रम शब्दों का नहीं रखा गया। एक जाति या वर्ग से सम्बद्ध शब्दावली समस्त कोश में बिखरी पड़ी है। एक ही पंक्ति के प्रथमार्ध में एक जाति के शब्द हैं तो उत्तरार्ध में दूसरी जाति के। यथा:

ख़रगोश खरहा बाशद आहू बुवद हिरना,
अंगुस्तरी अंगूठी पैराया आभरन। —ख़ा० बा०, पं० ९९।

इसी प्रकार पशुओं के नाम कुछ सोलहवीं पंक्ति में दिये गये हैं कुछ एक सौ छब्बीसवीं में और अन्य एक सौ बावनवीं पंक्ति में हैं। इसी प्रकार पारिवारिक सम्बन्धियों, फलों, वृक्षों व शारीरिक अवयवों के नाम भी खण्डों में गिनाये गये हैं। लगातार किन्हीं भी पाँच पंक्तियों में एक जाति या वर्ग के शब्द नहीं हैं।

अल्लाख़ुदाई—इसमें अपेक्षाकृत कुछ नियमितता मिलती है। यद्यपि कोशकार ने शीर्षक देकर किसी वर्ग या जाति का अंकन नहीं किया, फिर भी शब्दों के समूह इस प्रकार बाँटे गए हैं—पारिवारिक शब्दावली, प्राकृतिक दृश्य, रंग, भोज्यपदार्थ व तत्सम्बन्धी उपकरण, शारीरिक अवयव, वनस्पति, आलेपन व वस्त्राभूषण, औद्योगिक शब्दावली और अन्त में राशियों के नाम। परंतु यह क्रम आंशिक व

प्रकीर्ण ही हैं। शुद्ध रूप से नियमित इसको भी नहीं कहा जा सकता। उदाहरण के लिये गंगा, जमुना, नदी, पानी, भंवर, गहराई, पोखर, नाव, मल्लाह, पनडुब्बी व कुँआ का क्रम तो संगत है, इनके साथ 'जाल' को संकलित करना भी कुछ सीमा तक उचित है, परन्तु इसी क्रम के अन्तर्गत 'अंधा' या 'गाली' के तदर्थी मेल नहीं खाते।

पारसीपारसातनाममाला—यह तीनों कोशों में अपेक्षाकृत अधिक स्पष्ट तथा नियमित है। यह द्विभाषीय कोश दस वर्गों की शब्दावली को संकलित किये हुए दस 'बाब' (अध्याय) में विभाजित है। बाब अव्वल में पारिवारिक शब्दावली, 'अब बाब दूजी आसामी कदर पिछानना आदमी की'–जिसमें शासकीय व औद्योगिक शब्दावली संकलित है, 'बाब तीसरे में नख तें लेकें सिखा लौं मानुष सरीर कौ कहिबौ', 'बाब चौथा पोसाख का जेवर का कहना', 'बाब पाँच माखाने का मेवा ताके नाम', 'बाब छठा मैं सहर, कोठ हवेली की हकीकतु कहतु हैं', अब ये सातयै बाब मै बबरची खाने का कहना,' 'बाब आठ में पंखियों का और ढोर का कहना', 'बाब नव मैं असमांन बादल बरसात का कहनां', 'बाब दस मा बिचि और जुदी-जुदी बात के नांउ कहते हैं।'

उपर्युक्त पद्धति पर विभाजित शब्दावली पूर्णतः वैज्ञानिक न होते हुए भी आंशिक लाभप्रद अवश्य है। वांछित शब्द-विशेष की जाति का निर्णय कर उपर्युक्त शीर्षकों से यह निर्णय किया जा सकता है कि अमुक शब्द अमुक बाब में होना चाहिये। इतना अवश्य है कि एक अध्यायान्तर्गत शब्दों का कोई क्रम नहीं है।

तुलना—तीनों कोशों में एक अन्तर यह है कि खालिक़बारी में शब्दों के अन्य भाषीय रूप देते समय अन्य पर्याय कोशों की भाँति विवेच्य शब्द के शीर्षक नहीं दिये गये हैं। विभिन्न भाषीय तदर्थी शब्दों का एक स्थान पर संकलन मात्र कर दिया गया है, यथाः

हिरना गिरगिट, कज़दुम बिच्छू, रासू न्यौल।
सग है कुत्ता, माही मछली, लुक़मा कौल॥
दुश्मन बैरी, कूस दमामा, वारां मेह।
इश्क़मुहब्बत, आशिक़ मित्र, जानी नेह॥

—खा० बा०, पं० ३६–३७।

लगभग इसी शैली का प्रयोग अल्लाखुदाई कोश ग्रन्थ में भी किया गया है:

हस्त गंधी व फ़ार्सी अत्तार, इत्र सोंधा व तीली अस्त असार।
धुनिया दर लफ़्ज फ़र्सी नद्दाफ़, माया पूंजी नकीज जिद है खिलाफ़॥

—अ० खु, पं० १४७-४८।

परन्तु पारसीपारसातनाममाला के रचयिता ने हिन्दी के अन्य समानार्थी या अनेकार्थी कोशों के अनुकरण पर पहले आलोच्य शब्द का शीर्षक ऊपर कोष्ठकों में दे दिया है, यथाः

(बनिया नाम)

गल्लह फ़रोस नाम गनि, बनियां कहौ बकाल।

(सौदागर)

सोतजार सोतागर जु, बाजर गान सुढाल ।।

—पा० पा०, छं० ५२ ।

छन्द विधान—पिछले पृष्ठों में विवेचित समस्त कोश एवं अगले पृष्ठों में वर्णित एकाक्षरी तथा नामप्रकाश के अन्तर्गत अनेकार्थ वर्ग छन्दों में निर्मित हुये हैं। ये कोश ग्रंथ अक्षरानुक्रम में नियोजित आधुनिक कोशों की भाँति संदर्भ-ग्रन्थ न थे। साहित्य के अन्य उपांगों की भाँति इनका भी प्रमुख स्थान था। संस्कृत साहित्य की शिक्षा देने से पूर्व अध्येता को आज भी अमरकोश को कंठाग्र करने की परम आवश्यकता होती है। हिन्दी के ये कोश रत्न भी यथार्थ में नित्य पारायण व कंठस्थ[1] करने की दृष्टि से रचे गये थे।

स्मरणीयता और उपयोग—छन्द रचना से अनेकानेक लाभ हुये। भाव को प्रेषित करने के साथ छन्द में मुग्ध करने की परम शक्ति होती है। छन्द के द्वारा कल्पना का रूप सजग होकर मन के सामने प्रत्यक्ष हो जाता है, अतः उन भावों को ग्रहण करने में मन को प्रयत्न नहीं करना पड़ता। छन्द 'स्मृति की सहायता[2] करने में सहायक होते हैं। अतः स्मरणीयता को ही प्रमुख महत्त्व देने के कारण ये समस्त कोश छन्दों में निर्मित हुये हैं, जिससे जिज्ञासु पाठक इनका उपयोग काव्य में कर सके।

छन्दों की विविधता—संस्कृत कोशों में मुख्यतः 'अनुष्टुप' छन्द का ही व्यवहार किया गया है। इस छन्द की अति व्यापकता के कारण ही कभी-कभी इसको केवल 'पद्य' नाम से भी अभिहित किया जाता रहा है। अनुष्टुप के अतिरिक्त 'आर्या'

---

१. दस नाम माहेइ समेत सुवंश भाषे गाइ के।
ए चाउ करिकै कंठ-कीजै मित्र अति सुखदाय के।।

—उ० को० २।९।१२७ ।

२. "...से सुनिविड़ सुनियोजित छन्द आमादेर स्मृतिर सहायता करे..."।
—रवीन्द्रवचनावली, भाग २, पृ० ३७१ ।

छन्द का भी प्रयोग नाममालाकोश तथा बोपालित कोश में प्रयुक्त हुआ है। अभिधान-चिन्तामणि, अभिधानरत्नमाला तथा त्रिकांडकोश में एकाधिक छन्दों का व्यवहार है, जिससे कोशकारों की उत्कृष्ट रुचि का परिचय मिलता है।

संस्कृत के अनुष्टुप का स्थान हिन्दी कोशों में 'दोहा' ने लिया जो प्रायः प्रत्येक कोश में प्रयुक्त हुआ है। कुछ कोश पूर्णतः दोहों में रचे गये हैं; अन्य कोशों में भी यह एक अनिवार्य छन्द रहा है। इसकी लोकप्रियता को देखकर ही शायद विनयसागर ने अपने कोश के प्रत्येक दोहे में गुरु लघु के लक्षण देकर दोहे के प्रत्येक उपभेद का भी प्रयोग किया है। अधिकांश कोशकार अपने समय के अच्छे कवि भी थे अतएव सर्वोत्तम छन्दों को कोशों में स्थान मिला है। कविराजा मुरारीदान ने तो अपने 'डिंगलकोश' के प्रारम्भिक भाग में 'दोहा-सोरठा-लक्षण' 'सोरठा का उदाहरण'[१] 'अथ संक्षेपतो गीत लक्षणानि,'[२] देकर अपने कोश में सर्वोत्तम गीतों के लक्षण दिये हैं। दोहा, सोरठा और चौपाई व छप्पय के अतिरिक्त आलोच्य कोशों में निम्न छन्द व्यवहृत हुये हैं:

जुक्ता, पद्धरिया, भुजंगप्रयात, तोमर, मालतीकंत, मदलेखा, धत्तानन्द, घनाक्षरी, चुरिआला, हरिगीत, फझलिया, मनहंस, प्लवंगम, हंसगति, गीता, प्रमाणिका, दोवै, दिटपट, लीलावती, क्रीड़ा, दीपमाला, मरहष्ट, महप्रदाली, ताली, दुर्मिला, सरूपी, पायाकुलक, मधुभार, आभीर, चित्रपदा, नाराच, हाकलिका, हीरकी, बिजोह, समानिक, ध्रुव, जुक्ता, दिढ़पद, धारी व शंखनारी। हरराज विरचित डिंगलनाममाला व नागराजडिंगलकोश केवल 'छप्पय' में निर्मित हैं। हमीर-नाममाला एवं नाममाला "क" डिंगलभाषा के प्रसिद्ध गीत 'बेलियों' में रचे गये हैं।

छन्द रचना जनित गुण—अमरमाला कोश में कहा गया है—'ईलिः करवाली स्यात् वैमेयो धान्यपरिवर्तः'। किसी को सन्देह हुआ कि यहाँ 'ईली' के स्थान पर 'इलि' पाठ होगा, पर ऐसा होने पर आर्या छन्द भंग होता है, अतः मानना पड़ा कि मूल पाठ 'ईलि' ही था। इसी प्रकार का उदाहरण बोपालित के कोश से भी दिया जा सकता है। सर्वानन्द ने कहा है–'नापिकषायस्तुवर इति ह्रस्वादिरपि बोपालितेन उक्तः, अन्यथा आर्याभंगः,' अमरकोश टीका में भानुजी दीक्षित ने कहा है कि 'कुणि' के समान 'कूणि' शब्द भी है और इसके लिये युक्ति दी है।[३] इससे ज्ञात होता है कि छन्द के कारण शब्दस्वरूप निर्धारण में सुगमता होती

१. डिंगलकोष, पृ० १६९।
२. वही, पृ० १७१।
३. "निसर्गतः कूणिपङ्ग० गुपौगंडाः इति नाममालायाम् आर्यापाठात् दीर्घोकारवान अपि।" —अमर टीका, भानुजी दीक्षित, पृ०, २१७।

है। छन्द बल के कारण ही हम एक प्रचलित शब्द के स्थान पर अप्रचलित शब्द की साधुता को स्वीकार करने के लिये बाध्य होते हैं।

दोष—परन्तु कोशों को छन्दबद्ध करने से गुण की अपेक्षा दोष ही अधिक आये हैं। कहीं छन्द बैठाने के लिये एक बचन के स्थान पर बहुबचन तथा क्रम विपयर्य करना पड़ा है, जो छन्दमय कोश रचना के दोष हैं। अमरकोश में 'तन्तु' शब्द का पाठ बहुबचन में दिया गया है,[1] परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि 'तन्तु' शब्द नित्य बहुबचन है, प्रत्युत केवल छन्द मिलाने के लिए ही 'तन्तु' के स्थान पर 'तन्तवः' पढ़ा गया है। अमरकोश में जिस पद के अन्त में 'तु' हो वह पूर्वान्वियी नहीं होता, किन्तु इसी में कुछ ऐसे स्थल हैं, जहाँ केवल छन्द बैठाने के लिये अस्थान में 'तु' शब्द का पाठ किया गया है।

छन्दों में नामों को बद्ध करने के कारण समस्त शब्दों के रूप विकृत हो गये हैं। शब्द का शुद्ध रूप क्या है इसका निर्णय करना अत्यन्त कठिन है। भिखारीदास ने स्पष्ट रूप से स्वीकार कर लिया था कि छन्द के आग्रहवश उन्होंने स्वरों को आवश्यकतानुसार लघु और दीर्घ बना दिया है।[3] यही नहीं, छन्दपूर्ति के लिये निरर्थक शब्दों का भी संग्रह कोशों में कर दिया गया है। डिंगलकोशों में आखो, आख, कहो, गुणों, मुणात, चवो, चवीजे, गिणो, गिणात; व्रजभाषा कोशों में कहिये, लहिये, जानिये, मानिये, मान, बषानि, मित्र, चिचित्र, प्रभात, सुजान, नाम, धाम, गनो, भनो, व द्विभाषीय कोशों में बुवद, बाशद, दारद, आमद, अस्त, हस्त, अत्यधिक संख्या में आये हैं। उमरावकोश से एक उदाहरण लीजिये:

॥ सियार नाम ॥

गोमायु अरु मृगधूर्तक वंचक सिवा मन मानिये।
जम्बूक क्रोष्टा भूरिमाय शृंगाल फेरु बखानिये॥
फेरव समेत सियार गेरह नाम ए कविवर कहै।
हैं ते सियार समान नर जे नाम हरि को न लहै॥

—उ० को० २।५।८।

---

१. अमरकोश २।१०।२८।
२. रामशंकर भट्टाचार्य: संस्कृत कोशों में शब्द संकलन के प्रकार (काशी नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०११,अंक १), पृ० १६।
३. रुजु सुभिन्न वो स्वर मिलित शब्दांतन मों दीन्ह।
कहूँ व्यक्ति संयोगियों कहूँ दीर्घ लघु कीन्ह॥
—ना० प्र०, पृ० १, छ० ५।

उपर्युक्त हरिगीत छन्द में 'सियार' शब्द के पर्याय गिनाये गये हैं। परन्तु पर्याय शब्द इसमें केवल गोमायु, मृगधूर्तक, वंचक, सिवा, जम्बूक, क्रोष्टा, भुरिमाय, श्रृगाल, फेरु, फेरव और सियार ये ग्यारह शब्द हैं। शेष इक्कीस शब्द केवल छन्द पूर्ति के आग्रह से ही समाविष्ट किये गये हैं। छन्द-रचना जनित इस दोष से सामान्य पाठक यह निर्णय नहीं कर सकते कि छन्द विशेष में कौन विवेच्य शब्द है और कौन व्यर्थ। सम्भव है, वह सभी शब्दों को पर्याय मान बैठे।

परन्तु कुछ कोश, छन्दों में व्यवस्थित होते हुये भी, इस दोष से पूर्णतः रहित हैं। उदाहरण के लिये नाममाला "क" का एक बेलियो गीत में निर्मित पर्याय संकलन देखिये :

॥ मरकट नाम ॥

साखाम्रग मरकट साखीचर, वनर कीस हरि कपी वनचर।
गो लंगूल पलवग पलवंगम, पलवंग ऊक वलीमुख प्रोडुम।

—ना० मा० "क', छन्द १२९।

इस छन्द में 'मरकट' शब्द के पर्याय के अतिरिक्त एक भी शब्द छन्द पूर्ति के आग्रह से नहीं लाया गया है। परन्तु इस प्रकार के उदाहरणों की संख्या अत्यल्प है।

नाम शीर्षक

अमर आदि संस्कृत कोशों में जिस शब्द के पर्याय या अनेकार्थ दिये गये हैं उस विवेच्य शब्द को अलग से शीर्षक बनाकर अंकित नहीं किया गया है। एक वर्ग में विवेचित समस्त शब्द एक ही क्रम में आये हैं, यहाँ तक कि कभी-कभी एक ही अनुष्टुप में दो-तीन शब्द वा उनके पर्याय संकलित किये गये हैं। संस्कृत कोशों की नाम-विवेचन-सम्बन्धी इस अस्पष्टता और क्लिष्टता को दृष्टि में रखते हुए छन्दों में निर्मित समस्त समानार्थी वा अनेकार्थी कोशों में एक नवीन पद्धति का आविष्कार किया गया।

खालिक़बारी तथा अल्लाखुदाई के अतिरिक्त इन सभी कोशों ने पर्याय या अनेकार्थ दिये जाने वाले शब्द को पहले शीर्षक में अंकित किया है और तत्पश्चात् छन्दों में उनके पर्याय, अनेकार्थ या विदेशी भाषा का तदर्थी शब्द दिया है। शीर्षक के लिये भी कोशकारों ने कोई प्रसिद्ध वा सर्वसाधारण नाम चुना है यथा 'इन्द्री नाम', 'तकिया नाम', 'जजमान नाम' आदि। कुछ कोशों में हिन्दी की प्रवृत्ति के अनुसार 'के' अक्षर और जोड़ दिया गया है जैसे 'अविद्या के नाम', 'शर्करा के नाम' तथा 'करोंदा के नाम'। वर्गात्मक कोशों में ये शीर्षक कभी-कभी बहुत बड़े

हो गये हैं। उदाहरण के लिये 'फूलह की लता सिर रचना करी ताके नाम'[१], 'वासन में जो लगि रहे भात ताकौ नाम'[२], 'सिकार मारि करि खाइ तिसका नाम'[३], या 'ब्रह्मासन औ वेद पढ़ते में जो मुख से किणका उड़ै उसका नाम'[४]। पुनः यदि दो तीन या इससे अधिक शब्दों के पर्याय एक ही छन्द में दिये गये हों तो शीर्षकों में सबको 'एकठा' अंकित कर दिया गया है, उदाहरण के लिये नामप्रकाश में 'भतीज औ भ्राता भगिनी एकठां के नाम'[५], 'जरायु औ रक्तबीज एकठां के नाम'[६], या 'दंत चौहरी तारू औ ओठ अंत के नाम'[७] आदि। भिखारीदास को यदि कोई एक शब्द ऐसा मिला जिसका दूसरा पर्याय नहीं, तो शीर्षक देकर उसको 'अकेलुई' बद्ध कर दिया है।

इसके अतिरिक्त वर्गात्मक कोशों में कई स्थल ऐसे भी आते हैं जिसको अन्य पर्याय शब्दों के अभाव में अलग शीर्षक न देकर एक ही क्रम में वर्णित कर दिया है। कर्णाभरण कोश के टीका अंश में शीर्षक नहीं हैं।

कोशों में गौण प्रसंग

छन्द पूर्ति के आग्रह से तो व्यर्थ के शब्द आये ही हैं, कुछ कोशकारों को अपने मुख्य विषय के अतिरिक्त इतर प्रसंग वर्णित करने की आदत सी रही है। नन्ददास ने 'नाममाला' में मान वर्णन की कथा तो जोड़ी ही है, 'अनेकार्थ' के दोहों के दूसरे चरण में भी ब्रह्म सम्बन्धी वार्त्तालाप, कुछ कृष्ण-कथाओं का समावेश, व प्रार्थना इत्यादि के प्रवचन भी प्रविष्ट कर दिये हैं। उदैराम ने भी अपनी 'अवधानमाला' में व चेतन विजय ने 'आतमबोध नाममाला' में इस प्रकार के प्रकीर्ण विषय अत्यधिक मात्रा में सम्मिलित किये हैं। हमीरदान रतनू ने तो बिना हरिकथा कहे किसी भी शब्द के पर्याय नहीं गिनाये हैं। थोड़ा सा अवसर मिलने पर वे उपदेश देने से भी नहीं चूकते। एक उदाहरण द्रष्टव्य है :

॥ बाट नांम ॥

बाट वरतमागैल बरत्री, पंथ निगम पदवी पधिति।
अँन सचरण मारग अधवा, सरणी सचरण प्रचर सत॥
उत्तम राह चालि ग्रहि उत्तम, करग दान पुनि ग्रहि सुकृति।
भाखि सांच जग मांहि भलाई, चक्रभुज चरणं राखि चित॥

—ह० ना० मा०, छं० ५६–५७।

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० ३१६।
२. वही, पृ० ३४२।
३. वही, पृ० ३५०।
४. ना० प्र०, पृ० १८१।
५. वही, पृ० १४४।
६. वही, पृ० १४४।
७. वही, पृ० १५८।

उपर्युक्त 'बेलियो' छन्दों की प्रथम पंक्तियाँ तो "बाट" शब्द के पर्याय द्योतक हैं, परन्तु उत्तरार्द्ध की दोनों पंक्तियाँ केवल लेखक की उपदेश देने की वृत्ति के परिचायक हैं। यह उपदेश 'बाट' शब्द से कुछ सम्बन्ध रखता भी है, परन्तु फ़कीरचन्दकृत एकाक्षरी कोश 'सुबोधचन्द्रिका' में इस प्रकार के तनिक तारतम्य का परित्याग कर मूल विवेच्य शब्द के साथ इस प्रकार के कथन जोड़े गये हैं, जिनका न तो अभिधेय अक्षर के अर्थों से सम्बन्ध है न तद्विषयक किन्हीं अन्य बातों से। सुबोधचन्द्रिका में संकलित प्रत्येक अक्षर के अर्थ देने के पश्चात् इस प्रकार के प्रसंग अत्यधिक मात्रा में जोड़े गये हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

॥ णौ नांम ॥

णौ माया अरु मीन गनि, फिर जिहाज दरसाय।
भार बहुरि खर जांनिये, रक्षक कहि कविराय ॥
मेरे रक्षक तुम प्रभू, तो बिन और न कोइ।
या जग में सब बात की, लाज राखिये सोइ ॥
लाज तिहारे हाथ प्रभु तूं ही राखन हार।
सकल बड़ाई आपकी, मेरे प्रान अधार ॥
जो न गहौ प्रभु, सरन तुम तौ कह हो तौ हाल।
करम किये मैं असुभ बहु, सो सब मिट्यो जिंजाल ॥

—सु० च०, छं० ४४३–४४६।

कहने की आवश्यकता नहीं कि ऐसे प्रसंग कोश की दृष्टि से बिल्कुल व्यर्थ ही नहीं, अनावश्यक वृद्धि के कारण अनुपयोगी भी हैं।

अक्षरानुक्रम

वर्गानुक्रम पद्धति में निहित जटिलता व दुरूहता के फलस्वरूप अक्षरानुक्रम प्रणाली की ओर सर्वप्रथम ध्यान जाता है जो पूर्णतः अवैज्ञानिक होते हुये भी सुविधाजनक होने के कारण अधिकांशतः प्रचलित व ग्राह्य है।[१] अधिकांश विद्वान् तो

१. "As a natural consequence of the difficulty of a systematic arrangement of all these special facts, most dictionaries content themselves with an arrangement in alphabetical order which is completely unscientific but practically convenient. If our alphabet had been like the Sanskrit alphabet in which sounds formed by the same organ are placed together, the result would of course have been better......"

—जेस्पर्सन : दि फ़िलॉसफ़ी ऑव् ग्रामर, पृ० ३४।

कोशों के लिये वर्णक्रम के अतिरिक्त अन्य किसी भी नियोजन पद्धति को अग्राह्य मानते हैं।[1] फिर भी अन्य प्रणालियों की अपेक्षा वर्णक्रम पद्धति को प्रायः सर्वत्र ही प्राथमिकता दी जाती है।[2]

सामान्य रूप से इस मत को अद्यावधि अधिक प्रश्रय दिया जाता रहा है कि अक्षरानुक्रम प्रणाली पाश्चात्य देन है परन्तु यह मत अधिक ठोस व साधार नहीं। संस्कृत कोशों में वर्णक्रम योजना के पर्याप्त उदाहरण मिलते हैं।

संस्कृत कोशों में वर्णानुक्रम

अकारादि क्रम से रचित कोशों में अजयपाल रचित 'नानार्थसंग्रह' कोश महत्त्वपूर्ण है। इसमें शब्दों का क्रम उनके आदि वर्णानुसार है, परन्तु वर्णमाला के अनुसार वर्णानुक्रम केवल आद्य अक्षर में दिया गया है, पदस्थ अन्त वर्णों में इस रीति का पालन नहीं किया गया। फलस्वरूप अकारादि शब्दों में पहले 'अमृत' का पाठ है और उसके बाद 'अकूपार' शब्द का। वैजयन्ती कोश में केवल अनेकार्थक-संकलनात्मक अंश में ही अकारादि क्रम है, उसके अन्य अंश में नहीं। इसमें भी वर्णक्रम का निर्वाह (अजयकोश की तरह) शब्द के आदि वर्ण तक ही सीमित है। पर इस कोश का विशिष्ट गुण यह है इसके तीन काण्डों में यथाक्रम द्वयक्षर, त्र्यक्षर तथा बह्वक्षर शब्दों का संकलन किया गया है।

उपर्युक्त आदि वर्णानुसारी कोशों के अतिरिक्त संस्कृत के कोश विशेष अन्त्य वर्णानुक्रम पर भी नियोजित हुये हैं। अनेकार्थक-शब्द-संकलनांश में तो अधिकतर अन्त्यवर्णानुसारी पद्धति ही अपनाई गई है। दुर्ग कोश के अनेकार्थक अंश में शब्द-क्रम अन्त्य वर्ण के अनुसार है, अर्थात् 'काल' शब्द 'क' विभाग में न रहकर 'ल' विभाग में पठित है। रंति कोश व रुद्र कोश की भी शब्द-संकलन पद्धति ऐसी ही है परन्तु रुद्र कोश में विशेषता यह है कि शब्दों के अन्त्य वर्णानुसारी संकलन के बाद प्रत्येक विभाग में उनका पाठ आदि वर्ण के क्रम से है अर्थात् 'काल' और 'सलिल' यद्यपि 'ल' विभाग में पठित हैं तथापि 'काल' शब्द के बाद ही 'सलिल' शब्द का पाठ है, क्योंकि 'स' वर्ण 'क' के बाद आता है।

---

१. ....no arrangement is tolerable except an alphabetical one in all languages, where the inflectious are mainly terminal or after a consonant initial...

—एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड ९, पृ० ८७।

२. चेम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, खण्ड ३, पृ० ५४६।

'मंख' कोश में शब्द-संकलन 'विश्वप्रकाश' की तरह (अर्थात् अंतिम वर्ण के क्रमानुसार) है परन्तु शब्दों का संकलन इस प्रकार हो जाने के बाद अक्षरों (सिलेब्ल) की संख्या के अनुसार उनका पुनः सज्जीकरण किया गया है। यही शैली 'धरणि' कोश में भी अनुकृत हुई है। मेदनी का शब्द-संकलन भी विश्वप्रकाश के ही अनुसार है परन्तु विश्वप्रकाश से वह इस विषय में कुछ भिन्न है कि मेदिनी में अन्त्य-वर्णानुसारी शब्दों के संस्थापन का क्रम आदि वर्ण के अनुसार रखा गया है।

अन्त्य वर्णानुसारी कोशों का शब्द-क्रम कभी तो एक वर्ण के अनुसार होता है या कभी एक निर्दिष्ट वर्ग या उच्चारण-स्थान के अनुसार जैसा कि 'तालव्यान्ते रुद्रः', 'शान्ते विश्वः', 'मूर्धन्यान्तः', 'ट वर्गद्वितीयान्त' आदि शब्दों के व्यवहार से ज्ञात होता है।[1]

आलोच्य हिन्दी कोशों में व्यवहृत अक्षरानुक्रम के निम्न प्रभेद मिलते हैं :

(१) आद्य वर्णानुसारी पद्धति पर आधारित कोश।

(२) अन्त्य वर्णानुसारी पद्धति पर आधारित कोश।

(३) आद्य व अंत्य दोनों वर्णों के अनुसार शब्द-संकलन करने वाले कोश।

(१) आद्य वर्णानुसारी पद्धति पर आधारित कोश

इस नियोजन पद्धति के पुनः तीन प्रभेद किये जा सकते हैं—(१) अंग्रेज़ी वर्णक्रम (२) उर्दू वर्णक्रम एवं (३) देवनागरी वर्णक्रम।

अंग्रेजी वर्णक्रम—गिलक्राइस्ट कृत 'ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' इस शैली पर निर्मित एक मात्र कोश है। इसमें हिन्दी शब्द अंग्रेज़ी वर्णों के माध्यम से संकलित किये गये हैं अतएव अंग्रेज़ी अक्षरानुक्रम में नियोजना सम्भव हो सकी है। इस कोश में यदि किसी हिन्दी शब्द को ढूँढ़ना हो तो सर्वप्रथम उसके अंग्रेज़ी अक्षरों का निश्चय करना पड़ेगा और उसके पश्चात् उस शब्द को A B C D आदि के क्रम में अन्त तक देखना होगा। इस कोश में V व X को छोड़ कर अंग्रेज़ी के शेष समस्त चौबीस अक्षर प्रयोग में लाये गये हैं।

परन्तु हिन्दी वर्णों का अंग्रेज़ी में उच्चारण देने के फलस्वरूप इस अक्षरानुक्रम में अव्यवस्था व क्रमहीनता आ गई है। लेखक ने a, u; ee, e व i; तथा o, oo एवं ou को एक ही ध्वनि माना है जो अपनी प्रारम्भिक तथा अंतिम स्थिति के अतिरिक्त कोशकार के मतानुसार कोई विशिष्ट महत्त्व नहीं रखते। इसीलिये

---

१. रामशंकर भट्टाचार्य: संस्कृत कोशों के शब्द-संकलन के प्रकार।
—नागरी प्रचारिणी पत्रिका, सं० २०११, अंक १, पृ० ७-९।

स्वरों को मध्य में ही नहीं, प्रारम्भ में भी अक्षरक्रम को पथप्रदर्शक नहीं माना गया है।[१]

इसी योजना के अनुसरण पर अंग्रेजी अक्षर U, T और V के मध्य न आकर A के साथ प्रारम्भ में ही आया है। I से प्रारम्भ होने वाले शब्द H व J के बीच में न होकर E के ही साथ रखे गये हैं, जिनमें भी कोई सुनिश्चित क्रम नहीं है। O यद्यपि N व P के मध्य में आया है परन्तु OO और OU के साथ इसे भी जटिल बना दिया गया है। Ag, Aga-peech, Age, Ugla, व Agum; Istiree, Rta, Ratibar, व opulla, oppur, ooreean, ohar, our—जैसे शब्द-क्रमों में यह अव्यवस्था देखी जा सकती है।

प्रारम्भ में ही नहीं शब्द के मध्य में भी स्वर-सम्बन्धी इस धारणा ने व्यतिक्रम उपस्थित कर दिया है। Das, Des, dos व dyyos तक तो क्रम निभाया गया परन्तु फिर उसके बाद Dusa व Disa में क्रम फिर टूट गया है। स्वरों से सम्बद्ध इस क्रमहीन नियोजना से पाठक को तो भ्रम होता ही है, स्वयं कोशकार को भी यह ज्ञान नहीं कि कौन शब्द एक बार संकलित हो चुका है और कौन नहीं। इसके फलस्वरूप Kuhan व Kyoon शब्द उन्हीं रूपों में दो अलग-अलग स्थानों पर संकलित कर लिये गये हैं।[२]

स्वरजनित इस असम्बद्धता का कोशकार को पूर्णतः ज्ञान था अतएव उन्होंने व्यंजनों को ही अक्षरानुक्रम का आधार माना है।[३] व्यंजनों का क्रम कुछ अपवादों

---

१. "......a and u; ee, e and i, o, oo, and ou, have been severally considered in the series, as one and the same but which as vowels including y preserve little or no rank except in their initial and final state alone...... The advantages of this plan are selfevident, because it makes every allowance for bad speakers and worse hearers by displaying in one connected view, all the vocables of the language that really are or may perceive with the same facility that he will comprehend the principles and economy of the whole, by bare inspection of the first letter, viz. a and u below......"

—गिलक्राइस्ट : ए वाकेबुलेरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० ५५।

२. वही, पृ० ८३ और ८६ पर।

३. "The consonants being less subject to change, perversion and ambiguity, are in a great measure constituted the surest gudies of the alphabetical arrangement here and as nearly as possible in the order of our own letters with the vowels also."

—वही, भूमिका, पृ० ५५।

को छोड़कर अन्यत्र सब स्थानों पर प्रायः निभाया गया है। ये अपवाद उन्हीं स्थलों पर हैं, जहाँ दो या कई अक्षरों के लिये एक ही अंग्रेज़ी अक्षर कुछ आकार परिवर्तन के साथ प्रयुक्त हुआ है। उदाहरण के लिये कोशकार ने त ट, थ ठ, द ड, र ड़, ध ढ, एवं न ण जैसी हिन्दी ध्वनियों के लिये एक ही अंग्रेज़ी अक्षर क्रमशः t, th, d, r, dh, व n—प्रयुक्त किया है। उपर्युक्त युग्मों में दूसरे प्रकार के अक्षरों के लिये अंग्रेज़ी अक्षरों को तिरछा कर दिया गया है। परन्तु इससे भी क्रम में अव्यवस्था ही उत्पन्न हुई है। एक स्थान पर 'बोड़ा' के बाद 'बोरा' (पृ० ६४) है तो दूसरी जगह 'बारी' के अनन्तर 'बाड़ी' (पृ० ६४), कहीं 'छूत' के पश्चात् 'छूट' (पृ० ७४) आया है, तो अन्यत्र 'बाट' के अनन्तर 'बात' (पृ०-६६)। इसके अतिरिक्त महाप्राण व अल्पप्राण ध्वनियों के सम्बन्ध में तो कोई निश्चित नियम है ही नहीं। फिर कोशकार ने एक पुछल्ला और लगाया है—वह यह कि कोई शब्द अंग्रेज़ी के किसी विशिष्ट अक्षर के अन्तर्गत न मिले तो उसके दूसरे अक्षरों के क्रम में भी ढूँढ़ने का प्रयास किया जाय[१] यद्यपि वर्णपरिवर्तन के ऐसे विशेष नियम स्पष्ट नहीं किये गये हैं।

अंग्रेज़ी अक्षरानुक्रम की इस पृष्ठभूमि में शब्द नियोजित किये गये हैं। अंग्रेज़ी अक्षरों में हिन्दी शब्द पहले बड़े अक्षर से आता है यदि शब्द के दो वैकल्पिक रूप हों तो दूसरा रूप भी साथ ही निर्देशित होगा। फिर अल्पविराम के अनन्तर उस शब्द के अंग्रेज़ी में समानार्थक शब्द दिये गये हैं। ये अर्थ केवल एक ही शब्द द्वारा नहीं, आवश्यकता पड़ने पर कई समान भाव वाले शब्दों द्वारा भी व्यक्त किये गये हैं। प्रत्ययान्त अंश, क्रिया, रूप या समस्त पद के द्योतक अंश, पहला अर्थ समाप्त हो जाने के पश्चात् कोष्टकों में एक डैश के बाद रखे गये हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

Hoga, Hyga—it is, may be, perhaps .
Bheetur, within, inside (—ana, or jana,) to enter in, (— ee) internal.
Lekhuk, accountant, clerk, writer.

---

१. When any word cannot be observed under one consonant, say l or b it then becomes requisite to substitute n r m s w or o where it will probably appear: an observation applicable to all inter-changeable letters but for which no provision can well be made in the compendious system here, which is in most parts so much sounded on and regulated by our Alphabet entirely.

—गिलक्राइस्टःए वाकेबुलेरी हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० ५५।

उर्दू वर्णक्रम—टेलर कृत 'ए डिक्शनरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' में उर्दू के ३४ अक्षरों का वर्णक्रम व्यवहृत हुआ है। जिनमें से, हे, ख़े ज़्वाल, ज़े झे, स्वाद, ज़्वाद, तोय, ज़ोय, ऐन, ग़ैन, फ़े तथा क़ाफ़ केवल अरबी या फ़ारसी शब्दों के लिये प्रयुक्त हुये हैं। अक्षरों का क्रम शुद्ध उर्दू वर्णानुक्रम पर नियोजित है।

अक्षरानुक्रम में पहले शब्द से सम्बद्ध भाषा का पहला अक्षर[1] निर्दिष्ट है फिर शब्द नस्ता'लीक़ लिपि में अंकित है। यदि शब्द संस्कृत का तत्सम या तद्‌भव रूप है तो उसको देवनागरी अक्षरों में भी अंकित कर, फिर प्रत्येक शब्द रोमन अक्षरों में भी उल्लिखित है। अल्प विराम के पश्चात् शब्द के व्याकरणिक संकेत और उसके पश्चात् आवश्यकतानुसार शब्दों की व्युत्पत्ति देकर शब्द के अंग्रेज़ी में अर्थ दिये गये हैं। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं:

S अकाल **ukal,** n. s. m. 1. A famine, a general scarcity. 2. Unseasonableness, extremity, pinch, premature. (अ priv. and काल time) अकाल वृष्टि ukal-brishti, untimely rain.

H सांडनी **sandnee,** or **sanrnee,** n. s. f. A female camel **sandnee suwar,** one who rides on a camel.

कोश में प्रयुक्त मुहावरे, लोकोक्ति व साहित्यिक उद्धरणों के सम्बन्ध में भी यही योजना काम में लाई गई है। प्रत्येक मुहावरा पहले उर्दू अक्षरों में लिखा गया है फिर अंग्रेज़ी अक्षरों में, जिसके बाद अंग्रेज़ी भाषा में उसका अर्थ दिया गया है। उर्दू कवियों के उदाहरणों के अतिरिक्त कबीर, तुलसी या बिहारी की रचनाओं से दिये गये उदाहरण भी इसी शैली में दिये गये हैं। एक उदाहरण पर्याप्त होगा:

---

१. भाषा सम्बन्धी कुल संकेताक्षर इस प्रकार हैं:

H=	हिन्दी या हिन्दुस्तानी	U=	उज़बेगी
S=	संस्कृत	L=	लैटिन
A=	अरबी	T=	तुर्की
P=	फ़ारसी	G=	ग्रीक
E=	इंग्लिश	Fr.=	फ्रेन्च
B=	बंगाली	Port=	पुर्तगाली
		Chin=	चीनी

२. हिन्दु० I, पृ० १०३।
३. हिन्दु० II, पृ० १७७।

S आतप Atup, n. s. m. Sun-shine (Root, तप tup to be heated—to glow) Thus:

> ओढें सोहें पीत पट स्याम सलोने गात।
> मनो नील मन सैल पर आतप पर्‌यो प्रभात ।।

orhen sohen peet put syam sulone gat, muno neel mun suel pur atup puryo prubhat. (He) Krishn wears an elegant yellow garment on his delicate black body. As on a sapphire mountain falls the sunshine of the morning.

काव्य साहित्य से दिये गये उदाहरणों के सम्बन्ध में इतना और इंगित करना आवश्यक है कि जो शब्द उद्धरणों में आया है, वह स्पष्टता के लिये टेढ़े अक्षरों में मुद्रित किया गया है। उपर्युक्त दोहे में 'आतप' शब्द ऐसा ही है। शब्दों से सम्बद्ध इतर प्रसंग बड़े कोष्टकों के भीतर रखे गये हैं।

टेलर द्वारा प्रयुक्त यह नियोजन-पद्धति कुछ समय तक परवर्ती कोशकारों के लिये मार्ग-निर्देशन का कार्य करती रही। शेक्सपियर, टामसन, फोर्बस, फैलन् व प्लाट्स आदि कोशकारों ने थोड़े परिवर्तन करके अपने हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश इसी शैली में नियोजित किये, जिसके लिये वे टेलर के ऋणी हैं।

गिलक्राइस्ट और टेलरकृत कोशों में शब्द-नियोजन पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन करने पर निम्नलिखित विशेषताएँ दृष्टिगोचर होती हैं—

(१) गिलक्राइस्ट व टेलर दोनों के 'हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश' इनके द्वारा रचे गये 'अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोशों' के विलोम रूप हैं। जो शब्द 'अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोश' में मूल रूप से आलोच्य थे वे 'हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश' में अर्थ बन गये हैं और जो वहाँ अर्थ थे वे इनमें आलोच्य बन गये हैं।

(२) हिन्दी शब्दों को दोनों कोशों में रोमन अक्षरों में लिपिबद्ध किया गया है, परन्तु गिलक्राइस्ट ने अंग्रेजी अक्षरों को आधार माना और टेलर ने उर्दू को।

(३) गिलक्राइस्ट ने केवल अंग्रेज़ी अक्षरों में ही हिन्दी शब्द दिये है, परंतु टेलर ने उर्दू व देवनागरी अक्षरों का माध्यम भी लिया है।

(४) टेलर में शब्दों का भाषा चिह्न भी अंकित हैं, परंतु गिलक्राइस्ट ने ऐसी कोई व्यवस्था नहीं की।

(५) टेलर में मूल शब्दों के बाद व्याकरणिक संकेत भी दिये गये हैं, परन्तु गिलक्राइस्ट में इसका अभाव है।

निष्कर्ष यह है कि शब्द-नियोजन की दृष्टि से टेलर का कोश गिलक्राइस्ट की अपेक्षा अधिक नियोजित व क्रमपूर्ण है। इसलिये वह परवर्ती कोशकारों के लिये भी अनुकरण का विषय रहा ।

देवनागरी वर्णक्रम—इस शैली के दो स्वरूप उपलब्ध होते हैं—(१) हिन्दवी कोश का वर्णक्रम और (२) एकाक्षरी कोशों का वर्णक्रम।

हिन्दवी भाषा का कोश—पादरी आदमकृत यह कोश देवनागरी के अक्षरानुक्रम में नियोजित हिन्दी का सर्वप्रथम एवम् आलोच्य कोशों में एकमात्र ऐसा कोश है। पिछले परिच्छेदों में संस्कृत के कुछ ऐसे कोशों का प्रसंग आया है, परन्तु उनमें व्यवहृत यह योजना केवल आद्य तथा अन्त्य वर्ण तक ही सीमित रही है। पादरी आदम ने इस पद्धति जनित असुविधा के निराकरणार्थ पाश्चात्य कोशों से प्रेरणा ग्रहण कर देवनागरी वर्णक्रम पर आधारित कोश निर्मित किया। प्रस्तुत कोश में हिन्दी शब्द आधुनिक हिन्दी कोशों की भाँति देवनागरी अक्षरों में लिखे गये हैं, जिनके अर्थ भी देवनागरी अक्षरों में ही हैं।

कुछ विशिष्टताएँ

यद्यपि यह प्राचीनतम कोश शुद्ध देवनागरी वर्णक्रम पर आधारित है, परन्तु इसमें कुछ अक्रमता भी पायी जाती है। यह अक्रमता प्रमुख रूप से अनुस्वार, चन्द्रविन्दु व पंचम वर्ण से संबंधित है। अनुस्वार व चन्द्रविन्दु के प्रयोग के विषय में लेखक कोई निश्चित धारणा नहीं बना सका । 'फ़ँदा', 'बँश' तथा 'वँशलोचन' में चन्द्रविन्दु का प्रयोग किया गया है, तो 'अंधेरा' में केवल अनुस्वार का। फिर जितने शब्द अनुस्वार या चन्द्रविन्दु से आये हैं, वे सभी पंचम वर्ण में भी प्रयुक्त हैं। परिणामस्वरूप 'कंजर' शब्द एक बार तो 'क' के प्रारम्भ में संकलित किया गया है और पुनः 'कञ्जर' के रूप में 'ञ' के क्रम में भी।

इसके अतिरिक्त अनुस्वार एवम् चन्द्रविन्दु सम्बन्धी उपर्युक्त क्रम भी पूर्णतः नहीं निभाया गया है, 'दहन' पहले आया है और 'दहनं' बाद में। 'बूआ' तथा 'बूई' के पश्चात् 'बूंद', 'बूंदा', 'बूंदी' संकलित किये गये हैं । इसी प्रकार 'मा', 'माई' के बाद 'माँ', 'माँग' व 'मामी' तथा 'मामू' के पश्चात 'माँया' शब्द की नियोजना है।

पुनः 'त्र' और 'ज्ञ' को तो आधुनिक कोशों की ही भाँति क्रमशः 'त' और 'ज' के अन्तर्गत लिया गया है, परंतु 'क्ष' से प्रारम्भ होने वाले शब्द 'ह' के अन्त में आये हैं। मध्य में भी यही पद्धति प्रयुक्त हुई है, जिसके फलस्वरूप इहलोक के बाद 'इक्षु' तथा 'ईहा' के पश्चात 'ईक्षण' शब्द नियोजित है।

निष्कर्ष यह है कि यद्यपि पादरी आदम देवनागरी वर्णक्रम की एक निश्चित पद्धति का आविष्कार कर चुके थे, फिर भी उसमें दोष रह ही गये जिनका निवारण परवर्ती कोशों में हुआ।

अक्षरानुक्रम की इस पृष्ठभूमि पर आधारित उक्त कोश में शब्द पहले हिन्दी अक्षरों में लिखा गया है, अल्प विराम के पश्चात् संक्षेप में व्याकरणिक संकेत देकर फिर उसके हिन्दी में अर्थ दिये गये हैं। निम्न उदाहरण पर्याप्त होंगे :

चन्द्रमुखी (गु०) जिसका मुख चन्द्र सरीखा है अर्थात् अति सुन्दरी।
पर (गु०) दूसरा, दूर, पराया, बिराना। अ० ऊपर, द्वारा उपरान्त।
रास (सं० पु०) गोपियों के साथ श्रीकृष्ण जी की क्रीड़ा, पर्वविशेष, शशि। स्त्री० बाग, सन्देह, ले-पालन।

एकाक्षरी कोशों में देवनागरी वर्णक्रम—देवनागरी वर्णक्रम का एक अन्य रूप कनककुशलकृत लखपतमंजरीनाममाला, वीरभाण की एकाक्षरीनाममाला, उदयराम विरचित एकाक्षरीनाममाला वा फ़कीरचन्दकृत सुबोध-चन्द्रिका में दृष्टिगत होता है। वीरभाणकृत एकाक्षरीनाममाला में स्वरों के अतिरिक्त देवनागरी व्यंजनों का कोई क्रम नहीं है। क के ही अन्तर्गत कं तथा कु अक्षर के भी अर्थ दिये गये हैं। इसी प्रकार अन्य वर्णों के संबंध में भी अव्यवस्था दीख पड़ती है।

उदयरामकृत एकाक्षरीनाममाला तथा फ़कीरचन्द विरचित सुबोधचन्द्रिका में एकाक्षर वर्णानुक्रम के अनुसार रखे गये हैं। स्वरों में ऋ ॠ तथा ऌ ॡ दोनों सम्मिलित हैं। उ ऊ, दोनों में दो बार आये हैं। दोनों कोशों में व्यंजनों के एकादश स्वरान्त रूपों (यथा—ख खा खि खी खु खू खे खै खो खौ खं) के अर्थ क्रमश: दिये गये हैं, केवल विसर्गान्त अक्षर नहीं हैं। उदयरामकृत एकाक्षरीनाममाला में चों, झौ, ढं, थं, ण के अर्थ नहीं हैं, तथा ह के पश्चात् एक दोहे में ळ के अर्थ भी दिये गये हैं। ळ के अनन्तर क्ष के स्वरान्त रूपों के अर्थ हैं और अन्त में श्री के। त्र और ज्ञ के अर्थ नहीं हैं। सुबोधचन्द्रिका में त्र तथा ज्ञ को छोड़कर शेष सभी स्वरों वा स्वरान्त व्यंजनों के अर्थ दिये गये हैं। झि, ढि, तथा धि वर्णों के अर्थ केवल इसी कोश में हैं। एकाक्षरी में ळ है, तो सुबोध-चन्द्रिका में लं। अव्यय एकाक्षरों के भी अर्थ दोनों के अंतिम अंश में दिये गये हैं किन्तु उनमें कोई सुव्यवस्थित क्रम नहीं मिलता।

हिन्दवी कोश और एकाक्षरी कोश—आदमकृत हिन्दवी कोश तथा इन एकाक्षरी कोशों की शब्द-योजना की तुलना करें तो ज्ञात होगा कि हिन्दवी कोश में

कई वर्णों से निर्मित शब्द हैं और एकाक्षरी में केवल एक वर्ण। पहले में विसर्ग-युक्त व्यंजन भी हैं परन्तु एकाक्षरी कोश में ऐसा नहीं। हिन्दवी कोश शब्दों के व्याकरणिक रूप भी देता है परन्तु एकाक्षरी कोशों में इस व्यवस्था का प्रश्न ही नहीं उठता। आदम का कोश पर्याप्त मात्रा में आधुनिक कोशों का प्रारम्भिक रूप माना जा सकता है, परन्तु एकाक्षरीकोश संस्कृत कोशों की परम्पराबद्ध परिपाटी का अनुसरण करते हैं जिनका आधार दोहा छन्द है और जिनमें कोश की अपेक्षा कविता की मात्रा अधिक है। प्रथम संदर्भ-ग्रन्थ है और दूसरे अनेक अर्थों के द्योतक वर्णों का छन्द-बद्ध संग्रह।

(२) अन्त्य वर्णानुसारी पद्धति

संस्कृत कोशों में प्रयुक्त वर्णानुक्रम पद्धति का विवेचन करते समय यह इंगित किया गया था कि अनेकार्थ कोशों में अधिकांशतः इसी शैली का व्यवहार किया गया है। आलोच्य कोशों में केवल भिखारीदासकृत नामप्रकाश के तृतीय-काण्डान्तर्गत अनेकार्थ वर्ग में ही अन्त्य वर्णानुसारी योजना[1] व्यवहृत हुई है। अमरकोश के 'अनेकार्थ वर्ग' के ही अनुकरण पर प्रस्तुत कोश में 'क' से समाप्त होने वाले शब्द (कान्त)—यथा पंचक, करक, विनायक, वृश्चिक और प्रतीक—एक क्रम में मिलते हैं एवं 'र' से समाप्त होने वाले (रान्त)—यथा अभिहार, विष्टर, परिवार, सार, दुरोदर, मत्सर—दूसरे क्रम में मिलेंगे।

नामप्रकाश के इस अनेकार्थ अंश में अपनाई गई इस अंत्य वर्णानुक्रम योजना के अन्तर्गत प्रमुखतः अकारान्त व्यंजनों से समाप्त होने वाले शब्द ही अधिक आये हैं, व्यंजनों में भी ङ, छ, झ, ञ, ड़ व ढ़ से समाप्त होने वाले शब्द योजना-क्रम में नहीं हैं। अकारान्त व्यंजनों के अतिरिक्त स्त्रीलिंग वाची आकारान्त शब्द यथा—गनिका, शिखा, त्वष्टा, छाया; इकारान्त शब्द—यथा, शुचि, शक्ति; एवं ईकारान्त शब्द जैसे हरिनी, भोगवती; उकारान्त यथा—धूमकेतु; व वधू आये हैं, परन्तु ऐसे शब्दों की संख्या अपेक्षाकृत न्यून है।

परन्तु एक ओर अमरकोश का अनुसरण और दूसरी तरफ शब्दों के हिन्दी-करण की प्रवृत्ति ने कुछ व्यतिक्रम उपस्थित कर दिया है। लघुका (लघुः) शब्द को 'घ' से समाप्त होने वाले (घान्त) शब्दों के अन्तर्गत एवं वाजी (वाजिन्) को 'न' से अन्त होने वाले (नान्त) शब्दों के साथ रखना इसी प्रवृत्ति के परिणामस्वरूप है। इसी प्रकार भ्रून, कन, वान, गुन जैसे शब्द 'ण'

१. कादि वर्न द्वय अन्त क्रम समझो बुद्धि समर्थ।
इक इक शब्दनि को कही प्रगटि अनेकनि अर्थ॥

—ना० प्र०, पृ० ३०५।

से समाप्त होने वाले (णान्त) शब्दों के मध्य आये हैं तो उद्यान, व्युत्थान, व्यसन एवं कौपीन 'नान्त' शब्दों के अन्तर्गत।

संयुक्त अक्षरों में पात्र, पत्र को 'रान्त' के अन्तर्गत समाहृत किया है तो क्षेत्रज्ञ, विज्ञ, कालज्ञ व दोषज्ञ को 'जान्त' के साथ। इसी प्रकार 'क्षान्त' यथा—अक्ष व अध्यक्ष को 'षान्त' के अन्तर्गत ही लिया है। संस्कृत में विश्वकोश, मंखकोश व अजयकोश में 'क्षान्त' पदों का पृथक् संकलन है, 'षान्त' के साथ नहीं। पाणिनीय व्याकरण के अनुसार 'क्ष' स्वतन्त्र वर्ण नहीं है परन्तु प्रयोगरत्न-माला व्याकरण इसको स्वतंत्र वर्ण मानता है।

(३) आद्य व अन्त्य दोनों वर्णों के अनुसार शब्द-संकलन

कोशों में आद्य और अंत्य वर्ण दोनों के अनुसार शब्द-संकलन होने से शब्द के स्वरूप-ज्ञान में विपर्यय होने की बहुत कम संभावना रहती है। शब्दों के ब-व आदि वर्णों में यदि उच्चारण विपर्यास हो जाय तो परवर्ती काल में यह पता लगाना दुष्कर हो जाता है कि शब्द में 'ब' है या 'व', परन्तु आद्यन्त-वर्ण नियमन के फलस्वरूप ऐसा सन्देह स्वतः निरसित हो जाता है। इसीलिये मेदिनी, विश्व व रभस कोश[1] में यह पद्धति अपनाई गई है। अमरकोश के उदुम्बर[2] शब्द की व्याख्या करते समय भानु जी दीक्षित ने इसी युक्ति का प्रयोग किया है।[3] संस्कृत कोशों में प्रचलित इस नियोजन प्रणाली के ही अनुकरण पर मिर्ज़ाखाँ ने अपने तुहफ़तुलहिन्द में संकलित 'लुग़तए-हिन्दी' का शब्द-नियोजन इसी पद्धति पर किया। विवेचन सुविधा के लिए उक्त लुग़त की शैली को इन तीन स्पष्ट वर्गों में बाँट कर देखा जा सकता है: (१) आद्य वर्ण, (२) अन्त्य वर्ण और (३) मध्यम वर्ण।

आद्यवर्ण—आद्य वर्ण के लिये मिर्ज़ाखाँ ने निम्नलिखित पन्द्रह फ़ारसी ध्वनियों का माध्यम अपनाया:

अलिफ़्, बाये-मुवह्हदा, बाय-अजमी, ताये-फ़ौक़ानी, जीमे-ताज़ी, जीमे-अजमी, दाल, रा, सीन-मुह्मलः 'क़ाफ़े-ताज़ी, क़ाफ़े अजमी, लाम, मीम, नून, एवं हा। इन अक्षरों में से बाये-मुवह्हदा, बाये-अजमी, जीमे-ताज़ी, जीमे-अजमी, क़ाफ़े-ताज़ी, व क़ाफ़े-

---

१. "तालव्यादिमूर्धन्यान्तेषु रभसः" —अमर व्याख्या सुधा, पृ० ३४२।

२. अमरकोश २।४।२२।

३. "मुकुटस्तु मदिनीसंमत्या ट वर्गतृतीयमध्यमप्याह, तन्न तत्र मध्यम वर्ण नियमाभावात् आद्यन्तयोरेव नियमात्"
—अ० को० टीका, भानुजी दीक्षित, पृ० १३५।

अजमी के दो-दो उपविभाग किये हैं—ख़फ़ीफ़ा (हलका-अल्पप्राण) एवं सक़ीला (भारी-महाप्राण)। इसी प्रकार ताये-फ़ौक़ानी एवं दाल के भी चार उपभेद हैं: खफ़ीफ़ा (हलका-अल्पप्राण), सक़ीला (भारी-महाप्राण), मुसक्क़िला (अधिक भारी) तथा अस्क़ल (सबसे भारी)। शेष अक्षर अलिफ़,—रा, लाम, मीम, नून तथा हा के उपविभाग नहीं किये गये हैं।

फ़ारसी ध्वनियों को हिन्दी ध्वनियों की दृष्टि से परिवर्तित करने के फलस्वरूप तुहफ़त् का यह क्रम अत्यन्त जटिल सा प्रतीत होता है परन्तु सूक्ष्मता से पर्यवेक्षण करने के उपरान्त उसमें अन्तर्निहित क्रम स्पष्ट हो जाता है। सुकरता के लिये उपर्युक्त क्रम को हिन्दी ध्वनियों के माध्यम से इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है:

अ (जिसके अन्तर्गत अन्य स्वर भी हैं), ब, भ, प, फ, त, थ, ट, ठ, ज, झ, च, छ, द, ध, ड, ढ़, र, स, क, ख, ग, घ, ल, म, न, एवं ह।

तुहफ़त् का कोश अंश उपर्युक्त सत्ताईस अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले सत्ताईस 'बाब' (अध्याय) में विभाजित है।

प्रत्येक अक्षर का क्रम से एक भिन्न 'बाब' है जिसमें उस अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्द हैं। उदाहरण के लिये 'बाबे-बाये-अजमीये-सक़ीला' (महाप्राण 'प'='फ' का अध्याय) के अन्तर्गत 'फ' से प्रारम्भ होने वाले शब्द—फाटक, फाँक, फेन, फंकी, फुँग (फुंगी), फरकब (पृ० २२४ पी०—२२५ मू०) शब्द संकलित किये गये हैं।

अन्त्य वर्ण—एक अक्षर से प्रारम्भ होने वाला बाब विभिन्न 'फ़स्ल' (प्रकरण) में विभाजित है। उपर्युक्त सताईस बाबों के आधार सताईस अक्षर विभिन्न फ़स्लों के भी आधार हैं। प्रत्येक अक्षर का भिन्न-भिन्न फ़स्ल है जैसे 'फ़स्ले नून' ('न' का प्रकरण) या 'फ़स्ले रा' ('र' का प्रकरण)। ये फ़स्ल संकलित शब्दों के अंत्य अक्षर के प्रतीक हैं। उदाहरण के लिये 'बाबे-बाये-मुवह्हदा ये-खफ़ीफ़ा' (हलका 'ब' का अध्याय जिसमें 'ब' से प्रारम्भ होने वाले शब्द संकलित हैं), के 'फ़स्ले सीन मुहमल:' 'स' से समाप्त होने वाले शब्दों का प्रकरण) विभाग में बास, बिदेस, बिस, बिस्वास, बिलास, बनारस, बिनास, बनमानुस, व बैस (पृ० २०६ पी०—२०७ मू०) शब्द संगृहीत किये गये हैं।

फ़स्लों के सम्बन्ध में इतना निर्देश करना और आवश्यक है कि इनकी कुल संख्या बाबों की अपेक्षा अधिक है। कोशकार ने 'य' (याये तह्तानी) अक्षर को 'ज' बनाकर उसे 'ज' (जीमे-ताज़ीये-खफ़ीफ़ा) के अन्तर्गत लिया है। इसी प्रकार 'व' (वाव) से प्रारम्भ होने वाले शब्दों को भी 'ब' बना कर उनको 'ब' अध्याय (बाबे-बाये-मुवह्हदाये-खफ़ीफ़ा) के अन्तर्गत लिया गया है। इस नियोजन पद्धति

के फलस्वरूप 'य' (याय तहतानी) तथा 'व' (वाव) का भिन्न बाब नहीं बनाया गया। परन्तु फ़स्ल के सम्बन्ध में ऐसी व्यवस्था नहीं की गई है। मिर्ज़ा ने इनको अलग-अलग फ़स्लों में नियोजित किया है। उसका कारण एक यह भी है कि ये अक्षर हिन्दी के कुछ स्वरों को स्पष्ट करने के लिये भी प्रयुक्त किये गये हैं। देवनागरी के स्वर—ई, ए, ऐ—के लिये—यायेतहतानी तथा उ, ऊ, ओ, औ के लिये 'वाव' अक्षर प्रयुक्त हुये हैं। अतएव इन स्वरों से समाप्त होने वाले शब्द उपर्युक्त अक्षरों के फ़स्ल के अन्तर्गत आयेंगे। उदाहरण के लिये 'बाबे-ताये-फ़ौक़ानीये-मुसक्क़िला' (अधिक भारी 'त' =अर्थात् 'ट' से प्रारम्भ होने वाले शब्दों का अध्याय) के अन्तर्गत 'फ़स्ले वाव' (व, उ, ऊ, ओ, औ से समाप्त होने वाले शब्दों का प्रकरण) में टापू, टेसू, तथा टेव (पृ० २३० मू०) शब्द संगृहीत किये गये हैं। इसी प्रकार 'बाबे अलिफ़' के अन्तर्गत 'फ़स्ले याय तहतानी' (य, ई, ए, ऐ से समाप्त होने वाले शब्दों का प्रकरण) में आर्थी (अर्थी), आरसी, अबिनासी, अंगी, इन्द्री (पृ० २०० मू०) शब्द संकलित हैं।

प्रत्येक 'बाब' के अन्तर्गत उपर्युक्त सभी अक्षरों के फ़स्ल आ गये हों ऐसा भी नहीं है। प्रत्येक अध्याय में कितने प्रकरण आये हैं, यह शब्दों के अन्तिम अक्षरों की संख्या पर ही निर्भर रहा है। उदाहरण के लिये 'ब' के अध्यायान्तर्गत चौबीस प्रकरण आये हैं, परन्तु 'ठ' अध्याय में केवल मात्र ग्यारह प्रकरण हैं।

मध्यम वर्ण—संस्कृत कोशों में यद्यपि आद्य और अन्त्य दोनों वर्णों के आधार पर शब्द-संकलन प्रणाली प्रचलित रही है, परन्तु आज तक ज्ञात संस्कृत कोशो में मध्यमवर्ण ज्ञापनात्मक रीति का व्यवहार नहीं दिखाई देता। परन्तु तुहफ़त् के प्रत्येक फ़स्ल में संकलित शब्द के मध्यस्थ वर्ण भी पूर्ण रूप से फ़ारसी अक्षरों के अनुक्रम में संकलित किये गये हैं। अतएव मिर्ज़ा खाँ का इस दिशा का प्रयास एक मौलिक एवं वैज्ञानिक भित्ति पर आधारित था जिसका परवर्ती काल में अनुकरण हुआ।

उपर्युक्त योजना के आधार पर यदि पाठक को कोई शब्द उक्त कोश में खोजना हो तो सर्वप्रथम शब्द का प्रारम्भिक अक्षर ध्यान में लाना होगा। फ़ारसी अक्षरों के अनुक्रम को सदैव विचार में रखते हुये उस अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों का अध्याय देखना पड़ेगा। इसके पश्चात् पहले शब्द के अंत्य वर्ण तथा तत्संबंधी प्रकरण खोजकर पुनः मध्यस्थ वर्णों के फ़ारसी अनुक्रम पर ध्यान देने से ही वांछित शब्द मिल सकेगा। अधिक स्पष्टता के लिये एक अध्याय की तालिका प्रस्तुत है :

'त' अक्षर से प्रारम्भ होने वाले शब्दों का अध्याय

(बाबे–ताये–फ़ौक़ानीये–ख़फ़ीफ़ा)

हस्तलिखित प्रति, पृष्ठ २२५ पीठ से २२८ पीठ तक

फ़स्ल (शब्द के अंतिम अक्षर का प्रकरण)	१	२	३	४
	फ़स्ले-अलिफ़ (आ)	बाये-अजमीये ख़फ़ीफ़ा (प)	बाये-अजमीये-सक़ीला (फ)	ताये-फ़ौक़ानीये ख़फ़ीफ़ा (त)
	तारा, तपस्या, तनुजा	ताप, तप	तड़फ	तात, तपत, तिक्त

फ़स्ल (शब्द के अन्तिम अक्षर का प्रकरण)	५	६	७	८
	ताये-फ़ौक़ानीये सक़ीला (थ)	ताये-फ़ौक़ानीये मुस्क़िला (ट)	जीमे-ताज़ीये-ख़फ़ीफ़ा (ज)	जीमे-अजमीये-ख़फ़ीफ़ा (च)
	तिय, तीरथ, तन्थ	तट, तगट	तज, तनुज	तच

	९	१०	११	१२	१३
फ़स्ल (शब्द के अन्तिम अक्षर का प्रकरण)	दाले-मुसक्किला	रा	सीने-मुहमलः	काफ़े-ताज़ीये-ख़फ़ीफ़ा	लाम
	(ड)	(र)	(स)	(क)	(ल)
	ताण्ड, तुण्ड	तार, तमचुर, तीर तेवर	तीस	तारक, तिलक, तमक	ताल, तिल, तूल

	१४	१५	१६	१७	१८
फ़स्ल (शब्द के अन्तिम अक्षर का प्रकरण)	मीम	नून	व्राव	हा	याये-तहतानी
	(म)	(न)	(व, ऊ, ओ)	(ह)	(य, ई)
	तिग्म, तम	ताजन, तारन, तरन	ताव, तारू, तू, तो	तराह, ताहि	तिय तापसी, तरुनाई तुरी, तनी

उपर्युक्त तालिका से स्पष्ट हो जायगा कि कोशकार को ऐसे शब्द नहीं मिले जो त से आरम्भ, तथा ब, भ, ठ, झ, छ, द, ध, ढ़, ख, ग, घ से समाप्त हों। इसलिये इन अक्षरों के द्योतक 'फ़स्ल' का प्रसंग उपर्युक्त तालिका में नहीं आया है।

इसके अतिरिक्त तालव्य 'श' (सीन मोजमः) को दन्त्य 'स' (सीन मुहमलः) के अन्तर्गत, 'त्र' (त+राय मुत्तसिलः) को तायें-फ़ौक़ानीये ख़फ़ीफ़ा' के अन्तर्गत तथा ड़ (राय मुसक्ला) को 'र' के प्रकरण में संकलित किया गया है।

आलोच्य कोशों में तो यह संकलन योजना अत्यन्त स्पष्ट व वैज्ञानिक है ही, आधुनिक कोशों की दृष्टि से भी यह परम महत्त्वपूर्ण व उपादेय प्रतीत होती है। अत्यधिक श्रम व मनन के उपरान्त मिर्ज़ाख़ाँ ने इस कोश में संगृहीत शब्दों के लिये जिस नियोजन-पद्धति का आविष्कार किया, वह साहित्यिक व ऐतिहासिक क्षेत्र में ही नहीं वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यधिक मूल्यवान है।

एक दोष—तुहफ़त् में दीर्घ स्वर आ, ई, ऊ को छोड़कर लघु स्वर इ तथा उ के लिये कोई भिन्न प्रकरण नहीं दिया गया जिसके फलस्वरूप इन स्वरों से समाप्त होने वाले शब्द व्यंजनांत ही हो गये हैं। कुछ अपवादों जैसे ताहि, तूहि (पृ० २२८ मू०) को छोड़कर शेष सभी लघु स्वरांत शब्दों का रूप अकारान्त या व्यन्जनांत है। छब[१] (छबि), भूम (भूमि)[२], कप (कपि)[३], निध (निधि)[४], तथा रिप (रिपु)[५], कट (कटु)[६], रघ (रघु)[७] इस प्रकार के कुछ द्रष्टव्य उदाहरण हैं। इसके अतिरिक्त कुछ आकारान्त अनुनासिक शब्द यथा रामा (२४८ पी०), सुदामा (२५७ पी०), तिलोतमा (२२७ पी०), सूरमा (२५७ पी०), बलमा (२१० पी०), जमुना (२२३ पी०) न तो अपने अन्तिम अक्षर 'म' प्रकरण के अन्तरगत संकलित हैं और न ही उनको आकारान्त शब्दों के साथ फ़स्ले-अलिफ् में संगृहीत किया गया है। इसके विपरीत ये सभी शब्द 'न' से समाप्त होने वाले शब्दों के प्रकरण (फ़स्ले नून) के अन्तर्गत समाहृत किये गये हैं। सामान्य पाठक इससे भ्रमित हो सकता है। सानुनासिकों के अतिरिक्त कुछ अन्य शब्द—जैसे कन्या (२६६) और भादौं (२१५ मू०) भी 'न' अक्षर से समाप्त होने वाले शब्दों के प्रकरण (फ़स्ले नून) में संकलित हैं जिसको संकलन पद्धति की दृष्टि से अधिक नियमित वा वैज्ञानिक नहीं कहा जा

---

१. तुह०, पृ० २३९ पी०।
२. वही, पृ० २१५ मू०।
३. वही, पृ० २६१ मू०।
४. वही, पृ० २८४ मू०।
५. वही, पृ० २४७ मू०।
६. वही, पृ० २६१ पी०।
७. वही, पृ० २४८ मू०।

सकता। यह दूसरी बात है कि मिर्ज़ा ने सामान्य बोलचाल के उच्चारण के स्वरूप को ही इस कोश में अक्षुण्ण रखा है।

तुहफ़तुलहिन्द में प्रयुक्त शब्द-नियोजन-प्रणाली की इस पृष्ठभूमि पर आधारित पहले हिन्दी शब्द फ़ारसी अक्षरों में आता है, जिसको हस्तलिखित प्रति में आसानी से पहचानने योग्य बनाने के लिये लाल स्याही से रेखांकित कर दिया गया है। उसके पश्चात शब्द का उच्चारण फ़ारसी भाषा में दिया गया है। तदनन्तर उस शब्द के दूसरे हिन्दी शब्द या फ़ारसी शब्द व वाक्य-खण्ड या वाक्यों में आवश्यकतानुसार अर्थ दिये गये हैं। अर्थ देने के पश्चात ही शब्द के दूसरे नाम या उच्चारण भी प्रस्तुत हैं। हस्तलिखित प्रति में प्रत्येक बाब या फ़स्ल के शीर्षक भी लाल स्याही में अंकित हैं। 'ब' अध्याय (बाबे-बाये-मुवह्हदा) के अन्तर्गत 'न' प्रकरण (फ़स्ले नून) से एक मूल उदाहरण प्रस्तुत है, जिसका अनुवाद टिप्पणी[1] में दे दिया गया है :

बृन्दाबन **बकस्रे अव्वल व राये मुत्तसिलः व नूने मुनव्वनः व दाले ख़फ़ीफ़ः मम्दूदः व बाये मुवह्हदः ख़फ़ीफ़ः मफ़तहः नामे सहराये मौज़ऐस्त मश्हूर दर नवाहिये** मथरा **कि** कान्ह **दर आँ गाव मीचरानीद व आँ रा दर मुतआरफ़** बृन्दाबन **गोयन्द।**

तुहफ़तुलहिन्द एवम् टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश के शब्द-नियोजन का तुलनात्मक अध्ययन :

(१) दोनों कोशों में क्रम फ़ारसी-अरबी अक्षरों का है परन्तु मिर्ज़ाख़ाँ ने केवल पन्द्रह फ़ारसी ध्वनियों का उपयोग किया जबकि टेलर ने चौंतीस फ़ारसी, अरबी व उर्दू अक्षरों को अपने क्रम का आधार बनाया, भले ही कुछ ध्वनियाँ केवल अरबी-फ़ारसी अक्षरों के लिये व्यवहृत हुई हैं।

(२) तुहफ़त् में हिन्दी प्रवृत्ति के अनुकूल एक ही फ़ारसी ध्वनि के कई भेदोपभेद बनाकर उन अक्षरों से प्रारम्भ होने वाले शब्दों को एक विशिष्ट अध्याय के

---

१. ब्रिन्दाबन—(इस शब्द के) पहले अक्षर ('ब'—जिसका यह अध्याय है—का उच्चारण) 'इ' स्वर के साथ करें, 'र' को (भी इसी पहले अक्षर के साथ) संयुक्त रूप से (पढ़ा जाय)। 'न' अनुनासिक एवं 'द' हलका है जिसमें 'आ' की मात्रा लगी है, एक बिन्दु वाला 'ब' के साथ 'अ' स्वर भी संयुक्त है (एवं 'न', जिस प्रकरण के अन्तर्गत यह शब्द आया है)। (अर्थ—) यह उस प्रसिद्ध जंगल व भूखण्ड का नाम है जिसके मध्य में मथुरा स्थित है (और) जहाँ कान्ह (कृष्ण) अपनी गायें चराया करते थे। सामान्य बोलचाल में इसको बिन्द्राबन नाम से भी पुकारते हैं।

—तुह०, पृ० २१० मू०।

अन्तर्गत संकलित किया गया है। उदाहरण के लिये समस्त अल्पप्राण व महा-प्राण ध्वनियों से प्रारम्भ या समाप्त होने वाले शब्द एक भिन्न अध्याय या प्रकरण के अन्तर्गत होंगे। 'ज' से आरम्भ होने वाले शब्द एक स्थान पर हैं तो 'झ' के दूसरे स्थान पर। परन्तु टेलर ने मूल फ़ारसी-अरबी या उर्दू ध्वनि के साथ 'हे' लगाकर उसको महाप्राण बनाते हुये, अल्पप्राण के साथ ही खिचड़ी बना दिया है। इस संबंध में यह कोश गिलक्राइस्ट की शैली का अधिक अनु-करण करता है। दोनों में 'ज' तथा 'झ' से प्रारम्भ होने वाले शब्द एक ही स्थान पर संकलित हैं।

(३) तुहफ़त् में आद्य, मध्य वर्ण के अतिरिक्त अन्त्य वर्णक्रम पर भी शब्दों की नियोजना की गई है परन्तु हिन्दुस्तानी कोश में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है, उसका क्रम आधुनिक कोशों के समान आद्य व मध्य वर्ण तक ही सीमित है।

(४) तुहफ़त् में हिन्दी शब्द केवल फ़ारसी (नस्ता'लीक़) लिपि में अंकित हैं, परन्तु हिन्दुस्तानी कोश में फ़ारसी-अरबी-उर्दू के अतिरिक्त प्रत्येक शब्द रोमन अक्षरों में और आवश्यकतानुसार देवनागरी अक्षरों में भी निर्दिष्ट है।

(५) तुहफ़त में शब्द के पश्चात् उसका उच्चारण दिया गया है, फिर अर्थ आदि, परन्तु हिन्दुस्तानी कोश में उच्चारण की कोई व्यवस्था नहीं है। इसके स्थान पर उसमें व्याकरणिक टिप्पणियों तथा व्युत्पत्तियों की योजना है।

उपर्युक्त मुख्य असमानताओं के अतिरिक्त यह भी ज्ञातव्य है कि तुहफ़त् अप्रकाशित और हिन्दुस्तानी कोश एक प्रकाशित रचना है जिसमें विरामचिह्न, भिन्न प्रकार के टाईप एवं कोष्टकों के प्रयोग से शब्द-संकलन पद्धति अधिक सुस्पष्ट हो गई हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि हिन्दुस्तानी कोश में हमको आधुनिक संकलन-प्रणाली के दर्शन होते हैं।

अक्षरानुक्रम पर आधारित कोशों में कुछ अन्य विशिष्टताएँ

तुहफ़तुलहिन्द, गिलक्राइस्ट की 'वाकेबुलेरी', टेलर कृत 'डिक्शनरी' तथा पादरी आदम द्वारा संगृहीत 'हिन्दवी कोश' सामान्यतः गद्य का आधार लेकर निर्मित हुये हैं, फिर भी संकलन-प्रणाली की दृष्टि से इन सब में थोड़ी बहुत विशिष्टताएँ विद्यमान हैं :

तुहफ़त् में प्रत्येक हिन्दी शब्द की व्याख्या देते समय 'ब माना', 'नामे अस्त', 'बाशद', 'बुवद', 'गोयन्द', 'नामन्द', इत्यादि शब्दावली का प्रयोग सामान्य रूप

से हुआ है। परन्तु अन्य तीनों में मुख्य शब्द के पश्चात् अल्प विराम[1] और उसके बाद अर्थ आदि दिये गये हैं।

शब्दों के कई रूप—

कभी-कभी एक शब्द के कई रूप भाषा में प्रचलित रहते हैं और यदि स्पष्ट निर्देश न हो तो सभी की साधुता समान रूप से माननी पड़ती है। अनेक शब्दों के इस प्रकार वैकल्पिक रूप होते हुये भी संस्कृत कोशों के अनुकरण पर निर्मित समानार्थी या अनेकार्थी तथा छंद-बद्ध द्विभाषीय कोशों में सामान्यत: इसका प्रयास नहीं किया गया है। उपर्युक्त चारों कोशों में इस प्रकार के वैकल्पिक रूप दिये गये हैं, परन्तु रूप निर्देशन की प्रणालियाँ चारों में भिन्न-भिन्न हैं।

तुहफ़त् के रचयिता ने मुख्य रूप का उच्चारण तथा अर्थ आदि देने के पश्चात् अन्त में शब्द का वैकल्पिक रूप भी अंकित कर दिया है, यथा—तिया का त्रिया[2], जावन का जामन[3], गौ का गऊ[4] इत्यादि। गिलक्राइस्ट ने अपने कोश में यह रूप अर्थ देने से पहले मूल शब्द के साथ ही 'या' (ऑर) के माध्यम से अंकित कर दिया है जैसे अंड या आंड, आस या आसा, बच्च या बच्ची, माथा या मथा। टेलर ने भी इसी शैली के अनुकरण पर मूल शब्द के साथ ही अर्थ आदि देने से पहले वैकल्पिक रूप अंकित किये हैं। उदाहरण के लिये—आकार या अकार, चक्कर या चक्र, सरत या सरह। परन्तु आदम ने अपने कोश में उपर्युक्त प्रणाली को तनिक भी प्रश्रय नहीं दिया। उसमें प्रत्येक शब्द स्वतंत्र रूप में विवेचित है। अधिक से अधिक दोनों वैकल्पिक रूपों को—क्रमानुसार आने की स्थिति में भी —एक क्रम में ऊपर नीचे रखकर उनके आगे एक कोष्टक बनाने के पश्चात् उनका अर्थ दे दिया गया है यथा:

शरत }
शरद } सं० स्त्री० ऋतु विशेष जिसमें आश्विन और कार्तिक महीना है।

---

१. आधुनिक कोशों में इस स्थान पर डैश (—) का प्रयोग किया जाता है।

२. तिया—बिल कस्र ब मा ना जन बुवद व बाद अज़ तायें-फ़ौक़ानी राय मुत्तसिला नीज़ इस्ते'माल कुनन्द व त्रिया गोयन्द। —तुह०, पृ० २२८ पी०।

३. जावन—ख़मीर जुग़ात व अम्साले आँ बुवद व बजाये वाव मीम इस्ते'माल कुनन्द (व जामन गोयन्द) —तुह०, पृ० २३३ मू०।

४. गौ—मादा गाव रा नामन्द व आँ रा दर मुता'रिफ़ ब फ़त्ह: अव्वल व जम्म हम्ज़: व वाव मारूफ़ इस्ते'माल कुनन्द व गऊ गोयन्द—। —वही, पृ० २७१ पी०।

अनेकार्थी शब्दों के अर्थ

अनेकार्थी शब्दों के अर्थ देने की भी भिन्न-भिन्न शैलियाँ इन चारों कोशकारों ने प्रयुक्त की हैं, जो पद्य-बद्ध अनेकार्थी कोशों से नितांत अलग शैली पर आधारित हैं। तुहफ़त् में इस प्रकार के शब्दों के अर्थ तीन प्रकार से दिये गये हैं। कुछ शब्दों के विषय में मिर्ज़ा ने अर्थ देने के पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि शब्द के कुल कितने अर्थ हैं। तदनन्तर क्रमशः अव्वल, दोयम्, सोउम्, चहारुम्, आदि अर्थ दिये गये हैं। एक उदाहरण पर्याप्त है :

बार—(यह शब्द) चार अर्थों का द्योतक है। प्रथम (=बारि) पानी का नाम है, द्वितीय (घर-बार) द्वार या देहली को कहते हैं, तृतीय (बाल) केश से तात्पर्य है और चतुर्थ (अबार) समय व देर के अर्थ में आया है तथा इस (अन्तिम) अर्थ में (यह शब्द) फ़ारसी भाषा में भी प्रयुक्त होता है।[1]

द्वितीय प्रकार की शैली वह है जिसमें शब्दों की अर्थ-संख्या पहले स्पष्ट नहीं की गई है, परन्तु सर्वप्रचलित अर्थ देकर फिर दूसरा अर्थ दे दिया गया है। दूसरे अर्थ को गौणता प्रदान करने के लिये उसके पहले 'नीज़' (=भी) शब्द प्रयुक्त किया है। यथा :

तुम्बर—······स्वर्ग के सम्राट इन्द्र की सभा के कई गायकों में से एक गायक का नाम है और कोई लौकी के अर्थ में भी प्रयुक्त करते हैं।[2]

तृतीय प्रकार की शैली में शब्दों के ख़ुसूसन व उमूमन (मुख्य और सामान्य) अर्थ दिये गये हैं जैसे:

टाटी—······सामान्य अर्थ में यह आड़ या ओट का नाम है परन्तु विशेष रूप से उस आड़ को कहते हैं जो घास इत्यादि से निर्मित होती है।[3]

गिलक्राइस्ट ने अपने कोशों में ऐसी किसी स्पष्ट पद्धति को न अपनाकर एक ही पंक्ति व शैली में सभी अर्थ दे दिये हैं। यथा:

(**आम**) Am, mango, vulgur, common, usua.

(**मन**) mun, mind, inclination, a weight.

---

१. बार—चहार माना दारद अव्वल् आब रा नामन्द दोयम् दरे-ख़ाना व दहलीज़ बुवद सोउम् ब मा'ना मूये बाशद चहारुम् ब मा'ना करंत व मर्तबा आमदः व ईं मा'ना दर फ़ार्सी नीज़ मुस्ता'मल अस्त। —तुह०, पृ० २०५ मू०।

२. तुम्बर—नामे मुगन्नीस्त अज़ मुग़न्नियाने इन्दर पादशाहे अस्मानिया व बाज़े कदू रा नीज़ नामन्द। —वही, पृ० २२६ पी०।

३. टाटी—उमूमन पर्दओ हेजाब रा नामन्द व ख़ुसूसन पर्दः बुवद कि अज़ काह व अम्साले आँ साज़न्द। —वही, पृ० २३० मू०।

टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश में अधिक स्पष्ट शैली व्यवहृत हुई है। तुहफ़त् की ही भाँति इसमें भी भिन्न अर्थों से पहले संख्यायें अंकित हैं परन्तु कुल संख्या पहले नहीं निर्दिष्ट है:

Bar(बार) n. s. f. 1. Time. 2. n. s. m. Day 3. Door 4. Water 5. child

इसके विपरीत यदि शब्द की व्युत्पत्ति-भिन्नता के कारण एक ही शब्द के कई अर्थ हों तो उस शब्द को दोनों बार स्वतंत्र रूप में प्रयुक्त कर अर्थ द्योतन किया गया है:

Bhag n. s. m. (भाग्य) fortune

Bhag n. s. m. (भाग) 1. Share, lot

पादरी आदम ने अपने 'हिन्दवी कोश' में अनेकार्थी के प्रसंग में उपर्युक्त शैली का परित्याग कर गिलक्राइस्ट का ही अनुकरण किया। परन्तु जहाँ गिलक्राइस्ट ने ऐसे दो अर्थों के मध्य अल्पविराम का प्रयोग किया है, वहाँ आदम ने अर्द्ध विराम (सेमी कोलन) रखना उचित समझा। यथा:

रस—जीभ से जिसका ग्रहण होय; स्वाद; शृंगारादि नव; पारा।

कई शब्दों के एक अर्थ—

पर्याय कोशों के अतिरिक्त वर्णक्रम में नियोजित चारों कोशों में भी कई शब्द लगातार ऐसे आये हैं जिनके अर्थ एक ही हैं। परन्तु उनके नियोजन की भी भिन्न शैली अपनाई गई है। तुहफ़तुलहिन्द में ऐसे शब्दों को स्वतंत्र रूप में रखकर दोनों के प्रसंग में पूर्ण अर्थ दिये गये हैं। दूसरे शब्द के प्रसंग में केवल 'नीज़' (भी) जोड़ दिया है ; यथा:

तापसी—संयम और विरक्त को कहते हैं।

तप्सी—यह भी संयमी और विरक्त का नाम है।[1]

गिलक्राइस्ट की शब्दावली में इस प्रकार के शब्द नहीं आये हैं। टेलर ने ऐसे शब्दों का संकलन किया है परन्तु सब शब्दों के आगे कोष्टक का प्रयोग कर अर्थ एक बार ही लिख दिया है:—

गोफन
गोफना
गोफनी
गोफिया } फेकने के लिये ढेलबाँस

---

१. तापसी—ज़ाहिदो मुर्ताज़ रा गोयन्द...।
तपसी—नीज़ बमा'ना ज़ाहिदो मुर्ताज़ बुवद।—तुह०, पृ० २२८ मू०।

संज्ञा से निर्मित क्रिया रूपों के लिये तो लेखक ने केवल कुछ संक्षेपों[1] का प्रयोग समस्त कोश में किया जिनको स्वतन्त्र स्थान न देकर मूल शब्द के ही साथ उत्तरपद के रूप में हाइफ़न के बाद कोष्टकों में रखा गया है:

बन्द.........(-करना)......(-होना)......(-ओ-बस्त-करना)..........

कम..........(-करना)................(-होना).....................।

टेलर के हिन्दुस्तानी कोश में प्रत्ययान्त और समस्तपद ही नहीं, अपितु मुहावरे भी संकलित किये गये हैं, परन्तु उनका निरूपण उपर्युक्त पद्धति पर नहीं किया गया। गिलक्राइस्ट द्वारा अपनाई गई पद्धति का परित्याग टेलर ने उत्तरपदों के साथ मूल शब्द भी दुबारा लिखे हैं, फिर इस परिवर्धन के लिये कोष्टकों आदि का प्रयोग करना भी उचित नहीं समझा:

कम............कम अस्ल...............कम खर्च......................

कम खर्च वाला नशीं.......कमखर्ची.......कमखर्ची में आटा गीला........

...............कम कीमत..................कम करना................।

आदम कृत हिन्दवी कोश में प्रत्ययान्त, समस्तपद व मुहावरे अधिक संख्या में संगृहीत नहीं किये गये हैं। अल्पसंख्या में जो आये हैं उनको भी गिलक्राइस्ट या टेलर की भाँति मूल शब्द के साथ न रखकर स्वतंत्र रूप से निरूपित किया है। हाथ, हाथ कानों पर रखना, हाथ खैंचना, हाथ चाटना, हाथ जोड़ना, हाथ झूठा होना, हाथ डालना, हाथ पाँव फूलना, हाथ फेर्ना, हाथ मलना, हाथ मार्ना, इत्यादि मुहावरे मूल शब्द 'हाथ' के साथ न रखकर पृथक्-पृथक् संकलित किये गये हैं।

पूर्व संकेत

कई बार कोशों में संकलित दो या अधिक शब्दों के अर्थ व व्याख्यायें एक समान होती हैं। ऐसे शब्द या तो किसी एक ही घटना-विशेष से सम्बद्ध होते हैं या पारस्परिक पर्याय भी हो सकते हैं। विस्तार से बचने के लिये ऐसे प्रसंगों पर कोशों में मुख्य पर्याय या शब्द के पूर्ण अर्थ, व्याख्या व सम्बन्धित तथ्यों का पूर्ण विवरण देकर अन्य शब्दों के प्रसंगों में पूर्व वर्णित शब्द की ओर संकेत मात्र दे दिया जाता है।

तुहफ़त् में ऐसे प्रसंग बहुत कम स्थलों पर आये हैं जहाँ लेखक ने पूर्व-निर्देश-प्रणाली व्यवहृत की हो। उदाहरण के लिये "सुरसरी" के प्रसंग में निर्देश किया कि यह वही

---

१. "... and the contracted subservient verbs which are chiefly K—Karna, h - hona, d - dena, 'तिरछा' d dalna, a - ana, j - jana, r - rakhna, b - bandhna."

—वाके०, भूमिका, पृ० १८।

नदी है, जिसका वर्णन (गंगा के प्रसंग में) किया जा चुका है।[1] "कासी" वही है जो "बनारस" है और "बनारस" वही है जो "काशी"।[2] परन्तु यह परिपाटी कुछ शब्दों तक ही सीमित है। अधिकांशतः मिर्ज़ाखाँ ने इस कोश में दो या अधिक पर्यायों का प्रत्येक स्थल पर लगभग उन्हीं तथ्यों के आधार पर एक-सा विवेचन तथा विवरण प्रस्तुत किया है। "रामायन", रावन, लछमन, केकई, सीता, हनुमान, "रामेसुर" व लंका की कथायें पारस्परिक रूप से इतनी सम्बद्ध हैं कि प्रत्येक का हर स्थल पर विस्तार से प्रायः वही विवरण देना और उन्हीं घटनाओं की पुनरावृत्ति करना एक कोश में वांछनीय नहीं। इसी प्रकार बाल (२०९ मू०), बाला(२०० मू०), बाम(२०९ पी०), बामा(२०० मू०), भाम(२१५ मू०), भामन(२३१ पी०), भामिनी(२१५ पी०), पोख(२२१ मू०), पोखन(२२२ मू०), जसोधी(२३१ मू०), जसोमत (२३१ पी०), जिभ्या(२३१ मू०), व जीभ (२३१ पी०), दामिन (२४२ पी०), व दामिनी(२४२ पी०) में भिन्न-भिन्न स्थलों पर प्रायः उन्हीं अर्थों को दुहराया गया है। कहीं-कहीं प्रस्तुत कोश में पूर्व-संकेत देने के अनन्तर भी फिर दुबारा भी वही घटनायें वर्णित हैं। गणेश देवता की पूर्ण आकृति अंग-प्रत्यंग रूप वर्णन, प्रसिद्धि, पारिवारिक सम्बन्ध व हिन्दुओं के धर्म में उनका स्थान आदि का पूर्ण विवरण[3] देकर पुनः लंबोदर के प्रसंग में इतना अंकित करने के पश्चात् कि "यह" "गनेश" की ओर इंगित करता है, लेखक ने पुनः लगभग वही सब बातें पुनः दुहरा दी हैं।[4] कोश में इस योजना से कलेवर वृद्धि के अतिरिक्त पाठकों को विशेष लाभ नहीं होता।

गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी में पर्याय शब्द कम आये हैं; यदि कहीं हैं तो ऐसे अवसर पर "देखिये" (q.v. =quod vide) शब्द प्रयुक्त किया गया है, जैसे:

Kee, of, feminine of Ka, q.v.

---

१. सुरसरी—रोद रा नामन्द व बाज़े गोयन्द क़े मा,'नी आ हमा रोद अस्त क़े साबिक़ मज़कूर शुद —तुह०, पृ० २५८ पी०।

२. बनारस—कासी हमां अस्त —वही०, पृ० २०७ मू०
कासी—शहरे बनारस हमां अस्त —वही, पृ० २६६ पी०।

३. गनेस—नामे देबतायेस्त मश्हूर कि सरश ब शक्ले फ़ील व यक दंदा व तना अंश ब शक्ले तनाये आदमी व शिकमे कलां व पिसरे महादेव अस्त व अह्वाले ऊ दर कुतुबे तवारीखे अलहे हिन्द मस्तूर अस्त। —वही०, पृ० २७० पी०।

४. लंबोदर—किनायत अज़ गनेस व आं देबतायेस्त मश्हूर कि सरश ब सूरते फ़ील व यक दंदां व तना अश ब शक्ले आदमी अस्त व बाशिक कलां।
—वही, पृ० २७४ मू०।

गिलक्राइस्ट ने एक अन्य प्रकार से भी 'देखिये' शब्द का प्रयोग किया। जैसे पीछे स्पष्ट किया गया था कि उक्त कोश 'अंग्रेज़ी-हिन्दुस्तानी कोश' का विलोम रूप है अतएव 'हिन्दुस्तानी अंग्रेज़ी कोश' में हिन्दी शब्दों के अंग्रेज़ी अर्थ देते समय अंग्रेज़ी शब्दों के आगे भी 'देखिये' (q.v.) चिह्न अंकित है जिससे मूल अंग्रेज़ी कोश की तरफ संकेत है।

टेलरकृत 'हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश' में पूर्व-निर्देश प्रणाली की यह व्यवस्था प्रत्येक आवश्यक स्थल पर की गई है। 'तुहफ़त्' में पारस्परिक शब्दों के प्रत्येक स्थल पर विस्तृत अर्थ देने से जो विस्तार दोष आ गया था उसका निराकरण टेलर ने किया। राम के प्रसंग में रामायण की समस्त कहानी देकर रावण के प्रसंग में 'देखिये रामचन्द्र' निर्देश कर कोश को व्यर्थ कलेवरवृद्धि से बचा लिया गया है। इसी प्रकार 'पगा' के पूर्ण अर्थ देने के उपरान्त 'पघा' के प्रसंग में 'वही अर्थ है जो पगा का' अंकित कर 'पगा' को देखने का संकेत (q.v.) दिया गया है।

अपने से पूर्व कोशकारों द्वारा प्रयुक्त पूर्व निर्देशन प्रणाली को पादरी आदम ने अपने 'हिन्दवी कोष' में नहीं लिया है। प्रायः प्रत्येक स्थल पर पूर्ण व्याख्यायें दी गयी हैं। इतना अवश्य है कि शब्दों के वैकल्पिक रूपों के प्रसंगों पर कम प्रचलित या विकृत रूप के आगे उसका अधिक प्रचलित या शुद्ध रूप मात्र देकर अर्थ केवल शुद्ध रूप के प्रसंग में दिये गये हैं, उदाहरणतः 'कंकर' के लिये केवल 'कङ्कर' लिखकर 'कङ्कर' के प्रसंग में पूरे अर्थ दिये गये हैं।

६. निर्देशक शब्द

अभिप्रेत शब्दों को कोश में तत्काल ढूँढ़ने के लिये एक विशेष प्रकार की व्यवस्था कोशों में रहती है। प्रत्येक पृष्ठ के ऊपरी भाग में उस पृष्ठ द्वारा समाहृत शब्दों को बताने के लिये निर्देशक शब्द विशेष टाइप में छपे रहते हैं। आधुनिक कोशों में बाईं ओर पृष्ठ का पहला शब्द एवं दाईं ओर अंतिम शब्द अंकित रहता है।

गिलक्राइस्टकृत वाकेबुलेरी का प्रत्येक पृष्ठ तीन कालमों में विभाजित है। प्रत्येक कालम के अन्त में आने वाले शब्द के पहले तीन अक्षर अंकित हैं। यदि कालम का अंतिम शब्द Kuheen है तो कालम के शीर्ष मध्य में KUH अंकित होगा। टेलर ने दो अक्षरों को निर्देशक शब्द का आधार माना है। उनके हिन्दुस्तानी कोश का प्रत्येक पृष्ठ दो कालमों में विभक्त है। प्रत्येक कालम के मध्य में उस कालम के अंतिम शब्द के पहले दो अक्षर अंकित हैं। यदि कालम का अंतिम शब्द 'पापी' है तो निर्देशक शब्द केवल 'पाप' मिलेगा। पादरी आदम ने गिलक्राइस्ट की भाँति तीन अक्षरों के नियम का ही पालन किया है। दो कालमों में

विभाजित दूसरे कालम का अंतिम शब्द यदि 'अटकलना' है तो निर्देशन के लिये केवल 'अटक' अंकित है।

हस्तलिखित कोश 'तुहफ़तुलहिन्द' में ऐसी कोई व्यवस्था नहीं है।

निष्कर्ष

आलोच्य कोशों के शब्द-नियोजन सम्बन्धी इस विवरण के आधार पर दो मुख्य पद्धतियाँ उपलब्ध होती हैं—वर्गानुक्रम एवं अक्षरानुक्रम। आधुनिक विद्वानों के मतानुसार कोशों में संकलित शब्दों को सुगमता से ढूंढ़ने के लिये अक्षरानुक्रम प्रणाली ही सर्वोत्कृष्ट, सुगम अतएव अपरिहार्य है; इसके अतिरिक्त कोई भी अन्य प्रक्रिया ग्राह्य नहीं।[१] अन्य मत के अनुसार कोशों का शब्द-नियोजन अकारादिक्रम के अतिरिक्त किसी अन्य सुनिश्चित प्रणाली (यथा वर्गानुक्रम) पर भी आधारित हो सकता है।[२] इन दोनों संकलन प्रक्रियाओं की पृष्ठभूमि में एक सबल वैज्ञानिक एवं तर्कसम्मत कारण है।

प्रत्येक शब्द के दो पक्ष होते हैं—आभ्यन्तर एवं बाह्य। बाह्य पक्ष से तात्पर्य उसके प्रत्यक्ष दृष्टिगत रूप से है, और आन्तरिक पक्ष शब्द में अन्तर्निहित अर्थ या भाव की ओर इंगित करता है। प्रथम दशा में शब्द-रूप सामने है और तब उससे सम्बद्ध अर्थ को ज्ञात करने की चेष्टा की जाती है। दूसरी स्थिति में कोई भाव या विचार सम्मुख रहता है और तब उस भाव या विचार को समुचित रूप से प्रस्तुत करने वाले शब्द को ढूँढ़ने में प्रयत्नशील रहते हैं।[३] यदि शब्द के बाह्य पक्ष को "रू" मान लिया जाय और आन्तरिक अर्थ को 'आ' का प्रतीक दें तो दोनों परिस्थितियों को इस प्रकार निर्दिष्ट किया जा सकता है :

(१) रू————————→आ

(२) आ————————→रू

प्रथम अवस्था (रू———आ) में कोई शब्द-रूप (उदाहरण के लिये हिन्दी शब्द 'टीका') सामने आता है। उसके क्या अर्थ हैं, इसको आदम कृत हिन्दवी कोश में देखा जा सकता है—वहाँ पर इसका अर्थ मिलेगा—तिलक, टिप्पन, माथे का गहना विशेष। फिर टेलरकृत हिन्दुस्तानी कोश में उसका अर्थ अंग्रेजी में होगा—1. Inoculation, 2. A mark made on the forehead by Hindoos, 3. An ornament worn on the forehead. यदि फ़ारसी में इसका अर्थ जानना चाहते हैं तो

१. **एनसाइक्लोपीडिया अमेरिकाना, खण्ड ९, पृ० ८७।**
२. **एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, खण्ड ८, पृ० १८६।**
३. **जेस्पर्सन : दि फ़िलासफ़ी ऑव ग्रामर, पृ० ३३।**

तुहफ़त् में यह अर्थ देखेंगे—'दो मानी दारद अव्वल कश्क: बुवद कि दर पेशानी कसन्द दोउम् शहं: रा गोयन्द कि नवीशन्द'।

जहाँ ऐसी समस्या उपस्थित हो वहाँ अक्षरानुक्रम में बद्ध कोश ही सहायता कर सकते हैं। सामान्य पाठकों के सामने शब्द सम्बन्धी ऐसी ही जटिलतायें उपस्थित होती हैं अतएव उनके दृष्टिकोण से सर्वोत्तम कोश वही है जिसमें शब्द अक्षरानुक्रम में नियोजित हों।[1]

परन्तु लेखकों, विचारकों व कवियों को उपर्युक्त जटिलता का सामना अपेक्षाकृत कम करना पड़ता है। उनके सम्मुख दूसरी समस्या (आ———रू) ही अधिक आती है। कई बार उनके मस्तिष्क में भाव आते हैं, जिनको समुचित रूप से व्यक्त करने के लिये शब्दों की खोज होती है। अत्यधिक प्रयास करने के उपरान्त भी ऐसे शब्द शीघ्रता से नहीं उपलब्ध होते जो उनके मन में उठे भावों व विचारों के यथार्थ व प्रभावशाली माध्यम बनने में सहायक हों, जो उनका यथातथ्य चित्रण कर सकें।[2] अत्यधिक माथापच्ची करने पर भी उपयुक्त शब्द नहीं मिलता; जो मिलता है, वह वांछित भाव व्यक्त करने के लिये या तो अत्यन्त सामान्य है या नितान्त संकुचित; वह बहुत भारी है, या अत्यन्त हलका। ऐसी जटिल परिस्थिति में वर्गात्मक विभाजन वाले कोशों का आश्रय लिया जायगा।[3] इतना अवश्य है कि ऐसी पद्धति पर नियोजित कोशों में संकलित समस्त शब्दावली को अधिक उपादेय बनाने के निमित्त अनुक्रमणिका में भी नियोजित करना पड़ेगा।

---

१. **चेम्बर्स एनसाइक्लोपीडिया, तृतीय भाग, पृ० ५४६।**

२. ". . . . we sink in vain the words we need and strive ineffectually to devise forms of expression which shall faithfully portray our thoughts and sentiments . . . ."

—पी० एम० राजेट: दि इन्टरनेशनल थेसारस, भूमिका, पृ० ८।

३. ". . . You have your meaning already but do not yet have the word. It may be on the tip of your tongue, or in the back of your mind or the hollow of your thought; but what it is you do not yet know. It is like the missing piece of a puzzle. You know well enough that the words you try out won't do. They are not the shape. They say too much or too little, they have not the punch or have too much. They are too flat or too showy, too kind or too cruel. But the word which just fills the bill won't come, so you reach for the Thesaurus . . . ."

—आइ० ई० रिचार्ड्स: राजेट्स पाकेट थेसारस, भूमिका, पृ० ५।

अन्त में इतना निर्देश करना आवश्यक है कि वर्गानुक्रम की यह लोकप्रिय शैली केवल संस्कृत या उसका अनुसरण करने वाले हिन्दी कोशों में ही नहीं प्रयुक्त हुई है, पश्चिम में भी शब्दों का विषयानुसार विन्यास करना एक सुदीर्घ एवं प्राचीन परम्परा है।[१]

——०——

१. सुमेरियन तथा चीनी निश्चायक (डिटरमिनेटिव्ज़) और वर्गीकर्ता (क्लासिफ़ायर्स) की बात छोड़ भी दें तो भारोपीय क्षेत्र में ग्रीक भाषा में पॉलेक्स का कोश पुरानी अंग्रेज़ी में एलफ्रिक की शब्दावली, लैटिन पुरानी उच्च जर्मन में 'हेनरिसी सुमेरियन' लैटिन कार्निस में कोट्टोनियन शब्दावली इसी प्रकार के कोश हैं। वर्तमानकालीन प्रमुख यूरोपीय भाषाओं में सादृश्य-मूलक (एनॉलॉजिकल), वैश्लेषिक (एनॉलिटिकल), सैद्धांतिक (आइडियॉलॉजिकल), रीत्यात्मक (मेथॉडिकल) सांश्लेषिक (सिन्थेटिक), विषयांगी (टॉपिकल) एवं सर्वाधिक अनुकरण किया जाने वाला राजेट का थेसारस विषयानुक्रम में वर्गीकृत है।

—डार्लिंग बक : ए डिक्शनरी ऑव् सेलेक्टेड सिनानिम्ज़ इन दि प्रिन्सिपल इण्डोयूरोपियन लैंग्वेजेज, भूमिका, पृ० १३।

अध्याय ५

अर्थ का विवेचन

प्रस्तुत अध्याय के अन्तर्गत विवेच्यकालीन कोशों द्वारा किये अर्थ सम्बन्धी समस्त प्रयासों का सांगोपांग अध्ययन करने का यथासाध्य प्रयत्न किया गया है। इन समस्त कोशों को सामान्यतः 'शाब्दिकी' मात्र घोषित कर अर्थ की दृष्टि से नगण्य समझने वाले विद्वानों को अपने मत परिष्कृत करने के लिये इस अध्याय में पर्याप्त सामग्री उपलब्ध हो जाने की पूर्ण सम्भावना है।

'अर्थ' को व्यापक रूप से ग्रहण करने के फलस्वरूप इस अध्ययन की चार दिशायें निर्धारित की गई हैं—(१) सर्व प्रथम प्राच्य और पाश्चात्य विद्वानों की अर्थ-सम्बन्धी दृष्टियों को आधार बनाकर कोशों में दिये जाने वाले अर्थों पर प्रकाश डाला गया है। (२) द्वितीय अंश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवम् अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत है। इसके अन्तर्गत आलोच्य हिन्दी कोशों में व्यवहृत विभिन्न माध्यमों का विवेचन प्रस्तुत है। (३) तृतीय भाग में कोशों द्वारा किये गये व्युत्पत्ति-विषयक प्रयास और (४) अंतिम अंश में कोशों द्वारा दी गई व्याकरणिक टिप्पणियों का विवरण प्रस्तुत किया गया है।

अर्थ एवं उसका कोशों में स्थान

प्रत्येक भाषावैज्ञानिक चिह्न (शब्द) का उद्देश्य अर्थ का द्योतन करना होता है।[१] शब्द विचारों के प्रतीक व वाहक हैं।[२] यह अन्तर्निहित विचार या भाव ही शब्द का अर्थ कहलाता है और दोनों का पारस्परिक सम्बन्ध नित्य है।[३] अर्थ रहित शब्द या शब्द रहित अर्थ की कल्पना भी नहीं की जा सकती।[४]

शब्द व अर्थ का सम्बन्ध अनित्य होते हुए भी पतंजलि के मतानुसार अर्थ के निमित्त ही शब्द का निर्माण होता है।[५] अर्थों को बोधगम्य कराने के हेतु ही शब्दों की

---

१. पामर : इन्ट्रोडक्शन टु मॉडर्न लिंग्विस्टिक्स, पृ० ७७।
२. कार्ल ब्रिटन : कॉमिन्युकेशन, पृ० १८।
३. 'सिद्धे शब्दार्थ सम्बन्धे'—महाभाष्य आ० १।
४. डॉ० बाहरी : हिन्दी सैमैण्टिक्स, पृ० ४।
५. "युक्तं पुनर्यच्छब्दनिमित्तको नामार्थ स्यात्, नार्थनिमित्तकेन नाम शब्देन भवितव्यम्। अथनिमित्तक एव शब्दः।"—महाभाष्य, १, ४, ५।

सृष्टि की जाती है, शब्दों की सत्ता अजस्र व अखण्ड मानकर अर्थों का निर्माण नहीं होता।[1] अर्थ की यह प्रमुखता साहित्य व शास्त्रों में ही अक्षुण्ण नहीं, लोक व्यवहार में भी इसी की प्राथमिकता व प्रधानता है।[2] अर्थ की प्रधानता का भाव यह है कि शब्द व अर्थ दोनों की समुपस्थिति होने पर भी अर्थ ही प्रमुख रूप से ग्रहीत किया जाता है। 'बैल' शब्द कहने से बैल पशु-विशेष का चित्र श्रोताओं के सम्मुख उपस्थित होता है, 'ब' और 'ल' अक्षरों से निर्मित 'बैल' अक्षर गौण रूप हैं। इसका स्पष्ट कारण यही है कि शब्द अर्थ बोधन के माध्यम हैं[3]।

शब्द की वास्तविक उपयोगिता इसी में है कि वह पूर्ण रूप से अर्थ का बोध कराने में समर्थ हो। दोनों के अनित्य भाव का भी यही आशय है कि शब्द में अर्थ-ज्ञापन कराने की क्षमता विद्यमान हो। शब्दों में यह नैसर्गिक गुण हो, कि उनके उच्चारण मात्र से अर्थ की प्रतीति हो जाय। द्रव्य रूपी अर्थ के अनित्य रहते हुए भी शब्द व अर्थ के सम्बन्ध को अनित्य इसलिए कहा गया है कि अर्थ-बोधन कराने की यह क्षमता केवल मात्र शब्द में निहित रहती है और शब्द नित्य हैं।[4]

यह अर्थ क्या है? यह अर्थ वस्तुओं में व्याप्त वह अन्तर्निहित तत्व[5] है जिससे हमारा प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है और जिसकी हम प्रत्यक्षानुभूति करते हैं। रसेल के मतानुसार अर्थ द्रष्टव्य सत्व का द्रष्टव्य गुण है[6]। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल भी अर्थ से विषय या वस्तु का ही अभिप्राय लेते हैं (इंन्दौर के साहित्य सम्मेलन अधिवेशन का भाषण)।

पंतजलि के कथनानुसार शब्द के उच्चारण मात्र से ही अर्थ की प्रतीति हो जाती हैं।[7] अतएव दूसरे शब्दों के द्वारा उसका बोध कराने की आवश्यकता नहीं।

---

१. "नहि शब्दकृतेन नामार्थेन भवितव्यम्। अर्थकृतेन नामशब्देन भवितव्यम्',
—महाभाष्य २, १, १।

२. 'किं कृतं पुनः प्राधान्यम्? अर्थकृतम्। लोकेऽर्थकृतं प्राधान्यम्'
—वही, ३, १, १।

३. 'लोके ऽर्थांशस्यैव प्राधान्यम्'—पुण्य०, वाक्य० २,१३२ व 'अर्थो हि प्रधानं तद्गुणभूत-शब्दः'—दुर्गा०, निरुक्त० २, १।

४. "अनित्येऽर्थे कथं सम्बन्धस्य नित्यतेति चेद् योग्यता लक्षणत्वात् सम्बन्धस्य। तस्याश्च शब्दाश्रयत्वात् शब्दस्य च नित्यत्वात्।" —प्रदीप० महा०, आ० १।

५. Meaning is something in the things of which we have direct acquaintance, something directly perceptible like colour and sound intrinsic to the things perceived.
—डब्लू० मार्शल अर्बनः लैंग्वेज एण्ड रियालटी पृ० १०५।

६. Meaning is an observable property of observable entities.
—वही, लैंग्वेज एण्ड रियलिटी, पृ० १०५।

७. "शब्देनोच्चारितेनार्थो गम्यते।" —महाभाष्य १, १, ६८।
"उच्चार्यमाणः शब्दः सम्प्रत्यायको भवति, न सम्प्रतीयमानः"—वही, १,१,६९।

परन्तु कोश इस सिद्धान्त पर आधारित नहीं होते। उसमें यह अर्थ-तत्व दूसरे शब्दों के माध्यम से स्पष्ट किया जाता है। इसलिए आग्डन व रिचार्ड्स ने अपनी पुस्तक 'दि मीनिंग ऑव् मीनिंग' में अर्थ की सोलह व्याख्यायें देते हुए अर्थ उसे भी माना है जो दूसरे शब्द मूल शब्द के साथ एक कोश में संलग्न रहते हैं।[१] अर्थ का समुचित ज्ञान कराने में इस प्रकार कोश एक प्रमुख साधन है। व्याकरण, उपमान, आप्तवाक्य, व्यवहार प्रसिद्ध पद का सानिध्य व वाक्य शेष के अलावा कोश भी अर्थ ज्ञान का एक अपरिहार्य माध्यम बताया गया है।[२]

अर्थ-द्योतन कराने के लिए कोश तदर्थी प्रतीकों की एक सूची है जो अधिकृत रूप से बताता है कि अमुक शब्द के स्थान पर अमुक परिस्थितियों में यह शब्द प्रयुक्त किया जा सकता है। शब्द कोश इस प्रकार दो प्रतीकों के बीच की खाई को पूर्ण करने में भी पर्याप्त सहायक सिद्ध होता है।[३] शब्द कोशों में प्रदत्त अर्थ सर्वाधिक क्षेत्र में व्याप्त व प्रचलित होने के फलस्वरूप भाषाविज्ञान के लिये असंदिग्ध मूल्य रखते हैं।[४]

शब्द-कोश में प्रमुख स्थान अर्थ का है।[५] उसका वास्तविक महत्व शब्दों के अर्थों एवं व्याख्याओं पर आश्रित है, क्योंकि उसका मुख्य उपयोग अर्थ और परिभाषा जानने के लिये ही होता है। शब्द वस्तुतः कोश के शरीर मात्र के रूप में होते हैं, उसके प्राण या आत्मा का स्थान अर्थों और व्याख्याओं को ही प्राप्त है।[६] जिन कोशों में शब्दों के अर्थ और व्याख्यायें बिलकुल ठीक शुद्ध और साधारण[७] तथा सरल भाषा में अति स्पष्ट और सटीक तथा सभी पहलुओं से पूरे पूरे[८] न हों, और

---

१. 'The other words annexed to a word in the dictionary'
 —दि मीनिंग ऑव् मीनिंग : ऑग्डेन व रिचार्ड्स, पृ० १८६।

२. शक्तिग्रहं व्याकरणोपमानकोषाप्तवाक्याद व्यवहारतश्च।
 सानिध्यतः सिद्ध पदस्य धीरा वाक्यस्य शेषाद्विवृत्तेर्वदन्ति॥—मुक्तावली।

३. "The dictionary is a list of substitute symbols. It says in effect : 'This can be substituted for that in such and such circumstances.' It can do this because in these circumstances and for suitable interpreters the references caused by the two symbols will be sufficiently alike. The dictionary thus serves to mark the overlaps between the references of symbols - -"
 —दि मीनिंग ऑव मीनिंग (आग्ड्न व रिचार्ड्स), पृ० २०७।

४. वही, पृ० १८७।

५. डॉ० हेमचन्द्र जोशी : टंडन अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ४२७।

६. कोश कला : राम चन्द्र वर्मा, पृ० ११३।

७. वेबस्टर्स डिक्शनरी : भूमिका, पृ० ५।

८. डॉ० हेमचन्द्र जोशी : टंडन अभिनन्दन ग्रंथ, पृ० ४२७।

जिनके उपयोग से पाठकों की आशंकाओं का निवारण तथा ज्ञान-वृद्धि न हो, वे कोश बहुत कुछ निर्जीव या अस्थायी शरीर के होते हैं ।[1]

अंग्रेज़ी भाषा के महान कोशकार सैमुअल जॉनसन की प्रसिद्धि में आने का एक प्रमुख कारण उनके 'ए डिक्शनरी ऑव इंग्लिश लैंग्वेज' में दी गई व्याख्यायें थीं। जॉनसन को भलीभाँति ज्ञात था कि उनके शब्द-कोश का व्याख्या वाला अंश ही सर्वाधिक विवादग्रस्त व द्वेषोत्पादक प्रमाणित होगा ।[2] यहाँ तक कि वे कभी कभी व्याख्याओं की जटिल समस्या देखकर विचलित और निराश भी हो जाते थे।[3] लम्बे व कष्टसाध्य अनुसंधान के उपरान्त उन्होंने अपनी परिभाषाओं की परिपुष्टि सर्वोत्कृष्ट लेखकों, कवियों, धर्मविदों एवं दार्शनिकों के उद्धरणों से की है । उनकी अनेक व्याख्यायें विद्वत्ता के फलस्वरूप नहीं अपितु हास्य एवम् व्यंग्य के पुट के कारण अपने समय में अत्यन्त लोकप्रिय हो गई थीं ।[4]

अर्थ की अवस्थिति—जैसे पहले निर्देश किया जा चुका है, प्रत्येक शब्द विचारों का प्रेषण करता है। यह 'विचार' एक मानसिक अवस्था है जिसमें कोई भावविशेष समाविष्ट रहता है। जब 'क' कोई विचार 'ख' तक पहुँचाता है तो वह केवलमात्र 'ख' के मस्तिष्क में अन्तर्निहित सुप्त भावों को उद्दीप्त करता है न कि अपने

---

१. **रामचन्द्र वर्मा : कोशकला, पृ० ११३ ।**

२. Johnson was aware of the difficulties of his task, that he was conscious that the part of his work on which 'malignity' would 'most frequently fasten is the explanation' (i. e. the definition).

—**वेबस्टर्स डिक्शनरी ऑव् सिनानिम्ज : भूमिका, पृ० ९ ।**

३. 'I cannot hope to satisfy those, who are perhaps not inclined to be pleased since I have not always been able to satisfy myself. To interpret a language by itself is very difficult; many words cannot be explained by synonimies, because the ideals signified by them has not more than one appellation, nor by paraphrase because simple ideas cannot be described.'

—**"वेबस्टर्स डिक्शनरी ऑव् सिनानिम्ज" भूमिका, पृ० १०, से उद्धृत ।**

४. **ऐसी कुछ परिभाषायें द्रष्टव्य हैं—**

oats—Is a grain used for horses in England but for people in Scotland.

Lexicographer— a writer of dictionaries, a harmless drudge.

Excise— a hateful tax levied upon commodities and adjudged not by the common judges of property but wretches hired by those to whom excise is paid.

भावों को ।[१] कोशों में जो अर्थ दिये रहते हैं वे पाठकों के मस्तिष्क में पहले से ही विद्यमान रहते हैं, कोशों में उनका सम्बन्ध शब्द-विशेष से जुड़ा रहता है। शब्द कोश नये माध्यम से नवीन सर्वप्रचलित और सर्वसाधारण माध्यमों द्वारा, जिनको सामान्य पाठक समझ सकें शब्द विशेष का अर्थ अभ्युपगत कराने का प्रयास करता है। इन माध्यमों द्वारा पाठक का बुद्धिगत अर्थ जागृत् होता है। माध्यम भी स्वयं शब्द ही हैं।[२]

अर्थ के प्रकार एवं कोशों के अर्थ—अष्टाध्यायी के एक सूत्र[३] की व्याख्या करते हुये पतंजलि ने अपना मत दिया है कि अर्थ की क्रमशः दो स्थितियाँ—एक शब्द का स्वरूप और दूसरा अर्थ (वाह्य वस्तु या बोध्य पदार्थ)—होती हैं। व्याकरण में शब्द अपने स्वरूप का ही बोध कराते हैं। यथा, जब यह कहा जाता है कि 'अगनेर्ढक' (अग्नि से ढक् प्रत्यय होता है) तो यहाँ पर अग्नि शब्द भौतिक अग्नि का बोध नहीं कराता, अपितु अग्नि शब्द का बोध करता है। परन्तु लोक व्यवहार में अग्नि शब्द के प्रयोग से बाह्य वस्तु अर्थात् अग्नि नामक पदार्थ का बोध होता है। 'गाय लाओ' 'दही लाओ' में उच्चरित शब्द से पदार्थ लाया और पदार्थ खाया जाता है।[४]

आचार्य शुक्ल (इन्दौर का भाषण) के मतानुसार अर्थ चार प्रकार के होते हैं—प्रत्यक्ष, अनुमित, आप्तोपलब्ध और कल्पित। भाव या चमत्कार से निस्संग विशुद्ध रूप में अनुमित अर्थ का क्षेत्र दर्शन विज्ञान है। आप्तोपलब्ध का क्षेत्र इतिहास एवं कल्पित अर्थ का प्रधान क्षेत्र काव्य है। कोशों में प्रत्यक्ष या वाचक अर्थ ही दिये जाते हैं। उनमें शब्दों के साक्षात् संकेतित[५] अर्थ सामान्य शैली में प्रकट रहता है। अतएव यदि कोशकार एक शब्द के 'घण अरथ'[६] बताकर 'सकल अर्थों'[७] को अपने कोश में

---

१. But a thought is a mental state and is said to have an object. When 'A' communicates a thought to 'B' what he does is to provoke in 'B' a thought (B's thought not A's) of the same object as A' s.
—कार्ल ब्रिटन : काम्यूनिकेशन, पृ० १८।

२. शब्दः कारणमर्थस्य स हि तेनोपजन्यते।
तथा बुद्धि विषयादर्थाच्छब्दः प्रतीयते ॥—वाक्यपदीय ३, पृ० ११२।

३. "स्वं रूपम्"—अष्टाध्यायी, १, १, ६७।

४. "अस्तन्यद् रूपात् स्वं शब्दस्येति। किं पुनस्तत्? अर्थः। शब्देनोच्चारितेनार्थो गम्यते। गामानय दध्यशानेति अर्थ अनीयते अर्थस्य भुज्यते"। —महाभाष्य १, १, ६७।

५. साक्षात् संकेतितं योऽर्थमभिधन्ते सः वाचकः" —काव्यप्रकाश।

६. 'एक सबद घण अरथ, वरण दधि खंड वखाणौ'—अ० मा०, छ० ३।

७. 'त्यों उमराउकोश अब कहौं, जाते सकल अर्थ कौ लहौं'-उ० को० १-१-२९।

समाहृत करने का दावा भरता है तो ये 'सकल अर्थ' मुख्य रूप से प्रत्यक्ष या वाचिक ही होते हैं।

व्याख्या प्रणाली की "व्याख्या" व सामान्य महत्त्व—आधुनिक तार्किक 'व्याख्या' की व्याख्या देने में एकमत नहीं हैं। उदाहरण के लिये प्रो० स्टेबिंग अपनी पुस्तक 'ए मॉडर्न इन्ट्रोडक्शन टु लॉजिक' में उदाहरण[1] या समानता द्वारा व्याख्या को किसी भी परिस्थिति में व्याख्या मानने को प्रस्तुत नहीं, और न वे अनुवाद के माध्यम को ही अर्थ समझती हैं। दूसरे तार्किक भी व्याख्या प्रणाली के एक या दूसरे पक्ष पर मत-मतान्तर रखते हैं। फिर भी कोशों में व्याख्या वा अनुवाद प्रक्रिया की उपादेयता असंदिग्ध है। लेखकों, कवियों, साहित्यकारों और पाठकों के लिये वह अपरिहार्य है। सामान्य वार्त्तालाप में भी जिन प्रतीकों का प्रयोग किया जाता है, वे साधारण श्रोता के लिये केवल चिह्न मात्र होते हैं। केवल व्याख्या प्रक्रिया ही वह साधन है जिसके माध्यम से यह चिह्न मात्र, शब्द से सम्बन्धित अधिक विवरण और सूचना दिये जाने के फलस्वरूप प्रतीक रूप में परिणत हो जाते हैं। कोशों में औपचारिक एवं अनौपचारिक शब्दों की व्याख्याओं का एक क्रियात्मक लाभ यह भी है कि यह सामाजिक वार्त्तालाप में सुसंस्कार एवं सद्व्यवहार उत्पन्न करने में प्रबल सहायक सिद्ध होता है।[2]

कुछ विद्वान् लेखकों ने व्याख्या का क्षेत्र अधिक विस्तृत करने की दृष्टि से उसके तार्किक एवं मनोवैज्ञानिक दो प्रभेद[3] स्थापित किये हैं, परन्तु यह अधिक लाभप्रद नहीं। मानवीय कार्यकलापों का विश्लेषण करने वाले तार्किकों के विचार प्रस्तुत अध्याय के किसी न किसी शीर्षक के अन्तर्गत समाहित किये जा सकते हैं। फिर भी व्याख्या को यहाँ तर्कशास्त्र की 'व्याख्या' के अर्थ में नहीं लिया गया है।

यात्रा से तुलना—कोशों की अर्थ प्रक्रिया के इस सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं जटिल अंश को स्पष्ट रूप से समझने के लिये इसकी समानता एक यात्रा से की जा सकती है, जिसमें लक्ष्य एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँचना होता है। इसके तीन प्रमुख विन्दु हैं–(१) प्रारम्भिक विन्दु जहाँ से यात्रा आरम्भ होती है, (२) यात्रा मार्ग एवं (३) गंतव्य स्थान। कोशों की अर्थप्रक्रिया भी ठीक इन्हीं तरह तीन विन्दुओं पर आधारित है।

---

१. स्टेबिंग का उदाहरण– "एक सानेट वह है जैसी कीट्स की कविता–'चैपमैन का होमर' या वर्ड्सवर्थ की कविता—'दि वेस्टमिनिस्टर ब्रिज'।
२. एच० आर० वालपोल: सेमैण्टिक्स, दि नेचर ऑव् वर्ड्स एण्ड देयर मीनिंग, पृ० १३५।
३. वही, पृ० १२२।

कोशकार या व्याख्याकार गन्तव्य विन्दु से शुरू कर प्रारम्भ विन्दु तक पहुँचता है और फिर व्याख्या-प्रक्रिया के माध्यम से पुनः गन्तव्य पर वापस आ जाता है। इनमें प्रारम्भिक विन्दु (शब्द) का आन्तरिक भाव अध्येता के लिये अप्रचलित या अश्रुतपूर्व रहता है, कोशकार अधिक प्रचलित या सर्व सामान्य माध्यम के द्वारा उस शब्द के अन्तर्निहित तत्व को बोधगम्य कराने का प्रयास करता है। ये माध्यम अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

अर्थ-प्रक्रिया के सत्ताइस माध्यम

इस शीर्षक के अन्तर्गत उन समस्त पूर्ण एवं आंशिक प्रक्रियाओं का सोदाहरण एवं विस्तीर्ण विवेचन किया गया है जिनके माध्यम द्वारा आलोच्यकालीन कोशकारों ने शब्दों के अर्थ समझाने[1] उनके भावों को व्यक्त करने तथा स्वानुभूत प्रभावों को पाठकों तक प्रेषित करने की तनिक भी चेष्टा की। यह आवश्यक एवं सम्भव भी नहीं है कि एक ही प्रकार की प्रक्रिया सर्वांगीण और सम्पूर्ण अर्थ प्रस्तुत करने में समर्थ रही हो, इसीलिये स्थान-स्थान पर कई माध्यमों का आश्रय लेने के उपरान्त भी कोशकार का अभिप्रेत अर्थ पूर्णरूपेण स्पष्ट नहीं हो सका है।

इन समस्त उपलब्ध माध्यमों की संख्या सत्ताइस है। अगले पृष्ठों में अनेक भेदोपभेदों के द्वारा इनका व्यापक और सोदाहरण विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(१) **पर्याय**—समानार्थी शब्द अर्थ बोधन का सबसे प्राचीन, लोकप्रिय व सर्वप्रचलित माध्यम रहा है। कोशों में अधिकतर अवसरों पर प्रसिद्ध और विशेष प्रचलित पर्याय दे दिये जाते हैं। पर्यायों द्वारा अर्थ बोधन कराने में अत्यधिक कठिनाइयाँ होते हुये भी जॉनसन ने व्याख्या-प्रणाली की अपेक्षा पर्याय को ही प्राथमिकता देना श्रेयस्कर समझा।[2] आलोच्यकालीन कोशों में इस शैली का प्रयोग तीन प्रकार से हुआ है। समस्त समानार्थी कोशों में परम्परागत या रूढ़ पर्याय छन्दों में बद्ध हैं। द्विभाषीय कोशों में हिन्दी शब्द का विदेशी पर्याय एक या इससे अधिक शब्दों द्वारा अभ्युपगत कराया गया है। तीसरी पद्धति आदम के कोश में अपनाई गई है जहाँ हिन्दी शब्दों को अन्य हिन्दी पर्याय देकर अर्थ स्पष्ट किया गया है। कुछ पर्याय कोशों में भी ऐसे स्थल मिलते हैं। अंतिम दो शैलियाँ 'अनुवाद' शीर्षक द्वारा नीचे स्वतन्त्र रूप से विवेचित हैं, भले ही कुछ विद्वान् पर्याय एवं अनुवाद में भेद न करें।

---

१. **पद–पद अरथ अपार, सुकब तत सार सकती।**
अनेक ग्रंथ सूझे अरथ, कब कविता कायव कहण॥—अ० मा०, छ० ३।

२. **वेबस्टर्स डिक्शनरी ऑव् सिनानिम्ज, भूमिका, पृ० १०।**

समानार्थी कोशों में पर्याय-संकलन अत्यन्त विस्तार से हुआ है जिसका सविस्तार वर्णन द्वितीय अध्याय के अन्तर्गत किया जा चुका है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा :

॥ ग्रह नाम ॥

सदन सद्म औ वस्त्य वसति आवास जू।
विष्णु वेश मनि शांतनिकेत निवास जू।
गेह अगार निकाय निलाय अलाय दं।
मंदिर धाम स्थान शरण धामा सदं॥[1]

(२) **अनुवाद**—अनुवाद प्रक्रिया के दो विभाग किये जा सकते हैं (१) कठिन हिन्दी शब्दों का सरल व सर्व प्रचलित हिन्दी शब्द द्वारा एवं (२) हिन्दी शब्दों का अन्य भाषीय समानार्थक शब्दों द्वारा।

कठिन शब्दों का सरल व सर्व प्रचलित शब्दों द्वारा। विशेष रूप से आदम कृत हिन्दवी कोश तथा नाममाला 'ग' और सामान्यतः अनभैप्रबोध एवं डिंगल कोशों और अन्य समस्त समानार्थी और अनेकार्थी कोशों में यह माध्यम व्यवहृत हुआ है। यथा :

चिकुर केस को कहत हैं[2]
देवृसु देवर होइ[3]
प्राची पूरब को कहिये[4]
द्विज पंछी को कहत कवि[5]

अन्य भाषीय समानार्थक शब्दों के दो प्रमुख उपभेद हैं :

(अ) **हिन्दी : अंग्रेजी**—यह केवल गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी, और टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश में उपलब्ध होगा। यथा :

अंगूठा —Thumb
पानी —Water
पैंसठ —Sixty five
पुस्तक —Book

---

१. वि० ना० मा०, छ० २७।
२. प्र० ना० मा०, पृ० ३९३।
३. ना० प्र०, पृ० ५३।
४. वही, पृ० १६।
५. अने० नन्द०, पं० १६३।

पर—on, over, aboard, above, upon, through, after, at, by, for, but, rather etc.

(आ) हिन्दी : फ़ारसी—यह चारों हिन्दी-फ़ारसी कोश—ख़ालिकबारी, अल्ला-ख़ुदाई, पारसीपारसातनाममाला एवं तुहफ़तुलहिन्द में प्रयुक्त हुआ है। फ़ारसी के साथ ही आवश्यकतानुसार अरबी के शब्द भी दिये गये हैं। यथा :

चाँदनी —माहताब[१]

नीला पीला —ज़र्द कबूद[२]

ताना बाना —तार व पूद[२]

सारस —यह एक प्रसिद्ध पक्षी का नाम है जिसको फ़ारसी भाषा में 'कुलंग' कहते हैं।[३]

स्रीफल —इसको फ़ारसी में 'हूर हिन्दी' कहते हैं।[४]

हाथ —दस्त।[५]

(इ) हिन्दी : अरबी—

तगर —यह एक दवाई का नाम है जिसको अरबी में 'शलीखा' कहते हैं।[६]

पुर्वा —यह पूर्व दिशा से बहने वाली हवा है जिसको अरबी में 'सबा' कहते हैं।[७]

तज —यह एक सुगन्धित दवाई का नाम है जिसको अरबी में 'किर्फ़:' कहते हैं।[८]

---

१. चांदनी रा तू माहताब ब गो, धूप रा नेज़आफ़ताब ब गो—अ०खु०, पं०१८।
२. 'नीला पीला ज़र्द कबूद, ताना बाना तारो पूद'—खा० बा०, पं० ६।
३. सारस—नामे तायरेस्त मशहूर अज़ ज़बाने फ़ार्सी कुलंग गोयन्द —तुह०, पृ० २५४ मू०।
४. स्रीफल—नारजल रा नामन्द व आँ रा ब फ़ार्सी हूर हिन्दी गोयन्द —वही, पृ० २५५ पी०।
५. 'हाथ दस्त यद नाम है, पुस्त जु हरये पीठि—पा० पा०, छ० ८३।
६. तगर—नामे दवायेस्त कि ब ताज़ी आँ रा शलीखा गोयन्द। —तुह०, पृ० २२६ पीठ।
७. पुर्वा—बादे कि अज़ जानिबे मश्रिक़ वज़िन्दः व ब ताज़ी आँ रा सबा नामन्द। —वही, पृ० २१६ पी०।
८. तज—नामे दवायेस्त ख़ुशब व आँ रा ब ताज़ी किर्फ़ : गोयन्द। —वही, पृ० २२६ मू०।

बिच्छू —अक्रब[१]

(ई) **हिन्दी : अरबी : फारसी—**

राख =रिमाद =ख़ाकस्तर[२]

जीभ =लस्सान =ज़बाँ[३]

खरहा =अर्नब =ख़रगोश[४]

(३) **अंग प्रत्यंग, आकार एवं रूप** इसका नख-शिख रूप व आकार——है। इस प्रक्रिया का प्रयोग एकाक्षरी, वर्णक तथा द्विभाषीय कोशों में से अल्लाख़ुदाई, ख़ालिक़बारी, पारसीपारसातनाममाला एवं वाकेबुलेरी को छोड़कर अन्य समस्त समानार्थी, अनेकार्थी, तथा द्विभाषीय कोशों में हुआ है। विश्लेषण सुविधा के लिए इसको कई भागों में बाँट सकते हैं :

(१) **सिर या मुख**—कार्तिकेय —षडानन, षडबदन[५] खटमुख[६]

किन्नर —तुरगमुख[७] तुरगबदन[८]

ब्रह्मा —चतुरानन[९]

रामण —दससीस[१०]

शिव —पंचमुख[११]

शेर —पंचानन[१२]

---

१. 'बिच्छू अक्रब व नेश डंक वदान' —अ० खु० पं० ३८।
२. 'राख रा तू रिमाद व ख़ाकस्तर' —वही०, पंक्ति ४६।
३. 'जीभ रा हम लसान जबान मीदान' —वही, पंक्ति ८२।
४. 'खरहा रा तू अरनव ब ख़रगोश' —वही, पंक्ति ४४।
५. वि० ना० मा०, छ० ४३।
६. ना० मा० "क", छ० १००।
७. प्र० ना० मा०, पृ० २७१।
८. ना० प्र०, पृ० १५।
९. आ० बो०, छ० ६४।
१०. अ० मा०, छ० १००।
११. ह० ना० मा०, छ० २४।
१२. वि० ना० मा०, छ० ९६।

(२)	नेत्र	—इन्द्र	—सहस्राक्ष[१]
		महादेव	—त्रिलोचन[२]
		सदासिव	—विरूपाक्ष[३] विसालदृग[४]
		सेस	—बिसहस नेत्र जिणि[५]
(३)	जिव्हा	—गंगा	—सहस्रमुखी[६]
		सेस	—जीह बीसहस[७], सहसफणी[८], जिह्वादोय-हजार[९]
(४)	कंठ	—ऊँट	—लंब-ग्रीव[१०]
		मयूर	—नीलकंठ[११]
(५)	कर्ण	—महादेव	—सितकंठ[१२], नीलकंठ[१३]
		खर	—करण लंब[१४]
(६)	भुजा	—रामण	—ब्रीसभुजा[१५]
		विष्णु	—चतुर्भुज[१६]
(७)	पेट	—भीम	—वृकोदर[१८]
(८)	पद	—भ्रमर	—षटपद[१९]
		सिंघ	—अष्टापद[२०]
(९)	वस्त्र	—कृष्ण	—पीताम्बर[२१]
		बलभद्र	—नीलाम्बर[२२]
(१०)	सामान्य	—कमल	—इसकी एक हज़ार पंखुड़ियाँ होती हैं[२३]
		कुशेशय	—इसकी एक सौ पंखुड़ियाँ होती हैं।[२३]

---

१. उ० को०, १-२-३२ ।
२. वही, १-२-१९ ।
३. अ० मा०, छ० १९ ।
४. वही, छ० १८ ।
५. ह० ना० मा०, छ० ४९ ।
६. वही, छ० ४१ ।
७. वही, छ० ४९ ।
८. अ० मा०, छ० २२४ ।
९. वही, छ० २२४ ।
१०. प्र० ना० मा०, पृ० ३४४ ।
११. ना० रा०, छ० १० ।
१२. उ० को०, १-२-१९ ।
१३. ना० मा० "ख", छ० ४७ ।
१४. अ० मा०, छ० १०० ।
१५. उ० को०, १-२-११ ।
१६. ह० ना० मा०, छ० २३६ ।
१७. अ० मा०, छ० १०९ ।
१८. उ० को०, २-५-४७ ।
१९. अ० मा०, छ० १४२ ।
२०. उ० को०, १-२-११ ।
२१. ह० ना० मा०, छ० २७५ ।
२२. कमल कही सु हजार इक पंखुरी जामे होई ।
नाम कुशेशय ताहि जो सौ पखुरी को होइ ॥
—ना० प्र०, पृ० ६७ ।

उपर्युक्त भिन्न-भिन्न अंगों का अलग-अलग विवरण देने के अतिरिक्त कहीं-कहीं समस्त आकृति वा शरीरावयवों की सांगोपांग रूपरेखा प्रस्तुत की गई है यथा :

लंबोदर—यह (हिन्दुओं के) एक प्रसिद्ध देवता का नाम है जिसका मुख और सिर हाथी का है तथा एक दाँत है एवं शरीर पुरुष का व पेट बड़ा है।[1]

(४) **समानता**—इसकी तुलना आकार, रूप, गुण, अवस्था वा मूल में——से की जा सकती है। समानार्थी कोशों में उपमान पर्यायों द्वारा, एवम् कर्णाभरण के टीका अंश में तथा तुहफ़त् और टेलर के कोशों में सामान्यतः समानता के माध्यम द्वारा अर्थों को स्पष्ट किया गया है। अधिक स्पष्टता के लिये इसके निम्न विभाग किये जा सकते हैं :

(क) **आकार व रूप में समानता :**

कमंडल —यह मोर की सी आकृति का एक पात्र विशेष है।[2]

टसर —यह रेशम के समान एक वस्त्र है।[3]

बूँदिया —मिठाइयों का एक प्रकार, जो दीखने में पानी की बूँद जैसी लगती है[4]।

अंक्य —'जाकी हरीत की सूरति होय'।[5]

आलिंग्य—'एक ओर मोटी बहुत होय एक ओर पतली जाकी जव की सी सूरति होय सो आलिंग्य।'[6]

अर्द्धक —'बीच मोटी गाय की पोंछ की सी आकृति होय चढ़ाव उतार सो अर्द्धक।'[7]

---

१. लंबोदर—किनायत अज़ गनेस व आँ देवताये अस्त मश्हूर कि सरश ब सूरते फ़ील ब यक दंदाँ व तना अश व शक्ले आदमी अस्त व बाशिकं कलाँ। —तुह० पृ० २७४ मू०।

२. कमंडल—आलः बुवद मानिन्दे ताऊस कि फ़ुक़रा बराये आब बा खुद दारन्द। —वही, २६५ मू०।

३. टसर—चीजे बुवद शबीह ब अब रेशम कि अद्ना मर्दुकम् क़ीमत टर अजाँ कि अज़ गै नीज़ चीजहा बाफ़न्द। —वही, पृ० २२९ पी०।

४. हिन्दु० I पृ० ३८६।

५-६. कर्णा० पृ० १५ पीठ।

७. कर्णा० पृ० १५ पीठ। तुलना कीजिये, —हरीतक्याकृतिस्त्वङ्क्यो यवमध्यस्तथोर्ध्वकः। आलिंग्यश्चैव गोपुच्छसमानः परिकीर्तितः—अ० को० (टीका), पृ० ६९ से उद्धृत।

हिमंचल—यह एक देवता का नाम है जिसकी आकृति पर्वत के सदृश है।[1]

हनुमंत —यह एक प्रसिद्ध देवता का नाम है जो रूप में बन्दर के समान है।[2]

(ख) नेत्रों की समानता—

नारी—मृग लोचना[3], कंजनयना[4]।

कृष्ण—पुँडरीकाक्ष[5], पदमाक्ष[6]।

(ग) गुणों की समानता—

पोटा—'(ऐसी स्त्री—) जाके पुरुष के से लछन होय, मोछ की रेखा होय।'[7]

नारी—पिककंठी[8]।

(घ) अवस्था की समानता—

मनोजवस—'मनोजवस सो जानियो, पिता बराबर होइ।'[9]

(ङ) मूल्य की समानता—

ऊँट—हाथीमोला[10]।

यहाँ पर आकृति एवं समानता द्वारा व्याख्या में अंतर स्पष्ट कर लेना भी आवश्यक प्रतीत होता है। आकृति में व्याख्याकार मूल वस्तु या व्यक्ति के वास्तविक आकार का यथातथ्य चित्र खींचते हैं। वह जैसा है उसका आंशिक या पूर्ण विश्लेषण या खाका बनाकर पाठकों के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं। किन्नर तुरगमुख हैं। उनका मुख घोड़े का है—घोड़े का सा नहीं। इसी प्रकार विष्णु चार भुजा का है—यह एक पौराणिक या ऐतिहासिक सत्य है। व्याख्याकार ऐसा भ्रमवश नहीं कहता। परन्तु समानता द्वारा व्याख्या में वह मूल वस्तु या व्यक्ति का दूसरा प्रतिरूप उपमा, रूपक या उत्प्रेक्षा के माध्यम से प्रस्तुत करता है—नारी की आँखें मृग की नहीं, मृग की सी

---

१. हिमंचल—नामे देवताये अस्त ब शक्ले कोह —तुह०, पृ० २८६ पी।
२. हनुमंत—नामे देवताये अस्त मश्हूर ब शक्ले बूजिनः—वही०, पृ० २८५ पीठ।
३-४ कर्णा०, पृ० ३० मूल।
५. अ० मा०, छ० ३१।
६. उ० को०, १-२-११।
७. कर्णा०, पृ० ३० पी०।
८. वही, पृ० ३० मू०।
९. प्र० ना० मा०, पृ० ३५५।
१०. ना० डि०, छन्द ५।

हैं। व्याख्याकार के मतानुसार हनुमंत है तो देवता, परन्तु आकृति मात्र मर्कट की सी है। पोटा पुरुष नहीं, उसमें कुछ लक्षण मात्र पुरूष के से हैं। कमंडल वास्तव में मोर नहीं, आकार में मोर के सदृश प्रतीत होता है।

(५) रंग—इस वस्तु का रंग—है। आंशिक रूप से कुछ समानार्थी कोशों और मिर्ज़ा तथा टेलर के कोशों में यह माध्यम प्रयुक्त हुआ है। यथा

इन्द्रबधू—यह लाल रंग का एक कीड़ा है जो वर्षा ऋतु में अत्यधिक पैदा होता है।[१]

कंचन—पीत रंग।[२]

कपिला—भूरे रंग की गाय।[३]

कपूर—यह पीले रंग का एक फूल विशेष है।[४]

कुसुम—'पुष्प विशेष जिसका बहुत लाल रंग वस्त्रादि पर आवता है'।[५]

चिबुक बिन्दी—यह स्याम रंग की वा असित नीली द्युति की होती है।[६]

चूनर—यह विभिन्न रंगों से निर्मित वस्त्र विशेष है।[७]

जावक—यह लाल रंग का महावर है।[८]

जूही—'जो पीत फूल होयतो है'।[९]

दाड़म—इसका पीला रंग होता है परन्तु फूल और कण लाल होते है।[१०]

---

१. इन्द्रबधू—किर्मके अस्त सुर्ख़ रंग कि दर् मौसमें बर्शकाल बहम्रसद व आँ रा दर् मुतआरिफ़ बीरबहूटी गोयन्द —तुह०, पृ० १९९ पी०।
२. अ० मा०, छ० १७६।
३. हिन्दु० II, पृ० ४०४।
४. कपूर-गुले अस्त जर्द रंग खुशबू। —तुह०, पृ० २६० पी०।
५. हिन्दुई०, पृ० ५०।
६. चिबक स्यांम बिंदो चढ़े असित नील दुति आख। स्यांम रांम मेचक असत सस लछ्रण छिव्र साख।।—अ० मा०, छ० ४७९।
७. चूनर—लिबासे बुवद कि बर आँ रंग बिरंग नक़्शबन्दी कुनन्द व आँ रा दर् मुतआरिफ़ बांधनू गोयन्द। —तुह०, पृ० २३६ पीठ।
८. जावक—बमानाये महावर बाशद व आँ रंगे अस्त सुर्ख़। —वही, पृ० २३२ पी०।
९. कर्णा०, पृ० २५ पी०।
१०. पीतरंग दाड़म पढ़ौ, लाल फूल कण लाल। —अ० मा०, छ० ५३१।

पुंडरीक—'स्वेत कमल सो पुंडरीक'।[1]

वृहस्पति—रंगपीत।[2]

मंगल—लोहितांग।[3]

राजहंस—'राजहंस है एकै सोई, चरन चंचु जिहि रातुल होई'।[4]

सुवा—इसकी चोंच लाल व शरीर नीला (हरा?) एवं बहुरंगी होता है।[5]

(६) **वस्तु के आन्तरिक गुण या विशेषताएं :** यह पद्धति भी कुछ पर्याय संकलनकर्ता तथा मिर्ज़ा के लुग़त् और टेलर की डिक्शनरी में व्यवहृत हुई है यथा :

अकास—'अकास को नाम प्रकाशित जो है'।[6]

कामिनी—उत्तम सुन्दरी और प्रेमी स्त्री।[7]

कुश—'तृण विशेष जो अति पवित्र है'।[8]

गणेश—विघ्न-विनाशन।[9]

गोरी—कोमल स्त्री को कहते हैं।[10]

चंडी—'अति कोप जामें सो चंडी'।[11]

चन्द्रमा—'शीतलता गुन जान'।[12]

जुधिष्ठिर—धर्म तात, सत्यवादी, धरमात्मज।[13]

---

१. कर्णा०, पृ० २५ पी०।
२. अ० मा०, छ० ४८१।
३. आ० बो०, छ० २९।
४. ना० प्र०, पृ० १२९।
५. 'रगत चूंच लीलंगरित, रस बहु रंग सरीर' —अ० मा०, छ० ४८९।
६. ना० प्र०, पृ० १५।
७. हिन्दुई०, पृ० ४५।
८. वही, पृ० ५०।
९. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
१०. गोरी—ज़ने नाज़ुक रा गोयन्द —तुह०, पृ० २७२ मू०।
११. कर्णा०, पृ० ३० मू०।
१२. आ० बो०, छ० २५।
१३. 'जोहा साँच बोल तो जुजिठल, सांच तणो बेली किसन'। —ह० ना० मा०, छ० १२।

नारी —मधुर भाषिणी, विलासिनी ।[१]

परिमल —'परिमल व है गन्ध जिय होई' ।[२]

रोमावलि —वक्षस्थल के नीचे या नाभि के ऊपर उगे हुये अत्यन्त महीन व मृदुल बालों को कहते हैं ।[३]

मुग्धा —स्त्री का नाम हैं, सामान्यतया अबोध स्त्री ।[४]

लोचना —स्त्री को कहते हैं, विशेषतया अत्यधिक सुन्दर व आकर्षक नयनों वाली ।[५]

सेर —'सनमुख—भाला—सहण ।[६]

(७) परिमाण—प्रस्तुत वस्तु लम्बाई चौड़ाई व ऊँचाई या गहराई का भार—है । कर्णाभरण कोश के टीका भाग में कुछ स्थलों पर परिमाण द्वारा अर्थ-द्योतन की पर्याप्त चेष्टा की गई है यथाः

गरमां (गरिमा) —'अति भारी होय भूमि भार नहीं सहि सकें' ।[७]

छुप —'जाकी साखा और मूल छोटो होय सो छुप' ।[८]

व्रज —इसकी परिधि १६८ मील है ।[९]

महिमां —'बड़ो होय संसार में न समाय सके ।[१०]

लघिमां —'अति ही हलुको होय' ।[११]

सानु —'चौड़ा होय समभूमि होय' ।[१२]

श्रृंग —'जो ऊंचो होय, ऊपर तीखो होय, सो श्रृंग' ।[१३]

---

१. कर्णा०, पृ० ३० मू० । २. ना० प्र०, पृ० ३२ ।
३. रोमावल (लि)—दस्तः मूयहाय बारीक व नर्म बुवद अज जेर सीना या सरे नाफ़ —तुह०, पृ० २४८ पी० ।
४. मुग्धा—बमा'नाय जन बाशद उमूमन जने नादान—तुह०, पृ० २७६ मू० ।
५. लोचना—बमा'नाये जन बुवद खुसूसन जमीला व खुश चश्म—वही, २७३ पी० ।
६. ना० डि०, छ० १४ । ७. कर्णा०, पृ० ४ पी० ।
८. वही, पृ० २३ मू० । ९. हिन्दु० I, पृ० २१५ ।
१०. कर्णा०, पृ० ४ पी० । ११. वही, पृ० ४ पी० ।
१२. वही, पृ० २३ मू० । १३. वही, पृ० २३ मू० ।

(८) **व्यवहार व स्वभाव**—यह अमुक स्वभाव का है एवं अमुक परिस्थितियों में अमुक व्यवहार करता है। इस विशिष्ट माध्यम का प्रयोग केवल मिर्ज़ाख़ांकृत तुहफ़त् और टेलर की डिक्शनरी में अधिक हुआ है। यथा :

चकोर —यह एक पक्षी है। जो चन्द्रमा में अनुरक्त रहता और (इसीलिए) पूर्णमासी के दिन आग (चिनगारी) खाता है।[1]

चात्रिक —पपीहा का नाम है, जो अधिकांशतः रात्रि में बोलता है और 'पीउ' 'पीउ' की रट लगाता है।[2]

तमस्सरा —अभिसारिकाओं का एक प्रकार है, जो अन्धकारपूर्ण रात्रि में नायक के पास अभिसार करने जाती है।[3]

दूती —एक स्त्री को कहते हैं, जो नायिका के दुख में स्वयं भी दुखी होती है।[4]

पतंगिका —'पतंगिका सो पुत्तिका, दीप निरखि दै अंग'।[5]

प्रेयसी —एक स्त्री का नाम है जो अपने पति को अत्यधिक चाहती है। (सद्व्यवहार के कारण) उसके बहुत सखा-सहेलियाँ भी होती हैं।[6]

बया —एक छोटे से पक्षी का नाम है जो (तृण व घास फूस) लाना और ले जाना सीखता है।[7]

बासकसज्जा—नायिकाओं के आठ प्रभेदों में से एक नायिका का नाम है जो नायक की क्रीड़ास्थली को विभिन्न उपकरणों से अलंकृत करती है।[8]

---

१. हिन्दु० I, पृ० ६३५।
२. चात्रिक—पपीहा रा नामन्द कि बेशतर शबहा आवाज़ कुनद व पीउ पीउ मी गोयद। —तुह०, पृ० २३७ पी०।
३. तमस्सरा—क़िस्मे अज़ अभसारिका दर शबे तारीक पेशे नायक बिरवद। —वही, पृ० २२५ पी०।
४. दूती—ज़ने रा गोयन्द कि नायका बाहम आज़र्दः बाशद—वही, २४३ मू०।
५. प्र० ना० मा०, पृ० ३०६।
६. प्रेयसी—ज़ने रा गोयन्द कि शौहरश बिस्यार मी-ख्वास्तः व दोस्त मी-दास्तः बाशद। —तुह०, पृ० २२३ पी०।
७. हिन्दु० I, पृ० २९६।
८. बासकसज्जा—नामे नायकाये अस्त अज़ नायकाहाय हस्तगानः व आँ नायकाये बुवद कि अस्बाबो ऐशो इशरत आमदः साख्तः मंजरे नायक बाशद। —तुह०, पृ० २०० मू०।

बिदूखक —यह नायकों का एक भेद है जो अपने रसीले चुटकलों एवं परिहास द्वारा अपने मित्रों को प्रसन्न किया करता है।[१]

व्रातमृग —'व्रातमृग व्यारि के सामने दौरत है।'[२]

अन्यत्र जीवों के आहार बताकर भी उनके स्वभाव या आदत का स्पष्टीकरण किया गया है। यथा:

बक —एक पक्षी जो मछली खाता है।[३]

भीम —बहुभखी।[४]

मयूर —अहि भखी, या उरगभोजी।[५]

हंस —मुगताभखी।[६]

(९) **अवस्था**—यह अमुक अवस्था का है। कुछ समानार्थी कोशों में यह पद्धति व्यवहृत हुई है। यथा:

उत्तानशया—दूध पीने वाले बच्चे की अवस्था का नाम है।[७]

कन्या —'कन्या कुमारी को कहै, सात बरस लौं होई'।[८]

कलभ —तीस वर्ष तक हाथी।[९]

कात्यायनी —'कात्यायनी कहत कवि अर्द्ध-वृद्ध तिय जौन'।[१०]

पलन्की —'नारी पूरन वृद्ध जो, कहत पलंको तौन"।[११]

पोत —दस वर्ष तक का हाथी।[१२]

---

१. बिदूखक—क़िस्मे नायके अस्त अज़ अक़साये नायक व आँ नायके बुवद क़ि क़वादग़ी व मस्ख़रगी शुआरे ख़ुद साख़तः बाशद।—तुह०, पृ० २०७ पी०।
२. कर्णा०, पृ० २७ मू०।
३. हिन्दु० I, पृ० २३३।
४. अ० मा०, छ० २११।
५. कर्णा०, पृ० २८ पो०।
६. अ० मा०, छ० १४६।
७. उत्तान शया स्तनधयी स्तनपा डिंभा चारि।
दूध पियत बालक जु है, ताहि नाम निरधारि॥ —ना० प्र०, पृ० १४५।
८. प्र० ना० मा०, पृ० ३०९।
९. पाँच बरस को बालगज, दस को पोत प्रमान।
बीस बरस कौ बिष्कसो, कलभ तीसको जान॥—प्र० ना० मा०, पृ० ३१०।
१०-११. उ० को० २।६।१३।
१२. प्र० ना० मा०, पृ० ३१०।

बाल —ऐसी किशोरी जो परिपक्वावस्था को न पहुँची हो।[1]

बालगज —पाँच वर्ष तक का हाथी ।[2]

विष्क —बीस वर्ष तक का हाथी ।[2]

श्यामा —'श्यामा नारि कहावई, नव जोवना जो होई ।[3]

(१०) **समय**—यह अमुक काल में घटित हुआ या होता है। अर्थ बोधन की इस प्रक्रिया का प्रयोग केवल मिर्ज़ा और टेलर के द्विभाषीय कोशों में हुआ है। जैसे :

'रामचन्दर'—लंका का विजेता——। इन्होंने अयोध्या में सन् १६०० ई० (?) के लगभग राज्य किया।[4]

भैरों —एक राग का नाम जिसको शरद ऋतु के ऊषा काल में गाते हैं।[5]

बसेरा —सायंकाल से पूर्व का वह समय जब पक्षी अपने नीड़ों को लौटते हैं।[6]

होली — ——यह फागुन महीने के अन्तिम दिन और चैत मास की पहली रात, जब शिशिर ऋतु समाप्त और वसन्त ऋतु प्रारम्भ होने वाली रहती है, को आती है ——।[7]

(११) **प्रयोग**—प्रस्तुत वस्तु का अमुक प्रयोग है। शब्दों के अर्थ देने का यह अत्यन्त सबल माध्यम है जिसका उपयोग आधुनिक कोशों में अत्यधिक रूप से किया जाता है। परन्तु परम्परागत समानार्थी या अनेकार्थी कोशों में इसके लिये अधिक क्षेत्र न था। विवेच्य कोशों में से दो एक अपवादों को छोड़ कर मुख्यतः मिर्ज़ाखाँ एवं टेलर ने अपने कोशों में इस माध्यम को अपनाया। सुविधा के लिये इसको निम्न उपभेदों के द्वारा निरूपित किया जा सकता है :

---

१. हिन्दु० I, पृ० १८५।
२. दे०, पृ० २७८ टि० ९।
३. प्र० ना० मा०, पृ० ३८२।
४. हिन्दु० II, पृ० १११।
५. वही, I पृ० २८७।
६. वही, I पृ० २३०।
७. होली"'आँ दर रोजे आखिर माहे फागुन अस्त शबे अव्वली माहे चैत कुनन्द इन्तहाये शिशरित व इब्तदाये बसन्त रित अस्त'''।"—तुह०, पृ० २८६ पी०।

(क) **सामान्य प्रयोग :**

दुंदुभि—'दुंदुभि बाजत सोइ' है।[1]
बांसुरी—'नय' का नाम है जिसको बजाते हैं।[2]

(ख) **विशिष्ट प्रयोग :**

इति—यह एक शब्द है जिसको (वाक्यों) के अन्त में प्रयुक्त किया जाता है, जिसका तात्पर्य है कि 'अब समाप्त हो गया'।[3]

धन (धन्य)—यह एक विशिष्ट शब्द है जिसको किसी की प्रशंसा या बड़ाई करने हेतु प्रयुक्त किया जाता है।[4]

श्री—यह (शब्द) सदैव हिन्दू व्यक्ति वाचक संज्ञाओं के प्रारम्भ में लिखा जाता है।[5]

हहा—यह एक शब्द बिशेष है जो किसी की हीनता पर उसका उपहास करने के लिये प्रयुक्त किया जाता है।[6]

(ग) **काव्यात्मक प्रयोग**

बिंब—यह जंगलों में उत्पन्न होने वाले एक फल का नाम है—(यह अधिक प्रसिद्ध इसलिये है कि) भारतीय कविगण इसके (लाल रंग) की उपमा प्रियतमा के (सुन्दर लाल) होठों से देते हैं।[7]

मराल—बहुत ही प्रशंसा प्राप्त एक पक्षी का नाम है जो मन्द व मंथर गति के गुण से पूर्ण है। (इसीलिये) भारतीय कवि (इसकी गति से नायिकाओं की) मंथरगति की उपमा देते हैं।[8]

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० ३८९।
२. बांसुरी—नय बुवद कि आंरा नवाजन्द। —तुह०, पृ० २११ पी०।
३. हिन्दु० I, पृ० ३५।
४. धन— कल्मये अस्त कि दर महल तहसीनो आफ़रीं इस्तेमाल कुनन्द —तुह०, पृ० २४४ पी०।
५. हिन्दु० II, पृ० २०८।
६. हहा— कल्मये अस्त कि दर महल इज्जो इल्हा इस्ते'माल कुनन्द। —तुह०, पृ० २८५ पी०।
७. बिब—समरे अस्त सहराई—कि शोआराये हिन्द लबे मा'शूक बदाँ तश्बीह कुनन्द। —तुह०, प० २०२ पी०।
८. मराल— नामे परिन्दः अस्त मौसूफ़ व मंसूब ब खुश रफ़्तारी व खुश खेरामी कि शोआराये हिन्द रफ़्तारे खूबाँ रा बदाँ तश्बीह कुनन्द। —तुह०, पृ० २८० मू०।

(घ) **प्रयोगकर्ता :**

यह वस्तु—द्वारा प्रयुक्त की जाती है। जैसे—

अपभ्रंश—यह पशु-पक्षियों द्वारा प्रयुक्त भाषा है।[१]

खप्पर—भिखारियों द्वारा प्रयुक्त एक कटोरे को कहते हैं।[२]

तुन— यह एक पेड़ का फल है, जिसको रंगरेज़ पीला रंग करने के लिये प्रयोग में लाते है।[३]

टेंट—यह एक जंगली फल है जिससे निम्नवर्गीय परिवार अचार, रोटी एवं अन्य भोज्य पदार्थ निर्मित करते हैं।[४]

पिसाची—यह राक्षसों की भाषा का नाम है।[१]

प्राकृत—यह मनुष्यों द्वारा प्रयुक्त भाषा है।[१]

मागध—यह नागों की भाषा है।[१]

संस्कृत—यह देववाणी है।[१]

हुसेनी—यह दैत्यों की भाषा का नाम है।[१]

(ङ) **प्रयोगार्ह :**

प्रस्तुत वस्तु—कार्य के निमित्त प्रयोग में आती है। कुछ समानार्थी कोशों में भी यह प्रक्रिया अपनाई गई है, यथा :

अलान—'गज बांधन के मेख जो, ताको कहत अलान'।[५]

पट्ट—'घाव बांधिवे को बसन, पट्ट कहावत सोइ'।[६]

मेखला—'जासौ तरवार कमर में बांधे हैं एसौं साज जानिये'।[७]

---

१. प्राकृत नर भाखा पढ़ौ नागां मागध नीत।
सुरभाखा सो संसकृत रकस पिसाची रीत॥
अपभ्रिंसी पंखी उकत दनुज हुसैनी दाख।
प्रभता काव्यप्रकास मैं जै भाखा खट आख॥—अ० मा०, छ० ४६०-४६१।

२. खप्पर—कासए गदायां बुवद। —तुह०, पृ० २८६ पी०।

३. तुन—समरे दरख़्त अस्त कि रंगरेजाँ बदाँ रंग जर्द कुनन्द—वही, पृ० २२८ मू०।

४. टेंट—समरः अस्त सहराई कि मर्दुमे ग़ुरबा अज आँ अचारो नान खुरिश साज़न्द। —वही, पृ० २२९ मू०।

५. ना० प्र०, पृ० १९८।

६. प्र० ना० मा०, पृ० ३७५।

७. कर्णा०।

सांटा—एक लाठी या कोड़ा जिससे हाथी युद्ध के अवसर पर पीटे जाते हैं।[१]

(च) प्रयोगविधि :

यह वस्तु——भाँति या——प्रकार प्रयुक्त होती है। उदाहरण के लिये :

काछ—एक वस्त्र का नाम, जो इस प्रकार पहना जाता है कि नितम्बों के चारों ओर से होकर दोनों जंघाओं के बीच से होता हुआ पीछे कमर पर टांग दिया जाता है।[२]

सारी—यह एक महीन 'चादर' है जो लंहगा के ऊपर से लुंगी के सदृश पहनी जाती है। यह कमर पर बांधी जाती है जिसका आधा हिस्सा मेजर (?) की भाँति सिर को ढके रखता है।[३]

(छ) प्रयोग स्थान :

यह वस्तु——स्थान पर प्रयुक्त होती है। यथा :

नथनी—अंगूठी के आकार का एक आभूषण जिसको नाक में पहनते हैं।[४]

पायल—एक ज़ेवर को कहते है जिसको हिन्दू महिलायें पाँवों में पहनती हैं।[५]

(१२) **अंश एवं पूर्ण**—यह इस समस्त वस्तु का एक भाग, खंड व अंश है। प्रक्रिया के इस माध्यम के निम्न उपविभाग किये जा सकते हैं :

(क) प्रथम में विवेच्य वस्तु पूर्ण आकृति का एक अंश है, परन्तु निश्चित विभागीय रेखा नहीं खीची जा सकती। कुछ समानार्थी कोशों में ऐसे आशिक प्रयोग द्रष्टव्य हैं :

उरु—जांध का 'उपली' भाग।[६]

टोला—कस्बे का एक विशेष भाग।[७]

---

१. हिन्दु० II, पृ० १७६।
२. वही II, पृ० ३८६।
३. सारी—आँ चादरे बुवद बारीक व नफ़ीसे रा बालाय लंहगा क़ि ब मंजिले लुंगेस्त क़ि ब कमर पेचन्द व निस्फ़हायरा ब तरीक़े मेजर बर सर अन्दाजन्द —तुह०, पृ० २५८ मू०।
४. हिन्दु० II, पृ० ४७२।
५. पायल—ज़ेवरे बुवद क़ि जनाने हुनूद पा पोशन्द—तुह०, पृ० २२१ पी०।
६. हिन्दुई०, पृ० ३२।
७. हिन्दु० I, पृ० ५२०।

पवनारि—'कमल की कोमल जरि जाको पवनारि कहत हैं'।[1]

पिंडी—शिवलिंग का ऊपरी हिस्सा।[2]

मंडल—'भूमिभाग मंडल कहे'।[3]

(ख) दूसरे में अंश व पूर्ण के मध्य विभाज्य रेखा निर्मित की जा सकती है। तुह-फ़त् से दो उदाहरण लीजिये—

चैत—बसन्त "रित" के दो महीनों में से पहले का नाम है।[4]

भादौ—"बरखा" के दो महीनों में से दूसरे महीने का नाम है।[5]

(ग) तीसरे उपविभाग में वे वस्तुयें हैं जो उसी से मिलते-जुलते कर्म या भावों (जिनकी निश्चित संख्या है) के क्रम में एक विशिष्ट स्थान रखकर उस सम्पूर्ण वस्तु को महत्त्व देते हैं। इस शैली का प्रयोग मिर्ज़ा ने अत्यधिक रूप से किया है। यथा:

निखाद—सात स्वरों में से क्रमशः सातवें स्वर का नाम है।[6]

बौनां —दस 'औतारों' में से एक 'औतार' का नाम है।[7]

द्वापर —यह हिन्दुओं में प्रचलित चार युगों में से तीसरे युग का नाम है।[8]

तुला —यह बारह राशियों में से एक राशि का नाम है।[9]

(ङ) एक भाव या वस्तु के 'निश्चित नामों में से एक' से ही मिलती-जुलती एक दूसरी प्रक्रिया भी तुहफ़तुलहिन्द में अपनाई गई है जिसको 'एक ही व्यक्ति के कई नामों में से एक' पद्धति कहा जा सकता है। उदाहरणतः

घनस्याम—यह 'कान्ह' के कई नामों में से एक नाम है।[10]

नारायन —यह ईश्वर के कई नामों में से एक नाम है।[11]

---

१. कर्णा०, पृ० २१ मू०।
२. हिन्दु०, पृ० ३७३।
३. प्र० ना० मा०, पृ० ३७५।
४. चैत—नामे माहे अव्वल अस्त अज बसन्त रित —तुह०, पृ० २३६ मू०।
५. भादौं—नामे माहे दोयम् अज बरखा रित —वही, पृ० २१५ मू०।
६. निखाद—नामे सुरे हफ़्तुम अस्त अज सुरहाय हफ्तगानः —वही, २८३ पी०।
७. बौनां—नामे औतारे अज औतारे दहगानः —वही, पृ० २०९ पी०।
८. द्वापर—नामे जगे सोउम् या'नी दौरो जमाना सोउम् रा गोयन्द अज़ जमाना चहारगानः कि जगे सोउम् मो'तकिद हुनूद अस्त —वही, पृ० २४१ पी०।
९. तुला—नामे बुर्जे अस्त अज़े बुरूजे द्वाज़दगानः —वही, पृ० २२५ पी०।
१०. घनस्याम—नामे यके अज नामहाय कान्ह बाशद —वही, पृ० २७३ मू०।
११. नारायन—नामे अस्त अज नामहाय बारी —वही, पृ० २०५ मू०।

भैरों—यह महादेव के कई नामों में से एक नाम है।[१]
इसी प्रकार की दूसरी शैली में व्यक्ति विशेष को उसी कर्म में रत अन्य व्यक्तियों की सामूहिक जाति का एक अंग तुहफ़तुलहिन्द में बताया गया है :

तिलोत्तमां—यह 'इन्दर' की राजसभा की कई अप्सराओं में से एक अप्सरा का नाम था।[२]

तुम्बर— यह आकाश के सम्राट् इन्द्र के कई गायकों में से एक गायक का नाम था।[३]

होहो— यह इन्द्र की सभा के गायकों में से एक का नाम है।[४]

(१३) **पूर्ण एवं अंश—**अमुक वस्तु अपने में अमुक अंशों को समाहृत किये है। केवल मिर्ज़ा और टेलर के कोशों में कुछ उदाहरण उपलब्ध होते हैं :

चौलड़ा —चार लड़ियों का एक कंठहार।[५]

जोजन —चार कोस की एक माप[६], एक कोस में दो मील होते हैं।[७]

रुत (रितु)—'फ़स्ल' या 'मौसम' का नाम है———दो महीनों की एक रित होती है। प्रथम बसन्त रित—इसमें चैत व बैसाख दो महीने होते हैं, द्वितीय 'गिरीखम', जिसमें 'जेत' व 'असार' दो महीने हैं, तृतीय 'बरखा रित' इसमें सावन एवं भादों दो महीने होते हैं। चतुर्थ 'सरत' जिसमें असूज और कातिक दो महीने होते हैं।

---

१. भैरों—नामे यके अज नामहाय महादेव अस्त —तुह०, २१५पी०।
२. तिलोत्तमां—नामे अप्सरायेस्त अज अप्सराहाय मज्लिसे इन्दर। —तुह०, पृ० २२७ मू०।
३. तुम्बर—नामे मुग़न्नीस्त अज मुग़न्नियाने इन्दर। —वही, पृ० २२७ मू०।
४. हाहा—नामे यके मुत्रिब अज मुत्रिबाने मज्लिसे इन्दर। —वही, पृ० २८६ पी०।

तुलना कीजिये—

हाहा हूहूश्चैवमाद्या गन्धर्वास्त्रिदिवौकसाम्" —अ० को० १।१।५२।

५. हिन्दु० I, पृ० ६६०।
६. वही I, पृ० ५७३।
७. वही० II, पृ० ४५८।

पाँचवीं रित 'हेमन्त' में 'मागसीर' तथा पूस दो माह और षष्ठ सिसिर में 'माग' वा फागुन दो माह होते हैं।[१]

(१४) **स्थान**—यह ऐसी जगह है जहाँ अमुक कार्य होता है। अर्थ-द्योतन का यह माध्यम सामान्यतः चारों वर्गात्मक कोशों एवं तुहफ़त् और हिन्दुस्तानी कोश में अधिकतर प्रयुक्त हुआ है। यथा:

आसन —'स्कन्धदेश आसन द्वय नांउ, बैठ महावत जौनी ढांउ'।[२]

स्थूना —'गुनहगार जंह मारिये, स्थूना ठौर है सोइ'।[३]

श्मशान—एक स्थान जहाँ मृत शरीर गाड़े जाते हैं।[४]

अधिक स्पष्टता के लिये इस माध्यम के निम्न उपभेद किये जा सकते हैं—

(क) वस्तु की दूसरी वस्तु से समीपता द्वारा (अरुन्धती न्याय), यह अमुक के समीप है। यथा:

उपवन—'घर के नजीक (जो बन) सो उपवन।[५]

कूल —'कूल नाम जल के किनारे ही को जानि मनि लीन्यो है'।[६]

जघन —'स्त्री के कटि के पुरोभाग सो जघन'।[७]

तर्जनी —'आंगूठा के नजीक की अंगुरी सो तर्जनी जानौ'।[८]

नगर —'राजधानि के निकट पुरहि साखा नगरहिं गन'।[९]

(ख) दिशा संकेत से:

यह स्थान अमुक दिशा में है।

कांवरू (कामरूप)—यह एक देश का नाम है जो हिन्दुस्तान के पूर्व में स्थित बंगाल देश की ओर है।[१०]

---

१. रत—ब मा'ना फ़स्लो मौसम बाशद व हस्बे करार दादे अहले हिन्द व दर हर दो माहे यक रित अव्वल बसन्त रित व आँ दो माह चैतो बैसाख बाशद दोयम गिरीखम रित व आँ दो माह जेत व आसार बाशद सेउम् बरखा रित व आँ दो माह सावनो भादौं बाशद चहारुम् सरत व आँ दो माह असूज व कातिक बाशद पंजुम हेमन्त व आँ मागसीर व पूस दो माह बाशद शशुम सिसिर व आँ दो माह माग व फागुन बाशद। —तुह०, पृ० २४७ मू०।

२. ना० प्र०, पृ० १९८।
३. प्र० ना० मा०, पृ० ३९५।
४. हिन्दु० II, पृ० २२७।
५. कर्णा०, पृ० २४ मू०।
६. ना० प्र०, पृ० ५८।
७. कर्णा०, पृ० ३१ मू०।
८. वही, पृ० ३३ पी०।
९. वही, पृ० २२ मू०।
१०. कांवरू—नामे बिलायते अस्त कि दर आँ जा शजर बिस्यार बुवद व दर आँ तरफ़ मुल्के बंगाला मश्रिक़ रूह हिन्द अस्त —तुह०, पृ० २६६ मू०।

सरंदीप—दक्षिण दिशा में स्थित एक भूखंड का नाम है।[१]

(ग) चारों ओर की परिक्रमा बताकर :

यह————के मध्य में स्थित है।

आक्ष —'आक्ष बहै मूँडी गहैं, पहिया मध्य जु काठ'।[२]

गली —'पठ ग्राम बीच'।[३]

गर्भागार —यह घरों के केन्द्रस्थ रहता है।[४]

जालंधर —पंजाब की भूमि में स्थित एक नगर का नाम है।[५]

द्वीप —'जल के बीच में जो धरती रहे सो द्वीप।[६]

प्रमद (वन)—'प्रमद एक तिहि नाम सभाग, राजभवन भीतर जो बाग।[७]

मध्यदेश —यह (उत्तर में) हिमालय, (पश्चिम में) कुरुक्षेत्र, (पूर्व में) प्रयाग और (दक्षिण में) विंध्याचल के मध्य स्थित देश का नाम है।[८]

(घ) दो सीमाएँ बताकर :

यह अमुक और अमुक के बीच में स्थित है।

अगिन (अग्निकोण)—यह पूर्व और दक्षिण के मध्य की दिशा का नाम है।[९]

अन्तर्वेद —एक देश का नाम जो गंगा तथा यमुना के बीच स्थित था।[१०]

आर्यावर्त —"हिमगिरि विंध्य सु बीच में, आर्यावर्त सु देस"।[११]

---

१. सरंदीप—नामे बिलायतेस्त जनूब रूह के हजरत आदम अलैहिस् सलाम अज आस्माँ दर आँ जा उफ्ताद : —तुह०, पृ० २५१ मू०।
२. ना० प्र०, पृ० २०२।
३. कर्णा०, पृ० २२ मू०।
४. गर्भागार सु बास ग्रह, जो घर में घर होई।
   नूर कहत बहु ग्रहन कौ निपट मध्य है सोइ ॥—प्र० ना० मा०, पृ० २९८।
५. जालंधर—नामे मौजये अस्त कि दर सर जमीने पंजाब—तुह०, पृ० २३२ म०।
६. कर्णा०, पृ० १९।
७. ना० प्र०, पृ० ८०।
८. विन्ध्याचल हिमिवान कुरुक्षेत्र अरु प्राग कहि।
   इनको मध्य सु जान मध्य देस मध्यम कहत ॥ —उ० को० २।१।७।
९. अगिन—मुश्किले जिहत अगिनी अस्त व आँ कुंजे माबैने मश्रिक़ व जनूब बाशद। —तुह०, पृ० १९९ मू०।
१०. हिन्दु०, पृ० १२८।
११. कर्णा०, पृ० २२ मू०।

देहली —"देहली द्वार की बीच थली"।[1]

बायब —यह एक दिशा का नाम है जो पश्चिम एवं उत्तर के मध्य में स्थित है।[2]

भरतखंड—संसार के भूखण्ड का नाम जो लंका और सुमेरु (पर्वत) के मध्य स्थित था।[3]

(१५) तत्व—प्रस्तुत वस्तु अमुक तत्वों से निर्मित होती है। कर्णाभरण, नामप्रकाश, तुहफ़तुलहिन्द, हिन्दवी तथा हिन्दुस्तानी कोश में यह माध्यम बहुलता से प्रयुक्त हुआ है, यथा :

आनाय —यह सूत से निर्मित जाल है।[4]

कढ़ी—एक पकान्न जो चने (के आटे) और मट्ठे से बनता है।[5]

खिचड़ी[6] —एक भोज्य पदार्थ जो दाल और चावल को एक साथ उबाल कर बनता है।[6]

टाटी —एक परदे को कहते हैं जिसको घास आदि से निर्मित करते हैं।[7]

पवित्रक —सन से निर्मित एक जाल का नाम।[4]

बीणा —'बीणा दोय को कहत हैं...एक दारवी जो लकरी की होय, एक विपंची जामें सात तार रहें..."।[8]

निश्रिनि —निश्रिनि काठ की (सीढ़ी) है।[9]

नछत्रमाला—सोंई एकावली जो सत्ताईस मोइतनि सों बनावे तो वाको नाम नछत्रमाला कहावै।[10]

---

१. कर्णा०, पृ० २२ पीठ।
२. बायब—नाम जिहते अस्त—व आँ कुंजे माबैने मगरिबो शिमाल बुवद।
—तुह०, पृ० २०२ पी०।
३. हिन्दु० I, पृ० २७१।
४. आनायो है जाल दु तौन, जाल बन्यो सूतहि को जौन।
कहो पवित्रक औ शण सूत, शन कौ जाल जु है मजबूत ॥—ना० प्र०, पृ० ६०।
५. हिन्दु० II, पृ० ४२८।
६. वही, II, पृ० ४६७।
७. टाटी—पर्दः बुवद कि अज़ काह व अम्साले आँ साजन्द।
—तुह०, पृ० २३० मू०।
८. कर्णा०, पृ० १५ मू०।
९. वही, पृ० २३ मू०।
१०. वही, पृ० ३२ पी०।

भर्त —तांबें और सीसे से मिश्रित धातु ।[1]

सठोरा —पकान्न, चीनी[1], सोंठ तथा मशाले से निर्मित एक मिठाई ।[2]

सोपान —'ईंटि की सीढ़ी सोपान—' ।[3]

निर्माण प्रक्रिया—

कांजी —'जल विशेष जो भात कौ सड़ाय के बनता है' ।[4]

साहित्यिक तत्व—

तुहफ़त् तथा हिन्दुस्तानी कोश में कुछ उदाहरण द्रष्टव्य है :

तोमर —यह चार पंक्तियों के एक छंद का नाम है जिसकी प्रत्येक पंक्ति में एक सगन(ण) और दो जगन(ण) अर्थात बारह मात्रायें एवं नौ अक्षर होते हैं ।[5]

(१६) **प्रतिक्रिया या प्रभाव**—इस वस्तु का अमुक पर यह प्रभाव पड़ता है। आंशिक रूप से समानार्थी एवं अनेकार्थी तथा विशेषत: मिर्ज़ा और टेलर के कोशों में इस माध्यम द्वारा अर्थबोध कराया गया है। प्रभावों के निम्न भेद किये जा सकते हैं :

(क) **मानसिक प्रभाव :**

चिल्हवांस —चील पक्षी का मांस जिसको खाने से मस्तिष्क पागल हो जाता है ।[6]

छलावा —(ऐसी) वस्तु का नाम है जिससे (मन में) भय पैदा होता है ।[7]

परिमल —'जो सुगन्धि मन को हरै, अति निरहारी सोय' ।[8]

माया —'माया मोहन लाल की, जिन मोहे सब सन्त' ।[9]

---

१. हिन्दु० I, पृ० २७१ ।
२. वही, II, पृ० १८९ ।
३. कर्णा०, पृ० २३ मू० ।
४. हिन्दुई०, पृ० ४४ ।
५. तोमर—नामे छन्दे अस्त चहारयकी कि दर हर यक् आँ यक् सगन व दो जगन बुवद । —तुह०, पृ० २२६ पी० ।
६. हिन्दु० , पृ० ६४१ ।
७. छलावा—चीजे बुवद कि अज वे खायाक शबन्द । —तुह०, पृ० २३९ पी० ।
८. प्र० ना० मा०, पृ० २७९ ।
९. अने० नन्द०, पृ० १९८ ।

(ख) ऐन्द्रिक प्रभाव :

नेत्रों पर :

संतमस —'अधिक अंध्यारो संतमस, कहूँ न सूझे नेक ।[१]

जिह्वा पर :

इन्द्रायन—वृक्ष विशेष व उसका फल जो (खाने में) कड़वा है ।[२]

तिक्त —ऐसी तीखी या कसैली वस्तु जिससे जिह्वा को कड़वाहट पहुँचे ।[३]

माखन —'माखन मस्कह मानिये, स्वादु जीभ सुखदाय' ।[४]

घ्राणेन्द्रिय पर—

छछूँदर—'मूषिक विशेष जिस्के स्तन से दुर्गन्ध आवती है' ।[५]

कर्णेन्द्रिय पर—

ढोलक —वह वाद्य-विशेष है जिससे कानों में डिं डिं डिं डिं का शब्द आता है ।[६]

(ग) शारीरिक प्रभाव :

चूरन —औषधियों से निर्मित एक 'पाउडर' का नाम है जो पाचन क्रिया में सहायता पहुँचाता है ।[७]

जरा —वृद्धावस्था, जिसके फलस्वरूप दाँत व बाल गिर जाते हैं ।[८]

टीस —चुभन को कहते हैं जिसके फलस्वरूप समस्त शरीरावयवों को बहुत पीड़ा पहुँचती है ।[९]

---

१. ना० प्र०, पृ० ५३ ।
२. हिन्दुई०, पृ० २५ ।
३. तिक्त—ब मा'ना चीजे तुंदो तेज बुवद दर तामो मजा ।—तुह० २२६ मू० ।
४. पा० पां०, छ० १३३ ।
५. हिन्दुई०, पृ० ९३ ।
६. ढोलक—डिं डिमडिमडिमीपनवसो गायन पटह है ढोलक जानिए—कर्णा०, १५ पी० ।
७. हिन्दु० I, पृ० ६५६ ।
८. जरा विस्रसा द्वय तिहि गाई, बार दाँत गिरि जाय बुढ़ाई"—ना० प्र०, पृ० १४५ ।
९. टीस—खलिश रा गोयन्द कि दर अजो वे ब सबबे दर्द बहम् रसद—तुह०, पृ० २२९ पी० ।

ठिर —शीतकाल में हाथ व पाँवों के ठिठुरने को कहते हैं ।[१]

थनैल —यह एक रोग का नाम है जो महिलाओं के स्तनों पर फैलता है और अत्यधिक कष्ट पहुँचाता है ।[२]

सन्निपात —यह एक बीमारी का नाम है जिसके फलस्वरूप समस्त शरीर में जकड़ाहट फैल जाती है ।[३]

(घ) साहित्यिक वा शाब्दिक प्रभाव :

अध —जिस शब्द के प्रथम में यह संयुक्त होवे उसका आधा अर्थ कर देता है जैसे—अधकर या अधमूवा ।[४]

वत —'जाके अंत में वत लगाइये तहाँ समान को अर्थ जान्यो जाय, (यथा—) ब्राह्मनवत ब्राह्मन को समान ह्वैहै ऐसे क्षत्रिय-वत (आदि जानिये)' ।[५]

(ङ) रासायनिक प्रभाव :

पारस —यह एक प्रकार का पत्थर हैं (जिसका यह प्रभाव पड़ता है कि) यदि (इसे) लोहे पर मलते हैं तो (वह) लोहा सोना हो जाता है ।[६]

१७. **कारण**—प्रस्तुत स्थिति या वस्तु का कारण अमुक है । केवल टेलर कृत हिन्दुस्तानी कोश में कारण द्वारा अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास मिलता है, यथा—

जघर —किसी आशंका या रुग्णावस्था से जनित जाग्रतावस्था का नाम ।[७]

---

१. ठिर—करख़तये दस्त व पा कि अज़ शिद्दते सर्मा शवद ।—तुह०, २३० पी० ।
२. थनैल—मर्ज़ अस्त कि दर पिस्ताने ज़नान बहम् रसद व आँरा रीश कर्दअन्द —वही, पृ० २२० पी० ।
३. हिन्दु० II, पृ० २३० ।
४. हिन्दुई०, पृ० ५ ।
५. कर्णा०, पृ० ५० मू० ।
६. पारस—क़िम संगे अस्त कि चूं आंरा बर् आहन मालन्द आहन तिला कर्द आनद —तुह० पृ० २२० पी० ।
७. हिन्दु० I, पृ० ५५७ ।

बलतोड़ —एक फुन्सी या फोड़ा जिसका कारण बालों का टूटना या उखड़ना बताया जाता है।[1]

सूतक —शिशु के जन्म से उत्पन्न अस्वच्छता।[2]

१८. उद्गम बताकर—यह वस्तु अमुक स्रोत से आती है। विशेषतः तुहफ़त् तथा आंशिक रूप से टेलर और आदम के कोशों में इस शैली का प्रयोग मिलता है यथा –

किचड़ा —यह एक चिकना सा पदार्थ है जो आँखो से बहता है।[3]

गव्य —गाय सों जो उपजै दूध दही घृत आदि सो गव्य कहावै।[4]

घनघोर —यह बिजली और बादलों की कड़क से उत्पन्न आसमान का शब्द है।[5]

टंकार —यह एक आवाज है, जो घंटा या घड़ियाल वा इसी प्रकार के अन्य उपकरणों से उत्पन्न होती है।[6]

पंखी —एक प्रकार का गर्म वस्त्र जो पहाड़ों से आता है।[7]

बड़वानल —आग को कहते हैं जो समुद्र से उत्पन्न होती है।[8]

मागध —क्षत्री स्त्री एवं वैश्य पुरुष से उत्पन्न पुत्र का नाम।[9]

१९. स्थिति या दशा—यह शब्द – – – की – – – स्थिति या दशा का नाम है। सामान्यतः चारों वर्गात्मक कोश तथा मिर्ज़ा, टेलर और आदम के कोशों में यह माध्यम अपनाया गया है, यथा –

---

१. हिन्दु० I, पृ० २१०।
२. वही, II, पृ० २४२।
३. हिन्दु० II, पृ० ४१३।
४. कर्णा० पृ० ४१ मू०।
५. घनघोर—आवाजे रा'द व अर्शो अब्र बुवद—तुह०, पृ० २७२ पी०।
६. टंकार—आवाजे क़ि अ जरस व दरा व अम्साले आँ बर आयद।
—तुह०, पृ० २३० पी०।
७. हिन्दु० I, पृ० ३७३।
८. बड़वानल—आतशे बुवद क़िअज दर्या बर आमद:।—तुह०, पृ० २०९ मू०।
९. क्षत्राणी को वैश्य पिय, तिन कौ पुत्र बखानि।
मागध तासों कहत हैं, नूर सुकवि जग जानि॥
—प्र० ना० मा०, पृ० ३४८।

मार्जारी —मार्जार का स्त्री लिंग ।[1]

वाली —वाला का स्त्री वाची ।[2]

हरिनी —'हरिनी मृग की तीय' ।[3]

२१. **सापेक्षता**—इसमें इच्छित वस्तु का अर्थ किसी दूसरी वस्तु के विरोध या विपरीतता या तुलना द्वारा स्पष्ट किया गया है । कर्णाभरण और हिन्दुस्तानी कोश में अत्यधिक स्थलों पर सापेक्षता द्वारा अर्थ-द्योतन कराया गया है । दो एक उदाहरण अन्य कोशों में भी मिलते हैं । यथा–

चर्बीदार– मोटा, जो पतला न हो ।[4]

पुण्य—गुणी कृत्य, दान, यह दोषादि के विपरीत है ।[5]

बायाँ—जो दायाँ न हो ।[6]

भीतरिया—जो परदेशी न हो ।[7]

सौत—प्रतिद्वन्दी पत्नी, समसामयिक पत्नी, एक पत्नी दूसरे की सौत होती है ।[8]

अनुमति—'ज्यौं कला हीन होय तो **अनुमति** कहावै औ पूर्व चन्द्रमा होय (तो) **राका** कहावै' ।[9]

तृन—'जामे साखा लगै वाको नाम **प्रकांड**, सो जाको नहीं होय (ताकौ) **तृनादि** जानिये' ।[10]

अमावस्या—'ज्यौं अमावस्या में कछु चन्द्रकला रहै तो सो **सिनीवाली** कहावै औ चन्द्रकला नहीं रहे तो **अमावस्या** कहावै' ।[11]

रेखा—'जहाँ दो के बीच अंतर है सो पंक्ति जहाँ अंतर नहीं सो रेखा लकीर जानिये' ।[12]

द्विज—'तीन बरन (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य) तें द्विज भलें' ।[13]

---

१. होतु विडाल सु आखु वृष दंसक मार्जार ।
मार्जारी ताकी त्रिया, स्त्री वाची सु बिचार ।।—प्र० ना० मा०, पृ० ३०४ ।

२. हिन्दु० II पृ० ७८७ ।
३. अने० नन्द०, पं० १८७ ।
४. हिन्दु० I, पृ० ६२३ ।
५. हिन्दु० पृ० ३६८ ।
६. वही, पृ० १९४ ।
७. वही, पृ० २८७ I ।
८. वही, पृ० २८७ I ।
९. कर्णा० पृ० ११ पी०
१०. वही, पृ० २४ मू० ।
११. वही, पृ० ११ पी० ।
१२. वही, पृ० २४ मू० ।
१३. अने०, नन्द० पं० १६३ ।

पद्मिनी—स्त्रियों के (चार) भेद (पद्मिनी, चित्रिणी, संखिनी और हस्तिनी) में से सर्वोत्तम स्त्री का नाम है।[१]

भट्टाचार्ज—विद्वानों में सबसे अधिक विद्वान्।[२]

२२. **पारिवारिक सम्बंधों के माध्यम से**: अर्थ-प्रक्रिया की यह प्रणाली दो प्रकार के शब्दों पर लागू होती है। सामान्य पारिवारिक सम्बन्धों की द्योतक जातिवाचक शब्दावली पर तथा व्यक्तिवाचक संज्ञाओं पर।

जेठानी—पति के बड़े भाई की पत्नी।[३]

पितृव्य—पिता को भाई।[४]

बहू—पुत्र की स्त्री का नाम।[५]

भागिनेय—'बहिनि का बेटा'।[६]

मातुलेय—'मामी ताको बेटा'[७]

सोराष्टिप—'राजा को साला सो सोराष्टिप कहावै'।[८]

व्यक्तिवाचक संज्ञा—यह ऐसी संज्ञाएँ हैं जिनका आन्तरिक अर्थ कुछ भी नहीं होता और अर्थ की दृष्टि से व्याख्याकारों के लिये ये समस्याप्रधान शब्द हैं। अतएव ऐसे शब्दों के सम्बन्ध में ज्ञान कराने का एक मात्र उपाय विवेच्य व्यक्तियों का अन्य प्रसिद्ध व्यक्तियों से सम्बन्ध निर्देशित करना है। समस्त समानार्थी एवं अनेकार्थी कोशों में देवता तथा पौराणिक पुरुषों के लिये पर्याय रूप में ऐसे बहुत से शब्द संकलित हुये हैं, जिनका आधार पारिवारिक सम्बन्ध है। स्थान स्थान पर तुहफ़तुलहिन्द और हिन्दुस्तानी कोश में भी इस माध्यम के द्वारा व्यक्तिवाचक शब्दों का अर्थ द्योतन कराया गया है। विश्लेषण सुकरता की दृष्टि से ऐसे सम्बन्धों के निम्न उपभेद किये जा सकते हैं:—

---

१. पद्मिनी———नामे अफ़जलतरीन अक्सामे जनाँ अस्त।
—तुह०, पृ० २२३ पी०।

२. हिन्दु० I, पृ० २६७। ३. हिन्दु० I, पृ० ५९७।

४. कर्णा०, पृ० ३१ मूल।

५. बहु जने पिसरा रा नामन्द व आं मारुफ़ हस्त —तुह० पृ० २११ मू०।

६. कर्णा, पृ० ३१ मू०। ७. वही०, पृ० ३१ मू०।

८. वही, पृ० १७ मू०।

(१) पति : पत्नी—

इन्द्र—रंभापति ।[१]

काम—रतिपति[२], उषापति ।[३]

रामचन्द्र—सीतापति ।[४]

शिव—उमापति ।[५]

रावण—पत मंदोदरी ।[६]

(२) पत्नी : पति

कमला—विष्णु प्रिया ।[७]

गौरा—महादेव की पत्नी का नाम है ।[८]

सीता—रघुवरतीय ।[९]

लोपामुद्रा—लोपामुद्रा नामा, एक अगस्ति की बामा ।[१०]

(३) पुत्र : पिता—

अर्जुन—'अर्जुन मध्यम पांडसुत' ।[११]
करन (कर्ण)—रव (वि) सुत ।[१२]

कारतिक (कार्तिकेय)—रुद्रात्मज ।[१३]

कुबेर—वरुणात्मज ।[१४]

कृष्ण—'पुत्र प्रगट वसुदेव को' ।[१५]

भीम—गन्धवाह सुत ।[१६]

---

१. अ० मा०, छ० ३६ ।
२. मा० मं०, छ० ८६ ।
३. प्र० ना० मा०, पृ० २६७ ।
४. अ० मा०, छ० ९४ ।
५. ना० मा० "ख", छ० ४६ ।
६. अ० मा०, छ० ९९ ।
७. प्र० ना० मा०, पृ० २६७ ।
८. गौरा—नामे पारबती जने महादेव अस्त—तुह०, पृ० २६९ पी० ।
९. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७ ।
१०. ना० प्र०, पृ० २० ।
११. अने० नन्द०, पं० २० ।
१२. अ० मा०, छ० २३५ ।
१३. ना० मा० "क", छ० १० ।
१४. ना० प्र०, पृ० २७४ ।
१५. प्र० ना० मा०, पृ० २६६ ।
१६. अ० मा०, छ० १०९ ।

राम—'दशरथ नन्दन राम है'[१]।

लछमण—सुतदसरथ, सुमंत्रसुत।[२]

शुक्र—भृगुनन्दन एवं भृगुतनय।[३]

सूर्य—गरुड़ात्मज।[४]

(३) पिता : पुत्र

इन्द्र—'तास पुत्र जयंत सुतपाभगत'।[५]

(पुत्र पाकशाशनि प्रथम द्वितीय जयंत बखान)।[६]

बाली—'अंगद ताको पूत'।[७]

(५) पुत्री : पिता

गिरजा—यह हिमालय की पुत्री (पार्वती) का नाम है।[८]

जमुना—सूर सुता[९], मार्तण्ड कन्या।[१०]

लक्ष्मी—सिन्धु सुता।[११]

सीता—भू-तनया, जनकात्मजा[१२], 'सीता तनया जानकी'।[१३]

(६) पिता : पुत्री

जनक—यह रामचन्द्र की पत्नी सीता के पिता का नाम था।[१४]

बिर्खभान—यह (कान्ह की स्त्री) राधा के पिता का नाम था।[१५]

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० ३७८। २. अ० मा०, छ० ९८।
३. कर्णा०, पृ० ६ मू०। ४. प्र० ना० मा०, पृ० २७५।
५. ना० डि०, छ० २। ६. प्र० ना० मा०, पृ० २६८।
७. वही, पृ० ३२७।
८. गिरजा————नामे पारवती दुख्तरे हिमाचल बाशद
—तुह०, पृ० २६९ पी०।
९. उ० को०, १।१०।३८। १०. कर्णा, पृ० २० पी०।
११. आ० बो०, छ० १२०। १२. प्र० ना० मा०, पृ० ३२७।
१३. वही, पृ० २७७।
१४. जनक———नामे राजायेस्त कि पिदर सीता जने रामचन्द बूद:
—तुह०, २३२ पी०।
१५. बिर्खभान—नामे पिदरे राधा जने कान्ह बूद :। —वही, पृ० २१० मू०।

(७) पुत्र : माँ

कृष्ण—देवकी नन्दन[1], जसोदानन्द।[2]

गणेश—गौरीनन्द[3] गिरजानन्द।[4]

साक्यमुनि—मायादेवी सुत।[5]

स्वामी कारतिक—गंगानंद, उमानन्द।[6]

(८) माँ : पुत्र

कुंत (ती)—पाँच भाई पांडवों की माँ का नाम था।[7]

गंगा—भीष्म जनिनी।[8]

(९) पुत्री : माँ

गौरी—'गौरी है अम्बा सुता।'[9]

दुर्गा—मेनकजा।[10]

(१०) भाई : भाई

बलिभद्र—अच्युताग्रज।[11]

राम—भरताग्रज, लछमणभ्रात।[12]

लक्ष्मण—रामानुज[13], 'रामबन्धु लक्ष्मण प्रकट'।[14]

(११) भाई : बहिन

जमराज—जमनभ्रात।[15]

(१२) बहिन : भाई

जमना—जमभगनी।[16]

---

१. आ० बो०, छ० ७०।
२. अ० मा०, छ० २९।
३. ना० प्र०, पृ० ९।
४. मा० मं०, छ० १००।
५. उ० को०, १।२।८।
६. ना० मा० "क", छ० १००।
७. कुंत—नामे मादरे पांडो बूदः कि पंज बिरादर बूदा अंद —तुह० पृ० २६० पी०।
८. कर्णा०, पृ० २० पी।
९. अने०, नन्द०।
१०. आ० बो०, छ० ११९।
११. प्र० ना० मा०, पृ० २६६।
१२. ना० मा० "क", छ० ४-६।
१३. वही, पृ० ७।
१४. प्र० ना० मा०, पृ० ३९१।
१५. ना० मा० "क", छ० १०७।
१६. ह० ना० मा०, छ० ४५।

आलोच्य कोशों में से कुछ वर्गात्मक कोश तथा तुहफ़त में कई शब्द ऐसे भी आये हैं जिनके अर्थ को विभिन्न पारिवारिक सम्बन्धों द्वारा स्पष्ट किया गया है, यथा :

अग्नि —'वरुण पिता, माता अरणि, स्वाहा स्त्री हित मग्न।[१]

केकई —यह जसरथ की पत्नी का नाम है, जो (जसरथ) रामचन्द के पिता थे। भरत, रामचन्द का सौतेला भाई (केकई का) अपना पुत्र था।[२]

उपर्युक्त ऐतिहासिक और पारिवारिक सम्बन्धों के अतिरिक्त ऐसे पारिवारिक सम्बन्धों द्वारा भी अर्थ स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है जिनके आधार कवि प्रसिद्धियाँ मात्र हैं। यथा—

अंजन —दीपसुत।[३]

कुसुम —फलपिता।[४]

चपला —जलबाला।[५]

चन्द्रमा—दधि सुत[६], कुमुदबांधव।[७]

संख —सिसि (शशि) सहोदर।[८]

सूर्य —पद्मिनीवल्लभ।[९]

३२. पौराणिक सम्बन्ध—

पारिवारिक सम्बन्धों से ही मिलती जुलती अर्थ-प्रक्रिया पौराणिक सम्बन्धों का माध्यम है, जिनके आधार भारतीय धर्मशास्त्र, इतिहास एवं पुराण हैं। पारिवारिक सम्बन्धों के माध्यम से अर्थ-द्योतन कराने वाले समस्त कोशों ने पौराणिक सम्बन्धों का भी आश्रय लिया। इस माध्यम के निम्न स्वरूप मिलते हैं :

---

१. प्र० ना० मा०, पृ० २७०।

२. केकई——नामे जने राजा जसरथ पिदरे रामचन्द अस्त कि बे अज राजाय मज़कूर भरत पिसरे हक़ीकीये खुद रा कि बिरादरे अल्लाती रामचन्द बूद :
—तुह०, पृ० २६७ पी०।

३. प्र० ना० मा०, पृ० ३२०।

४. मा० म०, छ०, ४३।

५. ना० मा० "क", पृ० १५३।

६. अ० बो०, छ० २५।

७. कर्णा०, पृ० ९ पी०।

८. ह० ना० मा०, छ० ३०६।

९. कर्णा०, पृ० ११ मू०।

(क) गुरु-शिष्य

कौसिक —'कौसिक विश्वामित्र मुनि, जिन जाचे श्री राम ।'[1]

द्रोण —'कौरव को गुरु द्रोण है ।'[2]

(ख) मित्र : मित्र

अगनी (अग्नि) —पवन सख ।[3]

अर्जुन —'पथ अरजुन हरि प्रिय सखा सो भारत जय साख' ।[4]

—'अर्जुन बहुरि धनंजय कृष्ण सारथी आहि ।'[5]

कुबेर —हरसखा ।[6]

रामचन्द्रजी —कपसाथ ।[7]

(ग) शत्रु : शत्रु

कृष्ण —दैत्यारि[8], कंसारि[9], बलिध्वंसी[10], मुरारि ।[11]

कामदेव —संबरारि ।[12]

जुर्जोधन —कौरव में से एक का नाम, जो पांडवों का महान् शत्रु था ।[13]

पूतना —एक राक्षसी का नाम जिसकी मृत्यु कृष्ण द्वारा हुई ।[14]

भीम —कीचकरिपि (रिपु),कौरवदलण ।[15]

महादेव —त्रिपुरारि, कामारि ।[16]

मधु —'नूर कहत मघु दैत्य इक ताहि बध्यो ब्रजराज'[17] ।

२४. व्यावसायिक कर्म बताकर

प्रस्तुत शब्द का द्योतक पुरुष या जाति......कार्य करती है। केवल मिर्ज़ा खाँ, टेलर तथा आदम के कोशों में यह माध्यम व्यवहृत हुआ है। उदाहरण के लिये:

१. अने० नन्द०, पं० १४८ । २. प्र० ना० मा०, पृ० ३७८ ।
३. ह० ना० मा०, छ० २७१ । ४. अने० उद० , छ० ९ ।
५. अने० नन्द० । ६. ह० ना० मा०, छ० २७९ ।
७. अ० मा०, छ० ९४ । ८. उ० को०, १।२।१० ।
९. प्र० ना० मा०, पृ० २६६ । १०. ना० प्र०, पृ० ६ ।
११. वि० ना० मा०, छ० १ । १२. प्र० ना० मा०, पृ० २६७ ।
१३. जुर्जोधन—नामे यके अज़ कौरव अमाम पांडो बूदः—तुह०, पृ० २३३ मू० ।
१४. हिन्दु I, पृ० ३७७ । १५. ह० ना० मा०, छ० १२२ ।
१६. वि० ना० मा०, छ० २ । १७. प्र० ना० मा०, पृ० ३७३ ।

कंजर —'जाति विशेष जो रस्सी बेचते हैं।'[१]

कोलू —एक जाति का नाम जिसका व्यवसाय तेल बेचना है।[२]

गोप —ग्वाल या गोरजरों की एक जाति जो पशु पालते हैं।[३]

गन्धप (गन्धर्व) —गाने बजाने का कार्य करने वाली एक जाति जो संगीत के क्षेत्र में अत्यन्त पटु और प्रवीण होते हैं।[४]

ग्वाल —एक धनी जाति का नाम है, जो पशु पालते हैं और दूध और दही बेचते हैं।[५]

दुत —'संदेश रो दूत है, दूत्य कर्म करै सोइ'।[६]

परोसैया —अतिथियों को भोजन सामग्री बाँटने वाला या भोजन परोसने वाला।[७]

सूर्य —'अंधकार मेटै तुरत, करत जगत में धूप।'[८]

कहीं कहीं पर क्रियाओं के प्रसंग में भी कर्त्ता या कर्म बताकर अर्थ स्पष्ट किया गया है यथा :

उजालना —धातु या आभूषणों को चमकाना।[९]

झपक —आँखे मिलाने को कहते हैं।[१०]

२५. विशेष शब्द की सामान्य अर्थप्रक्रिया :

अन्य साधनों के अभाव में कोशकार शब्दों की जाति मात्र का संकेत कर व्याख्या की इतिश्री कर देते हैं। व्यक्तिवाचक संज्ञाओं का अर्थ-द्योतन करने में कुछ अनेकार्थी कोशों तथा तुहफ़त् और हिन्दुस्तानी कोश के रचयिताओं ने प्रायः इसी शैली का आश्रय लिया हैं। यथा :

---

१. हिन्दुई०, पृ० ३८। २. हिन्दु० II, पृ० ४६०।

३. गोप—कौम बुवद कि ग्वाल व गोरजर कि नाले मवाशी दारन्द —
—तुह०, पृ० २७० मू०।

४. गन्ध्रप—ब मा'ना मुत्रिबे रा गोयन्द कि दर फ़न्ने मूसीक़ी कामिलो उस्ताद बाशद।
—वही, पृ० २७० मू०।

५. ग्वाल—नामे क़ौमे अस्त मालदार कि मवाशी दारन्द व शीरो जुगरात फ़रोशन्द।
—तुह०, पृ० २७१ मू०।

६. प्र० ना० मा०, पृ० ३३०। ७. हिन्दु० I, पृ० ३५३।

८. आ० बो०, छं० २८। ९. हिदु० I, पृ० ३९।

१०. झपक—बरहम् शुदन चश्म—तुह०, पृ० २३४ पी०।

अहि—दैत्य विशेषहि अहि कहत ।[1]

कदम—एक प्रसिद्ध पेड़ का नाम है ।[2]

चकोर—एक पक्षी है ।[3]

भिंडी—एक सब्जी का नाम है ।[4]

रजत—'रजत जु धातु विशेष ।'[5]

विष्टर—'विष्टर कोऊ वृछ है ।'[6]

सलि—'सलि है सर्प विसेष ।'[7]

हरिनी—'हरिनी व्याधि विशेष' ।[8]

२६. उदाहरणों का माध्यम—

कुछ शब्द विशेष हैं जिनकी व्याख्या अनेक माध्यमों द्वारा भी स्पष्ट नहीं हो पाती अतएव जिज्ञासु को उन शब्दों का उचित अर्थ समझाने का एक मात्र माध्यम प्रतिरूप या उदाहरण है अर्थात् कुछ शब्द चिह्न ऐसे हैं जिनकी प्रत्यक्ष परिभाषा के अतिरिक्त कोई दूसरी परिभाषा हो ही नहीं सकती ।[9] जॉनसन व्यक्तिवाचक संज्ञा व सामान्य विशेषणों को इसी श्रेणी के शब्द मानते है ।[10] अन्य माध्यमों के समान उदाहरणों को भी व्याख्याकारों ने शब्दों की व्याख्या देने के लिये अपनाया है । कर्णाभरण, तुहफ़तुलहिन्द, और हिन्दुस्तानी कोशों में उदाहरणों के माध्यम प्रचुरता से आये हैं जिनको निम्न भागों में विभक्त किया जा सकता है—

---

१. अने० चन्द०, पृ० ७ ।
२. कदम—दरख़्ते अस्त मश्हूर । —तुह०, पृ० २६५ मू० ।
३. चकोर—नामे तायरे अस्त । —तुह०, पृ० २३६ पी० ।
४. हिन्दु०, पृ० २८० ।
५. अने० विनय०, छ०, ५९ ।
६. प्र० ना० मा०, पृ० ३७९ ।
७. उ० को०, ३।२।४९ ।
८. ना० प्र०, पृ० ३१८ ।
९. 'There are some, (words) which cannot be analysed at all and that only way of helping people to expect the proper reference of such signs is to point at present examples and specimens. That is there are signs for which there is no definition but an ostensive definition.'
—कार्ल ब्रिटन :, —कॉमिन्युकेशन, पृ० १८ ।
१०. डब्लु० ई० जॉनसन : लॉजिक, भाग १, पृ० ९४-९५ ।

(क) पौराणिक या ऐतिहासिक उदाहरण—

चोर—जैसे लंकापति रावण चोर, सीता को अकेली चोरी कर ले गया था।[1]

जोधा—'जोधार जिसा भीमेण ज्यों'[2] ।

जाचक (याचक)—माँगने वाले सूत जैसे विख्यात बंदीजन।[3]

दईत (दैत्य)—यवन, जैसा हिरण्णकस्यप राक्षस।[4]

बाम—'बाम मनोहर को कहत, जैसे मोहन श्याम।'[5]

(ख) सहायक उदाहरण—

इस प्रकार के उदाहरण पहले दी गई व्याख्याओं को अधिक स्पष्ट करने के लिये दिये गये हैं। जैसे :

चक्कव (चक्रवर्ती)—समय विशेष के सम्राट का नाम है जिसका पूर्व से पश्चिम तक विस्तृत साम्राज्य हो और समस्त संसार उसकी आज्ञा-पालक हो। उदाहरण के लिये सिकन्दर जलकरीन या इसी प्रकार के अन्य सम्राट।[6]

ताण्ड (ताण्डव)—यह एक प्रकार का नृत्य विशेष है जिसमें अत्यन्त क्षिप्रता एवं चालाकी दिखानी पड़ती है यथा पतुरहा (पतुरिया) नाच जो आधुनिक काल (१७वीं शती) में भी नाचा जाता है। इस (ताण्डव नृत्य) में महादेव नाचते थे।[7]

---

१. कुषधमूलमाल मूलचप रासकदी, रांमण चोर लंकपती रांण।
लेग्यौ सीत अकेली लाधी, कीधौ हति रुघवर कल्याण ॥
—ह० ना० मा०, छ० २३०।

२. डिं० ना० मा०, छ० ३।

३. 'जाचक मांगद सूटत जिण, बंदीजण विख्यात'। —अ० मा०, छ० २४१

४. 'जवन हिरण्यकस्यप जिसा, प्रथमी साल, पचंड'। —वही, छन्द ९२।

५. अने० नन्द, पं० ३२।

६. चक्कव—साहिबे कुराँ रा गोयन्द कि बादशाही शर्क़ ता ग़र्ब सल्तनते ऊ बुवद मिस्ले सिकन्दर जलकरीन व अम्साले आँ———।
—तुह०, पृ० २३९ मू०।

७. तांड—क़िस्मे अस्त अज़ रक्स दर ग़ायते चुस्ती व चालाकी व तुन्दी व तेज़ी मिस्ले रक़्स पतुरहा कि दर ई जमाँ मीं रक़सद व आँ रा महादेव रक्सीद :
—तुह०, पृ० २२६ मू०।

फाँस— पतली सी वस्तु का नाम है जो आगे से नुकीली होती है। उदाहरण के लिये बाँस या इसी प्रकार की अन्य वस्तुओं की फाँसें जो शरीर पर चुभती हैं।[1]

बेल— यह पतली लताओं का नाम है जो भूमि से उगकर अन्य वस्तुओं पर छा जाती हैं। उदाहरणतः लौकी या खरबूजा की बेल।[2]

बनस्पति— 'जो फूल बिना फलै (जैसे) गूलरि, पीपर आदि सो बनस्पति।[3]

वानस्पत्य— 'फूलै फलै सो वानस्पत्य' (यथा) आँब आदि।[4]

कुछ शब्दकोशों में भाववाचक संज्ञाओं या क्रियाओं के अर्थ भी इस प्रणाली से स्पष्ट किये गये हैं :

असार— खोखला, जैसे बाँस।[5]

तुल बैठना— सीधे और सधकर बैठना जैसे नाव में बैठा जाता है जो अस्त-व्यस्तता से बैठने के फलस्वरूप डगमगा कर डूब सकती है।[6]

फनफनाना— सिसकारना, जैसे एक साँप फनफनाता है।[7]

उपालंभ— 'निंदा सहित जो उराहनों होय ताको नाम उपालंभ। उपालंभ दोय तरह को एक गुन कहि कैं (जैसे) तुम भले घर के तुमैं ऐसी बात नहीं चाहिये। एक निंदा सहित (यथा) तूं दासी पुत्र है तोहि यह बात करनी जोग है— निंदा सहित है।[8]

मुकरी— ब्रजभाषा में अधिकांशतः प्रयुक्त एक छोटा सा चार पंक्तियों का पद जिसकी निम्न विशेषतायें हैं—पहली तीन पंक्तियों में कोई नारी अपने प्रेम-पात्र के सम्बन्ध में बातें करती प्रतीत होती है, परन्तु सखी द्वारा पूछे जाने पर समस्त बातों को किसी अन्य वस्तु पर घटा देती है—जसे निम्न मुकरी में—

---

१. फांस—चीजे बारीक सरतेज़ बुवद मिस्ले रेशये नय व अम्साले आँ कि दर बदव खलद। —तुह, पृ० २२४ पी०।

२. बेल—जलीक रा नामन्द या'नी शाखहारा बारीक क़ि हर चीजे बे रबदाँ आँ बर वै जमीं रुयदब मिस्ले जलीक खरपूजा व कद्दू व अम्सले अ० —वही०, पृ० २०९ पी०

३. कर्णा० पृ० २४ मू०।

४. वही, पृ० २४ मू०।

५. हिन्दु० I पृ० ६९।

६. वही, I पृ० ४७५।

७. वही, पृ० ३९५।

८. कर्णा०, पृ० १४ पी०।

बाट चलत मेरो अंचरा गहे, मेरी सुनै न अपनी कहे।
ना कछु मों सो झगड़ा झाँटा, क्यों सखि साजन? ना सखि काँटा॥[१]

बिना पूर्व अर्थ दिये कुछ भावों के प्रत्यक्ष उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये हैं :

भर्त्सन— 'तू चोर है तोहि मारौंगो एसे जानिए'[२]

(ग) उदाहरणपरक वाक्य या वाक्यखण्ड :

अभाव— अनुपस्थिति, कमी, जैसे इस लोकोक्ति में 'राजा के घर में क्या मोतियों का अभाव?'[३]

उजाड़ना— नष्ट होना जैसे—'मैंने तेरा क्या उजाड़ा'[४]

कु— कुत्सित बुरा के अर्थ में जैसे 'कुपुरुष'[५]

झकोर— हानि, दुर्भाग्य जैसे—'इस बे आरामी से बहुत झकोर पाई'[६]

(घ) साहित्यिक उदाहरण :

उदाहरणों द्वारा अर्थ-बोधन के क्रम में साहित्यिक उदाहरण अंतिम हैं। सम्बद्ध शब्द का उचित प्रयोग एवं सार्थकता दिखाने के लिये ऐसे उदाहरण अत्यधिक महत्त्व रखते हैं। आलोच्यकालीन कोशों में टेलरकृत हिन्दुस्तानी कोश में हिन्दी कवियों की प्रचुर रचनायें उदाहरण स्वरूप प्रस्तुत की गई हैं। यथा :

विलोकना—देखना, बिहारी कवि कहता है :—

पावक से नैना भये जावक लाग्यो भाल।
मुकुर जाउगे नेक में, मुकुर **विलोको** लाल॥[७]

दुर—बुरा, हानिकर, दुर्भाग्य, तुलसी कहता है—

बधिक बंध्यों मृग बानतें, रुधिरों दियो बताय।
अति हित अनहित होत है, तुलसी **दुर्दिन** पाय॥[८]

२७. नकारात्मक प्रणाली—

शब्दों का वास्तविक अर्थ देने के जब उपर्युक्त समस्त साधन समाप्तप्राय से प्रतीत होते हैं तो व्याख्याकार नकारात्मक प्रणाली का आश्रय लेता है। विशेष

१. हिन्दु० II, पृ० ६६५।
२. कर्णा, पृ० १४ पी०।
३. हिन्दु० I, पृ० १८।
४. हिन्दु० I, पृ० ३९।
५. कर्णा०, पृ० ४९ पी०।
६. हिन्दु० I, पृ० ५८५।
७. हिन्दु० I, पृ० २४२।
८. वही, II, पृ० १९।

रूप से ईश्वर जो स्वयं शून्य[१] है—की व्याख्या करना कठिन हो जाता है। इसीलिये कुछ कोशकारों ने औपनिषदिक ऋषियों की 'नेति नेति' शैली में उस परमतत्व को अभ्युपगत कराने की चेष्टा की। ईश्वर या देवता के प्रसंग में मिर्ज़ा, गरीबदास तथा मियाँ नूर के कोशों से एक-एक उदाहरण द्रष्टव्य हैं :

अबिनासी—किसी का नाम है जो न नष्ट होता है न पतनोन्मुख।[२]

ईश्वर —'जाको आदि न अन्त है, नहिं अकार न रूप'[३]।

परमेश्वर—अपरंपार, अगोचर, अजय, अकथ, अनंत, अभेव, अपार, अगाध आदि।[४]

कुछ भाववाचक वा सामान्य संज्ञाओं की व्याख्या करने में भी इस शैली को अपनाया गया है :

अपूज —जो पूजा नहीं जाता, जो पूजा करने योग्य नहीं होता।[५]

उदासीन—'जिस्का कुल शील नहीं जाना, अर्थात् पाहुन, जो न शत्रु है, न मित्र है और जो गृहस्थ नहीं है'।[६]

टकटकी —वह है जिसमें पल नहीं झपकते व नींद नहीं आती।[७]

पिछले पृष्ठों में अर्थ प्रक्रियाओं के माध्यमों का खण्ड रूपों में अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। एक ही मुख्य साधन को दृष्टि में रखने के कारण सम्भव है अधिकांश माध्यम एकांगी और इसीलिये पूर्ण अर्थद्योतन में अक्षम भी प्रतीत हों। परन्तु विवेचन सुविधा को मुख्य रूप से दृष्टि में रखने के फलस्वरूप ही ऐसा हुआ है। अर्थ का वास्तविक महत्त्व इसी में है कि वह वस्तु का पूर्ण भाव प्रस्तुत करने में समर्थ हो। यह बहुत आसान नहीं है। इसीलिये एक माध्यम अधिकांशतः

---

१. सून (शून्य)—खुदा व बिहिस्त शुदन। —तुह०, पृ० २५७ मू०।

२. अविनासी——कसे रा नामन्द कि फ़ना व ज़वाल न दास्ता बाशद।
—वही, पृ० २०० मू०।

३. प्र० ना० मा०, पृ० २६५।

४. ॥ परमेश्वर जी के नांम ॥
अपरंपार अगोचर अगह, अजय, अच्यंत अकथ अरु अकह।
अविनाशी अवरण अनंत, अभेव अपार अगाध अरंग अछेव ॥
अलोप अतीत अभेद अथाह, अछेद असंख अघट अगाह।
अखिर अविहड़ अधर अनाहद, अविचल अमर अखे आनंदपद ॥
—अनभैप्रबोध, पृ० १९।

५. हिन्दु० I, पृ० २७।

६. हिन्दुई०, पृ० २९।

७. टकटकी——आँ बुवद क़ि दर फ़िक्रे व अन्देशा बाशन्द व चश्म बरहम् न जनन्द व ख़्वाब न कुनन्द। —तुह०, पृ० २३० मू०।

अपूर्ण सा ही रहता है। अतएव व्याख्याकारों ने कोश के इस सर्वप्रमुख अंश को उचित रूप से समझाने के लिये आवश्यकतानुसार दो, तीन या इससे भी अधिक माध्यमों का आश्रय लिया है। निम्न ऐसे कुछ प्रयासों के उदाहरण प्रस्तुत हैं :

प्रयोगस्थान, तत्व और परिमाण

कंठभूषा —'कंठ सो लग्यो रहे तीनि मनिआँ आदि। जो लांबी होय जवाहर की किंवा रूपा की सांकरी आदि'।[1]

तत्व और समानता

सिंघासन —'मनि सोना को बनायो होय, सिंहाकार आसन ताको नाम है'।[2]

वस्तु का गुण तथा प्रयोग

उशीर —यह एक घास है जिसकी जड़ अत्यन्त मीठी और सुगन्धित होती है। इसका प्रयोग परदा बनाने के लिये होता है।[3]

समय और स्थान

सूक (शुक्र)—यह एक तारे का नाम है जो प्रातःकाल अधिकांशतः पूर्व दिशा में उदित होता है और सायंकाल को पश्चिम दिशा में दिखाई देता है।[4]

अनुवाद रंग, आकार, समानता, प्रयोग एवं अंश व पूर्ण

संख —'श्वेत मुहरा' को कहते हैं जिसका एक प्रकार श्वेत भी होता है। यह आगे भाग से खोखला एवं शुडांकार आकृति का होता है जिसको हिन्दू लोग प्रार्थना के समय अपनी भलाई की कामना के लिये बजाते हैं। यह (समुद्र से उत्पन्न) चौदह रत्नों में से एक है।[5]

---

१. कर्णा०, पृ० ३२ मू०। २. वही, पृ० ३६ मू०।

३. हिन्दु० I, पृ० ८६।

४. सूक——नामे सितारा अस्त कि चन्दगाह वक़्ते सुब्ह अज़ तरफ़े मश्रिक तुलूअ कुनद व चन्दगाह वक्ते शाम दर तरफ़े मग्रिब ज़ाहिर गर्दद।
—तुह०, पृ० २५४ पी०।

५. संख——सफ़ेद मुह्रः बाशद व आँ क़िस्मे सफ़ेद अस्त पेशीदः कावाक् मख़्रूती शक़्ल कि अज़ हुनूद-आँ रा वक़्ते इबादते ख़ेशो ख़ैरे नवाज़ंद व आँ अज़ जुम्लः चहारदः रतन अस्त। —वही, पृ० २५५ मू०।

निष्कर्ष

पिछले पृष्ठों में दिये गये विवरणात्मक विवेचन से यह स्पष्ट हो जायेगा कि मध्य-कालीन इन कोशों में केवल शब्दों का संग्रह मात्र ही नहीं, उनमें कोश के अत्यन्त आवश्यक उपादन अर्थ देने की भी पूर्ण व्यवस्था है। यदि समग्रतः देखने का प्रयास किया जाय तो ऊपरी तह से 'शाब्दिकी' मात्र दिखाई देने वाली नाममालाओं में भी अर्थ-तत्व की आंशिक विद्यमानता अवश्य है।

तुलनात्मक दृष्टि से आँकने पर ज्ञात होता है कि तीन हिन्दी-फ़ारसी द्विभाषीय कोश-'खालिक़बारी',' अल्लाखुदाई' एवं 'पारसीपारसातनाममाला' एवं एक हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश-'वाकेबुलेरी: हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' में हिन्दी शब्दों के विदेशी तदर्थी देने के अतिरिक्त अर्थ-द्योतन की अन्य प्रणालियों का उपयोग बहुत कम हुआ है। एकाक्षरी कोशों में केवल कुछ वर्णों के भिन्न भिन्न अर्थ हैं जिनका सामान्य पाठक से अधिक सम्बन्ध न होने के कारण अर्थ की दृष्टि से अधिक उपयोग नहीं। अनेकार्थी कोशों में भी परम्परागत शब्दों के कई रूढ़ अर्थ छंदबद्ध हैं, अतः इनमें आंशिक अर्थ ही मिलेंगे। समानार्थी कोशों में संकलित पर्यायों का अर्थसंयुक्त आधार है और गरीबदास कृत 'अनभै-प्रवोध' तथा नाममाला 'ग' के अतिरिक्त अन्य में कुछ अर्थ तत्व मिल सकते हैं, परन्तु वे अधिक गहराई में नहीं ले जाते। वर्गात्मक पद्धति पर नियोजित चारों कोशों में अर्थों का आधार अपेक्षाकृत अधिक है और कर्णा-भरण के टीका अंश में तो शब्दों के अर्थ अनेकानेक माध्यमों द्वारा गद्य में व्यक्त किये गये हैं। फिर भी उपर्युक्त सभी कोशों में शब्द-संकलन प्रधान रूप से और अर्थ-द्योतक तत्व गौण रूप में आ गये हैं।

मिर्ज़ाखाँ कृत तुहफ़तुलहिन्द, टेलर और हण्टर द्वारा विरचित 'डिक्शनरी: हिन्दु-स्तानी एण्ड इंग्लिश' तथा आदम का 'हिन्दवी कोश' इस क्षेत्र के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण ग्रंथ हैं। मिर्ज़ा तथा टेलर ने अधिकाधिक माध्यमों द्वारा हिन्दी शब्दों के अर्थ क्रमशः फ़ारसी और अंग्रेज़ी के माध्यम से दिये। 'तुहफ़तुलहिन्द' में तो पिछले सत्ताइस माध्यमों में से कुछ को छोड़ कर अन्य सभी माध्यमों का प्रयोग किया गया है। इस दृष्टि से यह हस्तलिखित कोश सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय है।

व्युत्पत्ति

व्युत्पत्ति का अर्थ से सम्बन्ध

व्युत्पत्ति शब्द-रूपों की निर्माण प्रक्रिया का वैज्ञानिक अध्ययन है,[1] व्युत्पत्ति का अर्थ है किसी भी पदार्थ की विशिष्ट उत्पत्ति, किसी वस्तु का मूल उद्गम या

---

१. विलियम बर्न्स : ए फ़िलॉलॉजिकल ग्रामर, पृ० २८।

उत्पत्ति स्थान[१] ज्ञात करना। इसका उद्देश्य शब्द के प्राचीनतम या विकसित रूप-मात्र का ही अध्ययन करना नहीं, उसके लाक्षणिक रूपों एवं अर्थ-सम्बन्धी परिवर्तनों का भी तात्विक विश्लेषण करना है।[२] इस प्रकार हम देखते हैं कि व्युत्पत्ति का द्विविध लक्ष्य है—(१) शब्द के मूल तत्व तक पहुँचना एवं उस तत्व की ऐतिहासिक एवं भौगोलिक पृष्भूमि दिखाते हुये वर्तमान स्वरूप से जोड़ना—इसको तात्विक (जेनेटिक) विधि कह सकते हैं,[३] स्कीट इसी को 'ऐतिहासिक विधि' की संज्ञा देते हैं।[४] शब्दों का यह रूपात्मक परिवर्तन वर्णागम, वर्णलोप, वर्णविकार या वर्ण-विपर्यय की दिशा में हो सकता है। (२) व्युत्पत्ति का दूसरा लक्ष्य है इस रूप-परिवर्तन की समानान्तर दिशा में शब्द के मूल अर्थ के क्रमिक विकास का विश्लेषण करना, जो समय के साथ परिवर्तित होता रहता है। यह परिवर्तन भी कई प्रकार से हो सकता है, उदाहरणतया अर्थ-विस्तार, अर्थ-संकोच, अर्थादेश या अर्थापकर्ष।

व्युत्पत्ति के बिना किसी शब्द के उचित अर्थ या आत्मा तक पहुँचना अत्यन्त कठिन है। इन व्युत्पत्तियों का उद्देश्य भी शब्द के रूप की अपेक्षा उसके अन्तर्निहित अर्थ को ही अधिक स्पष्ट करना होता है।[५] फिर आजकल इन निरुक्तियों का सम्बन्ध केवल एक भाषा के शब्दों तक ही सीमित नहीं, अपितु तत्सम्बन्धी बोलियों या अधिक विस्तृत क्षेत्र के समस्त परिवार की भाषाओं को दृष्टिपथ में रखते हुये ही निरुक्तियाँ दी जाती हैं।[६]

कोश का एक महत्त्वपूर्ण अंश होते हुये भी व्युत्पत्ति देने का कार्य अत्यन्त टेढ़ा,[७] कठिन एवं श्रमसाध्य है।[८] हिन्दी जैसी भाषा के सम्बन्ध में तो यह कठिनाई और भी बढ़ जाती है, क्योंकि इसका विकास-क्रम संस्कृत, पालि, प्राकृत, और अपभ्रंश तक ही सीमित नहीं, अनेकानेक जातियों, भाषाओं व उपभाषाओं से भी

१. हिन्दी विश्वकोश, भाग २२, पृ० ४७०।
२. मार्श : इंग्लिश लैंग्वेज, भाग ३, पृ० ४८।
३. एनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका, १४वां संस्करण, भाग २०, पृ० १२७।
४. स्कीट : दि साइन्स आॅव एटिमॉलॉजी, पृ० ९-१५।
५. वेबस्टर्स डिक्शनरी : भूमिका, पृ० ५।
६. एनसाइक्लोपीडिया ,अमेरिकाना: भाग १०, पृ० ५५८।
७. "This tracing of a word to its original (which is called etymology) is sometimes very precarious thing."
—वाट्स : लॉजिक, भाग १, संख्या १-४।
८. वृहत् हिन्दी कोश : भूमिका पृ० "ग"।

संबद्ध है, जिनके साथ भारतवासियों का राजनैतिक, व्यापारिक वा सामाजिक सम्बन्ध रहा है।

आलोच्य कोशों में दिये गये व्युत्पत्ति-सम्बन्धी लघु प्रयासों के निम्न स्वरूप उपलब्ध होते हैं :

भाषा विशेष का नामांकन मात्र

टेलरकृत 'हिन्दुस्तानी कोश' में संकलित प्रत्येक शब्द की भाषा का संकेत दिया गया है। इसके अतिरिक्त समानार्थी या वर्गात्मक अन्य कोशों में भी स्थान-स्थान पर भाषा संकेत मिलते हैं। यथा :

(क) संबत्सर, वत्सर, शरत, हायन, सम और अब्द ये छः शब्द **संस्कृत** के हैं जिनको **भाषा** में बरिस और वर्ष कहा जाता है।[1]

(ख) चूत **संस्कृत** शब्द है।[2]

(ग) वातपोथ, किंशुक, पर्ण और पलास ये चार शब्द **संस्कृत** के हैं। **भाषा** में छिउल और ढाख दो और हैं।[3]

(घ) वक्ष, वत्स और उर तीन नाम **संस्कृत** के हैं। छाती **भाषा** का शब्द है।[4]

मूल क्रिया रूप (टेलर के कोश में)

ऊष्ण <उष्

अशन <अश्

काटना<कृतनं<कृत

मूल संस्कृत रूप (टेलर के कोश में)

उनतीस<उनत्रिंशत

आमला<आमलक

पहेली <प्रहेलिका

---

१. संबत्सर बत्सर शरत, हायन सम अरु अब्द।
छहौ संसकृत है बरिस, वर्ष सु भाषा शब्द॥—ना० प्र०, पृ० २८।

२. कर्णा०, पृ० २५ मू०।

३. वातपोथ किंशुक परन, अरु पलाश कहि चारि।
भाषा में दुइ और है, छिउल ढाख निरधारि॥—ना० प्र०, पृ० ८६।

४. 'वक्ष वत्स उर को कहै, भाषा छाती जान'—प्र० ना० मा०, पृ० ३१३।

समास-विग्रह

अन्नजल = अन्न + जल[1]

मनचला = मन + चला[2]

मृगछाला = यह 'मृग' व 'छाला' से निर्मित समास है, जिसका तात्पर्य हिरन की छाल से है। 'मृग' हिरन को कहते हैं और 'छाला', 'छाल' का नाम है।[3]

मृदहास = मंद हँसी वा मुस्कान का नाम है यह शब्द 'मृद' वा 'हास' से निर्मित समास है 'मृद' अर्थात् कोमल एवं 'हास' अर्थात् मुस्कान।[4]

पहले समास-विग्रह, फिर मूल क्रिया (टेलर के कोश में)

अंधकार —अंध + कार <कृ

अतिवक्त—अति + वक्ता <वच्

अनादर —अन् + आदर <दृ

कर्णाभरण कोश में बहुव्रीहि समास के आधार पर इस प्रकार की कुछ व्युत्पत्तियाँ द्रष्टव्य हैं:

अमृतांधा—(अमृत + अंध) अमृत है अंध अन्न जाको एसें लिखें बहुत होय।[5]

अलंकर्ता —जाको अलंकार करिबे की स्वभाव होय सो अलंकर्ता।[6]

जलज —(जल + ज) जल सों उपजत है इसलिये जलज जानिये।[7]

गोचर —(गो + चर) जामें नेत्र आदि इन्द्रिय पहुँचे।[8]

नलिनी —(नलिन + ई) नलिन कमल सो जामैं रहे सो नलिनी।[9]

विसनी —(विस + नी) विस मृनाल, सो जामैं रहै सो विसनी।[10]

स्वयंवरा—(स्वयं + वरा) स्वेच्छा से पति वरै, वहै सु स्वयंवरा।[11]

---

१. हिन्दु० I, पृ० १३०। २. हिन्दु II, पृ० ६७७।

३. मृगछाला—मुरक़्क़ब अज़ मृग व छाला पोस्त आहू रा नामन्द मृग ब मा'ना आहू बाशद व छाला ब माना पोस्त। —तुह०, पृ० २७५ पी०।

४. मृदहास—तवस्सुम व ख़ंदए आहिस्तः बाशद मुरक़्क़ब अज़ मृद व हास मृद ब मा'ना नर्म व मुलायम व हास ब मा'ना ख़न्दः बाशद। —वही, पृ० २७८ पी०।

५. कर्णा०, पृ० २ पी०। ६. वही०।

७. वही, पृ० १६ पी०। ८. वही, पृ० १३ पी०।

९. वही, पृ० २१ मू०। १०. वही, पृ० २१ मू०।

११. वही, पृ० ३० मू०।

नाम का स्रोत

कुछ शब्दों का विशिष्ट नाम पड़ने की पृष्ठभूमि में कोई कारण रहता है जिसकी व्युत्पत्ति भी कोशों में दी गई है :

अर्काटी—चालक; अनुमान किया जाता है कि संसार में केवल मात्र **अर्काट** के नवाब के अधीन कार्य करने के कारण यह नाम पड़ा।[1]

नीलकंठ—यह महादेव का नाम है। यह नाम इसलिये पड़ा कि इन्होंने समुद्र से उत्पन्न विष का पान किया था, जिसके फलस्वरूप इनका **कंठ नीला** हो गया।[2]

माघ —यह हिन्दुओं के दसवें महीने का नाम है, जिसमें चन्द्रमा पूर्णमासी के दिन **मघा** नक्षत्र के पास रहता है।[3]

सनीचर—मूलतः **शनि** ग्रह का नाम है परन्तु चूँकि इसका सम्बन्ध शनिवार से है इसलिये शनिवार का भी नाम है।[4]

साठी —एक प्रकार का धान है। यह नाम इसलिये पड़ा कि यह रोपने के **साठवें** दिन बाद पक जाता है।[5]

दो भाषा के शब्दों की तुलनात्मक व्युत्पत्ति (टेलर के कोश से)

(सं०) एक =(फ़ा०) यक्।
(सं०) गौः =(फ़ा०) गाव।
(सं०) शीत =(अ०) शिता।
(सं०) बिधवा=(लै०) बिदुवा।

शब्दों का प्रयोग वा उद्गम स्थल

उतरे हुये—किसी भी जोखिम में दृढ़ निश्चय पूर्वक जुटे हुये (यह मुहावरा घुड़सेना से लिया गया प्रतीत होता है जो सेना घोड़ों से उतरकर जीतने वा मरने के लिये दृढ़ निश्चय किये रहती है)।[6]

---

१. हिन्दु० I, पृ० ६३।
२. नीलकंठ—किनायत अज़ महादेव अस्त चे अज़ खुर्दन ज़हरे कि अज़ दर्याए मुहीत बर आमदः। —तुह०, पृ० २८३ मू०।
३. हिन्दु० II, पृ० ५८३।
४. सनीचर—सितारे जोहल रा नामन्द चूं रोज़े शबः मुतअल्लिक बदूस्त लिहाज़ा रोज़े शबः नीज़ नामन्द। —तुह०, पृ० २५४ मू०।
५. हिन्दु० II, १६९।
६. हिन्दु० I, पृ० २९।

कमल कोंका––यह नील कमल के लिये पूर्व (बिहार-बंगाल) में प्रयुक्त होता है।[१]

कोई––श्वेत कमल के लिये पूर्व दिशा में प्रयुक्त होता है।[१]

रुकी––श्वेत कमल के गाभा के लिये पूर्व में प्रयुक्त।[१]

व्याकरणिक टिप्पणियाँ

आलोच्यकालीन हिन्दी कोशकारों के सम्मुख हिन्दी का कोई व्याकरण नाम-मात्र को भी नहीं था यद्यपि कोश-प्रक्रिया और व्याकरण का अध्ययन बहुत कुछ एक दूसरे का मार्ग-प्रदर्शन करते हैं।[२] कुछ कोशकार अवश्य व्याकरणविद भी थे। उदाहरण के लिये मिर्ज़ाख़ाँ ने तुहफ़त् की भूमिका (मुक़द्दिमः) के एक अंश में ब्रजभाषा व्याकरण पर टिप्पणियाँ दी हैं।[३] गिलक्राइस्ट का 'हिन्दुस्तानी ग्रामर' सन् १७८८ में हिन्दुतानी व्राकेबुलरी के साथ ही प्रकाशित हुआ। इनके अतिरिक्त रोयेबक की 'दि इंग्लिश एंड हिन्दुस्तानी डिक्शनरी' के साथ एक हिन्दुस्तानी व्याकरण भी भूमिका में दिया हुआ है। यह व्याकरण फ़ोर्टविलियम कालेज में पढ़ाया जाता था और टेलर के मतानुसार उस समय का सर्वोत्कृष्ट व्याकरण था।[४] परवर्ती हिन्दी व्याकरणों में दी गई व्युत्पत्तियों के प्रमुख आधार इन कोशों में उपलब्ध व्याकरणिक टिप्पणियाँ भी मानी जा सकती हैं। इनको दो मुख्य भागों में बाँटा जा सकता है: (१) पूर्ण रूप से शब्द-भेद देने वाले कोश व (२) आंशिक टिप्पणियाँ देने वाले कोश।

पूर्ण रूप से शब्द-भेद देने वाले कोश––टेलरकृत हिन्दुस्तानी-अंग्रेज़ी कोश में

---

१. औ(र) जो रात्रि विकासी नील कमल सो इंदीवर कहावै औ(और) नीलांबुज भी जानिए कमल कोंका पूरब में कहत हैं सित जो सफेद सो कुमुद कैरव जानिए पूरब में (इसे) कोई कहत हैं इनकी भीज(त)रि सालूक पूरब में रुकी कहत हैं। ––कर्णा०, पृ० २० पी०।

२. व्याकरण एवं कोश के पारस्परिक सम्बन्ध के लिये देखिये पीछे––भूमिका।

३. मियाँ ज़ियाउद्दीन द्वारा 'ए ग्रामर आव् ब्रजभाखा' शीर्षक से अँग्रेज़ी में अनूदित, और विश्वभारती प्रेस कलकत्ता से प्रकाशित (सन् १९३५ ई०)।

४. किशोरीदास वाजपेयी : हिन्दी शब्दानुशासन, भूमिका, पृ० २।

संकलित प्रत्येक शब्द का शब्द-भेद संक्षिप्त अक्षरों[1] में दिया गया है। संज्ञा के अन्तर्गत व्यक्तिवाचक संज्ञाओं तथा उनके वचन व लिंग का भी निर्देश है, यथा:

जटायु—सं०, व्य० ।

साजन—सं०, ए० व०, पु० ।

दासी—सं०, ए० व०, स्त्री० ।

क्रियाओं के भी दो उपभेदों-सकर्मक के लिये 'एक्टिव' व अकर्मक के लिये 'न्यूटर' के संकेत हैं, यथा:

निचोड़ना—क्रि० स० ।

हकलाना—क्रि० अ० ।

अन्य व्याकरणिक संकेतों में सर्वनाम, जिनके कहीं-कहीं उपभेद भी दिये गये हैं, विशेषण, क्रिया-विशेषण, उपसर्ग एवं विस्मयादि बोधक स्थान-स्थान पर अंकित किये गये हैं:

सच्चा — वि० ।

अलग अलग — क्रि० वि० ।

अ — उप० (अल्पार्थक) ।

धिक् — वि० बो० ।

टेलर के कोश का अनुकरण करते हुये पादरी आदम कृत 'हिन्दवी कोश' में संकलित प्रत्येक शब्द का शब्द-रूप दिया गया है, परन्तु टेलर के कोश की भाँति संज्ञा का उपभेद-व्यक्तिवाचक संज्ञा–व एक वचन, बहुवचन का अलग से निर्देश नहीं है। टेलर कृत क्रिया के भेद 'एक्टिव' और 'न्यूटर' द्वारा नहीं प्रत्युत 'सकर्मक' और 'अकर्मक' नाम द्वारा निर्देशित हैं । क्रिया-विशेषण, प्रत्यय, उपसर्ग

---

१. व्याकरणिक टिप्पणियों के लिये टेलरकृत 'हिन्दुस्तानी-अँग्रेजी' कोश में निम्न-लिखित संक्षिप्ताक्षर अपनाये गये हैं:

n. s. m. =Noun Singular Masculine सं०, ए० व०, पु० ।
n. s. f. =Noun Singular Feminine सं०, ए० व०, स्त्री० ।
pl. =plural ब० व० ।
prop. =proper व्य० सं० ।
v. a. =verb active क्रि०, कर्तरि प्रयोग (सकर्मक) ।
v. n. =verb neuter क्रि०, नपुंसक (?) (अकर्मक) ।
adj. =adjective वि० ।
adv. =adverb क्रि० वि० ।
prep. =preposition उप० ।
interj. =interjection वि० बो० ।

व परसर्ग, एवं विस्मयादिबोधक शब्दों को केवल एक नाम—अव्यय—के अन्तर्गत समाहृत किया गया है, टेलर की भाँति उनका स्वतंत्र रूप से अंकन नहीं किया गया। यह द्रष्टव्य है कि बीस वर्ष बाद प्रकाशित होने पर भी आदम के कोश में व्याकरणिक टिप्पणियाँ इतनी सूक्ष्म और विस्तृत नहीं जितनी टेलरकृत कोश में हैं। अधिक स्पष्टीकरण के लिये आदम के कोश से कुछ उदाहरण नीचे दिये जाते हैं :

धनुष —सं० पु० (संज्ञा पुलिंग)।
सांडनी —सं० स्त्री० (संज्ञा स्त्रीलिंग)।
देहु —क्रि० (क्रिया)।
थूकना —स० क्रि० (सकर्मक क्रिया)।
थंभना —अक० क्रि० (अकर्मक क्रिया)।
थोड़ा —गु० (गुण वाचक)।
तू —सर्व० (सर्वनाम वाचक) मध्यम पुरुष का एक वचन।
निकट —अ० (अव्यय)।
यथा —अ० (अव्यय)।
प्रतिदिन —अ० (अव्यय)।
ने —अ० (अव्यय)।
आहा! —अ० (अव्यय)।

आंशिक टिप्पणियाँ देने वाले कोश

लिंग मात्र का संकेत—आंशिक रूप से व्याकरणिक टिप्पणियाँ देने वाले कुछ कोशों में लिंग मात्र का संकेत है। संस्कृत शब्दों का लिंग निर्धारण कोशकारों के लिये एक कठिन समस्या बनी रही है, इसीलिये संस्कृत में कुछ कोश केवल लिंग मात्र का ज्ञान कराने के लिये निर्मित हुये।[1] पाणिनीय लिंगानुशासन, वररुचि कृत लिंगवृत्ति, वामन, हेमचन्द्र, शाकटायन, हर्षवर्धन, दुर्ग, व्याडि एवं दण्डि के लिंगानुशासन परक कोशों के अतिरिक्त ४१ अन्य कोश इसी प्रकार लिखे गये।[2] अमरकोश के रचयिता ने अपना लक्ष्य द्विविध बताया – नाम एवं लिंगों का सम्यक् रूप से पारायण।[3] लिंगों का अनुशासन उचित रूप से ज्ञात करने

१. "व्याडिवररुच्यादिप्रणीतानि तु लिंगमात्रतंत्राणि"—सर्वानन्द। अमरकोश-टीका, प्रथम भाग, पृ० २—४।
२. प्रो० रामअवध पाण्डेय: संस्कृत में लिंगानुशासन साहित्य (सम्मेलन पत्रिका आषाढ़-भाद्रपद १८८२ शक,) पृ० ६०-६४।
३. "सम्पूर्णमुच्यते वर्गैर्नामलिंगानुशासनम्"—अमरकोश, १।१।२।

के लिये अमरसिंह ने रूप-भेद, साहचर्य व विशेष विधि के माध्यम का आश्रय लिया।[1]

मध्यभारतीय आर्यभाषाओं—पालि, प्राकृत तथा अपभ्रंशादि में लिंग सम्बन्धी स्वच्छन्दता और सरलीकरण की प्रवृत्तियों का समावेश हुआ। फलतः इन भाषाओं में लिंग-विधान के नियम उतने निश्चित न रह सके जितने व्याकरणानुशासित संस्कृत में। अपभ्रंश युग में यह अवस्था अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी जिसके सम्बन्ध में हेमचन्द्र ने कहा था कि 'लिंगमतन्त्रम्'[2] अर्थात् लिंग का कोई नियम नहीं है।

लिंग सम्बन्धी इस परिवर्तित दृष्टिकोण के फलस्वरूप विवेच्य हिन्दी कोशों में भी लिंग-ज्ञापन की कोई सुनिश्चित एवं सम्यक् प्रणाली नहीं अपनाई जा सकी, प्रकीर्ण संकेत मात्र अवश्य उपलब्ध होते हैं—उदाहरण के लिये चंदनराम अपने 'अनेकार्थ' के प्रारम्भ में हिन्दी शब्दों के लिंग-द्योतन का एक सामान्य नियम बताते हैं :

स्त्रीलिंग दीरघ सदा, ह्रस्व पुंस क्लिब जान।
एक शब्द त्रिषु बांचि है, यौं बिधि करौ बखान॥[3]

इसी नियम को उदाहरण देकर आगे स्पष्ट किया गया है कि अकारान्त (=अतएव पुलिंग) शब्द 'शिव' के जितने अर्थ होते हैं, दीर्घ उच्चारण (= शिवा) से उन समस्त शब्दों के लिंग भी स्त्रीलिंग में समझने चाहिये। यदि शिव का अर्थ महादेव और गीदड़ है तो शिवा का अर्थ (स्त्रीलिंग मात्र से) उमा व गीदड़ी होगा। इसी रीति से अन्य शब्दों के लिंग-भेद पर आश्रित अर्थ-भेद समझने चाहिये :

शिव आदिक पद को जिते, अनेकार्थ ह्वै नाम।
दीरघ उचारण ते सुकवि, होत तिन्ह ही के बाम॥
हर श्रृगाल शिव अर्थ ज्यों, शिवा श्रृकालि उमारु।
याही रीति सब पद अरथ, समुझो बुद्धि उदारु॥[4]

परन्तु 'स्त्रीलिंग दीरघ सदा' का यह नियम हिन्दी में सदैव नहीं चलता। खाट, दाख, सीख, भाख, जीभ, लाख, काट, छाँट, भीड़ आदि शब्द अकारान्त

---

१. प्रायशो रूपभेदेन साहचर्याश्च कुत्रचित्।
स्त्रीपुंनपुंसकं ज्ञेयं तद्विशेष विधेः क्वचित्॥ —अमर कोश, १।१।३।

२. हेम०, ४।४४५।

३. अने० चन्द०, पृ० १।

४. वही, पृ० २।

होते हुये भी स्त्रीलिंग हैं।[1] अचेतन पदार्थों के द्योतक शब्दों के विषय में तो सामान्य रूप से यह धारणा है कि बड़े कठोर आदि पदार्थों के द्योतक शब्द पुल्लिग के हैं और लघुता और नम्रता आदि के द्योतक शब्द स्त्रीलिंग में है। यथा पत्ता-पत्ती, लोटा-लुटिया, रस्सा-रस्सी आदि।[2] हिन्दी में शब्दों का साहचर्य, विकास क्रम, अर्थ तथा रूप गठन आदि का प्रभाव (लिंगों के) वर्ग-ग्रहण पर पड़ा है।[3] 'दीर्घीकरण' से स्त्रीलिंग का होना कुछ शब्दों पर अवश्य लागू होता है, जिसका स्पष्ट उल्लेख कुछ कोशों में शब्द-विशेष के प्रसंग में कर दिया गया है। यथा :

पुत्र, सूनु, आत्मज, तनय और सुत शब्दों के यदि दीर्घ अर्थात् पुत्री, सूनू, आत्मजा, तनया और सुता, कर दें तो इनका अर्थ 'पुत्री' हो जाता है।[4]

'किंकर' सेवक का नाम है। इसके स्त्रीवाची के लिए शब्द के अन्त में 'ई' लगाते हैं और 'किंकरी' कहते हैं।[5]

'चकवा' एक (नर) पक्षी का नाम है जिसकी मादा जाति को 'चकवी' कहते हैं।[6]

'नवेला' शब्द का तात्पर्य नये से है। यदि आकारान्त हो तो पुल्लिंग होता है और आकारान्त के स्थान पर यदि ईकारान्त हो और 'नवेली' पढ़ा जाय तो स्त्रीवाची समझना चाहिये।[7]

वचन—गिलक्राइस्ट की 'वाकेबुलेरी' में कुछ स्थलों पर एकवचन शब्दों के बहुवचन, और बहुवचन शब्दों के एकवचन दिये गये हैं। जैसे :

'अजब' का बहुवचन 'अजाइब'।

'तारीख़' का बहुवचन 'तवारीख़'।

'अल्क़ाब' का एकवचन 'लक़ब'।

---

१. किशोरीदास वाजपेयी : हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० १८३।

२. डा० बाबूराम सक्सेना : 'हिन्दी में लिंग भेद के द्वारा सूक्ष्म अर्थ भेद का द्योतन' (हिन्दी अनुशीलन : डॉ० धीरेन्द्र वर्मा विशेषांक) पृ० १५१।

३. किशोरीदास वाजपेयी : हिन्दी शब्दानुशासन, पृ० १९०।

४. पुत्र सूनू आत्मज तनय, सुत युत पांचै होइ।
शब्द अन्त गुरु के दिये, पुत्री ह्वै है सोइ॥ —ना० प्र०, पृ० १४२।

५. किंकर—ख़ादिमो ग़ुलाम रा नामन्द व बराये मुअन्नस याय मा'रूफ दर आख़िर इस्तेमाल कुनन्द व किंकरी गोयन्द। —तुह०, पृ० २६३ पी०।

६. चकवा—नामे तायरे अस्त व मादये ऊ चकवी गोयन्द—वही, पृ० २३५ पी०।

७. नवेला—ब मा'ना नव बाशद व अलिफ़े आख़िर ब राय मुजक्कर आमदः व ब राय मुअन्नस ब जाय अलिफ़ याये मा'रूफ़ इस्तेमाल कुनन्द व नवेली गोयन्द। —वही, पृ० २८२ पी०।

लघ्वार्थक रूप—तुहफ़त् में कुछ लघ्वार्थक शब्दों के मूल रूप देकर, टिप्पणियाँ दी गई हैं :

तरय्या—इसका अर्थ सितारा से है और यह 'तारा' शब्द का लघ्वार्थक रूप है।[1]

फुल्ल—यह 'फूल' शब्द का संक्षिप्त रूप है जिसको (फ़ारसी में) 'गुल' कहते हैं।[2]

क्रिया रूप—कोशों में क्रियायें सामान्य रूप से अकालक्रिया वा संज्ञार्थक रूपों में ही संकलित की जाती हैं परन्तु तुहफ़तुल-हिन्द में अधिकांश क्रियायें आज्ञार्थक रूप में प्रयुक्त हुई हैं जिनको कोशकार ने व्याख्या करते समय स्पष्ट कर दिया है। **यथा :**

चल (रफ्तन व अम्र अज़ रफ्तन बुबद - पृ० २३७ पी०); **चाख** (चस्पीदन व अम्र अज़ चस्पीदन बुवद - पृ० २३७ पी०), **टर** (ब माना बेगोशुदन व अम्र अज़ बेगोशुदन बुवद - पृ० २२९ पी०), **तज** (ब माना तर्क कर्दन व अम्र अज़ तर्क कर्दन बुवद-पृ० २२६ मू०), **पढ़** (ब माना ख़्वांदन व अम्र अज़ ख़्वांदन बुवद-पृ० २१९ पी०), **फेर** (ब माना दोरु (?) गर्दिश व अम्र अज़ गर्दानीदन बुवद-पृ० २२४ पी०), **बांध** (- - - नीज अम्र अज़ बस्तन बुवद - पृ० २०४ पी०), **बूड़** (ब माना ग़र्क़ शुदन व अम्र अज़ ग़र्क़ शुदन बाशद - पृ० २०५ मू०), **बोड़** (अम्र अज़ ग़र्क़ कर्दन बुवद-पृ० २०५ मू०), **बेच** (अम्र अज़ फ़रोख़्तन बुवद - पृ० २०४ पी०), **भास** (गुफ्तन व अम्र अज़ गुफ्तन बुवद-पृ० २१४ मू०)।

अव्यय निरूपण—फ़कीरचन्द कृत सुबोध चन्द्रिका एवं उदैराम के एकाक्षरीनाममाला तथा प्रकाशनाममाला के उत्तरार्ध में एकाक्षर अव्ययों का निरूपण स्वतंत्र रूप से किया गया है। यथा :

। नि नांम ।

अतिसय, निरणय जस यता निसचय गवण निरवेध ।
नि अव्यय के नांम ए वर के जु चित वेध ।[3]

---

१. तरय्या—ब मा'ना सितारा बुवद व आँ तस्गीरे तारा नीज़ तवानद शुद। —तुह० पृ० २२५ पी०।

२. फुल्ल—मुख़्तसरे फूल बाशद बमा'ना गुल। —वही, पृ० २२५ मू०।

३. एका० उदै०, छ० ९।

फ़कीरचन्द के मतानुसार अव्यय वह है जिसका आकार-प्रकार कभी परिवर्तित नहीं होता :

> **अबि कबि कहति बखांनिकें अव्यय कौ अधिकार ।**
> **चिन्ह अर्थ पै बर्नकौं, फिरें न रूप प्रकार ।।**
> **सो अव्यय बहु भाँति है, कछु इक बर्नो जानि ।**
> **मो मति के परवांन सौं, एक बर्न के आंनि ।।**[1]

निष्कर्ष

व्याकरणिक टिप्पणियों का आधार अत्यधिक विस्तीर्ण धरातल पर सुस्थित न होते हुये भी उपर्युक्त विवरणों के आधार पर इतना अवश्य कहा जा सकता है कि इन समस्त कोशकारों में से अधिकांश व्याकरण के व्यापक महत्त्व से भलीभाँति विज्ञ थे । फिर भी उन्होंने इस क्षेत्र में संस्कृत कोशों का बिशेष अनुकरण करते हुये (हिन्दी) भाषा की प्रवृत्ति के अनुरूप ही आवश्यकतानुसार टिप्पणियाँ प्रस्तुत कीं । व्याकरणिक टिप्पणियों के क्षेत्र में टेलर के प्रयास सर्वथा मौलिक और नवीन दिशा के सूचक कहे जा सकते हैं । पादरी आदम ने केवल टेलर का ही आंशिक और अपूर्ण अनुसरण किया । मिर्ज़ाख़ाँ और डा० गिलक्राइस्ट हिन्दी के अच्छे व्याकरणविद होते हुये भी इसका समुचित उपयोग कोश अंश में नहीं कर पाये जिसके फलस्वरूप मध्यकालीन कोश-विज्ञान को हानि ही उठानी पड़ी ।

—०—

---

१. सु० च०, छ० ९८७–९८८ ।

अध्याय ६

सांस्कृतिक संदर्भ

कोश एवं संस्कृति

कोशों में संकलित शब्दावली एवं अर्थ या व्याख्याओं में अन्तर्निहित तत्कालीन समाज एवं संस्कृति से सम्बद्ध तत्वों का अन्वेषण एवं विश्लेषण आधुनिक साहित्यिक समालोचना के ही नहीं वरन् ऐतिहासिक परम्परा की छानबीन के क्षेत्र में भी एक विशिष्ट वैज्ञानिक महत्त्व रखता है।

आदर्श कोशकार अपने कोश का क्षेत्र केवल शब्दों के संग्रह तक ही सीमित नहीं रखते, उसके लिये कोश का उद्देश्य है जन-समुदाय के जीवन का पूर्ण सच्चाई के साथ सम्यक् चित्रण करना। ऐसा कोश निर्मित करना जिसमें आकलित हों लोगों के विश्वास तथा व्यवसाय, आमोद-प्रमोद के उपकरण, उनकी विचार-पद्धति और भाव-सीमायें—जिनकी प्रतिच्छाया भाषा और साहित्य पर पड़ती है। बिना इस सर्वांगीण विवेचन के कोश सदैव ही अपूर्ण रहेगा।[1]

एक पूर्ण कोश में प्रयास किया जाता है कि उसके माध्यम से जनसमुदाय का घरेलू तथा सामाजिक जीवन, खेल तथा तमाशे, नीति और तौर-तरीक़े, धार्मिक निष्ठायें एवं दैनिक जीवन को प्रभावित करने वाले अन्धविश्वास, आशायें तथा भय, खुशियाँ और ग़म, स्पर्द्धा, वाग्वैदग्ध्य और व्यंग—संक्षेप में सामूहिक रूप से भारतीयों के आन्तरिक जीवन का उद्‌घाटन करने वाले समस्त तत्वों—का आंशिक या सम्पूर्ण विवरण उपलब्ध हो सके।[2]

---

१. "...... Not a mere word dictionary but a work which should faithfully depict the life of the people - their occupations and pleasures, with their modes of thought and feeling as reflected in their language and literature. Without this knowledge the law - giver legislates in the dark, the educationist frames system of education which do not educate, the philonthropist and christian minster only beat the air......"

—न्यू हिन्दुस्तानी डिक्शनरी (डॉ० एस० डब्लु० फ़ैलन्), भूमिका, पृ० ७।

२. "... And to afford an insight into the mind of the people their domestic and social life, their sports and pleasures, their morals, manners and customes, their religious beliefs and superstitions, which actually influence their daily lives as distinct from the mechanical performances of a formal ceremonial worship;

कोशों में सांस्कृतिक तत्त्वों की छानबीन करने का एक अन्य पक्ष भी है। प्रत्येक भाषा का इतिहास तथा संस्कृति (या शब्द एवं उपकरण) सदैव ही समानान्तर गति से एक दूसरे को संबल और प्रकाश देते हुये अग्रसर होते हैं।[1] अतएव कोश-विशेष में निहित इन तत्त्वों का अनावरण विशेष रोचक एवं लाभप्रद सिद्ध हो सकता है।

प्रस्तुत अध्याय में विवेच्य कोशों के अन्तर्गत समाहृत शब्दावली तथा व्याख्याओं के उन अंशों का विवेचन किया गया है जो समग्र रूप से भारतीय संस्कृति का उद्घाटन करते हैं। संस्कृति का तात्पर्य व्यापक रूप से यहाँ पर उन संस्थाओं और तत्त्वों से लिया गया है जिनका निर्माण राष्ट्र ने किया। धर्म-प्रदर्शन, साहित्य, कला, समाज, आर्थिक जीवन की संस्थायें, चित्र, शिल्प, वास्तु कला, संगीत, नाटक, अभिनय, शिष्टाचार, शिक्षा-व्यवस्था, परिवार, संस्था, आमोद-प्रमोद, पर्व-उत्सव, भाषा, लिपि, अलंकरण, वेशभूषा, गृहनिर्माण, ग्राम्य और नागर जीवन जितनी भी संस्थायें या जीवन के पहलू हैं इन से सम्बद्ध शब्दावली एवं व्याख्याओं के कुछ अंश देना ही प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य है। यह अध्ययन अधिक सरस इसलिये भी प्रतीत होता है कि इसमें अधिकांशत: एक भिन्न संस्कृति के पोषक मुसलमान या यूरोपीय कोशकारों द्वारा वर्णित भारतीय संस्कृति विषयक विवरण ही अधिक मात्रा में प्रस्तुत किये गये हैं।

विवेच्य सामग्री के दो स्वरूप

भारतीय संस्कृति विषयक तत्त्वों का आलोच्य कोशों में दो प्रकार से प्रतिनिधित्व किया गया है। समस्त समानार्थी तथा अनेकार्थी कोशों में इस प्रकार की शब्दावली संकलित है जो भारतीय आराधना, धर्म, आध्यात्म, वर्ण-व्यवस्था तथा रूढ़ सामाजिक व्यवस्था या व्यावसायिक कार्यों से सम्बद्ध है। शब्दावली मात्र के पर्यवेक्षण से इन अंगों पर कुछ प्रकाश पड़ सकता है। 'तुहफ़तुलहिन्द' तथा टेलर के द्विभाषीय'-कोश में इसके विपरीत इस शब्दावली से सम्बद्ध विस्तृत जानकारी देने का प्रयास

---

with the hopes and fears, the joys and sorrows, the jealousies and heart burnings and the wit and humour, satire and inventions which together reveal the inmost thoughts and feelings of the inner life of the people. ..."

—न्यू हिन्दुस्तानी डिक्शनरी (फ़ेलन), भूमिका पृ० १।

१. "... In this way the history of language and culture (words and things) go hand in hand and provide mutual support and illumination..."

—एल०आर० पामर: ऐन इन्ट्रोडक्शन टु मॉडर्न लिंग्विस्टिक्स, पृ० १५१।

किया गया है। प्रस्तुत अध्ययन में प्रथम प्रकार का कम और द्वितीय प्रकार का विवरण अधिक देकर विषय के व्यावहारिक पक्ष को ही प्रकाश में लाया गया है।

विश्लेषण-सुविधा की दृष्टि से विचार करने पर कोशों में उलपब्ध सांस्कृतिक संदर्भों को दो मुख्य शीर्षकों के अन्तर्गत रखा जा सकता है :

(१) शास्त्रीय और (२) लौकिक।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत वैदिक तथा पौराणिक संस्कृति विषयक शब्दावली और दूसरे वर्ग में जनता की घरेलू शब्दावली और संकेत समाविष्ट किये गये हैं। शास्त्रीय संस्कृति विषयक शब्दावली के आधार-ग्रन्थ वेद, पुराण, स्मृति, धर्मशास्त्र, श्रीमद्भागवत, गीता आदि हैं। यह समस्त शब्द-समूह परम्परागत रूप से ही लिया गया है। केवल मिर्ज़ाख़ाँ की व्याख्यायें विशेष रूप से द्रष्टव्य हैं। घरेलू लोक संस्कृति से सम्बद्ध शब्दावली तथा प्रसंगों के भीतर प्राचीन एवं सामयिक अंशों का एक साथ समावेश मिलता है। संस्कृत कोशों के अनुकरण पर निर्मित समानार्थी या अनेकार्थी कोशों की शब्दावली में लोक-संस्कृति का सामयिक अंश अपेक्षाकृत सीमित है, उसका कारण संस्कृत के कोश ग्रंथ एवं साहित्य हैं।[१] द्विभाषीय कोशों में यह पक्ष अधिक रुचि से विवेचित किया गया है अतएव यह विशेष उपयोगी एवं महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि इन्हीं के भीतर कोशकार अपने सामाजिक और सांस्कृतिक अनुभवों की छाया स्पष्टतर रूप में अंकित करते हैं।

शास्त्रीय संस्कृति सम्बन्धी शब्दावली एवं निर्देश

शास्त्रीय संस्कृति का तात्पर्य है शास्त्रों पर आधारित संस्कृति। शास्त्र को मिर्ज़ाख़ाँ अखिल भारतीय विश्वासों से युक्त ग्रन्थों का सामूहिक नाम[२] देते हैं। धर्म शास्त्रों में वेद, आम्नाय या निगम[३] हिन्दू संस्कृति के मूलाधार हैं। 'हिन्दुओं के ये धर्मग्रन्थ' संख्या में चार हैं[४] जिनका विवरण प्रत्येक कोश में दिया गया है।

---

१. "...Sanskrit literature (and vocabulary, which has been the main source for the Hindi Lixicographers) is miserably poor in common everyday colloquial vocabulary. It contains more of religious and philosophic terms and phrases than popular words and phrases..."

—डा० बाहरी : हिन्दी सेमैण्टिक्स्, पृ० ९४।

२. सास्तर—कुतुबे फ़कीह अहले हिन्द बुवद—। —तुह०, पृ० २५३ मू०।

३. आमनाय श्रुत वेद अंग निगम अगोचर नाम।
धरममूल श्रवकामधुनि ब्रंमरूप विश्रांम ॥ —अ० मा०, छं० ४९४।

४. बेद—किताबे हुनूद रा नामन्द व आँ चहार अस्त रिघ बेद हजरबेद सियामबेद व अथरीन बेद। —तुह०, पृ० २०४ पी०।

उपवेदों, अठारह पुराणों तथा उपपुराणों और उपनिषदों तथा वेदांगों में शिक्षा, कल्प, व्याकरण, ज्योतिष, छन्द एवं निरुक्त का उल्लेख प्रत्येक अनुवादित कोश में मिलता है।[१] धर्म संहिता एवं इतिहास ने हमारी नीति व रीतियों को सतत प्रभावित किया है। इतिहास में प्रमुख हैं रामायण और महाभारत। बाल्मीकि द्वारा प्रणीत रामायण मिर्ज़ा के अनुसार अखिल भारतीय ऐतिहासिक ग्रन्थ है, जिसमें रामचन्द(न्द्र) व उनकी पत्नी सीता का रावन(ण) द्वारा क्रोध में अपहृत किये जाने आदि की कथा वर्णित है।[२] (महा) भारत जैसे वीर काव्य में 'जुधिष्ठिर के संग्रामों को गाथा है।[३] हिन्दुओं का यह महान् काव्य व्यासमुनि द्वारा लिखा गया था जिसमें पाण्डवों व कृष्ण के युद्धों का विस्तृत वर्णन है।[४] षड् शास्त्र हिन्दुओं के दर्शन-वैज्ञानिक ग्रन्थ हैं जिनको षड् दर्शन भी कहा जाता है। ये संख्या में छः हैं: न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, वेदान्त, पातंजल (योग) व सांख्य। इनके प्रणेता क्रमशः गो(गौ)तम, कणाद, जैमनि, व्यासदेव, शेषनाग एवं कपिल हैं।[५] तुहफ़त् में लिखा है कि हिन्दू संस्कृति की आधारशिला गीता चिरंतन सत्य और आध्यात्मवाद से ओत-प्रोत है। 'कान्ह' की वाणी का यह संग्रह 'संहस्कीरत ज़बान' में सुरक्षित है।[६]

धर्म—भारतीय संस्कृति का मूल मंत्र धर्म है। उदात्त गुणों पर आधारित यह धर्म 'रिलिजन' नहीं बल्कि न्याय व रहन-सहन का ढंग[७] है जो 'उत्तम करम' करने की सतत् प्रेरणा देता है।[८]

त्रिदेवों का वर्णन—भारतीयों की इस धार्मिक वृत्ति का मूलाधार त्रिदेव हैं। तुहफ़त् में कहा गया है कि समस्त संसार का निर्माणकर्त्ता ब्रह्मा है, जिनके प्रति हिन्दुओं का प्रगाढ़ विश्वास है कि वही महान् देव समस्त सृष्टि एवं दृष्टिगत वस्तुओं

---

१. पाद छंद कर कल्प कहायो, मुख व्याकरण जासु को भायो।
श्रवण निरुक्त घ्राण शिक्षा ए, ज्योतिष नेत्र वेद अंग छाए॥ —उ० को०, १।६।४।

२. रामायन—नामे किताबे तारीख़ अहले हिन्द अस्त कि दराँ अहवाले रामचन्द व सीता जनश व रावन कि सीता रा बग़ज़ब व ग़ारत बुर्दः वग़ैरः आँ मज़्कूर अस्त —तुह०, पृ० २४८ पो०।

३. हिन्दु० I, पृ० २६०। ४. वही II, पृ० ७०८।

५. हिन्दु० II, पृ० ४६५।

६. गीता—......नामे किताबे अस्त मुश्तमिल बर हक़ायक़ व मआरिफ़ तसनीफ़े कान्ह व ब ज़बाने सहसकीरत। —तुह०, पृ० २७० मू०।

७. हिन्दु० II, पृ० ६२।

८. सत क्रित भागधेय व्रिख सुकृति, धरि-श्रेय अर पुनि धरम।
पूरण ब्रह्म समरि परमातम, कर आतम उत्तम करम॥
—ह० ना० मा०, छं० २१२।

का नियामक है ।[१] पुनः हिन्दुओं की धारणा है कि दूसरा महान देव 'बिश्न' समस्त संसार का रक्षक एवं पोषक है ।[२] इनमें से तीसरा और अन्तिम है शिव या महादेव— वह प्रसिद्ध देवता, जिसके कटाक्ष मात्र से निखिल विश्व तहस-नहस हो सकता है— ऐसा हिन्दुओं का 'ऐतिक़ाद' (विश्वास) है ।[३]

अवतारों से सम्बद्ध शब्द—विष्णु पर समस्त सृष्टि की रक्षा व पोषण का भार है अतएव सृष्टि को दुष्टों के दुष्कृत्यों से बचाने व धर्म-संस्थापन के लिये उसे बार-बार अवतार लेने पड़ते हैं । 'अवतार', मिर्ज़ा के अनुसार, 'बिश्न' के समय समय पर अपने पुत्रों की रक्षा के लिये इस संसार में आने को कहते हैं ।[४] इन अवतारों की संख्या 'चौईस' है[५] जिनमें दस प्रमुख हैं । इन अवतारों का पर्याय-संकलन एवं वर्णन प्रायः अधिकांश कोशों में आया है ।

देवताओं के पर्याय—कोशों में वर्णित देवों के निम्न विभाग किये जा सकते हैं— (१) अवतारों पर आधारित देव (२) प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक देव (३) देवियाँ तथा (४) प्रकीर्ण ।

अवतारों पर आधारित देव—इनमें मत्स्य, कच्छप, बाराह, नृसिह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध और कल्कि के पर्याय नाम सभी समानार्थी कोशों में गिनाये गये हैं ।

---

१. ब्रम्भ——......नामे देबतायेस्त व आँ ब ए'तिक़ादे हुनूद मख़लूके अस्त कि हक़ सुबहानहूताला अव्वल कसे कि आफ़रीद ऊ बूद व खिल्कते कुल मख़लूक़ात ब ओहदये ऊ अस्त । —तुह०, पृ० २०३ मू० ।

२. बिश्न—नामे देबतायेस्त कि ब ए'तिक़ादे हुनूद तर्बियत व पर्वरिश अहले आलम मुतअल्लिक़ बदूस्त । —वही०, पृ० २१० मू० ।

३. महादेव—नामे देबताये अस्त मशहूर कि ब ए'तिक़ादे हुनूद अ फ़ना आदाम व एहलाके खलक़ मुतअल्लिक़ बदौलत । —वही, पृ० २८१ मू० ।

४. .....कान्ह रा नामन्द अज ईं जेहद कि औतारे बिसन अस्त या'नी बिसन दर काले बद ऊह ब आलमे बाज आमदः । —वही, पृ० २१० पी० ।

५. ॥ चौईस अवतार नाम ॥

राम क्रसन नरहर रिखभ ब्रखभ हरी बाराह ।
मछ कछ मीन मनंतर नारायण सुरनाह ॥
ध्रूवरदांम धनंतर कपलदेव निकलंक ।
सनकादिक हंसादि दत प्रथू व्यास परियंक ॥
बांमण बुध दुजराम वल यौं हयग्रीव उचार ।
वपधारे चक्र विसंती यलकज भार उतार ॥ —अ० मा०, छं० ४४२-४४४ ।

प्राकृतिक शक्तिओं के नियन्ता देवाधिदेव इन्द्र सर्वाधिक शक्तिशाली एवं प्रभविष्णु माने गये हैं। इसके अतिरिक्त सूर्य, चन्द्र, वरुण, अग्नि, रात्रि, पर्जन्य (मेघ), रुद्र तथा मरुत के पर्याय नाम—प्रायः सभी समानार्थी कोशों में संकलित हैं।

विभिन्न देवियों का महत्त्व भी हिन्दू संस्कृति में कम नहीं है। कमला या लक्ष्मी का तात्पर्य सामान्यतः 'दौलत' व 'माल' से है, परन्तु हिन्दू लोग उसे देवी मानते हैं।[१] 'सरसती' (सरस्वती) एक देवी का नाम है जिससे संगीत की उत्पत्ति बताई जाती है।[२] राधा की उपासना कृष्ण के साथ सदैव ही होती आई है[३] और पार्वती का शिव से सम्बन्ध गिरा और अर्थ का है।[४] सीता राम की पत्नी थीं जिसको रावन नष्ट करने के लिये उड़ाकर ले गया था।[५] राम की उपासना के साथ-साथ धर्म-शास्त्रों में सीता की उपासना भी की गई है।[६] माँ मैथिली के कोप मात्र से लंका भस्मसात हुई और रावण का राज्य समाप्त हुआ।[७]

अन्य देवों में रिद्धि-सिद्धि के नायक और विघ्न-विनायक गणेश की उपासना प्रायः प्रत्येक कोश के प्रारम्भ में की गई है। मिर्ज़ा कहते हैं कि गनेस (गणेश) हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध देवता हैं जिनका सिर हाथी के आकार का है। उनका केवल एक दाँत है, और शरीर पुरुष के आकार का है। ये महादेव के पुत्र हैं जिनके

---

१. कमला—ब मा'ना दौलतो माल बाशद व हुनूद आँ रा देवी नामन्द——।

—तुह०, पृ० २६० पी०।

लेखवि नांम इंदरा लिखमी, लिखमी-वर नाइक सुरलोक।
सहिवातां राखै हरि सारै, थारै भला हुअै सह थोक॥

—ह० ना० मा०, छ० ४१-४२।

२. सरसती—नामे यके अज देबताहा कि नग़म व सुरूद नाशी शुदा।

—तुह०, पृ० २५८ मू०।

३. राधा—नामे जने कान्ह बूदः व ऊ रा राधिका नीज़ गोयन्द।

—वही, पृ० २४६ पी०।

४. उ० को०, १।२।२५।

५. सीता—नामे जनेरामचन्द अस्त क़े ऊ रा रावन बग़ारत बुर्दाः बूदन्द।

—तुह०, पृ० २५० पी०।

६. 'रांमप्रिया भुजां रुघराणी, वेद पुरांण क्रीत बखांणी'।—ना० मा० "क", छं० ६।

७. महमाया मा मइथली, कंकट करण अकाज।
जिकै कोप लंका जली, राकस बिगड़े राज॥ —अ० मा०, छ० ४४६।

कृत्यों का पूर्ण 'अहवाल' हिन्दुस्तान के धार्मिक और ऐतिहासिक ग्रंथों में सविस्तार वर्णित है।[1]

महापुरुषों का विवरण

देवताओं की ही भाँति महापुरुषों के व्यक्तित्व की गहन छाप भारतीय संस्कृति पर अति प्राचीन काल से पड़ती आयी है। यथार्थतः प्रत्येक महापुरुष देवता का ही एक लघु रूप है। दोनों में केवल मात्रा का अन्तर है, इसीलिये मिर्ज़ाख़ाँ ने इन समस्त महापुरुषों को भी 'देबता' ही माना है। देवी और देवों के ही समान इन महापुरुषों के आदर्श चरित्र का प्रभाव भारतवासियों के रहन-सहन पर पड़ा है और सदा इनकी भी उपासना होती आई है। लोगों ने अपनी व्यावहारिक समस्याओं का समाधान सदैव इनकी चरित गाथाओं में ढूंढ़ा। भारतीय संस्कृति को प्रभावित करने वाले इन महापुरुषों को दो मुख्य वर्गों में विभाजित किया जा सकता है (१) रामायण-कालीन व (२) महाभारतकालीन। तुहफ़त् में इन सभी के विस्तृत विवरण दिये गये हैं।

रामायणकालीन व्यक्तित्व—रामायणकालीन प्रसिद्ध व्यक्तियों में विष्णु के अवतार राम के अतिरिक्त उनके पिता 'दसरत' (दसरथ) प्रमुख हैं, जो 'अजोध्या' में शासन करते थे।[2] लछमन (लक्ष्मण) भी एक 'देबता' हैं। ये 'जसरथ' के पुत्र और रामचन्द के छोटे सौतेले भाई थे। जब (दशरथ) के बड़े पुत्र रामचन्द को केकई के कहने पर पिता (दसरथ) ने देशनिकाला कर के उस (केकई) के पुत्र को (अयोध्या) का राज्य दे दिया तो (लक्ष्मण ने भी) भाई रामचन्द का साथ देश छोड़ने में दिया।[3] 'कौशिल्या' रामचन्द की माँ का नाम था[4] और केकई थी रामचन्द के पिता 'जसरथ' की पत्नी। उस (केकई) ने अपने पुत्र भरत, जो रामचन्द्र का सौतेला भाई लगता था, को राज्य दिलाकर राज्याधिकारी राजकुमार रामचन्द को राज्य से वहिष्कृत करवा दिया। इस कथा का सारा विवरण भारतीय

---

१. **गनेस.........नामे देबतायेस्त मश्हूर कि सरश ब शक्ले फ़ील व यक दंदाँ तना अश ब शक्ले तनाये आदमी ब शिकमे कलाँ व पिसरे महादेव अस्त व अहवाले ऊ दर कुतुबे तवारीख़े अहले हिन्द मस्तूर अस्त.....।**
—तुह०, पृ० २७० पी०।

२. **दसरत—नामे देबतायेस्त व आँ पिदरे रामचन्द अस्त कि सल्तनत अजोध्या दाशत। —वही, पृ० २४१ मू०।**

३. **लछमन—नामे देबतायेस्त पिसरे राजा जसरथ बिरादरे अल्लाती रामचन्द कि ब रामचन्द गुर्बत अख़्तियार कर्दः कि राजाय बतौर रामचन्द पिसरे कलाँ खुद रा गुफ़्ताय केकई मादर व पिदरश अज़ मुल्क एख़राज कर्दः व भरत पिसरे ऊ रा राज दादः। —वही, पृ० २७५ मू०।**

४. **कोशिल्या—नामे मादरे रामचन्द बूदः। —वही, पृ० २६० पी०।**

ऐतिहासिक ग्रंथों में विस्तार से वर्णित है।[१] हनुमंत (हनुमान) भी एक प्रसिद्ध देवता का नाम है। जिनकी मुखाकृति बानर के सदृश है। इन्होंने रामचन्द के साथ अपनी एक बड़ी सेना लेकर रावन से युद्ध करने के लिये लंका पर धावा किया और लंका में आग लगा दी।[२]

दशरथ का समकालीन 'स्रबन' भी भारतीय गाथाओं में प्रसिद्ध है। यह एक 'मर्द' का नाम था जो अपने बृद्ध और क्षीण माँ-बाप को कहारों की जैसी काँवर पर (बैठाकर) अपने कन्धे पर ले जाते हुये धोखे में (दशरथ के) तीर से घायल हो कर मृत्यु को प्राप्त हुआ।[३]

परशुराम को विष्णु का छठा अवतार भी माना जाता है। यह जमदग्नि का पुत्र एवं दाशरथि रामचन्द्र का समकालीन था। अत्याचारी क्षत्रियों का विध्वंस करने के लिये ही वह इस रूप में अवतरित हुये थे। कहा जाता है कि इन्होंने इक्कीस बार क्षत्रियों का विनास किया। तबसे सुना जाता है क्षत्रिय हुये ही नहीं, जो हैं वे केवल वर्ण-शंकर हैं।[४]

१. केकई...नामे जने राजा जसरथ पिदरे रामचन्द अस्त क़ि बे अज राजाय मज्कूर भरत पिसरे हक़ीक़ीये ख़ुद रा क़ि बिरादरे अल्लाती रामचन्द बूदः राज देहानद व रामचन्द क़ि वली अहद रा बूदः अज मुल्क एख़राज कुनानीद व अहवाले ऊ दर कुतुबे तवारीख़े अहले हिन्द मुफ़स्सल मज्कूर अस्त।
—तुह०, पृ० २६७ पी०।

२. हनुमंत—नामे देबताये अस्त मश्हूर ब शक्ले बूजिनः क़े ब लश्क़रे ख़ुद हमराहे रामचन्द ब जंगे रावन ब लंका रफ्तः व लंका रा आतश दाद:।
—वही, पृ० २८५ पी०।

३. स्रबन—नामे पीर मर्दे क़े मादर व पिदरे पीरो जईफ़ ख़ुद रा बर दोशे ख़ुद मिस्ले काँवर कहाराँ बर दाश्तः निकवत व ब दस्ते काथ सहेबन ब ज़ख़्मे तीर कुश्तः शुद।
—वही, पृ० २५१ पी०।

४. *Pursooram*- The sixth incarnation or uvutar of Vishnoo. He was the son of Jumudugni and was contemporary with Dashruthu Ramu. He is called Jamudugni, and the deity descended in this form to destroy the Kshutriyas (or Chhutrees,) who were become tyrannical. Renooka wife of Jumudugni was interrupted in bringing water from the river by Kartuveerjar joonu, a prince of the Kshtriyus, who sporting in the water with his thousand wives, for which Purushooramu's father (Jumudugni,) cursed him. The Kshutriyu prince killed Jumudugni and Jumudugni vowed not to leave a Kshutriyu on the face of the earth. He is said to have extirpated them twenty one times, the women with child each time producing a new race. They say there have been no Kshutriyu since, those so called, being of spurious breed (or Vurnsunkurs).
—हिन्दु० I, पृ० ३४७-४८।

गोतम (गौतम) हिन्दू पौराणिक गाथाओं में वर्णित एक प्रसिद्ध मुनि का नाम है। ये न्याय शास्त्र के रचयिता थे जिनके सिद्धांत अरिस्टोटल के मतों से बहुत मिलते-जुलते हैं। इनकी पत्नी अहल्या इन्द्र द्वारा छली जाने के कारण शाप से पत्थर में परिणत हो गई थी जिसका दशरथ के पुत्र रामचन्द्र ने बाद में उद्धार किया।[१]

महापुरुषों के कृत्यों का यथोचित मूल्यांकन करने के लिये उनके प्रतिपक्षी तथा प्रतिद्वन्दियों की चरित-गाथायें भी कम मूल्यवान नहीं। यदि प्रथम प्रकार के व्यक्तित्व प्रवृत्ति-मार्ग की प्रेरणा देते हैं तो दूसरे प्रकार के व्यक्तित्व निवृत्यात्मक पथ का निर्देशन करने में सहायक होते हैं। राम की गाथा का सम्यक् प्रभाव, —रावण के कृत्यों का वर्णन किये बिना सम्यक् रूप से नहीं पड़ सकता। दोनों के जीवन सापेक्षिक हैं। मिर्ज़ा के अनुसार रावन(ण) एक 'राकस' अर्थात् रक्तपायी दैत्य का नाम था जो 'रामचन्द' की पत्नी सीता को नष्ट (?) करने के लिये अपहरण कर लंका ले गया था। फलस्वरूप 'रामचन्द' एक महान् सेना सहित लंका पहुँचे। (जहाँ जाते समय) उन्होंने समुद्र पर पुल भी बाँधा। 'रावन' को युद्ध में मारकर उन्होंने सीता को मुक्त किया और बड़े उत्सव सहित (अपनी राजधानी अयोध्या) को प्रत्यावर्तित हुये। सीता को मुक्त करने के लिये राम का रावन के साथ युद्ध की गाथा का सम्पूर्ण विवरण भारतीय ऐतिहासिक ग्रंथों में

---

१. *Gotum*—the name of moonee, or saint, famous in Hindoo mythology. He was the author of Nyayu or logick, and his doctrines corresponded with those of Aristotle. Gotum and his wife Uhulya lived in a retired forest, where Indru happening to pass, was struck with the beauty of the latter, and assuming the appearance of Gotum deceived and slept with his wife, which being discovered Gotum cursed them both. To Indru he said may your testicle fall to the ground which accordingly took place, But Bruhma advised him to restore them with those of a ram, cut out for that purpose; hence Indru is मेषाण्डकोष meshandukoshu (ram testicled.) He wished that Uhulya might be turned into stone in which state she remained till Ramchandru (son of Dushurathu) passing that way with his brother Luchhmun relieved her and restored her to her original form and being thus puri fied by Ramu's mercy, she was again received by her husband.

—हिन्दु, II, प० ५१५–५१६

विस्तारपूर्वक वर्णित है।[१] टेलर की डिक्शनरी में बताया गया है कि रावण और कुंभकर्ण विष्णु के दो द्वारपाल जय और विजय के पुनर्जन्म के रूप थे।[२] मारीच भी एक राक्षस था जिसको रावण ने सीता के अपहरण में सहायक के रूप में नियुक्त किया था।[३]

महाभारतकालीन नायकों के विवरण—महाभारतकालीन घटनाचक्र कौरव, पाण्डव तथा कृष्ण के चारोंओर घूमता रहता है। पांडवों में सर्वप्रथम युधिष्ठिर[४] थे। भीम[५], 'तुरत ताप मेटने वाले' अर्जुन और सहदेव[६] के कार्यकलापों का स्थान-स्थान पर विवरण कोशों में मिलता है। कर्ण एक प्रसिद्ध 'राजा' ही नहीं, उनकी दानशीलता और 'जवाँमर्दी'[७] अत्यन्त प्रेरणादायक रही है। इन वीर पुरुषों को जन्माने का श्रेय कुंत (कुंती) को दिया जाता है।[८] नन्द एक प्रसिद्ध ग्वाल अर्थात् धनी दुग्ध-विक्रेता थे जिन्होंने 'कान्ह' को अपने पुत्र के समान रखा[९] और उनकी पत्नी थी यशोधा (दा) जिसने 'कान्ह' को पुत्रवत् पाला पोसा।[१०] द्रौपदी पांडवों की पत्नी ही नहीं, उदैराम के कथनानुसार हिन्दुओं के लिये देवी स्वरूप भी है।[११]

---

१. रावन...नामे राकसे अस्त यानी देवये खूंख्वार क़े सीता ज़ने रामचन्द रा ब ग़जब व ग़ारत ब लंका बुर्दः व रामचन्द ब लश्कर गीराँ ब आँ जा रफ्तः व बर रूये दर्याये मुहीत पुल बस्तः व रावन रा कुश्तः व सीता रा ख़लास नुमूद आवुर्दः व अह्वाले जंगे रामचन्द व रावन बराय सीता दर कुतुबे तवारीख़ अहले हिन्द व तफ़सील मस्तूर अस्त।

—तुह०, पृ० २४८ पी०।

२. हिन्दु० II, पृ० १०४।

३. वही, पृ० ६३१।

४. सोमवंस, हस्तपुरपत जुजस्थिर कुरजीत।
सतबाची जुजठल सदा किसन कीत सूप्रीत ॥ अ० मा०, छ० १०९।

५. सेतअस्व सुमद्रेस करण-सत्र, सखा तास वसदेव सुत।
कवि "हमीर" जसबास आस कर, ताप पाप मेटे तुरत ॥

—ह० ना० मा०, छ० १२५।

६. सहदेव—नामे यके पांडो बाशद कि पंज बिरादर बूदंद—तुह०, पृ० २५७ पी०।

७. करन—नामे राजायेस्त मशहूर ब सखा व जवांमर्दी।—वही, पृ० २६५ पी०।

८. कुंत (ती)—मादरे पांडो बूदः कि पंज बिरादरबूदंद।—वही, पृ० २६० पी०।

९. नन्द—नामे यके ग्वाल यानी मालदार शीर फ़रोश क़े कान्ह बफ़र्जन्दी बर दाश्तः। —वही, २८३ पी०।

१०. जसोधा—नामे ज़ने अस्त कि कान्ह रा बफ़र्जन्दी पर्वर्दः।—वही, पृ० २३१ मू०।

११. सरअंगना ऋसना सती वेदवती सिखदांर।
पोखण सोखण द्रोपदी देवी रूप निदांन ॥ —अ० मा०, छ० २५८।

कृष्ण के 'बालापन के मीतों' में 'सुदामां' का नाम बहुत लिया जाता है। मिर्ज़ा लिखते हैं यह 'कान्ह' की बाल्यावस्था के प्रगाढ़ मित्र और साथी का नाम है। जब कृष्ण ने अपने मौसा राजा कंस को मारकर (मथुरा का) राज्य हस्तगत कर लिया तो उनकी राज्य-प्राप्ति के पश्चात् सुदामा अपनी पुरानी दयनीय तथा निर्धनावस्था में उन (कृष्ण) के पास गये जिन्होंने अत्यधिक सम्मान सहित इन (सुदामा) को धनादि से समृद्ध कर कृपालुता प्रदर्शित की।[१] कान्ह की युवावस्था गोपियों के साथ बीती[२] और इन गोपियों में चन्द्रावली का सर्वप्रमुख स्थान था[३] ऐसा प्रसंग पुराणों में भी आता है। कृष्ण और गोपियों के मधुर सम्बन्धों के साथ 'ऊधौ' की कथा भी संलग्न है जो इन 'आशिक' और 'माशूकों' के मध्य सम्बन्ध बढ़ाने (या घटाने ?) का कार्य किया करते थे।[४]

पाण्डवों के प्रतिद्वन्दी कौरवों में सर्वश्रेष्ठ था 'जर्जोधन'।[५] दूसरे थे कंस। मिर्ज़ा के अनुसार कंस एक प्रसिद्ध राजा का नाम था जो कृष्ण का अपना ख़ास मौसा लगता था। ये मथुरा में राज्य करते थे परन्तु 'कान्ह' ने इसको युद्ध में मारने के पश्चात् स्वयं राज्य हस्तगत कर लिया।[६]

पौराणिक कथाओं का उल्लेख

कृष्ण के जीवन के साथ अनेकानेक घटनायें भी सम्बद्ध हैं। इन का तुहफ़त् में सविस्तार वर्णन मिलता है। प्रह्लाद व हिरण्यकश्यपु का प्रसंग अति प्रसिद्ध है। 'हरन्नाकुस' एक घोर नास्तिक था। कहा जाता है कि उसका 'परहलाद' नामक एक परम धार्मिक और आस्तिक पुत्र था। इस कारण एक दिन 'हरन्नाकुस' ने अपने पुत्र 'परहलाद' को एक खंभे से बाँध दिया और मारना ही चाहता था कि उसी खंभे से, जिसपर वह बँधा हुआ था, अचानक एक शेर प्रकट हुआ जिसने

---

१. **सुदामां—नाम मर्दे क़ियारे क़दीम कान्ह बूदः व दर अय्यामे क़े कान्ह ख़ुर्दसाल बूदः—व ऊ मुसाहिब बूदः व कान्ह चूँ राजा कंस ख़ाले रा ख़ुद रा कुश्तः व राज या'नी सल्तनत याफ़्त बाद अज़ राज याफ़्तन सुदामा नज़रे नियाज़ी क़दीम कर्दः ब हालते फ़ुक़्रश ऊ रफ़्तः व ऊ बिस्यार एज़ाज व इक्रामश कर्दः बेनवाख़्तः। —तुह०, पृ० २५७ पी०।**

२. **गोपी—ज़ने मुसाहिबे कान्ह रा नामन्द —वही, पृ० २७१ पी०।**

३. **चन्द्रावली—नामे यके अज़ गोपिहाय कान्हः बूदः। —वही, पृ० २३९ मू०**

४. **ऊधौ—नामे मर्दे अस्त अज़ मुसाहिबाने कान्ह कि मियाने व गोपहा कि आशिकाः बहम् मा'शूकाने ऊ बूदन। —वही, पृ० २०० मू०।**

५. **जर्जोधन—नामे यके अज कौरो अमाम पांडो बूदः।—वही, पृ० २३३ मू०।**

६. **कंस—नामे राजायेस्त कि मशहूर आँ ख़ाले हक़ीक़ीये कान्ह बूदः कि राज—मथुरा दाश्तः व कान्ह ऊ रा कुश्तः राज गिरिफ़्त। —वही, पृ० २६३ पी०।**

अपना बालपन बिताया था ।[1] 'सुरसती' का पानी तीन रंगों का है । यह इलाहाबाद क़िले के नीचे गंगा और जमुना के जल में मिल जाती है। यद्यपि उपर्युक्त वर्णित नदी (सरस्वती) भूमि पर प्रकट नहीं है, फिर भी हिन्दुओं के विश्वास के अनुसार ये तीनों नदियाँ एकसाथ मिलती हैं, जिनको 'तिरबेनी' कहा जाता है ।[2]

उक्त तीनों नदियों के अतिरिक्त गोदावरी, नर्वदा, सिन्धु और काबेरी का जल भी अत्यन्त पवित्र माना जाता है। सरज्यू, गोमती और चन्द्रभागा का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। उदैराम कहते हैं कि इनमें स्नान मंजन कर 'ब्रह्म ग्यान' का कभी विस्मरण नहीं होता ।[3]

पर्वत

पर्वतों का भारतीय संस्कृति में विशेष महत्त्व है। तुहफ़त् के अनुसार भारतीय नगाधिराज हिमालय को 'देबता' ही मानते हैं।[4] गिरि गोबर्धन, सुमेरु और कैलास की अपनी पृथक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि है इनका उल्लेख कई कोशों में आया है।

वन सम्बन्धी शब्द

वन सम्बन्धी शब्दावली वर्गात्मिक कोशों में 'वनौषधि वर्ग' के अन्तर्गत संकलित है। गोविन्द ने इन्हीं वनों में गायें चराई थीं।[5] वन्य लता गुल्मों से प्यार करना हम भारतीयों के संस्कारों में है। इसीलिये तो शकुंतला के वियोग में प्रकृति ने विह्वल होकर आठ आँसू वहाये थे। गोपाल वृक्षों पर चढ़कर गोपांगनाओं के चीर हरण करते जो 'अर्ज़' करतीं थीं कि हे दीनदयाल हमारे वस्त्र दे दो।[6]

---

१. जमभगनी कालिन्द्री जमना जमा वलै सूरिजिजा जाणि ।
ऋष्णा तास पासि की कीला, बिसन बाल-लीला बखांणि ।
—ह० ना० मा०, छ० ४५ ।

२. सुरसती—नीज नामे रोद क़े आबे आँ रोद सिह रंग अस्त व आँ दर जेरे क़िला इलाहाबाद ब रूदे गंगा व जमना यक जा शुदा रवाँ गश्तः अगरचे रोदे मज़कूर बर रूये ज़मीन ज़ाहिर नेस्त व इस्तलाह अहले हिन्द यक जा जमा शुदन व हर से रोदे मज़कूर रा तिरबेनी गोयन्द । —वही, पृ० २५८ मू० ।

३. ज्या नदियां मंजन करै धरै सदा हर ध्यांन ।
उर निरोध हर आसरै बिसरै नह ब्रहम ग्यान ।। —अ० मा०, छ० ११५।

४. हिमंचल—नामे देबतायेस्त ब शक्ले कोह— —तुह०, पृ० २८५ पी० ।

५. विपिन गहन कानन कछ वारिख, कांतार ऊख दुरग कहाई ।
आरण खंड ब्रंदावन अटवी, गोविन्द तेथ चराई गाई ।।—ह०ना०मा०,छ०५८ ।

६. वही, छ० ६१ ।

इन्हीं वृक्षों में आम्र, कदली, दूर्वादल, श्रीफल, वट, तथा कदंब को मंगल कार्यों में प्रमुख स्थान मिलने के कारण इनके पर्याय प्रायः प्रत्येक समानार्थी कोश में मिलते हैं। अश्वत्थ (पीपल) को गीता में भगवान् ने अपनी विभूति माना है। भगवान् बुद्ध को भी अश्वत्थ वृक्ष के नीचे ही बौद्धता प्राप्त हुई थी। इसीलिये इनके पर्याय स्थान-स्थान पर संकलित हैं।[1]

पुष्पों में कमल केवल ब्रह्मा से ही सम्बद्ध नहीं, वह अनभै-प्रबोध में आत्म कंवल का उपमान[2] बताया गया है। सभी कोशों में इसके पर्याय संकलित हैं। फलों में 'बिम्ब' भारतीय साहित्य में विशेष स्थान रखता है। तुहफ़त् में कहा गया है कि विंब का दूसरा नाम 'कंदूरी' भी है। हिन्दुस्तान के कविगण 'माशूक' के 'लबों' से इसकी (सुडौलता और लालिमा की) उपमा देते हैं।[3] लताओं में तुलसी सुगन्धित होने के साथ ही हिन्दुओं के लिये पूज्य भी है।[4]

पशु-पक्षी तथा अन्य जीवों को भारतवासियों ने कभी तुच्छ नहीं समझा है। वैदिक काल से ही अनेक पशु-पक्षियों में मानवोचित गुणों को आरोपित किया गया है। बाराह, मत्स्य और नरसिंह के रूप में विष्णु-अवतार का प्रसंग दिया जा चुका है। हंस या मराल, शिव, विष्णु, आत्मा, परमात्मा, लोभादिरहित नरेश और अश्वादि द्योतक[5] ही नहीं, सन्तों के लिये वह परम प्राण का सूचक[6] तथा कवि समय का आधार भी है। मिर्ज़ाख़ाँ कहते हैं कि इस पक्षिश्रेष्ठ की (भारतीय साहित्य में) अत्यधिक प्रशंसा की गई है। हिन्दुस्तान के कविगण इसकी मंथर गति की उपमा (नायिकाओं की) 'रफ़्तारे ख़ूबाँ' से देते हैं।[7] देवताओं की आराधना के साथ-साथ उनके वाहनो की भी आराधना होती आयी है। मृग,

---

१. वदि चल दल कुंजरभख अस्वथ।
श्रीव्रख बोधीव्रख सुव्रख ॥
प्रथी बिखै उत्तम फल-पीपल।
परमेश्वर उत्तम पुरखि ॥ —ह० ना० मा०, छन्द ७७।

२. अनभै प्रबोध, पृ० १२।

३. बिंब—समरे अस्त सह्राई सुर्ख़ रंग के दर मुतआ'रिफ कँदूरी गोयन्द कि शुआराये हिन्द लबे मा'शूक़ बदाँ तश्बीह कुनन्द।—तुह०, पृ० २०२ पी०।

४. तुलसी—नबातते ख़ुशबू कि हुनूद आँ रा बेपरस्तन्द।—वही, पृ० २२८ मू०।

५. हंस सूर्य विधु जीव नृप हंस तुरंग मराल।
हंस सुक्ल परमातमा, शिव तपस्वि नन्दलाल ॥ —अने० चन्दन, पृ० ५।

६. अनभै प्रबोध, पृ० १२।

७. मराल—नामे परिन्दः अस्त मौसूफ़ व मंसूब ब ख़ुश रफ़्तारी व ख़ुश ख़ेरामी कि शोआराये हिन्द रफ़्तारे ख़ूबाँ रा बदाँ तश्बीह कुनन्द।
—तुह०, पृ० २८० मू०।

सिंह, हय, मूषक, वृषभ, हाथी, सर्प आदि पशुओं के पर्याय प्रायः प्रत्येक समानार्थी कोश में दिये गये हैं। इनकी धार्मिक महत्ता प्रतिपादित करने के लिये सागर ने अपने 'अनेकारथी' में उनको विभिन्न देवताओं से भी सम्बद्ध कर दिया है। रामायण काल से ही 'वानरों' का महत्त्व हिन्दू संस्कृति में बढ़ गया था, क्योंकि इनकी ही सेना द्वारा रामचन्द्र ने लंका को विजित किया था।[१]

धार्मिक प्रथाओं का विवरण

धार्मिक प्रथाओं का प्रसंग तुहफ़त् तथा टेलर के द्विभाषीय कोश में बहुत आया है। मंदिर एवं देवालय जहाँ 'हरि मूरति' की प्रतिष्ठापना रहती है, कई कोशों में पर्याप रूप से संकलित हैं। ऐसे स्थानों पर यात्रायें होती हैं, पर्याप्त भीड़-भड़ाका रहता है।[२] ये 'तीरथ स्थान' हिन्दुओं के लिये परम पूजनीय हैं। किसी निश्चित दिन पर इन स्थलों पर जाकर हिन्दू लोग आश्रय लेते हैं और प्रार्थना, उपासना एवं यथोचित अन्य परम्परायें निभाते हैं।[३] यहाँ 'संख' ध्वनि होती है।[४] पूजा के अवसर पर अपनी भलाई एवं समृद्धि की कामना के लिये 'घंटा' बजाते हैं।[५] इन दिनों अधिकांश हिन्दू 'बरत' रखते हैं और 'फलाहार' मात्र पर निर्वाह करते हैं।[६]

---

१. ॥ बानर नाम ॥
मरकट गो लांगूल बलीमुख।
पलंवंग पलवंगम, पलवंग॥
कीस हरि वनओक बनर कपि।
साखाम्रग फलचर सारंग।
तास कटक मेले दसरथ तणा।
लोपि समंद लीयो गढ़ लंक।
मम करि ढील म धरि मन माया।
समरि समरि श्रीराम निकंक॥ —ह० ना० मा०, छ० ६६–६७।

२. तुह०, पृ० २३१ मू०।

३. तीरथ—मा'बदे हुनूद रा नामन्द क़ि दर रोज-हाये मुअय्यन दराँ जा रवन्द व रुसूमे इबादत बजा आवरन्द।
—वही, पृ० २२६ मू०।

४. संख—हुनूद आँ रा वक़्ते इबादते ख़ेश नवाजन्द।
—वही, पृ० २५५ मू०।

५. घंटा—जरस व दरा बाशद क़ि ब वक्ते इबा'दत ख़ेश व ख़ैरे ख़ुरदन्द नवाजन्द।
—वही, पृ० २७२ पी०।

६. फलाहार—मेवये क़ि हुनूद रोजे बरत या'नी सौमे ख़ुद ख़ुरन्द।
—वही, पृ० २२४ पी०।

धार्मिक स्थल

मिर्ज़ाख़ाँ ने अपने तुहफ़तुलहिन्द में हिन्दुओं के लिये पूज्य इन धार्मिक महत्ता से पूर्ण स्थानों का विस्तार से विवरण दिया है। इन पूज्य स्थलों में सर्वशीर्ष है बनारस। यह एक प्रसिद्ध स्थान है, जहाँ हिन्दुओं का महान् मंदिर; है इसी को 'कासी' भी कहते हैं।[१] 'ब्रिन्दाबन' उस प्रसिद्ध जंगल तथा भूखण्ड का नाम है जिसके मध्य में मथुरा स्थित है और जहाँ 'कान्ह' अपनी गायें चराया करते थे। सामान्य बोलचाल की भाषा में इस स्थल को 'बिन्द्राबन' के नाम से भी पुकारा जाता है।[२] गोकुल भी मथुरा के आसपास की उस प्रसिद्ध भूमि का नाम है जो 'कान्ह' की सैरगाहों में से एक स्थल था।[३] 'बिर्ज' मथुरा तथा 'चन्दावर' के समीपस्थ भूमि-स्थल को कहते हैं[४], 'मधुबन' भी मथुरा के आसपास की वनस्थली का नाम है[५], और 'मथुरा' है उस प्रसिद्ध 'मौज़े' का नाम जो 'कान्ह' का वास्तविक जन्मस्थान था। कान्ह परवर्ती देवताओं में सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं। मथुरा 'बिर्ज' के मध्यभाग में स्थित है। कुछ लोगों के कथनानुसार मथुरा के समीपवर्ती एक फ़र्सक (३$\frac{1}{2}$मील) और अन्यों के मतानुसार तीन फ़र्सक भूमि 'बिर्ज' कहलाती है।[६] 'द्वारका' कृष्ण के 'सैरगाहों' में से एक स्थान का नाम है।[७] पश्चिमी समुद्र के किनारे पर कच्छ की खाड़ी में बसा हुआ यह शहर हिन्दुओं के लिये परम पूज्य है।[८]

रामायणकालीन घटनास्थलों में रामेश्वरम् तथा लंका का भी विशिष्ट महत्त्व है। तुहफ़तुलहिन्द में दोनों स्थानों का विस्तार से वर्णन दिया गया है। 'रामेसुर'

---

१. बनारस—नामे मौज़े अस्त मश्हूर कि मुअज्जमः मा'बदे हुनूद अस्त व कासी हमाँ अस्त। —तुह०, पृ० २०७ मू०।

२. ब्रिन्दाबन—नाम सहराये व मौजये अस्त मश्हूर दर नवाही मथुरा कि कान्ह दराँ सह्रा गाव मी चेरायेद व आँ रा दर मुत'आरिफ़ बिन्द्राबन मी गोयन्द। —वही, पृ० २१० मू०।

३. गोकुल—नामे मौजये अस्त मश्हूर दर नवाही मथुरा के कान्ह सैरगाह बूदः। —वही, पृ० २७१ मू०।

४. बिर्ज—नामे सर ज़मीने अस्त व आँ मौज़ा मथुरा ऊ चन्दावर नवाही बूदः। —वही, पृ० २०४ मू०।

५. मधुबन—नामे मौजये व सह्रा दर नवाही मथुरा बूदः।—वही, पृ० २८० पी०।

६. मथुरा—मौजये अस्त मश्हूर कि मुस्केतर रास व मोलदे व मंशा कान्ह कि यके अज देवताहाय मुताख़रीन मश्हूर अस्त बूदः व आँ अस्ले ज़मीन बिर्ज अस्त कि आँ रा ब नवाही अतराफ़श यक फ़र्सख़ कि बकौले सेह फ़र्सख़ बिर्ज नामन्द। —वही, पृ० २७५ पी०।

७. द्वारका—नामे मौजये कि सैरगाह कान्ह बूदः।—वही, पृ० २४० पी०।

८. हिन्दु० II, पृ० ५०।

एक प्रसिद्ध (देव) स्थान का नाम है। यह समुद्र के किनारे बसा हुआ है। 'रावन' पर चढ़ाई करते समय 'रामचन्द' ने यहाँ पर समुद्र में पुल बाँधा था।[१] लंका समुद्र में स्थित टापू का नाम है। यहाँ सोना प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। किंवदन्ती है कि कि यहाँ 'रावन' नाम का 'राकस' राज्य किया करता था। वह रामचन्द की पत्नी सीता को भगाकर यहाँ ले आया था। रामचन्द वहाँ गये और उस (रावण) को मार-कर अपनी पत्नी (सीता) को वापस लाकर (अयोध्या) लौटे।[२] हिन्दुओं के पुण्य तीर्थों में 'पुष्कर' भी अति महत्त्वपूर्ण तथा प्रसिद्ध है। मिर्ज़ाख़ाँ कहते हैं कि 'पोखर' हज़रत अजमेर के पास ही एक प्रतिष्ठित स्थान है जहाँ हिन्दुओं का महान् मंदिर है।[३]

नैतिक एवं आध्यात्मिक तत्व

विवेच्य कोशों में आध्यात्मिक तत्वों की विवेचना दो प्रकार से हुई है, प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से। सुबोधचन्द्रिका, हमीरनाममाला और आतमबोधनाममाला में आध्यात्मिक सन्देश एवं उपदेश देने की यह प्रवृत्ति इतनी प्रचुर मात्रा में पाई जाती है कि कभी कभी यह आभास होने लगता है मानों कोशकार शब्दों के पर्याय-संकलन में उतना दत्तचित्त नहीं जितना आध्यात्मिक संदेश देने में। हमीरनाममाला से एक उदाहरण लीजिये :

॥ बाट नाम ॥

बाट वरतमा गैल वरत्री, पंथ निगम पदवी पधिति ।
अैन संचरण मारग अधवा, सरणी संचरण प्रवर सत ॥
उत्तम राह चालि ग्रह उत्तम, करग दांन पुनि ग्रहि सुकृति ।
भाखि सांच जग मांहि भलाई, चक्रभुज चरणै राखि वित ॥[४]

---

१. रामेसुर—नामे मौजये अस्त दर कनारः दर्याये सूर क़े रामचन्द्र दर जंगे रावन दर आँ जा बर रूये दर्या पुल बस्तः......। —तुह०, पृ० २४७ पी०।

२. लंका—नामे जज़ीर अस्त दर दर्याये सूर के हिसारश अज़ तिला अस्त व गोयन्द रावन राकस दर आँ जा सल्तनत मी कर्दः व सीता ज़ने रामचन्द रा बग़ारत बुर्दाः दर आँ जा निगाह दाश्त बूदः रामचन्द ब आँ जा रफ़्तः ऊ रा कुश्तः व सीता ज़नेखुद रा आबुर्द। —वही, पृ० २७३ पी०।

३. पोखर—वालाये अस्त दर नवाहिये हज़रत अजमेर क़ि मुअज्ज़म माबदे हुनूद अस्त। —वही, पृ० २२० मू०।

४. ह० ना० मा०, छन्द ५६-७५।

उक्त छन्द की प्रथम दो पंक्तियों में 'बाट' के पर्याय और अंतिम दो में हमीर-दान ने उत्तम राह पर चलने, दान-पुण्य एवं अन्य सुकृत्यों को करने, संसार में सत्य बोलने और चक्रभुज श्रीकृष्ण के चरणों में चित्त रखने की सलाह दी है। इसी प्रकार एक अन्य उदाहरण चेतनविजय विरचित 'आतमबोधनाममाला' से लीजिये :—

॥क्रोध के नाम ॥

क्रोध रोष आमर्ष रूट कामानल तम होय ।
कोह मन्यु तामस तजत छोभ कोप नहिं कोय ॥
गुसा न कीजै चेतनां, सबसौं कीजे हेत ।
तब पावे परमातमा, निज घट आया चेत ॥[1]

उपर्युक्त दोहों में से प्रथम में क्रोध के पर्याय और अंतिम में 'गुस्सा' न करने, सबसे प्रेमभाव बढ़ाने और इसके फलस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति और आत्म-ज्ञान की प्रतीति पर बल दिया गया है।

सुबोधचन्द्रिका नामक एकाक्षरी कोश में तो इन नैतिक वा आध्यात्मिक संदेशों का जमघट सा लगा दिया गया है। यथा :

॥अथ तै नाम ॥

तै केकी अरु दैन पुनि, मोह बहुरि धनवान ।
फिर कवि कहै कंदर्प कौ, और कांति मह जांनि ॥
परम कांति सब घटनि मैं, झलमल झलमल होत ।
रिदै नैन करि देखि सो जीव ब्रह्म सुख होत ॥[2]

इन दोहों में भी प्रथम में 'तै' अक्षर के भिन्न भिन्न अर्थ और द्वितीय में संत कवियों की सी आध्यात्मिक वाणियाँ छन्दों में बद्ध हैं।

इस नैतिक वा आध्यात्मिक चर्चा का प्रच्छन्न रूप नन्ददास के 'अनेकार्थ' तथा उदैराम विरचित 'अभिधानमाला' में भी मिलता है। परन्तु उनमें इस चर्चा का कोई सुदृढ़ या सुनिश्चित आधार नहीं है। छन्द-पूर्ति के आग्रहवश या शब्द-विशेष के प्रसंग को ध्यान में रखते हुये ही ये विवरण दिये गये हैं।

कुछ कोशों में अप्रत्यक्ष रूप से भी नैतिक आदर्श तथा ब्रह्म-जीव विषयक उल्लेख समाविष्ट हैं। सदाचार सम्बन्धी तथा नागरिक गुणों के पर्याय शब्द सभी समानार्थी

---

१. आ० बो०, छन्द ९० ।
२. सु० च०, छन्द ८९-९० ।

कोशों में संकलित हैं। वर्गात्मक कोशों के 'विशेष्यनिघ्न वर्ग' में प्रायः धर्म, धृति, क्षमा, सत्य, करुणा, दान, पुण्य, सन्तोष, तप, व्रत शब्दों के समानार्थी संकलित हैं। नागरिक गुणों में से विनय, हित, लज्जा, शील, सहाय, त्याग, न्याय, शरण, मेल, प्रेम, स्नेह आदि शब्द प्रचुर मात्रा में संकलित हैं।

अनभै-प्रबोध और नाममाला "ग" में यह आध्यात्मिक पक्ष एक दूसरे ही रूप में आया है। इन दोनों कोशों में केवल इस प्रकार की शब्दावली संकलित की गई है, जो सन्त-साहित्य में ही अधिकतर प्रयुक्त होती आयी है। सन्त-साहित्य अधिकांशतः आध्यात्म चर्चा से ही पूर्ण है अतएव एक वस्तु विशेष को इन सन्तों ने जिन अन्य वस्तुओं के माध्यम से देखा, जिन प्रतीकों या उपमानों से उपमित किया वे समस्त प्रतीक तथा उपमान उक्त दोनों कोशों में संकलित किये गये हैं। 'माया' के नाम अन्य कोशों की भांति श्रुतपूर्व या रूढ़ होकर भारतीय आध्यात्म के सम्प्रदाय विशेष में प्रचलित मात्र हैं:

।। माया के नाम ।।

माया मैंणी मोहनी मंजारी, मगहर मकड़ी मांस पसारी ।
सापणी पापणी कोढ़णी डंकणी, संषणी कामनी भामिनी गणिका ज्रषणी ।।[1]

इसी प्रकार नाममाला 'ग' से ज्ञान के नाम द्रष्टव्य हैं:

।। ग्यांन के नाम ।।

ग्यांन दीप पंगुल मतसार, गाउर गाइ गयंद विचार ।
सूरज चंद बौध प्रकाश, ग्यांन चाँदिणां तत्त उजास ।।[2]

इन दोनों कोशों के नाम-संकलन से ज्ञात होता है कि यह संसार एक भयावह भीषण बन और अथाह सागर है इसमें दुस्सह्य बाधायें और जंजाल हैं। यह मृग-मरीचिका की भाँति हमें व्यर्थ के प्रलोभन देता है।[3] घट में ही ब्रह्मा, इन्द्र और महेश हैं, घट में ही तैंतीस करोड़ देवता हैं।[4] उनकी सिद्धि हो सकती है—ज्ञान से,

१. अ० प्र० पृ० ८ ।
२. ना० मा० "ग", छ० १३ ।
३. ।। संसार के नाम ।।
संसार समुद्र भौ बन वारी, विश्व जगत दूतर भारी ।
दुसह असह मांड जंजाल, मृग जल चिलका कहिये काल ।।
—अ० प्र०, पृ० १७ ।
४. वही, पृ० १५ ।

को० सा० २२

गोष्ठि[१], सुरति[२], सुमिरण[३] एवं ध्यान[४] से और इन सबसे भी बढ़कर भक्ति बंदगी से :

।। भक्ति बंदगि के नाम ।।
पूजा अरचा सेवा बंदन, चांटी चाकरी और दासा तन ।
बंदति इबादति खिजमत कीजे, एते नांव भगति के लीजै ।।[५]

लोक-संस्कृति

केवल विविध घरेलू व्यापारों एवं संस्कारों से सम्बद्ध ही नहीं वरन् उन क्षेत्रों से सर्वथा असम्बद्ध साधारण स्थलों पर भी प्रतीक और उपमान आदि के रूप में लोक संस्कृति विषयक वस्तुओं, पदार्थों एवं व्यापारों से सम्बद्ध शब्दावली का संकलन एवं उन पर टिप्पणियाँ विवेच्य कोशों में दी गई हैं। इसी प्रकार मुहावरों एवं लोकोक्तियों के चयन में भी इस प्रवृत्ति के प्रति विशेष आग्रह मिलता है। लोक सांस्कृतिक संकेतों से सम्बद्ध समस्त शब्दावली को विश्लेषण की सुविधा के विचार से निम्न वर्गों में प्रस्तुत किया जा सकता है :

१. वर्ण-व्यवस्था से सम्बद्ध शब्दावली

हिन्दुओं की चार मुख्य जातियों—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र—के आधार पर, अमरकोश के अनुकरण पर निर्मित चारों वर्गात्मक कोशों में एक-एक वर्ग भी अभिहित किये गये हैं। ब्राह्मग या 'ब्रह्म वर्ग' में ब्राह्मणों से सम्बद्ध समस्त कार्य वा वस्तुओं के पर्याय समाविष्ट हैं। इसी के अन्तर्गत भारतीय दर्शनशास्त्र या कर्मकाण्ड तथा नीति एवं सदाचार से सम्बद्ध शब्दावली भी आ गई है। 'क्षत्रिय' वर्ग के अन्तर्गत समस्त प्राचीन शासकीय-शब्द तथा उनके पर्याय तो संकलित हैं ही, प्रकाशनाममाला में रामायण तथा महाभारत-कालीन नायक-नायिकाओं के भी पर्याय दिये गये हैं। प्राचीन भारतीय युद्ध, सन्धि तथा विग्रह विषयक समस्त शब्द भी इसी वर्ग के अन्तर्गत मिलते हैं। वैश्य वर्ग में कृषि, उसके उपकरण, अन्न, भोज्य सामग्री, पालतू पशु, क्रय-विक्रय, धातु,

---

१. ।। गोष्ठि के नाम ।।
   कथा उचार चाचरी चरचा, निज गोष्ठि सूं कीजै परचा ।
   गुरबलि नांउ पारसी पाई, शब्द मांहि सतगुरु समझाई ।। —अ०प्र०,पृ०१३ ।
२. ।। सुरति के नाम ।।
   सुरसती, सुषमना, सुन्दरी सुरति, सींगी सुर्य सषी समझमति ।
   सासू सीय सूरति जड़ कहिये, कुदाली, सुरक चेतना लहिये ।। —वही, पृ० १३ ।
३. वही, पृ० १४ ।
४. वही, पृ० १५ ।
५. वही, पृ० १४ ।

रत्न और मणि आदि विषयों से सम्बद्ध शब्दावली संकलित की गई है। शूद्र वर्ग में प्रायः सभी भारतीय निम्न जातियों के अतिरिक्त वर्णसंकर, छोटे-मोटे उद्योग तथा कारीगर, सेवक एवं परिचारक, यहाँ तक कि निम्न जातियों से सम्बद्ध पशु-पक्षी एवं अस्त्र-शस्त्र तथा धातुओं के पर्याय भी संकलित हैं।

अन्य समानार्थी कोशों में भी वर्ण-व्यवस्था विषयक शब्दावली के पर्याय संगृहीत किये गये हैं। द्विभाषीय कोश 'तुहफ़तुलहिन्द' में बताया गया है कि 'बरहमना' (ब्राह्मण) ब्रह्मा की संतान माने जाते हैं, क्योंकि उनका जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ था।[१] इनको 'दुज' (द्विज) भी कहते हैं। नन्ददास अपने 'अनेकार्थ' में लिखते हैं कि द्विज अन्य तीन वर्ण—क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र से 'भले' होते हैं।[२]

वर्ण-व्यवस्था से ही मिलती-जुलती जाति-व्यवस्था है। टेलर के मतानुसार 'जोगी' हिन्दू फ़कीरों की एक जाति है, जिसमें अधिकांशतः जुलाहे होते हैं। ये लोग शवों को जलाते नहीं है, केवल सिर को गाड़ देते हैं। स्त्रियों को कभी-कभी मृत पतियों के शव के साथ जीवित ही गाड़ दिया जाता है।[३] मिर्ज़ाख़ाँ लिखते हैं कि 'गोप' एक 'क़ौम' का नाम है जिनको 'ग्वाल' या 'गोर्जर' भी कहते हैं। इन लोगों का व्यवसाय पशुपालन है।[४] 'ग्वाल' भी एक (भारतीय) धनी जाति का नाम है जो पशुपालन कर दूध-दही का व्यापार करते हैं।[५] 'गन्ध्रप' (गंधर्व) गायकों की एक जाति का नाम है जो संगीत कला में पटु होते हैं।[६]

२. आश्रमों का संकेत

चारों वर्गात्मक कोशों में चारों आश्रमों को गिनाया गया है।[७] टेलर ने भी अपने कोश में प्रत्येक आश्रम पर टिप्पणी भी प्रस्तुत की है। ब्रह्मचारी अपना

---

१. "...व बरह्मना औलादे ऊयन्द व अज़ दहाने ऊ बहम् रशीद :"। —तुह०, पृ० २०३ मू०।

२. 'तीन बरन ते द्विज भले...।' —अने० नन्द०, पं० १६३।

३. हिन्दु० I, पृ० ५७५।

४. गोप—क़ौम बुवद क़े गुवाल व गोरजर कि नाले मवाशी दारन्द। —तुह०, पृ० २७० मू०।

५. ग्वाल—नामे क़ौमे अस्त मालदार कि मवाशी दारन्द व शीर जुग्रात फ़रोशन्द। —वही, पृ० २७१ मू०।

६. गन्ध्रप—बमा'ना मुत्रिबे रा गोयन्द कि दर फ़ने मूसीक़ी अज़ कामिलो उस्ताद बाशद। —वही, पृ० २७० मू०।

७. गृही ब्रह्मचारी बहुरि वानप्रस्थ सिहारि।
कहे सहित सन्यास ए आश्रम चारि विचारि॥ —उ० को०, २।७।६।

जीवन धार्मिक कृत्यों, योगाभ्यास एवं ब्रह्मचर्य में व्यतीत करता है। गृही संसार में रह कर परिवार का पोषण करता है, वानप्रस्थ संसार एवं परिवार से विरक्त होकर प्रार्थना में अपना जीवन व्यतीत करता है और भिक्षु भिक्षा पर निर्वाह करता है।[१]

३. उत्सव और त्यौहारों का विवरण

टेलर कहते हैं कि त्यौहार से एक पवित्र दिन या पर्व का तात्पर्य है।[२] त्यौहार-प्रियता भारतीयों के प्रकृति-प्रेम एवं धार्मिकता का प्रतिफल है। जितने उत्सव, पर्व और त्यौहार भारतीय संस्कृति में मिलते हैं, उतने अन्यत्र कहीं नहीं। सभी त्यौहार भारतीय जीवन में सामाजिकता की वृद्धि करते हैं। उनकी इस महत्ता को देखते हुये ही मिर्ज़ाखाँ और टेलर ने अपने द्विभाषीय कोशों में इनका विस्तार से वर्णन किया है।

हिन्दुओं का सबसे अधिक रंगीन त्यौहार है होली। मिर्ज़ाखाँ कहते हैं--यह हिन्दुओं के एक प्रसिद्ध 'ईद' (त्यौहार) का नाम है। इसमें कुछ दिनों तक अत्यधिक 'जश्न' मनाया जाता है। यह फागुन महीने के अन्तिम दिन और चैत की पहली रात्रि को अर्थात् शिशिर ऋतु के समाप्त होने पर एवं बसन्त के प्रारम्भिक दिनों में मनाया जाता है। इस पर्व में रात को आग जलाई जाती है और अन्य कई धार्मिक परम्परायें भी निभाई जाती हैं। मौज में आकर लोग 'ल' के स्थान पर 'र' का भी प्रयोग करते हैं और 'होरी' (है!) 'होरी' (है!) चिल्लाते हैं।[३] इस पर्व के अवसर पर सर्वत्र आनन्द की लहर उमड़ आती है। लड़कों को स्त्री की वेशभूषा पहना कर खूब जी भर कर नचाया जाता है।[४] 'धमार' नामक एक विशेष नृत्य इसी अवसर पर होता है।[५] 'गुलाल'

---

१. हिन्दु० I, पृ० ८०।
२. वही I, पृ० ५१०।
३. होली---नामे ईदे हुनूद अस्त के दर आँ ईदे ता चन्द रोज जश्ने अज़ीम कुनन्द व आँ दर रोज़े आख़िर माहे फागुन अस्त शबे अव्वली माहे चैत कुनन्द इन्तहाये शिशरित व इब्तदाये बसन्त रित अस्त तमान बुवद दराँ शब आतश अफ़्रोज़न्द व रूसूमे खुद बजा आरन्द व बजाये लाम रा इस्ते'माल कुनन्द व होरी गुफ़तन्द...। ---तुह०, पृ० २८६ मू०-२८६ पी०।
४. हिन्दु० II, पृ० ३८३।
५. धमार---बाजी अस्त नौए रक़्सबाजी कि दर मौसमे होली रक़्सन्द व बाजी कुनन्द।
---तुह०, पृ० २४४ मू०।

नामक रंग के पुष्परेणू (पाउडर) को हिन्दू लोग होली खेलते समय एक दूसरे पर फेंकते हैं।[1] और जी भर कर 'फाग' खेला जाता है।[2]

टेलर अपनी डिक्शनरी में बताते हैं कि दिवाली हिन्दुओं का एक त्यौहार है जो कार्तिक की परिवा को मनाया जाता है। इस दिन हिन्दू गंगा या किसी अन्य पवित्र नदी में स्नान करने के उपरान्त सुन्दरतम वस्त्र धारण कर श्राद्ध देते हैं (?) और रात्रि को देवी लक्ष्मी को पूजते हैं। समस्त घर-द्वार प्रकाश से जगमगा जाते हैं और हिन्दुस्तान में दिवाली की यह रात प्रायः 'जुआ' खेलने में बिताई जाती है।[3]

दशहरा दो बार मनाया जाता है। पहले जेठ शुक्ल पक्ष की दसवीं को—यह गंगा का जन्म-दिन है अतएव जो भी व्यक्ति उस दिन गंगा में स्नान कर ले उसके समस्त पाप धुल जाते हैं। दूसरी बार यह आश्विन शुक्ल पक्ष की दसवीं को मनाया जाता है। इस अवसर पर नवरात्र तक पूजा एवं धार्मिक कृत्यों को करने के अनन्तर वे (हिन्दू) देवी की मूर्ति को नदी में विसर्जित कर देते हैं। इस दिन रामचन्द्र ने रावण पर आक्रमण (?) किया था इसीलिये इसे विजय-दशमी भी कहते हैं। हिन्दू राजकुमारों में यह दिन बड़ी शान से मनाया जाता है। युद्ध के समस्त उपकरणों की पूजा होती है और यदि युद्ध प्रत्याशित हो तो इसी दिन अभियान प्रारम्भ किया जाता है।[4]

रक्षाबन्धन श्रावणी के पूर्णमासी के दिन आता है जिसमें राखी नामक आभूषण (?) कलाई पर बाँधा जाता है।[5] नागपंचमी हिन्दुओं के लिये बड़ा पवित्र दिन है। यह श्रावण शुक्ल पक्ष की पंचमी को आता है, इस दिन वे (हिन्दू) अपने बच्चों की यशःकामना के लिये सर्प की पूजा करते हैं।[6] बसन्त पंचमी के दिन गायक तथा नर्तकियाँ सम्मानित व्यक्तियों को भेंट के लिये 'गड़वा' ले जाती हैं जिसके बदले में उनको पुरस्कार मिलता है।[7] शंकट चतुर्थी भी हिन्दुओं का प्रसिद्ध पर्व है। माघ के महीने में गणेश की आराधना के लिये यह मनाया जाता है।

---

१. हिन्दु० II, पृ० ५०८।
२. फाग—मौसमे बसन्त व अबीर बाजी कर्दन बुवद दर आँ मौसम।
—तुह०, पृ० २४४ मू०।
३. हिन्दु० II, पृ० ८२।
४. हिन्दु० II, पृ० २९।
५. हिदु० II, पृ० २२१।
६. वही II, पृ० ७३२।
७. वही II, पृ० ५०१।

उपर्युक्त प्रसिद्ध त्यौहारों के अतिरिक्त कुछ छोटे-मोटे पर्वों का वर्णन भी टेलर ने अपने कोश में दिया है। बंगाल के निम्न हिन्दुओं द्वारा अपने पाप धोने के लिये 'चर्ख-पूजा' नामक एक विशेष त्यौहार मनाया जाता है।[१] 'चुरौटी' नामक एक प्रथा पहले बनारस में प्रचलित थी। जेठ शुक्ल पक्ष के दिन यहाँ के निवासी नदी (गंगा ?) को पार कर अपने को दो दलों में बाँटकर तलवार या गदाओं से लड़ते हैं।[२] इन छोटे-मोटे पर्वों को 'कौतुक' भी कहा जाता है, जिसको फ़ारसी में 'तफ़री' या 'तमाशा' कहते हैं।[३]

४. मनोविनोद सम्बन्धी शब्दावली

कोशों में भारतीय मनोविनोद के उपकरणों से सम्बद्ध शब्दावली का भी पर्याप्त मात्रा में संकलन किया गया है। चारों वर्गात्मक कोशों में अमरकोश के अनुकरण पर एक 'नाट्य वर्ग' है, जिसमें प्रायः इसी क्षेत्र विषयक शब्दों के पर्याय समाहृत किये गये हैं।

टेलर ने अपनी डिक्शनरी में स्थान-स्थान पर भारत में खेले जाने वाले खेलों का सविस्तार वर्णन किया है। ऐसे वर्णनों में अत्यन्त लोकप्रिय 'कबड्डी' का विवरण द्रष्टव्य है।[४] होली के अवसर पर किये गये मनोविनोद का वर्णन दिया ही जा चुका है। भारत की ग्रामीण जनता के मनोविनोदार्थ 'सांग' बहुत ही लोकप्रिय रहे हैं जिनका प्रचलन आज भी है। मिर्ज़ाखाँ अपने 'लुग़त' में लिखते हैं कि सांगों में कुछ अनुकरणकर्ता अपने आप को किसी दूसरे (पौराणिकपात्र) के रूप में मानकर तथा उसी की सी वेशभूषा पहनकर आंगिक अभिनय करते हैं। इस अर्थ में इस

---

१. हिन्दु० I, पृ० ६२३। २. वही I, पृ० ६४९।

३. तुह०, पृ० २६४ मू०।

४. *Kubuddee*— A game among (Hindu) boys, who divide themselves into two parties, one of which takes its station on one side of a line or ridge called *Pala* (पाला), made on the ground, and the other (party) on the other. One boy shouting Kubuddee Kubuddee, passes this line and endeavours to touch one of those on the opposite side. If he is able to do this, and to return to his own party, the boy that was so touched is supposed to be slain, that is, he retires from the game. But if the boy who made the assault be seized and unable to return, he dies, or retires in the same manner. The assault is thus made from the two sides alternatively and that party is victorious of which some remain after all their opponents are slain.

—हिन्दु० II, पृ० ४०१।

अभिनय को 'स्वांग' भी कहा जाता है।[1] मनोविनोद के अन्य साधन 'खिलाड़ियों' के करतब आदि भी हैं।[2]

भारत में स्त्रियों के लिये भी मनोरंजन की भिन्न-भिन्न पद्धतियाँ हैं। जनसमुदाय की प्रसन्नता में वे भी प्रमुख हाथ बटाती हैं। वे स्वयं स्थान एवं अवसर विशेष पर सक्रिय भाग लेती हैं। स्त्रियों द्वारा एक नृत्य-गीत 'झूमर' का विवरण मिर्ज़ाखाँ ने अपने 'लुग़त' में दिया है। वे लिखते हैं कि इसमें महिलायें थोड़ी थोड़ी दूर पर खड़ी होकर धीमे स्वर से मधुर गीत गाती हैं। प्रसन्नता की लहर में वे उन्मत्त होकर तालियाँ बजाती हैं और पदों को मिलाकर नाचती हुई खिलखिलाकर हँसती हैं।[3]

५. संगीत

मनोविनोद के सुसंस्कृत साधनों में भारतीय संगीत भी है, अमरकोश के अनुकरण पर निर्मित चारों वर्गात्मक कोशों में विभिन्न भारतीय वाद्यों यथा—वीणा, मृदंग, भेरी, डमरू इत्यादि—संगीत उपकरणों के पर्यायों के अतिरिक्त भिन्न-भिन्न नृत्य तथा हाव-भावों के भी आंशिक विवरण दिये गये हैं। कर्णाभरण कोश की हस्तलिखित प्रति पत्र ५१—५४ पर विभिन्न रागरागनियों का उल्लेख किया गया है।

भारतीय संगीत के लिये मिर्ज़ाखाँ का 'तुहफ़तुलहिन्द' एक महत्त्वपूर्ण ग्रंथ है। जैसे पहले बताया गया है कि इस महान् ग्रन्थ में 'लुग़त' के अतिरिक्त कई अन्य विषयों पर भी विस्तृत विवेचना की गई है, जिनमें पाँचवें 'बाब' के अन्तर्गत 'दर इल्मे संगीत' वर्णित है। कोश अंश में भी मिर्ज़ा ने संगीत विषयक अत्यधिक शब्द तो संगृहीत किये ही हैं, उन पर दो गई लम्बी टिप्पणियाँ और व्याख्यायें भी द्रष्टव्य हैं। स्थान स्थान पर राग, उनके पुत्र तथा पत्नियों का उल्लेख 'हनुमान' 'कल्लिनाथ', 'सोमेश्वर' और 'भरत' आदि संगीत संप्रदायों के 'मत' के आधार पर किया गया है।

'संगीत' को मिर्ज़ा ने अति विस्तृत अर्थ में लिया। यह ज्ञान का वह शास्त्र विशेष है जिसमें राग, ताल और 'निर्त' अर्थात् गायन एवं नृत्य के सिद्धान्तों का प्रतिपादन तथा सम्पूर्ण रूप से समाहार रहता है।[4] इस व्यापक दृष्टिकोण के फल-

---

१. सांग—आँ बाशद कि मुकल्लियाने खुद रा मुसाबेः ब कसे कुनन्द व लिबासे ऊ पोशीदा व वजये ऊ गोरन्द.....व ई मा'ना आँ रा.....स्वांग गोयन्द। —तुह०, पृ० २५५ मू०।

२. खिलारी—बाजीगर व बाजी कुनन्दा बाशद। —वही, पृ० २६९ मू०।

३. झूमर—ब जना बहाले आँ बुवद के चन्द कस बाहम् दूर इस्तादः शबन्द ब खोज़े ख्वानन्द व इंबिसात दस्त ज़नन्द व पाये कोयन्द व बिदर्श कुनन्द। —तुह०, पृ० २३४ पी०।

४. संगीत—इल्मे मूसीक़ी रा नामन्द व आँ मुश्तमिल अस्त बर राग व ताल व निर्त या'नी नग़्म व उसूले रक़्स। —तुह०, पृ० २५१ पी०।

स्वरूप मिर्ज़ा ने अपने कोश में भारतीय जीवन में संगीत की अतिव्यापकता देखते हुये, इस विषय की पूर्ण जानकारी देने का प्रयास किया। विभिन्न राग-रागनियों के अतिरिक्त प्रसिद्ध गायक, वादक तथा नर्तकों के उल्लेख तो इस लुग़त में मिलते ही हैं, संगीत के विभिन्न देवी-देवता, नृत्य-गान सम्बन्धी अनेकानेक भेदोपभेद हाव-भाव तथा वस्त्राभूषण का भी यथास्थान विवरण दिया गया है। वाद्यों में केवल शास्त्रीय गान विषयक वाद्य ही नहीं, जनसमुदाय में प्रचलित अति सामान्य वाद्यों का भी वर्णन है। उदाहरण के लिये 'झाँज', जिसको मिर्ज़ाखाँ के ही अनुसार 'झाँझ' भी कहते हैं, के लिये कोशकार लिखते हैं कि यह एक प्रकार का वाद्य है (जो काँसे के दो तश्तरी जैसे टुकड़ों से बना मंजीरे जैसा बाजा है और) जिससे (आपस में मिलाने के फल-स्वरूप) शब्द निकलता है। (इन तश्तरियों में से) दोनों को एक एक हाथ से पकड़कर एक हाथ वाली को दूसरे हाथ वाली पर मिलाकर बजाते हैं। (इन तश्तरियों को) किनारे से भी बजाते हैं—।[1] 'मिरदंग' की भी इसी प्रकार विस्तृत विवेचना की गई है।[2]

६. संस्कार विषयक शब्दावली

चारों वर्गात्मक कोशों के, ब्रह्मवर्ग या 'धीवर्ग' के अन्तर्गत भारतीय संस्कार विषयक शब्दावली संकलित की गई है। 'लुग़तये-हिन्दी' तथा टेलर की डिक्शनरी में भी स्थान-स्थान पर ऐसे शब्द संकलित कर उनके विषय में टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गई हैं। पर विशेष प्रचलित और व्यापक संस्कारों का ही वर्णन इन कोशों में उपलब्ध होता है। उदाहरण के लिये विवाह संस्कार से संबद्ध कई लोकाचार दोनों कोशकारों ने दिये हैं। विवाह से पूर्व 'मंगनी' होती है जिसमें लड़की या लड़के को माँगा जाता है।[3] 'वियाह' होता है[4] जिसको गठबन्धन भी कहा जाता है, क्योंकि इसमें वर-वधू के वस्त्रों को आपस में बाँध कर एक जुलूस सहित किसी नदी या पानी के तट पर (?) ले जाया जाता है।[5] वर-वधू विवाह के अवसर पर 'सिहरा' पहनते हैं जो एक प्रकार की फूलों की माला है।[6] वर द्वारा बधू को इस अवसर पर एक 'सोहाग पिटारा'

---

१. झाँज......आँ साजे अस्त कि आवाज़े साजन्द व दर हमीं हक़ीक़ताँ व आँ हरदो रा दर हर दो दस्त गीरन्द व हर दस्ते यके वा वाहम् जनन्द व नबाजन्द व आँ रा बर कनारद फ़हा नीज़ साबा कुनन्द व जोशे इश्तेहा व शौक हर चीज रा नीज़ गोयन्द व दर आख़िराँ बजाय जीमेताज़ीये-ख़फ़ीफ़ा जीमे-सक़ीला इस्ते'माल कुनन्द व झाँझ गोयन्द। —तुह०, पृ० २३४ मू०।

२. वही, पृ० २७९ पी०।

३. हिन्दु० II, पृ० ६८४।

४. तुह०, पृ० २११ मू०।

५. हिन्दु० II, पृ० ४९१।

६. वही II, पृ० २५१।

भेंट किया जाता है जिसमें रत्न आदि होते हैं।[१] विवाह के अवसर पर एक बड़ी सी 'बारात' बधू के घर ले जायी जाती है।[२] विवाह सम्पन्न हो जाने के पश्चात् लोग वर-बधू को बधाई देते हैं।[३]

७. वस्त्र

देश विशेष के वस्त्रों से भी वहाँ की संस्कृति आँकी जाती है। भारतीय वेषभूषा का भी यहाँ के 'सादा जीवन उच्च विचार' को परिपक्व बनाने में प्रबल प्रभाव रहा है। समानार्थी तथा अनेकार्थी कोशों में तो नहीं, परन्तु कुछ द्विभाषीय कोशों में अवश्य कुछ वस्त्रों का उल्लेख मिलता है। द्विभाषीय कोशों में से भी ख़ालिक़-बारी अल्लाख़ुदाई तथा पारसीपारसातनाममाला और गिलक्राइस्ट की वाकेबुलेरी में भारतीय वस्त्रों के लिये क्षेत्र न था क्योंकि इनमें केवल तदर्थी विदेशी शब्द मात्र दिये गये हैं और भारतीय वस्त्रों को एक विदेशी तदर्थी शब्द से समझाना कठिन था। मिर्ज़ाख़ाँ एवं टेलर ने यथास्थान भारतीय वस्त्रों का भी विवरण दिया है। अधिक सुविधा के लिये इनको दो भागों में विभक्त किया गया है। स्त्रियों के वस्त्र और पुरुषों के वस्त्र।

(क) स्त्रियों के वस्त्र—'ज़नाने हुनूद' (भारतीय महिलाओं) के वस्त्रों का विवरण देने में मिर्ज़ाख़ाँ ने विशेष रुचि और तत्परता दिखाई है। उदाहरण के लिये 'सारी' (साड़ी) के सम्बन्ध में वे लिखते हैं कि इसको हिन्दू महिलायें पहनती हैं। यह एक "बारीक' चादर की तरह का वस्त्र है जिसका आधा भाग शरीर के नीचे अंश में लंहगे के समान दिखाई देता है और इस आधे भाग को कमर पर 'लूँगी' की तरह बाँधते हैं। इस वस्त्र के शेष आधे भाग से मेजर (?) की भाँति सिर को ढका जाता है।[४] 'लहंगा' भी भारतीय स्त्रियों के पहनने का वस्त्र है[५]। 'चीर' भी हिन्दू नारियों के वस्त्रों को कहा जाता है[६]। चोली बिना अंचल का वस्त्र है जो भारतीय ललनाओं के अर्द्धांग को

---

१. हिन्दु० II, पृ० २५२।
२. जानो जान्या जानियाँ बले बराती बाण।
ज्यूं ही जनेती जाण ज्यों जान बरात सुजाण॥ —डिंगलकोश, छन्द ३०२।
३. बधाई......जिद (?) कि दर सादीहा ब मर्दुम देहन्द......।"
—तुह०, पृ० २११ पी०।
४. सारी—ज़ने हुनूद पोशन्द व आँ चादरे बुवद बारीक़ कि ब नफ़ीसे रा ब्रालाय लहँगा कि ब मंजिले लुगेस्त कि ब कमर पेचन्द व निस्फ-हायरा ब तरीके मेजर बर सर अन्दाजन्द। —वही, पृ० २५८ मू०।
५. लहँगा—तहबन्दे जनान बाशद। —वही, पृ० २७३ पी०।
६. चीर—लिबासे बुवद कि जनाने हुनूद पोशन्द। —वही, पृ० २३६ पी०।

ढके रहता है[१]। इसके ऊपर 'चूनरी' रहती है। यह महीन बहुरंगी वस्त्र है जिसके ऊपर बेलबूटे काढ़े रहते हैं।[२] 'अंगी' भी अचल रहित आधे बाँह का वस्त्र होता है।[३] इसके ऊपर 'उढणी' (ओढ़नी) पहनी जाती है।[४] 'चोला' नामक वस्त्र दुलहिन द्वारा विवाह के सुअवसर पर पहना जाता है।[५] 'छीमर' भी एक प्रकार का महीन और बिना सिला हुआ कपड़ा है जिसको 'झींट' भी कहते हैं।[६]

(ख) पुरुषों के वस्त्र—पुरुष कभी-कभी सिर पर बड़ी टोपी लगाते हैं जिसे 'टोपा' कहा जाता है।[७] शरीर के ऊपरी भाग के लिये 'कुरता'[८] तथा 'तनी'[९] अधिक प्रयोग में आते हैं। अधोभाग में 'काछ' पहना जाता है जो बिना सिया हुआ कपड़ा है जिसको कमर के निचले अंश पर चारों ओर लपेट कर दोनों जांघों के बीच से निकालते हुये पीछे टांग देते हैं।[१०] 'कछना' भी एक प्रकार का पायजामा सा है जो जंघाओं का बहुत कम अंश ढक पाता है।[११] 'कछौटी' पुरुषों के गुप्तांगों को ढकने के लिये एक वस्त्र विशेष है।[१२] 'पछौरी' एक प्रकार की 'चादर' है जिसको पुरुष कंधों पर डालते हैं।[१३] 'पवड़ी' सिर पर बाँधी जाती है।[१४] 'झूरी' को मिर्जा खाँ कमर पर बाँधने का वस्त्र बताते हैं।[१५]

८. प्रसाधन एवं अलंकरण

भारतीय स्त्री-पुरुषों में प्रसाधन एवं अलंकरण प्रियता को दृष्टि में रखते हुये ही कुछ द्विभाषीय कोषों—विशेषतया 'तुहफ़तुलहिन्द'—में इस विषय सम्बन्धी अनेक

---

१. चोली—निस्फ़ जामा बुवद गैर दामन कि दरबर बाशद।—तुह०, पृ० २३९ मु०।
२. चूनरी—लिबासे बुवद कि बराँ रंग बिरंग नक्शबन्दी कुनन्द व आँ रा दर मुता'रिफ बाँधनू गोयन्द......। —वही, पृ० २३६ पी०।
३. अंगी—पैराहन बुवद मिस्ले नीमा आस्तीन बेदामन कि जनाने हुनूद पोशन्द। —वही, पृ० २०० मू०।
४. पा० पा०, छ० १०३।
५. हिन्दु० I, पृ० ६५९।
६. छीमर—क़िमाशे बुवद व आँ रा झींट गोयन्द। —तुह०, पृ० २४० मू०।
७. टोपा—ब मा'ना कोलाहे कलाँ नीज आमद:। —तुह०, पृ० २२९ मू०।
८. पारसीपारसातनाममाला, छन्द १०३।
९. तनी—बन्दजामा ब अस्साले आँ बुवद। —तुह०, पृ० २२८ मू०।
१०. हिन्दु० II, पृ० ३८६। ११. वही, II, पृ० ४१५।
१२. वही II, पृ० ४१५।
१३. पछौरी—चादरे बुवद कि मर्दा बरदोश अन्दाजन्द......। —तुह०, पृ० २२३ पी०।
१४. पा० पा०, छ० १०५।
१५. झूरी—आँ बुवद कि हर दो तर्फ दामन रा अज पेश व क़मर बदन्द व दराँ चीजे अन्दाजन्द......। —तुह०, पृ० २३५ पी०।

शब्द तथा व्याख्यायें प्रस्तुत की गई हैं। अश्नान (स्नान) अर्थात् 'गुस्ल'[१] करने के उपरान्त माथे पर 'टीका' लगाया जाता है।[२] 'तिलक' भी माथे पर ही लगाया जाता है।[३] आँखों में 'अंजन' अर्थात् सुर्मः[४] डालना सभी भारतीय स्त्री-पुरुषों को प्रिय है। 'आरसी' देखकर ही समस्त प्रसाधन किये जाते हैं। अतएव उसका महत्त्व भी अत्यधिक है।[५] स्त्रियों में प्रचलित कुछ प्रसाधन पद्धतियाँ भी मिर्ज़ाखाँ द्वारा वर्णित हैं। 'पाटी' करने के लिये केशों को कंघी द्वारा दो बराबर भागों में बाँट दिया जाता है।[६] 'सीमंत' में भी माथे से ऊपर तथा सिर के मध्य भाग तक के केशों को दो बराबर भागों में बाँटा जाता है।[७] 'माँग' भी लगभग इसी प्रकार निकाली जाती है।[८] अपनी माँग में हिन्दू स्त्रियाँ 'रोचन' या सिन्दूर भरती हैं।[९] केशों को 'चोटला' से नीचे की ओर बाँधती हैं।[१०] माथे पर भारतीय महिलायें 'रोरी' का टीका लगाती हैं जो कई रंगों के मिश्रण से निर्मित होता है।[११] पैरों तथा हाथों पर 'महावर' लगाया जाता है।[१२] 'जावक' भी महावर ही है। लाल रंग के इस प्रसाधन का प्रयोग बच्चे एवं स्त्रियाँ हाथों तथा पाँवों को रंगने के लिये करती हैं।[१३]

९. आभूषण

'आभूखन'[१४] 'आभरन'[१५] या 'भूखन'[१६] का प्रयोग भारत में वैदिक काल से ही स्त्री-पुरुषों द्वारा समान रूप से किया जाता था। भारतीय जन-जीवन में इनकी

---

१. तुह०, पृ० १९९ मू०। २. वही, पृ० २२९ मू०।

३. तिलक—क़श्क़ः रा गोयन्द कि दर पेशानी कसन्द......।—वही, पृ० २२७ मू०।

४. वही, पृ० १९९ पी०। ५. वही, पृ० २०० मू०।

६. पाटी—मुये पेश सरे ज़नाने हुनूद हर दो तर्फ़ फ़र्क़े सर शाना कुनन्द......। —वही, पृ० २२२ मू०।

७. सीमंत—फ़र्क़े सर या'नी फ़ासिलः कि ज़ना रा दर अज़ हदे पेशानी ता निस्फ़ दर वस्त बाशद व आँ रा दर मुता'रिफ माँग गोयन्द....।—वही, पृ० २५१ पी०।

८. माँग—फ़र्क़े सर रा नामन्द व आँ ख़ते बुवद क़े दर सर क़े ज़नाने हुनूद वक़्ते शाना कर्दन सर दर वस्ते आ गुज़ारन्द......। —वही, पृ० २७९ मू०।

९. रोचन—ब मा'ना सिंदूर क़ि ज़नाने हुनूद अज़ आँ दरमियाने क़श्क़ः क़सन्द... —वही, पृ० २४९ मू०।

१०. हिन्दु० I, पृ० ६५१।

११. रोटी—सुफ़ूफ़े बुवद रंगीन ब चन्द रंग क़ि ज़नाने हुनूद दर पेशानी बदाँ कश्क़ः कुनन्द। —तुह०, पृ० २४९ पी०।

१२. वही, पृ० २७८ पी०।

१३. जावक—ब मा'ना महावर बाशद व आँ रंगे अस्त सुर्ख़ क़ि लक्कारा जोशायन्दा गीरन्द व दस्त व पाव वग़ैरः बदाँ रंग कुनन्द। —वही, पृ० २३२ पी०।

१४. वही, पृ० १९८ मूल। १५. वही, पृ० १९८ मूल।

१६. वही, पृ० २१५ पीठ।

प्रचुर महत्ता को देखते हुये अधिकांश कोशकारों ने इनका संकलन अपने कोशों में किया है।

आभूषणों का विवरण विवेच्य कोशों में दो प्रकार से आया है। चारों वर्गात्मक कोशों के द्वितीय काण्ड में 'मनुष्य वर्ग' के अन्तर्गत विभिन्न अंगों में प्रयुक्त होने वाले आभूषणों के पर्याय दिये गये हैं। यथा—नाम प्रकाश में 'तरकी और कुंडल के नाम'[1] या उमरावकोश में 'कर्धनी नाम'।[2] इनका प्रयोग शरीर के किस अंग में होता है इसका उल्लेख वहाँ नहीं किया गया है। कर्णाभरण कोश में अवश्य कुछ स्थलों पर सम्बद्ध अंगों का भी निर्देश कर दिया गया है यथा 'सीमंत पर सोना की (या) रूपा की पट्टी रहे'[3] आदि। अवधानमाला नामक डिंगलकोश में 'आभूखण नाम' एक छंद में दिये गये हैं, जिसके प्रथम अंश में 'आभूषण' शब्द के पर्याय और अन्तिम अंश में भारत में प्रचलित विभिन्न आभूषणों के नाम समाविष्ट हैं जिनमें से कुछ के सम्बन्ध में प्रयोग किये जाने वाले अंगों का भी उल्लेख है।[4]

अल्लाखुदाई में तो नहीं, पर ख़ालिक़बारी और पारसीपारसातनाममाला में कुछ ऐसे भारतीय आभूषणों का उल्लेख किया गया है जिनके फ़ारसी में भी तदर्थी शब्द उपलब्ध होते हैं। पारसीपारसात में 'बाब चौथा, पोसाख का जेवर या गहना' शीर्षक के चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत कुछ भारतीय आभूषण और उनके फ़ारसी तदर्थी छन्द बद्ध किये गये हैं।

मिर्ज़ाख़ाँ विरचित तुहफ़तुल्हिन्द और टेलरकृत 'डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' में अपेक्षाकृत अधिक स्पष्टता से भारतीय अलंकारों का निरूपण किया गया है। उन अलंकारों के प्रयोगकर्त्ता और प्रयोग-स्थान का अंकन करने से

---

१. तालपत्र अरु कर्निका द्वय तरकी को जानु।
कर्न वेष्टनो कुंडलो द्वय भूषन नर कानु॥ —ना० प्र०, पृ० १६२।

२. सारसन रसना मेखला सृंजिनी कांची मानिए।
अरु शृंखलो सप्तकी वसु कंधनी नाम बखानिए॥ —उ० को० २।६।१७५।

३. कर्णा०, पृ० ३२ पीठ।

४. आभूखण दुतअंगमैं सुख भूखण सिणगार।
जड़त घाट विधविध जकै तवां कमक गततार॥
कै भूखण मोती कड़ा पनां जड़त सिरपेच।
कंठी नगमाला मुगत वीटी वेल वणेच॥
लुदरी चांडम रुल सै कुंडल मुरकी कांन।
बांहाँ वाजूबंध बिहूँ पूंची जड़त प्रमांण॥
पग लंगर बेड़ी प्रभा जुड़त जनोई जांण।
मुर आभूखण मरद का ससत्र छतीस वखाण॥ —अ० मा०, छन्द ३०८-३११।

विदेशी अध्येताओं को भारतीय संस्कृति के इन उपादानों को समझने में पर्याप्त सुगमता हो जाती है।

टेलर ने 'टीका' को माथे पर पहनने का गहना बताया है।[1] हिन्दू महिलायें नाक में 'नथनी'[2] और 'बेसर'[3] तथा कानों में 'खुंभी'[4] और 'तुंगल'[5] पहनती हैं। गले में 'छरा'[6] (छड़ा ?) और हाथों के ऊपरी भाग में 'ताड़'[7] एवं नीचे अंश में 'कंगन'[8] या 'चूड़ी'[9] पहनी जाती है। अंगुलियों में 'अंगूठी'[10], पाँवों में 'पौंची'[11] तथा 'घुँघरु'[12], 'जेहर'[13] और 'पायल'[14] पहने जाते हैं।

ऐतिहासिक संकेत

पौराणिक व्यक्तित्वों एवं धार्मिक महत्ता लिये हुये पवित्र स्थानों की चर्चा पीछे की जा चुकी है। इसी के समानांतर ऐतिहासिक संकेत हैं, जिनके अंतर्गत इतिहास प्रसिद्ध व्यक्तित्व, स्थल या घटनायें ली जा सकती हैं।

विवेच्य कोशों में संकेतों के दो स्वरूप हैं। रीतिकालीन परम्परा को गति देने वाले कवि-कोशकारों ने अपने आश्रयदाता एवं आश्रयस्थल या पोषक जन्मभूमि का भी उल्लेख कर दिया है। उदाहरण के लिये कनक कुशल ने अपने एकाक्षरीकोश लखपतमंजरी नाममाला के प्रारंभिक अंश में भुजनगर तथा वहाँ के शासक कुंवर लखपत का विवरण दिया है। कनक कुशल का ही अनुकरण उनके शिष्य कुंवर कुशल ने अपने द्विभाषीयकोश पारसीपारसातनाममाला के प्रारम्भिक अंश में किया। उदयराम विरचित अवधानमाला में कच्छभुज के राजा देसल द्वितीय की प्रशंसा स्थान-स्थान पर की गई है। सुवंश शुक्लकृत उमरावकोश के अन्तर्गत

---

१. हिन्दु० I, पृ० ५३१। २. वही II, पृ० ७३७।

३. बेसर—ज़ेवर बाशद कि ज़नाने हुनूद दर बीनी पोशन्द......
—तुह०, पृ० २०६ मू०।

४. खुंभी—ज़ेवरे बुवद कि ज़नाने हुनूद दर गोश पोशन्द......
—वही, पृ० २६९ मू०।

५. तुंगल—ज़ेवरे बुवद कि दर गोश पोशन्द...... —वही, पृ० २२७ पी०।

६. छरा—तिला व मखारीद व अम्साले आँ बुवद कि ज़नाने हुनूद दर गुलू बदन्द—।
—वही, पृ० २३९ मू०।

७. ताड़—ज़ेवरे बुवद मिस्ले दस्त बिरंजन कि ज़नाने हुनूद दर बाज़ू व बालातर अज़रीह पोशन्द...... —वही, पृ० २२९ मू०।

८. वही, पृ० २६६ मू०। ९. हिन्दु० I, पृ० ६५६।

१०. खा० बा०, पंक्ति ९९। ११. पा० पा०, छन्द १०१।

१२. तुह०, पृ० २७३ मू०। १३. वही, पृ० २३२ मू०।

१४. पायल—ज़ेवरे बुवद कि ज़नाने हुनूद दर पा पोशन्द......।
—वही, पृ० २२१ पी०।

प्रथम कांड के 'वंश वर्ग' में बिसवाँ तथा वहाँ के नृप उमरावसिंह एवं उनकी समस्त वंशावली प्रस्तुत कर प्रशंसात्मक उक्तियाँ भी दी गई हैं। इन समस्त कोशकारों का लक्ष्य केवल अपने आश्रयदाता को प्रसन्न करना था, किसी प्रकार की ऐतिहासिक सूचनादे ना नहीं।

शेष किसी भी अन्य कोश में इस प्रकार के संकेत नहीं मिलते। तुहफ़तुलहिन्द और टेलर के द्विभाषीय कोश में अवश्य कुछ स्थलों पर ऐसे विवरण मिल जाते हैं। तुहफ़त् में एक स्थान पर जलालुद्दीन मोहम्मद अक़बर का उल्लेख सूरज खाँ और चाँद खाँ नामक दो प्रसिद्ध पठान भाइयों के प्रसंग में आया है जिनका उपनाम 'रब-सस' था[१]। 'पदमावत' को कुछ लोग 'पदमावती' भी कहते हैं। यह एक पद्मिनी सुन्दरी का नाम है जिसको जयपुर का राजा रत्नसेन सिंहलद्वीप से लाया था। दिल्ली के बादशाह अल्लाउद्दीन ने (पद्मावती को छीन लेने के लिये) पूर्व वर्णित राजा (रत्नसेन) पर विशाल सेना लेकर चढ़ाई की परन्तु पद्मावती हाथ न आई।[२] कामकन्दला एक प्रसिद्ध नर्तकी का नाम था जो माधवानल नामक एक पुरुष की प्रेयसी थी। ये दोनों (प्रिय-प्रेमी) संगीत तथा कोक इत्यादि शास्त्रों में पारंगत एवं परम प्रवीण थे[३]। 'भोज' एक प्रसिद्ध राजा का नाम है जो अपनी सच्चाई, धार्मिकता एवं प्रजापालिता के गुणों के फलस्वरूप समस्त भारत में पूजनीय था। इनको धारा नगरी में दफ़नाया (?) गया था।[४] 'बाजबहादुर' भी एक प्रसिद्ध सुल्तान का नाम है।[५]

---

१. रब सस—मुरक़्क़ब अज़ दो—या'नी तखल्लुस सूरज खाँ व चाँद खाँ बूद: व आँ दो बरादर बूदान दर अज आग़ान मश्हूर दर अहदे जलालुद्दीन मुहम्मद अक़बर बादशाह क़ि हर यके रब सस तख़ल्लुस मी कर्द। —तुह०, पृ० २४८ मू०।

२. पद्मावत—नामे ज़ने अस्त पदमनी क़ि रतनसेन राजा जयपूर ऊ रा अज सिंहल दीप आबुर्द: व सुल्तान अल्लाउद्दीन बादशाह देहली ब क़स्द ऊ बर राजाय मज़कूर लश्कर कशी कर्द: अम्मा पद्मावत बदस्तश ने आमद: व दर आखिराँ याय मारूफ़ नीज इस्ते'माल कुनन्द व पद्मावती गोयन्द। —तुह०, पृ० २१७ पी०।

३. कामकन्दला—नामे ज़ने रक़्क़ासा कि आशिक़ाये मर्द माधवानल क़ि दो फ़ुनूने मुसीक़ी व कोक वग़ैर: व ऊ ब महारते तमाम दाश्त: बूद:। —वही, पृ० २५९ पी०।

४. भोज—नामे राजाये अस्त मश्हूर गोयन्द ऊ दर ऐदल सरूर सले अल्लेसलाम दर हिन्द बूद: व गैवाना ईमान आबुर्द: व मुसलमान गस्त व दर धारा नगरी मद्फ़न अस्त। —वही, पृ० २१३ पी०।

५. बाज—नामे यके अज़ सुलातीन मुसलमीने हिन्द अस्त व ऊ रा बाजबहादुर गुफ्तन्देह। —वही, पृ० २०४ मू०।

ऐतिहासिक स्थलों में से दक्षिणवर्ती देवगिरी[1] का मिर्ज़ा ने विस्तार से वर्णन दिया है। 'धार' या 'धारानगरी' के सम्बन्ध में मिर्ज़ाख़ाँ कहते हैं कि यह उज्जैन के समीपस्थ एक स्थान का नाम है, जहाँ राजा भोज निवास करते थे।[2] इलाहाबाद तथा वहाँ अकबर द्वारा निर्मित क़िले का विवरण सरस्वती नदी के प्रसंग में पीछे आ चुका है। आदम ने अपने हिन्दवी कोश में आधुनिक कोशों का शिलान्यास करते हुये अनेकानेक भारतीय तथा विदेशी भौगोलिक स्थलों का नाम-संकलन किया है पर उनका कोई ऐतिहासिक महत्त्व नहीं।

प्रशासनिक शब्दावली

चारों वर्गात्मक कोशों के द्वितीयकांड में 'क्षत्रिय वर्ग' के अन्तर्गत विभिन्न शासकीय शब्द एवं उनके पर्याय समाहृत हैं। इन कोशों में केवल संस्कृत कोशों का ही अनुकरण किया गया है, अतएव मध्यकालीन शासन सम्बन्धी कोई शब्द या टिप्पणी नहीं मिलती। केवल प्राचीन भारतीय अर्थात् वैदिक वा प्रागैतिहासिक कालीन शासन संस्थाओं से सम्बद्ध शब्दों के पर्याय इनमें संकलित हैं, जिससे तत्कालीन शासनव्यवस्था तथा उसके कर्मचारी, युद्ध, सन्धि और विग्रह विषयक शब्द संकलित किये गये हैं। युद्ध विषयक समस्त तत्कालीन आयुधों एवं अन्य साधनों सम्बन्धी शब्दावली भी इसी वर्ग के अन्तर्गत संगृहीत है। एक उल्लेखनीय तथ्य यह है कि राज्य-शासन एवं युद्ध में काम आने वाले पशु यथा हाथी और घोड़े आदि के पर्याय अन्य वन्य या पालतू पशुओं के साथ 'सिंहादिवर्ग' के अन्तर्गत समाविष्ट न कर उनकी उपयोगिता एवं कार्य-शक्ति को देखते हुये 'क्षत्रिय वर्ग' के अन्तर्गत ही लिया गया है।

डिंगल कोशों में शासकीय शब्दावली अपेक्षाकृत प्रचुर मात्रा में संकलित की गई है। राजा, 'मंत्रवी', जोधा, सूरिमां, सत्रु, सेना, जुध (युद्ध), सभा, तरवार, फरी सायक, बरछी, धनुख, भाला, हाथी, घोड़ा, रथ इत्यादि शब्दों के पर्याय स्थान-स्थान पर प्रकीर्ण रूप से संकलित किये गये हैं। उदैरामकृत कोश में एक स्थान पर मध्य-कालीन युद्धों में प्रयुक्त होने वाले 'छत्तीस सस्त्रों के नाम' भी गिनाये गये हैं

---

१. देवगिर—नामे मौज़े अस्त दर बिलायत व मम्लेकत जुनूबिया कि दर ईं जमाँ मशहूर अस्त ब दौलते आबाद द आँ कि जिल्लते या'नी किलये ईस्त बालाये कोह कि किला ब ख़ुबी आँ दर रूबा सकून नरवाद बूद:।

—तुह०, पृ० २४१ पी०।

२. धार—नामे मौज़ये अस्त दर नवाही उज्जैन कि मसकिनो राजा भोज बूद: व आँ रा धारानगरी नीज गोयन्द। —वही, पृ० २४३ पी०।

जिनमें प्राचीन कालीन अस्त्र-शस्त्र ही नहीं 'बन्दूक' और 'पिसतौल' भी आ गये हैं।[१]

भारतीय राजाओं की दिन-चर्या

उत्तरी भारत और विशेषतया चौदहवीं शताब्दी के विहार राज्य के राजकीय जीवन का एक सुन्दर चित्रण 'वर्णरत्नाकर' नामक वर्णक कोश में उपलब्ध होता है।[२] मध्यकालीन राजा की दिन-चर्या[३] और सामान्य संस्कृति की एक स्पष्ट झांकी इन वर्णनों के शब्द-संग्रह में मिल जाती है।[४]

वर्णरत्नाकर के तृतीय कल्लोल का शीर्षक ज्योतिरीश्वर ने 'स्थान वर्णन' दिया है। स्थान से तात्पर्य यहाँ पर राजमहल से है। कल्लोल के प्रारम्भ में ही राजदरबार एवं वहाँ पर 'सिंहासनावस्थित-सर्वगुण-सम्पन्न-राजा' विषयक शब्दावली का संग्रह-क्रम द्रष्टव्य है :

"......भूपाल, मण्डलीक, सामन्त, सेनापति, वैशिक, राजपुत्र, राजाशिष्ट, वउलिया, पुरपति, सेवक, परिचारक, अज्ञापाल, धर्म्मशिष्ट, प्रभृति अनेक लोक-

---

१ चौरासी बंदूक चल चौसट चोट कबांण।
वांक पटा खग सेल वहि विध चौईस बखांण ॥
च्यार कटारी हाथ चढ़ पांच मार पिसतोल।
चुगा तीन विध सूं चलै खंजर वसू गुण खोल ॥
पांण गुरज गंजण प्रसण बलम मोगर बोस।
भिडरपात भूखंडिया तोमरार खट तीस ॥
चाबक अंकुस चक्र चढ़ गुपती गदा गणाय।
छुरी नखा फूलता छटा नेजम खांखर न्याय ॥
दावपेच फरसो दरस सांग ढाल तिरसूल।
कठण मूठ वांना करग करपत्री कांधार ॥
तेग दुधारी करतरी यौ जग झंप उचार ॥ —अ० मा०, छन्द ३१२-१८।

२. "...As it is, his lists and his little descriptions give us a varitable 'Bihar court life' for the 14th century..."
—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : वर्णरत्नाकर, भूमिका, पृ० ३५।

३. "एकटा राजाक दिनचर्याक प्रसंग पावि कवि तत्कालीन समाजक बहुत अंगक विशद वर्णन कायलन्हि अछि—"
—बबुआ जी मिश्र : वर्णरत्नाकर, भूमिका, पृ० ७।

४. ...All this goes to make the work a document of first rate importance in the study of culture in early and mid medieval times in northern India..."
—डॉ० सुनीतिकुमार चटर्जी : वर्णरत्नाकर, भूमिका, पृ० ३६।

मंडित (राज) स्थान देषु......। तंकाँ मध्य सिंहासनावस्थित सर्व्वगुण संपूर्ण राजा देषु ।"[१]

इसी प्रसंग में अनेक देशों से आये हुये विभिन्न छोटे-मोटे राजाओं द्वारा 'सर्व्वकलपरीक्षक सर्व्वविधकऐश्वर्य सविसर कएने राजा' की परिचर्या-सेवा का वर्णन देने के पश्चात् राजा की क्रीड़ाभूमि एवं स्नानगृह (समर-हर) में प्रवेश करने का उल्लेख है। यहाँ उनको एक विशाल 'काष्ट चौपालि' पर बिठाया जाता है और तभी 'सोंन्दू, गोंदू, किरतू, कान्हू, चारि मरदनिया'[२] राजा के शरीर पर तेल, लेप आदि का मर्दन करते हैं। इस कार्य में भी उन्होंने शास्त्र सम्मत छत्तीस प्रकार की मर्दनप्रक्रियाओं—'छलकर, हथडोरक, एकहथा, दो हथा, मुहबल, कुनुप, कोम्पल, माण्डी, मंडिआहु......'[३] का प्रयोग किया। तत्पश्चात् बारह नदियों के जल को 'सुवर्ण कलशे सोनाक कुण्ड' में डाला जाता है, जिसमें राजा स्नान करते हैं। स्नानोपरान्त पूजा होती है और पूजा के पश्चात् भोजन। भोजन भी शुद्ध शाकाहारी रहता है—

"......चलक, चाउल, चीकन, चमत्कारी, जुठ, मीठा, सोध, आप्यायक, आठहु गुणे सम्पूर्ण ये दूध से आनि उपनीत करु आनि ता पाछे खिरओला, खिरिसा, खडनी, खण्डउति, झिलिया, मेतिआ, फेना, फिनी, अमृतिकुण्डी, मुगवा, माठ, सरु- आरी, नड़िवी, फेना प्रभृति पकान्न आनि उपनीत करु——"[४]।

भोजन करने के उपरांत भारतीय राजा की 'मुख शुद्धि' के लिये 'पान' का सेवन भी नितांत आवश्यक होता था और वह पान भी ऐसा वैसा नहीं, 'तेरह गुणों' से सम्पन्न 'स्वर्गदुर्लभ पान' था—

'......तेरह गुण सम्पूर्ण देवराज्यभोग्य देले पाविअ स्वर्ग-दुर्लभ अइसन पान। सुवर्णक सराइ ए कं कइ आगाँ धएल ना यकें पान लये मु (ख) शुद्धि कएल......।"[५]

पान सेवन के पश्चात् राजा शयनार्थ जाते हैं। शयन-कक्ष की वर्णक शब्दावली भी द्रष्टव्य है:—

"......हाथिक दान्तक पवा, मानिकक्पासि मरकतक शिखा सोनाक पटा, स्फटिक दण्डा, पद्मरागक दण्डिया, अहुठ हाथ दीर्घ, अढाय हाथ फाण्ड, सेजओट एक पालु, तकां ऊपर कम्बल चारि, सकलात पाँच......।"[६]

---

१. वर्ण रत्नाकर, पृ० ८।
२. वही, पृ० ११।
३. वही, पृ० ११।
४. वही, पृ० १३।
५. वही, पृ० १३।
६. वही, पृ० १४।

कुछ अन्य संकेत

तुहफ़तुलहिन्द में भारतीय शासन-व्यवस्था के कुछ अन्य शब्द संकलित किये गये हैं। उदाहरण के लिये 'राना' के सम्बन्ध में मिर्ज़ा लिखते हैं कि यह हिन्दुस्तान के राजाओं की उपाधि का नाम है।[१] इसी प्रकार 'रावत' भी भारतीय राजाओं एवं ज़मींदारों की पदवी बताई गई है।[२]

तुलनात्मक निष्कर्ष

भारतीय संस्कृति विषयक उपर्युक्त विवरणात्मक अंशों के अध्ययन के उपरान्त इतना निर्देश करना यहाँ पर अत्यन्त आवश्यक प्रतीत होता है कि संस्कृति संबंधी समस्त संकेत प्रायः प्रत्येक कोश में अप्रत्यक्ष रूप से ही आये हैं। मूलतः कोशकारों का ध्येय शब्द-संग्रह ही था। यह दूसरी बात है कि इन कोशों की शब्दावली ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्रों से सम्बद्ध न होकर केवल धार्मिक एवं आंशिक रूप से लौकिक है। अमरकोश से प्रभावित चारों कोशों के द्वितीय काण्ड में कुछ व्यावसायिक शब्दावली भी संकलित है परन्तु उस शब्दावली में प्राचीन भारत के दर्शन अधिक और आलोच्यकालीन भारत की झाँकी कम मिलती है। समस्त समानार्थी और अनेकार्थी कोशों में शब्दों के आधार पर ही सांस्कृतिक संदर्भों का प्रयास किया गया है, इतर प्रसंगों एवं विवरणों के आधार पर नहीं। मानमालाओं में शब्द संकलन के साथ-साथ मान-कथा के संगुम्फन द्वारा अवश्य मध्यकालीन रसिक प्रवृत्ति सुरक्षित रखने का सफल प्रयास है।

इस दृष्टि से मिर्ज़ा और टेलर के प्रयास सर्वाधिक स्तुत्य हैं। दोनों कोश एक भिन्न संस्कृति के पोषक अध्येताओं के निमित्त रचे गये थे अतएव उनके लिये यह अत्यन्त आवश्यक था कि प्रत्येक उपकरण का विस्तार से विवरण दिया जाय ताकि इन अध्येताओं को संस्कृति विषयक तत्वों को हृदयंगत करने में अधिक कठिनाई का सामना न करना पड़े। अतः स्वाभाविक रूप से मध्यकालीन भारतीय संस्कृति की प्रचुर सामग्री उक्त दोनों कोशों में उपलब्ध होती है।

———o———

१. राना—लक़ब राजहाय हिन्द अस्त.. —तुह०, पृ० २४६ पी०।
२. रावत—लक़ब राजहा व ज़मींदाराने हिन्द अस्त... —वही, २४७ मू०।

अध्याय ७

उपसंहार

विवेच्य कोशों का उद्देश्य

अच्छे कोश प्रायः विशिष्ट उद्देश्य, किसी विशिष्ट कार्य एवं कुछ निश्चित वर्ग के अध्येताओं के निमित्त ही रचे जाते हैं[1], अतः आलोच्य कोशों पर समग्रतः कुछ निर्णय करने के पूर्व यह आवश्यक है कि इनके प्रमुख उद्देश्य पर संक्षेप में कुछ विचार कर लिया जाय।

समस्त समानार्थी, अनेकार्थी और एकाक्षरी कोशों के रचयिता संस्कृत कोशों की बहुलता एवं उनमें निहित अपार शब्द-भाण्डार से भलीभाँति सुपरिचित थे। इधर नवजागरणकालीन भाषा (हिन्दी) में कई ऐसे नवोदित कवि काव्याभ्यास में दत्तचित थे जो व्याकरण की दुरूहता के कारण संस्कृत को न तो पढ़ने में समर्थ थे[2] न समझ ही सकते थे और न ही उसका शास्त्र-सम्मत शुद्ध उच्चारण कर पाते थे।[3] फिर संस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा के पीछे जीवन भर माथा पच्ची करना भी इनके लिए संभव न था[5] अतएव नामों के पर्याय या अनेकार्थ जानने के इच्छुक वर्ग के निमित्त ही इन समस्त समानार्थी और अनेकार्थी कोशों का सृजन (हिन्दी--) भाषा में किया गया।

अल्लाखुदाई, खालिक़बारी, तुहफ़तुलहिन्द जैसे नस्ता'लीक लिपि में बद्ध हिन्दी--फ़ारसी कोश उन फ़ारसी पाठकों के निमित्त रचे गये जो सामान्य और जनसाधारण में प्रचलित फ़ारसी शब्दों के हिन्दी तदर्थी शब्द जानना चाहते थे।

---

१. रामचन्द्र वर्मा : कोशकला, पृ० ७।

२. पढ़ि सकत जे नहि संसकिरत, तिन हेत भाषा छंद तें।
लहि अमरकोश करौं उमगि उमरावकोश अनंद ते ॥ —उ० को० १।१।३१।

३. उचरि सकत नहिं संस्कृत समुझन को असमर्थ।
तिन लगि नन्द स्वमति यथा, भाषा कियो सुअर्थ ॥—अने० नन्द०, पंक्ति ५-६।

४. उचरि सकत नहिं संस्कृत जान्यो चाहत नाम।
तिन हित नन्द स्वमति यथा रचत नाम की दाम ॥
—ना० मा०, नन्द० पंक्ति ३-४।

५. सहंसक्रित नहिं कछू सकति को पचि मरै।
यथा सुमति 'बद्री' सुखद नांम दांम प्रगटैं करै। —मा० मं०, छन्द १।

फ़ारसी या हिन्दी कवियों के प्रति इन कोशकारों का तनिक भी ध्यान न था, और तुहफ़तुलहिन्द को छोड़कर किसी में भी काव्योपयोगी शब्द नहीं हैं। तुहफ़त् अपेक्षाकृत उन फ़ारसी पाठकों को सहायता पहुँचाने के निमित्त बनाया गया जो तत्कालीन ब्रजभाषा साहित्य में रुचि रखते थे। पारसीपारसात के रचयिता ने हिन्दी पाठकों को फ़ारसी-अरबी शब्दों का ज्ञान कराने के लिये यह द्विभाषीय कोश बनाया।

समय की अवधि के साथ लक्ष्य भी परिवर्तित होता गया। हिन्दी-अंग्रेज़ी के द्विभाषीय कोशों का उद्देश्य एक दिशा की ओर मुड़ गया। अंग्रेज़ों का भारत में शासन-क्षेत्र अधिक विस्तृत हो जाने के फलस्वरूप इन कोशकारों की दृष्टि कवि और जन-साधारण की अपेक्षा शासकगण और सैनिक पदाधिकारियों[१] की ओर अधिक आकर्षित हुई। भारतीय भाषा (हिन्दी) और जनसामान्य में रुचि रखने वाले यूरोपीय जिज्ञासुओं के अतिरिक्त भारत में नियुक्त उच्च यूरोपीय पदाधिकारियों की सुविधा का विशेष ध्यान इनमें रखा गया है।

उपर्युक्त तीन मुख्य उद्देश्यों के अतिरिक्त विनयसागरकृत अनेकार्थनाममाला लोकोपकार[२] तथा मियाँ नूर द्वारा विरचित प्रकाशनाममाला कोश परमार्थ भावना से प्रेरित होकर निर्मित बताये गये हैं। आतमबोध नाममाला का उद्देश्य सांसारिक चतुरता तथा व्यावहारिक ज्ञान[४] और उमरावकोश में नामपरिगणन द्वारा ज्ञान विस्तीर्ण होने की चर्चा चलाई गई है।[५]

गौण रूप से कुछ कोश व्यक्ति विशेष के पठनार्थ भी निर्मित हुए परन्तु उनका व्यापक उद्देश्य उपर्युक्त किसी न किसी वर्ग में अन्तर्भूत हो जाता है। सामान्यतः संस्कृत भाषा से अनभिज्ञ परन्तु कविता में रुचि रखने वाले कवियों

---

१. "For the benifit of European students of Hindee in general and of the Junior branches of the military Services in particular....'

—टॉमसन : ए डिक्शनरी हिन्दी एण्ड इंग्लिश, भूमिका, पृ० ४।

२. संत सवल सव विधि सरस, परमारथ पद लीन।
अकल अगंज अगाध गुण, मुझ मन उहां सु लीन॥ —अने० विनय०, छन्द३।

३. परमारथ उपगार बिनु, परमारथ न लहाहि।
नूर जनम ताको सफल, जिह अस बोल रहाहि॥

—प्र० ना० मा०, पृ० २६५।

४. कीजे ग्रंथ अभ्यास होवे चातुर जग सही।
× ×
अति महक आवे ज्ञान पावें चतुरता उपजें सही॥ —आ० बो०, छ० २६१-२६२।

५. बिना नाम त्रिहु लोक में कछू न जान्यो जाइ।
नाम ग्रंथ यातें करों चौगुन चाव चढ़ाइ॥ —उ० को०, १।१।३०।

के लाभार्थ ही अधिकांश कोश निर्मित हुए परन्तु चन्दनराम ने साधारण पाठक, साधु वर्ग, शिशु-गण तथा अपने मित्रों के हितार्थ इस कोश का सृजन किया।[1] प्रकाशनाममाला में ऐसे शब्दों का संकलन किया गया है जो बालकों के समझ में भी आ सकें।[2] इन उक्तियों की पृष्ठभूमि में भी संस्कृत जन्य क्लिष्टता और 'भाषा' की सुस्पष्टता का ही संकेत है।

इस प्रकार कुछ द्विभाषीय कोशों को छोड़कर शेष समस्त कोश संस्कृत कोशों की परम्परा में निर्मित हुए थे अतएव उनका उपयोग काव्य-शास्त्र के अध्येताओं, व्याख्याकारों एवं स्वयं कवियों या कवि बनने के इच्छुकों के लिये पर्याप्त मात्रा में था। अधिकांश रीतिकालीन कवि 'भाव-कवि' न होकर 'शब्द-कवि' थे जिन्होंने शाब्दिक चमत्कार मात्र को ही काव्य समझ लिया था। शब्दों के तोड़-मरोड़ तथा स्थानान्तरण पर आधारित अर्थ-चमत्कार के लोलुप कवियों के निमित्त ही इन कोशों का सृजन किया गया। 'सुबरन' को ढूंढ़ने में व्यस्त शब्दालंकार के प्रेमी कवियों के लिये समानार्थी और अर्थालंकार के पोषक कवियों के लिये अनेकार्थी कोश निस्सन्देह उपादेय हैं।

संस्कृत कोशों की व्यावहारिक उपादेयता को दृष्टि में रखते हुये ही विवेच्य कोश भी छन्दों में ही निर्मित हुये ताकि उनको भी अमरकोश के ही समान कंठाग्र करने में कोई असुविधा न हो। जिस प्रकार संस्कृत अध्ययन के उपक्रम में कोश, विशेषतया अमरकोश, को कंठस्थ करना परम आवश्यक समझा जाता था उसी प्रकार नवोदित भाषा कवियों के लिये भी विवेच्य कोश कंठाग्र करने के निमित्त ही निर्मित हुये।

द्विभाषीय कोशों में से खालिक़बारी और अल्लाखुदाई भी छन्दों में इसलिये निर्मित हुये कि उनको कंठस्थ किया जा सके। शेष द्विभाषीय कोश और पादरी आदम का हिन्दवी कोश आधुनिक कोशों के उद्देश्य से निर्मित हुये हैं।

उद्देश्य में सफलता

प्रश्न उठता है कि क्या ये कोशकार अपने अभिप्रेत दृष्टिकोण में सफल हुये? क्या जनसमुदाय या कवि सम्प्रदाय में इनका उसी अनुपात से स्वागत किया गया,

---

१. अनेकार्थ मय जानिहो अनेकार्थ यह चारु।
सुजन साध सिसु मित निमित, कर्‌यो सुभग उपहारु॥—अने० चन्द०, पृ०४०।

२. प्र० ना० मा०, पृ० २६५।

३. जोड़ गीत छंदां जुगत जोड़े नांम सुजांण।
नांम माल त्रिवधा निपुण, पढ़ कर कंठ प्रमाण॥ —अ० मा०, छन्द २।

इनका वही सम्मान और स्वागत हुआ जैसे संस्कृत के कोशरत्न अमरकोश, मेदिनी, हलायुध या हेमी कोशों का ? इसके उत्तर में इतना ही कहा जा सकता है कि संस्कृत काव्य-ग्रंथों की टीकाओं में जिस प्रकार कोशों का मत उल्लिखित रहता है, विवेच्यकालीन रीति साहित्य या काव्य-ग्रंथों की टीकाओं में कहीं भी ऐसे संकेत इन कोशों के विषय में नहीं मिलते। सभी कोशकार स्वयं कवि भी थे, परन्तु इन कोशों का उन्होंने कितना उपयोग किया यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इसको पुष्ट करने के लिये कोई भी विवरण उपलब्ध नहीं होते कि ये कोश वास्तव में किसी भी अध्येता, कवि या सामान्य पाठक द्वारा उचित रूप में कंठस्थ किये गये थे। हाँ, ख़ालिक़बारी को कंठाग्र करने वाले बहुत से व्यक्ति हमें मिले हैं।

इन कोशों का उचित रूप से उपयोग न होने के भी कुछ कारण थे, सभी कोश प्राय: किसी न किसी संस्कृत कोश पर आधारित हैं, अतः शब्दों के पर्याय या कई अर्थ जानने के इच्छुक शब्द प्रेमियों ने मूल संस्कृत कोशों का ही अध्ययन आवश्यक समझा जो निस्सन्देह अधिक शुद्ध और प्रामाणिक थे। दूसरे विवेच्य हिन्दी कोशों का विज्ञापन और प्रचार भी उस सीमा तक नहीं हुआ जहाँ से उनको समुचित रूप से स्वीकृत और गृहीत किया जा सकता। नन्ददास की नाममाला और अनेकार्थ के अतिरिक्त अन्य कोशों की बहुत कम हस्तलिखित प्रतिलिपियाँ उपलब्ध हैं, फिर प्रकाशित प्रतियों का तो प्रश्न ही नहीं उठता। लगभग ३०० वर्ष प्राचीन तुहफ़तुलहिन्द जैसे अनुपम ग्रन्थ अभी अन्धकार के गर्त में लुप्त हैं। परवर्ती द्विभाषीय कोश-विशेषरूप से गिलक्राइस्ट, टेलर, शेक्सपियर और टामसन के हिन्दी अंग्रेज़ी कोश तथा पादरी आदमकृत हिन्दवी कोश पर्याप्त मात्रा में उपयोगी रहे। इन कोश-ग्रन्थों ने न केवल आलोच्यकालीन यूरोपीय अध्येताओं को सहायता प्रदान कर हिन्दी शब्द-भंडार की अभिवृद्धि में योगदान दिया, प्रत्युत परवर्ती कोशकारों—प्लाट्स, फ़ैलन और विभिन्न हिन्दी-उर्दू के कोश-रचयिताओं के लिये मार्ग-प्रदर्शन का भी श्लाघनीय कार्य किया।

सामान्य न्यूनतायें

विवेच्य कोशों में अनेकानेक न्यूनतायें भी मिलती हैं, जिनमें से अधिकांश तो शब्दों के रूप सम्बंधी हैं। छन्द के आग्रह वश या कोशकार की व्यक्तिगत अज्ञानता के फलस्वरूप भिन्न-भिन्न कोश में अलग-अलग विकृत शब्द रूप आ गये हैं, किसी में भी कोई परिनिष्ठित रूप नहीं। शब्द-संकलन के लिये द्विभाषीय कोशों को छोड़कर अन्य सभी ने संस्कृत कोशों को ही एकमात्र आधार बना लिया है। प्राय: सभी समानार्थी, अनेकार्थी और यहाँ तक कि पादरी आदम ने किसी न किसी संस्कृत कोश

या अपने पूर्ववर्ती हिन्दी कोश या इसी प्रकार के दो-चार कोशों को एकत्र कर अच्छा ख़ासा 'भानुमती का कुनबा' जोड़ दिया है। शब्द-संकलन के लिये मौलिक और स्वतंत्र व्यक्तिगत दृष्टि अत्यल्प मात्रा में अपनाई गई है। तुहफ़तुलहिन्द जैसे कुछ अपवादों को छोड़कर शेष कोई भी कोश तत्कालीन साहित्यिक या जन-प्रचलित भाषा का प्रतिनिधित्व करने वाला पूर्ण क्या, आंशिक संग्रह भी नहीं कहा जा सकता। सभी में अधिकांशतः रूढ़, परम्पराबद्ध, साम्प्रदायिक और पूर्ववर्ती संस्कृत या हिन्दी कोशों में व्यवहृत शब्दों का ही संकलन किया गया है। अर्थों या व्याख्याओं के लिये मिर्ज़ाखाँ और टेलर तथा आदम द्वारा विरचित कोशों के अतिरिक्त अन्य कोई भी कोश अधिक उपादेय नहीं। पुनः न कहीं व्युत्पत्ति है, और न व्याकरणिक रूप ही। यदि कोशों को आधुनिक परिभाषा में मूलतः और मुख्यतः 'संदर्भ-ग्रंथ' मान लिया जाय, तो आंशिक रूप में मिर्ज़ाखाँ, गिलक्राइस्ट, टेलर और आदम के कोशों के अतिरिक्त अन्य कोई भी अनेकार्थी वा समानार्थी कोश उपादेय नहीं माने जा सकते, क्योंकि बिना शब्दों की अनुक्रमणिका दिये इनका तनिक भी उपयोग संभव नहीं है।

परन्तु इन न्यूनताओं का एक दूसरा पक्ष भी है। कोश-रचना का कार्य अन्य सभी साहित्यिक कार्यों की अपेक्षा अधिक कठिन और श्रमसाध्य है।[१] यह ऐसा नीरस, शुष्क, कंटकाकीर्ण कार्य है जिसकी कोई मान्यता नहीं[२] और जिसमें अन्धकार (शब्दों की न्यूनता) ही नहीं प्रत्युत प्रकाश (शब्दों की अधिकता) भी मार्ग को बार बार अवरुद्ध करता है।[३] जॉनसन ने अत्यन्त श्रम और धैर्य से अपने युग-प्रवर्तनकारी कोश में लगभग पचास हज़ार शब्दों का संकलन किया परन्तु उसमें भी पूर्णता कहाँ? निश्चित रूप से उसमें तत्कालीन भाषा की पूर्ण प्रतिच्छाया नहीं मिलती।[४] यथार्थ में वस्तु-स्थिति तो यह है कि कोश-निर्माण का कार्य कभी न समाप्त होने वाला व्यवसाय है। भाषा नित्य परिवर्तनशील होती है जिसमें सदैव ही नित्य नवीन शब्द आते-जाते रहते हैं। अतएव कोई भी शब्द-कोश सब दृष्टियों से पूर्ण तथा पर्याप्त नहीं कहा जा सकता।[५] कोश तो वस्तुतः एक 'ऐसी इमारत है जिसे

१. रामचन्द्र वर्मा : कोश कला, पृ० २।
२. मोनियर विलियम्स : संस्कृत-अंग्रेजी डिक्शनरी, भूमिका, पृ० ९।
३. "Such is the fate of hapless lexicography that not only darkness but light impedes and distresses it. Things may not be not only too little but too much known to be happily illustrated....."

—जॉनसन : प्लान ऑव् इंग्लिश डिक्शनरी, भूमिका।

४. डॉ० जे० ए० शियर्ड : दि वर्ड्स वी यूज़, पृ० १३।
५. कॉलिसन : डिक्शनरी ऑव् फ़ारेन लेंग्वेजेज़, भूमिका, पृ० १५।

हमेशा बढ़ाते रहने की ज़रूरत होती है और जो हमेशा पूरी-पूरी मरम्मत भी माँगती रहती है। इसलिये कोश निर्दोष भले ही हो जाय, पर वह कभी पूर्ण नहीं हो सकता। नित्य नये नये शब्द बनते और प्रचलित होते रहते हैं। अतः जीवित भाषा के कोश में कुछ न कुछ वृद्धि की गुंजायश सदैव बनी रहती है'।[1]

मौलिकता एवं महत्त्व

संस्कृत कोशों की दृढ़ आधार-शिला पर निर्मित होते हुये भी इन कोशों को संस्कृत कोशों की छाया मात्र कहा जा सकता है। वास्तव में देखा जाय तो आलोच्यकालीन समस्त रीतिसाहित्य संस्कृत साहित्य से अनुप्रेरित और प्रभावित ही नहीं, वरन् पर्याप्त सीमा तक अनुवादित भी कहा जा सकता है। फिर जैसे पीछे भूमिका भाग में स्पष्ट किया जा चुका है कि कोश-रचना साहित्य की अन्य विधाओं के समान एक सर्वथा मौलिक कृतित्व नहीं है। सभी समानार्थी और अनेकार्थी कोशों ने पारस्परिक ग्रहण और त्याग की प्रवृत्ति को पर्याप्त प्रश्रय देते हुये अधिकांशतः ऐसे ही शब्द संकलित किये, जिनका हिन्दी या तत्कालीन भाषा साहित्य में अधिक प्रचलन था। पुनः, जैसा पीछे स्पष्ट निर्दिष्ट है, तद्भव या भाषा के शब्द भी इन सभी कोशों में पर्याप्त रूप में संगृहीत किये गये हैं।

शब्दों के ग्रहण और त्याग के अतिरिक्त पर्याय कोशों में मान-कथा की नियोजना धार्मिक चर्चा, भगवद्माहात्म्य या ब्रह्म-चर्चा का संगुम्फन करना नितान्त मौलिक है। कोश जैसे पूर्णतः बुद्धि-व्यायाम से सम्बद्ध विषय को इन रससिद्ध कवि-कोशकारों ने मान जैसी सरस कथाओं द्वारा सम्पृक्त कर पूर्ण साहित्यिक एवं भावपूर्ण बना दिया है।

द्विभाषीय कोशों द्वारा किया गया प्रयास इस क्षेत्र में पूर्णतः मौलिक कहा जा सकता है। संस्कृत कोशों द्वारा अपनाये गये पथ का पूर्णतः परित्याग कर, इन परिश्रमी कोशकारों ने एक नितान्त नवीन धरातल पर अपने पैर जमाये। ख़ालिक़बारी ने शब्दों के ही नहीं, वाक्य व वाक्य खण्डों के भी फ़ारसी रूप देकर कोशकला के क्षेत्र में एक नवीन अध्याय जोड़ने का अति स्तुत्य प्रयास किया। तुहफ़तुलहिन्द के अन्तर्गत संकलित 'लुग़तये-हिन्दी' प्रत्येक दृष्टि से एक सर्वथा मौलिक कोश है जिसके निर्माण में मिर्ज़ाखाँ ने अपने पूर्ववर्ती समस्त कोशों की उपलब्धि का पूर्ण परित्याग कर एक विशुद्ध नवीन दृष्टि को अपनाया—शब्दों की नियोजना एवं उनकी लिप्यन्तरण व वर्णान्तर-व्यवस्था के लिये एक सर्वथा नवीन और नितान्त मौलिक

---

१. रामचन्द्र वर्मा : उर्दू-हिन्दी कोश (द्वितीय संस्करण की प्रस्तावना), पृ० २६।

पद्धति का आविष्कार किया। अन्य कोशकारों की भाँति मिर्ज़ा ने अपनी दृष्टि किसी एक पूर्ववर्ती कोश तक न सीमित कर, सब दिशाओं और क्षेत्रों से उदारतापूर्वक सभी प्रचलित और उपयोगी शब्द अपने 'लुग़त' में समाहृत किये और उनके अर्थ तथा व्याख्या देने के लिये कोशकार पूर्णतः अपने व्यक्तिगत ज्ञान पर निर्भर रहा। इन सब मौलिक विवरणों के कारण प्रस्तुत कोश अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं उपादेय बन गया है। इन सभी दृष्टियों से लगभग तीन सौ वर्ष प्राचीन इस अनुपम कोश ग्रंथ की जितनी प्रशंसा की जाय वह कम ही प्रतीत होती है।

मौलिकता के लिये गिलक्राइस्ट, टेलर तथा पादरी आदम के कोश भी कम महत्त्वपूर्ण नहीं हैं। अंग्रेज़ी में वर्णानुक्रम शैली पर कोशों का शब्द-नियोजन देखते हुये इन तीनों कोशकारों ने क्रमशः अंग्रेज़ी, उर्दू और देवनागरी वर्णक्रम पर अपने कोशों की रचना की। इनमें से टेलर तथा आदम ने शब्दों के व्याकरणिक रूप देकर तथा टेलर ने शब्द सम्बन्धी प्रत्येक सम्भव अर्थ, व्याख्या, व्युत्पत्ति एवं कोश में आवश्यक अन्य विवरण देकर परवर्ती कोशकारों के लिये एक नवीन दिशा का उद्घाटन किया।

समग्रतः विवेच्य कोशों का ऐतिहासिक महत्त्व तो है ही, तत्कालीन भाषा-साहित्य के अध्ययनार्थ भी इनकी बहुमुल्य उपादेयता असंदिग्ध है। अनेकानेक भाषा-सम्बन्धी, साहित्यिक एवं सांस्कृतिक संकेतों से पूर्ण ये समस्त कोश हिन्दी भाषा के अत्यन्त महत्त्वपूर्ण अनुपेक्षणीय एवं उपयोगी ग्रंथ हैं जिनके सम्पादन एवं प्रकाशन से मध्यकालीन हिन्दी की शब्द-सम्पत्ति और भाषा-साहित्य की अभिवृद्धि अवश्यम्भावी है।

—०—

परिशिष्ट

(१) आधारित कोशों का विवरण

१. **वर्णरत्नाकर** —रचयिता : ज्योतिरीश्वराचार्य, संपादक : डॉ० सुनीति कुमार चैटर्जी, प्रकाशक : रॉयल एशियाटिक सोसाइटी बंगाल, सन् १९४० ई०। आकार—आठ कल्लोल।

२. **खालिक़बारी** —रचयिता और रचना-तिथि अज्ञात तथा अनिश्चित। लिपि नस्तालीक़।[1]

३. **डिंगलनाममाला** —रचयिता : हरिराज। रचना-तिथि सन् १५६१ ई०। प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७ ई०)। छंद—२७।

४. **नाममाला** —रचयिता : नन्ददास। रचना-तिथि सन् १५६८ ई०। प्रकाशक : प्रयाग विश्वविद्यालय, प्रयाग (१९४२ ई०) संपादक : पं० उमाशंकर शुक्ल। छंद—२६५।

५. **अनेकार्थ** —रचयिता : नन्ददास। रचना-तिथि सन् १५६८ ई०। प्रकाशक : प्रयाग विश्वविद्यालय छंद—११९।

६. **अनभै प्रबोध** —रचयिता : गरीबदास। रचना-तिथि सन् १६१५ ई०। प्रकाशक : श्री स्वामी लक्ष्मीराम ट्रस्ट जयपुर (सं० २००४) सम्पादक : स्वामी मंगलदास। पृष्ठ—२८, पद्य १४०।

७. **अनेकार्थनाममाला**—रचयिता : विनयसागर उपाध्याय। रचना-तिथि १६४६ ई०। हस्तलिखित—पत्र १२, प्रति पत्र पंक्ति—११, प्रति पंक्ति अक्षर ३५। रूप—प्राचीन। प्राप्ति-स्थान : अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर और दूसरी प्रति, भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट पूना (ग्रंथ संख्या १८९१-१८९५ का क्रम चिह्न १५७६)।

८. **मानमंजरी** —रचयिता : बद्रीदास। रचना-तिथि सन् १६६८ ई०। हस्तलिखित। प्राप्ति-स्थान : अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर (ग्रंथ संख्या ४९७३)। आकार—२१३ सोरठे।

---

१. **जिनके सामने लिपि का निर्देश नहीं है वे देवनागरी लिपि में रचे गये हैं।**

९. तुहफ़तुलहिन्द —रचयिता : मिर्ज़ाखाँ। रचना-तिथि १६७५ ई०। हस्तलिखित। पत्र २८६ साइज़ ११$\frac{1}{2}$″ × ६$\frac{3}{4}$″। प्रति पत्र पंक्ति १६-१७। लिपि—नस्ता' लीक़। प्राप्ति-स्थान : इण्डिया आफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन (ग्रंथ-संख्या १२६९, ई० २०११, २८०-१३ सी)।

१०. अल्लाखुदाई —रचयिता : गुमनाम। रचना-तिथि ११०० हिज्री (सन् १६८८ ई०)। नवलकिशोर प्रेस कानपुर से सन् १९१० ई० में दुबारा, प्रकाशित। पृष्ठ—१६। लिपि—नस्ता'लीक़।

११. प्रकाशनाममाला —रचयिता : मियाँ नूर। रचना-तिथि सन् १६९७ ई०। ग्रंथ वीथिका के अन्तर्गत प्रकाशित। प्रकाशक : आगरा यूनिवर्सिटी, आगरा। कुल पृ० १३४ (पृ० २६५—३९९), छंद-संख्या १३४२।

१२. हमीरनाममाला —रचयिता : हमीरदान रतनू। रचना-तिथि सन् १७१७ ई०। प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७ ई०), पृष्ठ—५२, छंद ३११।

१३. एकाक्षरीनाममाला—रचयिता : वीरभाण। रचना-तिथि १७३० ई०। प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७ ई०), पृ० ४, छंद ३४।

१४. नामप्रकाश —रचयिता : भिखारीदास। रचना-तिथि सन् १७३८ ई०। प्रकाशक : गुलशन अहमद यंत्रालय प्रतापगढ़ (सन् १८९९ ई०), लीथो में छपा, जीर्ण-शीर्ण, प्राप्ति-स्थान : डा० नारायणदास खन्ना, विशेषाधिकारी, भाषा-विभाग (अनुवाद) सेक्रेटेरियेट लखनऊ। पृ० ३५९, प्रथम ८ पृष्ठ नष्ट हो गये हैं।

१५. सुबोधचन्द्रिका —रचयिता : फ़कीरचन्द। रचना-तिथि सन् १७४३ ई०। हस्तलिखित। प्राप्ति-स्थान : प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (ग्रंथ-संख्या ११२०), छंद-संख्या १०२१।

१६. विश्वनाममाला —रचयिता : बालकराम। रचना-तिथि सन् १७५० ई०। हस्तलिखित। प्राप्ति-स्थान : श्री अगरचन्द नाहटा, बीकानेर। छंद-संख्या २४८।

१७. **लखपतमंजरीनाममाला**—रचयिता : कनक कुशल । रचना-तिथि सन् १७६६ ई० । हस्तलिखित । प्राप्ति-स्थान : प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर (ग्रंथ-संख्या ११२१), छंद २०२ दोहे ।

१८. **कर्णाभरण**—रचयिता : हरिचरणदास । रचना-तिथि सन् १७८१ ई० । हस्त-लिखित । पत्र ५४ । छन्द १२०० मूल, ७०० टीका । आकार ६″×१०″ प्रति पत्र । प्राप्ति-स्थान : मु० क० मा० हिन्दी विद्यापीठ, आगरा ।

१९. **ए वॉकेबुलेरी, हिन्दुस्तानी-इंग्लिश**—रचयिता : गिलक्राइस्ट । प्रकाशक कलकत्ता (१७९८ ई०) । पृ० ८९ । लिपि रोमन ।

२०. **आतमबोधनाममाला**—रचयिता : चेतनविजय । रचना-तिथि—१७९० ई० । हस्तलिखित । प्राप्ति-स्थान : अभयजैन ग्रंथालय, बीकनेर । छन्द-संख्या २७३ दोहा ।

२१. **पारसीपारसातनाममाला**—रचयिता : कुँअर कुशल । रचना तिथि सन् १८०० ई० । हस्तलिखित । प्राप्ति-स्थान : राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर । (ग्रंथ संख्या ५२९) छन्द-३५३ दोहे ।

२२. **उमरावकोश**—रचयिता—सुवंश शुक्ल । रचनातिथि सन् १८०५ ई० । हस्तलिखित । श्री लक्ष्मीधर मालवीय शोध छात्र, प्रयाग विश्व-विद्यालय के अनुग्रह से प्राप्त एवं काशिराज पुस्तकालय, बना-रस की प्रति से संशोधित ।

२३. **ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश**—रचयिता : टेलर तथा हण्टर । प्रकाशन-तिथि, १८०८ ई० । प्रकाशक : कलकत्ता । दो खण्ड । प्रथम में ७४५ और द्वितीय में ८४३ पृष्ठ । लिपि मुख्यतया रोमन ।

२४. **अनेकार्थ**—रचयिता : चन्दनराम । रचना-तिथि सन् १८०९ ई० । मुद्रक : बोधोदय प्रेस बांकीपुर (सन् १८८० ई०), पृष्ठ ४१, छन्द २८५ दोहे ।

२५. **धनजीनाममाला**—रचयिता : सागर । रचना-तिथि—सन् १८२० ई० के आसपास । हस्तलिखित । प्राप्ति-स्थान : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर । आकार १४५ दोहे ।

२६. **अनेकार्थी**—रचयिता : सागर । रचना-तिथिसन्—१८२० । हस्तलिखित । प्राप्ति-स्थान : अनूप संस्कृत लाइब्रेरी, बीकानेर । आकार ६० दोहे ।

२७. **हिन्दवी भाषा का कोश**—रचयिता : पादरी आदम। प्रकाशन-तिथि : सन् १८२९ ई० । मुद्रक : मेडिकल प्रेस, कलकत्ता। लगभग २०, ००० मूल शब्द। प्राप्ति स्थान : इण्डिया ऑफ़िस लाइब्रेरी, लन्दन (ग्रंथ-संख्या ४२ डी-२) ।

२८. **अवधानमाला**—रचयिता : उदैराम। रचना-तिथि : सन् १८३५ ई० के आसपास। प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७) । आकार ५६१ दोहे ।

२९. **अनेकारथी**—रचयिता : उदैराम। रचना-तिथि : सन् १८३५ ई० के आसपास। प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७)। आकार—८९ दोहे।

३०. **एकाक्षरी नाममाला**—रचयिता : उदैराम । रचना-तिथि : सन् १८३५ ई० के लगभग। प्रकाशक : राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७)। आकार २८२ दोहे।

३१. **नागराजडिंगलकोश**—रचयिता : अनिश्चित । रचना-तिथि अज्ञात । प्रकाशक, राजस्थानी शोध संस्थान, जोधपुर (१९५७ ई०) । आकार २० छन्द ।

३२. **नाममाला "क"**—रचयिता : अज्ञात। रचना काल अज्ञात। प्रकाशक : राजस्थानी शोधसंस्थान, जोधपुर (१९५७ ई०) । आकार १३५ छन्द ।

३३. **नाममाला "ख"**—रचयिता : अज्ञात । रचना-काल अज्ञात । हस्तलिखित । प्राप्ति-स्थान : अभयजैन ग्रंथालय बीकानेर (ग्रंथ-संख्या ४९७) । छन्द-संख्या : १५७ । अपूर्ण ।

३४. **नाममाला "ग"**—रचयिता : अनिश्चित । रचना-तिथि अज्ञात । हस्तलिखित। डा० पारसनाथ तिवारी प्राध्यायक, हिन्दी विभाग प्रयाग विश्व-विद्यालय, के सौजन्य से उपलब्ध । आकार १९ छन्द ।

उपरोक्त कोशों के अतिरिक्त टामसनकृत हिन्दी-अंग्रेज़ी कोश तथा शेक्सपियर द्वारा विरचित 'ए डिक्शनरी : हिन्दुस्तानी एण्ड इंग्लिश' भी उपलब्ध हो गये थे । परन्तु इन दोनों कोशों को प्रस्तुत अध्ययन का आधार नहीं बनाया गया है; एक तो दोनों बहुत ही दीर्घकाय हैं, दूसरे इनकी शैली व शब्द-संकलन पद्धति में भी किसी प्रकार की नवीनता नहीं दिखाई दी ।

(२) संदर्भ-ग्रंथ सूची

(क) हिन्दी

१.	अर्थ विज्ञान और व्याकरण दर्शन	: कपिलदेव आचार्य	: इलाहाबाद १९५१ ई०
२.	आचार्य भिखारीदास	: नारायणदास खन्ना	: लखनऊ २०१२ वि०
३.	आधुनिक साहित्य	: लक्ष्मीसागर वार्ष्णेय	: इलाहाबाद १९४९ ई०
४.	आर्यभाषा पुस्तकालय सूची	: ——	: २००१ वि०
५.	उर्दू का रहस्य	: चन्द्रबली पाण्डेय	: बनारस १९९७ वि०
६.	ए डिक्शनरी ऑव् उर्दू क्लासिकल हिन्दी एण्ड इंग्लिश	: जान टी० प्लाट्स	: १९११ ई०
७.	ए न्यू हिन्दुस्तानी इंग्लिश डिक्शनरी विद् इलस्ट्रेशन्स फ्रॉम् हिन्दुस्तानी लिटरेचर एण्ड फ़ोकलोर	: एस० डब्लु० फ़ालेन	: बनारस १८७९ ई०
८.	कोशकला	: रामचन्द्र वर्मा	: बनारस २००९ वि०
९.	गद्यपथ	: सुमित्रानन्दन पन्त	: प्रयाग १९५३ ई०
१०.	गरीबदास जी की बाणी	: स्वामी मंगलदास	: जयपुर २००४ वि०
११.	डिंगल कोष	: नारायणसिंह भाटी (सं०)	: जोधपुर १९५७ ई०
१२.	नंददास	: उमाशंकर शुक्ल	: प्रयाग १९४२ ई०
१३.	नन्ददास, ग्रंथावली	: ब्रजरत्नदास	: बनारस २००६ वि०
१४.	नन्ददास एक अध्ययन	: रामरतन भटनागर	: इलाहाबाद १९४७ ई०
१५.	प्रसाद साहित्यकोश	: हरदेव बाहरी	: इलाहाबाद २०१४ वि०
१६.	प्राकृत-विमर्श	: सरयू प्रसाद अग्रवाल	: लखनऊ
१७.	प्राचीन हस्तलिखित पोथियों का विवरण	: धर्मेन्द्र ब्रह्मचारी	: पटना १९५८ ई०
१८.	ब्रजभाषा	: धीरेन्द्र वर्मा	: इलाहाबाद १९५४ ई०
१९.	ब्रजभाषा व्याकरण (ग्रंथ वीथिका में प्रकाशित)	: लल्लूलाल	: आगरा

२०. भारत की भाषायें और भाषा सम्बन्धी समस्यायें	: सुनीतिकुमार चैटर्जी	: इलाहाबाद १९५१ ई०
२१. भिखारीदास ग्रंथावली	: विश्वनाथ प्रसाद मिश्र	: बनारस
२२. मुहावरे और कहावतें	: बालमुकुन्द गुप्त (सं०)	: दिल्ली १९५७ ई०
२३. मेवाड़ की कहावतें	: लक्ष्मीलाल जोशी	: उदयपुर
२४. राजर्षि पुरूषोत्तम अभिनन्दन ग्रंथ	: सम्पादित	: दिल्ली १९६० ई०
२५. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, प्रथमभाग	: मोतीलाल मेनारिया (सं०)	: उदयपुर १९४२ ई०
२६. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखिति ग्रंथों की खोज, द्वितीय भाग	: अगरचन्द नाहटा (सं०)	: उदयपुर १९४७ ई०
२७. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, तृतीय भाग	: उदयसिंह भटनागर (सं०)	: उदयपुर १९५२ ई०
२८. राजस्थान में हिन्दी के हस्तलिखित ग्रंथों की खोज, चतुर्थ भाग	: अगरचन्द नाहटा (सं०)	: उदयपुर १९५४ ई०
२९. राजस्थान का पिंगल साहित्य	: मोतीलाल मेनारिया	: उदयपुर १९५२ ई०
३०. राजस्थानी (दो भाग)	: नरोत्तमदास स्वामी	: कलकत्ता
३१. राजस्थानी कहावतें	: मुरलीधर व्यास	: कलकत्ता
३२. राजस्थानी भाषा और साहित्य	: मोतीलाल मेनारिया	: प्रयाग १९४८ ई०
३३. राजस्थानी साहित्य की रूपरेखा	: मोतीलाल मेनारिया	: प्रयाग १९३९ ई०
३४. विनोद (चार भाग)	: मिश्रबन्धु	: लखनऊ १९९१ वि०
३५. वृहत् पर्यायवाची कोष	: भोलानाथ तिवारी	: इलाहाबाद १९५४ ई०
३६. वृहत् हिन्दी कोश	: (कालिका प्रसाद आदि सं०)	: बनारस २००९ वि०
३७. शब्द-साधना	: रामचन्द्र वर्मा	: बनारस २०१२ वि०

५८. हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास : रामकुमार वर्मा : इलाहाबाद १९३९ ई०

५९. हिन्दी साहित्य का वृहत् इतिहास : (षष्ठ भाग) : नगेन्द्र (सं०) : बनारस २०१५ वि०

६०. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामचन्द्र शुक्ल : काशी २००९ वि०

६१. हिन्दी साहित्य का इतिहास : रामशंकर शुक्ल रसाल : इला० १९३१ ई०

६२. हिन्दी साहित्य कोश : धीरेन्द्र वर्मा (सं०)

(ख) संस्कृत

१. अनेकार्थ तिलक (महिप) : एम०एम० पाटकर (सं०) : पूना १९४७ ई०

२. अमरकोष (मणिप्रभाटीकोपेत) : हरगोविन्द शास्त्री (सं०) : बनारस २०१४ वि०

३. अमरकोष टीका (क्षीरस्वामी) : : पूना १९१३ ई०

४. अमरकोष- (महेश्वर) : : बम्बई १८८२ ई०

५. अमरकोष (रामाश्रमी) : शिवदत्त (सं०) : बम्बई १९१५ ई०

६. अमरमण्डन (कृष्णसूरि) : वी० राघवान (सं०) : पूना १९४९ ई०

७. आख्यातचन्द्रिका (भट्टमल्ल) : : काशी १९६१ वि०

८. एकार्थनाममाला (सौभरि) : ई०डी० कुलकर्णी (सं०) : पूना १९५५ ई०

९. कल्पद्रकोष (केशव) : रामावतार शर्मा (सं०) : बड़ौदा

१०. देशी नाममाला (हेमचन्द्र) : पिशेल (सं०) : विजयनगरम

११. नानार्थरत्नमंजरी (राघव) : के० वी० आर० शर्मा (सं०) : पूना १९५४ ई०

१२. नानार्थरत्नमाला (दंडाधिनाथ) : बी०आर०शर्मा (सं०) : पूना १९५४ ई०

१३. नानार्थरत्न संग्रह (अजयपाल) : टी० आर० चिन्तामणि : मद्रास १९३७ ई०

१४. नानार्थर्णव संक्षेप : केशवस्वामी : त्रिवेन्द्रम ।

१५. नाममाला (धनंजय)	: एस०एन० त्रिपाठी	: बनारस २००० वि०
१६. नाममाला (भोज)	: ई० डी० कुलकर्णी	: पूना १९५५ ई०
१७. नामलिंगानुशासनम	: क्षीरस्वामी रायमुकुट	: बिरहामपुर १८८७
१८. निरुक्त (यास्काचार्य)	: वी०के० राजवाड़े (टी०)	: पूना १९४० ई०
१९. पाइअसद्द महण्णव	: हरगोविन्द सेठ	: कलकत्ता १९८५ वि०
२०. महाभाष्य-पतञ्जलि	: (कैयट की प्रदीप और नागेश की उद्योत टीकाएं)	:
२१. वाक्यपदीयम् (भर्तृहरि)	: हेलाराज और पुण्यराज की टीका सहित	: त्रिवेन्द्रम १९३५
२२. शब्दकल्पद्रुम	: राजाराधाकान्तदेव	
२३. संस्कृत इंग्लिश डिक्शनरी	: मोनियर विलियम्स	: आक्सफोर्ड १९५९ ई०
२४. हलायुधकोश	: जयशंकर जोशी (सं०)	: लखनऊ २०१४ वि०

(ग) उर्दू

१. उर्दू शहपारे, जिल्द अव्वल	: सैय्यद मुहीउद्दीन क़ादरी	: हैदराबाद, १९२९ ई०
२. उर्दू हिन्दी शब्दकोश	: मुहम्मद मुस्तफ़ा ख़ाँ 'मद्दाह'	: लखनऊ, १९५९
३. उर्दू हिन्दी कोश	: रामचन्द्र वर्मा	: बम्बई १९५३ ई०
४. पंजाब में उर्दू	: मु० खान शैरानी	: लाहौर १९४९ ई०
५. बागोबहार	: मीर अम्मन	: कानपुर १९५१ ई०

(घ) अंग्रेज़ी

1. A Dictionary of English synonyms	: Richard Soule	: London-1952
2. A Dietionary of new Words in English	: Paul C. Berg	: London-1953
3. A Dictionary of selected synonyms in the Principal Indo European Languages	: Carl Darling Buck	: Chicago
4. A Grammar of Bragj Bhakha	: M. Ziauddin	: Calcutta-1935

5.	A modern vernacular literature of Hindustan	: George Grierson	: Calcutta-1889
6.	A New English Dictionary on Historical Principls (vol. I, III, IX)	: J. H. Murry	: London-1909
7.	A Philological Grammar	: William Bernes	: London
8.	An Introduction to Modern Linguisticis	: L. R. Palmer	: London-1936
9.	Catalogus Catalogurum	: Th, Aufrecht	
10.	Catalogue of the Bodlien Library	: C. Riu	
11.	Catalogue of Sans. Ms. in the Library of the India Office	: Julius Eggling	: London-1837
12.	Chamber's Encyclopaedia (New Edition) Vol. III, IV	—	: London-1955
13.	Communication (A philological study of Language)	: Carl Briton	: London-1939
14.	Complete Collection of synonyms and antonyms	: Charles C. Smith	
15.	Comprehensive English Hindi Dictionary	: H. D. Bahari	: Banaras-1960
16.	Comprehensive English Hindi Dictionary	: Raghuvira	: Nagpur-1955
17.	Concerning Pronunciation	: H. E. Palmer	
18.	Dictionaries of foreign Languages	: Robert L. Collison	New York-1955
19.	Encyclopaedia Americana Vol. II, IX, X	: —	: American Corporation-1946

20. Encyclopaedia Britanica (11th Edition) Volu. VIII, XV : — : Chicago London
21. Encyclopaedia Britanica (14th Edition) Volu. VII, XX : — : Do
22. English Pronunciation : Robert Birdges : Oxford 1913
23. English Pronunciation Dictionary : Daniel Jones : Lonbon-1934
24. Hartrampf's Vocabularies : Gustavus Hartrampf : London
25. Hindi Semantics : Hardev Bahari : Allahabad-1959
26. Language : Leonard Bloomfield : London-1955
27. Language : J. Vendryes : London-1952
28. Nelson's Encyclopaedia Volu.3 — : London-1953
29. Persian Grammar : Ann K. S. Lambton ; Cambridge-1953
30. Persian Vocabulary : Ann. K. S. Lambton : Cambridge-1954
31. Principles of English Etymology : W. W. Skeat ; Oxford-1852
32. Proceedings of All India Oriental Conference Banaras 1943-44 : — —
33. Rogets Pocket Thesaurus : P. M. Roget : New York-1952
34. Semantics: The Nature of Words and their Meanings : Hugh R. Walpole : New York-1941
35. The International Thesaurus : P. M. Roget : New York-1946

36.	The Meaning of Meaning.	: C. K. Ogden and Richards	: London-1946
37.	The philosophy of Grammar	: Otto Jespersen	1951
38.	The Westminister Dictionary	: J. M. Parrish	: Glassgow
39.	The words we use	; J. A. Sheard	: London-1954
40.	Websters New Twentieth Century Dictionary of English Language (Unabridged)	: Noah Websters	: New York-1956
41.	Websters Dictionary of Synonyms	: A Marrian Webster	: Mss. 1951

(ङ) पत्र-पत्रिकाएँ

१. हिन्दी अनेकान्त, वर्ष ११,
धर्मयुग, २० जनवरी, १९६१ ई०
नागरी प्रचारिणी पत्रिका, भाग ४६, संख्या ३
राजस्थान भारती, भाग १, अंक ४
विशाल भारत, सन् १९४०, भाग २५
हिन्दी अनुशीलन, पौष - फाल्गुन २०१०
हिन्दी अनुशीलन, (डा० धीरेन्द्रवर्मा विशेषांक)
हिन्दुस्तानी, अप्रैल, जून १९५८

२. उर्दू रिशाला (त्रैमासिक), जुलाई १९२३ ई०

३. अंग्रेजी Asiatic Researches, Volume III
The Indian Antiquary, January 1903
Hindi Review July. 1960.

(३) प्रबन्ध में प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावली

Abbreviation	संक्षिप्त रूप
Accentuation	बलाघात
Alphabetical	अकारादिक्रम, वर्णक्रम (–विषयक)
Analysis	विश्लेषण

Antonym	विपर्याय
Arrangement	नियोजन
Base	आधार
Bilingual	द्विभाषीय
Biography	जीवनकोश
Class	वर्ग
Classification	वर्गीकरण
Classificatory	वर्गात्मक
Consonant	व्यंजन
Corresponding	संगतीय
Dialect	बोली
Diminutive	लघ्वार्थक
Encyclopaedia	विश्वकोश
Entry	प्रविष्टि
Environment	परिनिवेश
Equivalent	तदर्थी
Etymology	व्युत्पत्ति
Exhaustion	निःशेषण समाहार
Final	अन्तिम
Following	अनुगामी
Gazetteer	भौगोलिकी
Glossary	शाब्दिकी
Governed	अनुशासित
Gradation of meaning	अर्थक्रम
Grammatical notes	व्याकरणिक टिप्पणियाँ
Homonym	अनेकार्थी
Imperative	आज्ञार्थक
Index	अनुसूची
Infinitive	अकालक्रिया, संज्ञार्थ
Inflection	विस्तार
Initial	प्रारम्भिक
Linguistics	भाषाशास्त्र

Linguistic	भाषाशास्त्र सम्बन्धी
Local	स्थानिक
Medial	मध्यस्थ
Metathesis	विपर्यय
Monosyllabic	एकाक्षर
Nasalization	अनुनासिकता
Nomenclature	नामकोश
Orthography	अछरौटी
Occurance	उपस्थिति
Parts of speech	शब्द-भेद
Phonetic	स्वनिक
Position	स्थिति
Phraseology	पदावली
Pronunciation	उच्चारण
Reference book	संदर्भ-ग्रंथ
Root	धातु
Seplling	वर्तनी
Standard	परिनिष्ठित, प्रतिमित
Syllable	अक्षर
Synonym	पर्याय, समानार्थक
Synonymy	पर्यायिकी
Synthesis	संश्लेषण
Technical	प्राविधिक
Technique	शिल्पविधान
Transliteration	लिप्यन्तरण
Transliterated	लिप्यन्तरित
Variation	परिवर्तन
Vocabulary	शब्दावली
Vowel	स्वर

—:o:—

अनुक्रमणिका[1]

(दिये हुए अंक पृष्ठों के हैं)

(१) ग्रंथकार

---

[1] भूमिका तथा पादटिप्पणियों में आए ग्रंथकार वा ग्रंथ अनुक्रमणिका में नहीं हैं।

(२) ग्रंथ

—o—

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	६	लगतये	लुग़तये
२५	११	हण्डिया	इण्डिया
४७	१५	पृष्ट	पृष्ठ
५१	३१	ह० ६	छ० ६
५२	१३	प्रस्तुता	प्रस्तुत
५२	१५	जि़ल	जिला
६६	१६	पर्यापवाची	पर्यायवाची
८३	२६	ef	of
८७	१६	पर्याय	पर्याय
८८	११	घात	धात
९३	२१	चंबुचरणैर्लोहितैः	चंचुचरणैर्लोहितैः
९६	१५	दृष्टव्य	द्रष्टव्य
१०४	२७	२७२	२०२
१०५	२३	८४	१८४
११२	२५	अर्थ	अथ
११३	१	आर्थो	अर्थो
१२०	३१	पृष्ठ	षष्ठ
१२७	१९	गढ़ावाच	गूढ़ावाच
१२८	११	द्विभाशीय	द्विभाषीय
१३८	२०	ऊरहलाद	परहलाद
१४१	१०	वैधक	वैद्यक
१४२	३	अभियेय	अभिधेय
१४५	२७	पेशन्द	पोशन्द
१४७	४	एक अन्य द्रष्टव्य	एक अन्य द्रष्टव्य तथ्य
१४७	- ७	एक ही शब्द दन्त	एक ही शब्द दन्त से
१४७	११	जलमुक	जलभुक
१४८	६	कीलाभुत	कीलाभृत
१५१	३१	ना० प्र०, ९९	ना० प्र०, पृ० ९९

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	२६	वही, पृ०, छं० ७३	वही, छं० ७३
१५३	३२	पृ० ३६ म०	पृ० ३६ मू०
१५६	८	पृ० २२ मू०	पृ० २२६ मू०
१५६	३१	सुवहाल	सुवहान
१६६	३०	ए नाम नाम सुन्दर	ए नाम सुन्दर
१६८	४	आये हैं	दिये हैं
१६८	१६	जाहि[१२]	जाहि[११]
१६८	२६	हिन्दवी० ४६	हिन्दवी०, पृ० ४६
१६८	२८	पृ० ११	पृ० १०१
१७२	१५	पृ ११	पृ० ११
१७४	८	कोशों की दृष्टिकोण	कोशों का दृष्टिकोण
१८०	२५	लिप्यंत्रण	लिप्यंतरण
१८१	२६	नारायण:	नरायण:
१८१	२८	भवेदेडोकमेड्रकमेडुकं	भवेदेडोमेडूकमेडुकं
१८५	१८	secapitulate	recapitulate
१८५	२५	wch	uch
१९०	१२	सीने मुहसल:	सीने मुहमल:
१९०	३२	unfamilier	unfamilar
१९१	२०	याय यथा	याय मारूफ़ यथा
१९१	२३	वाव यथा	वाव मारुफ़ यथा
१९१	२७	वैंध	बैंध
१९२	१	बौध	बोध
१९२	५	२०८ पी०	२०७ पी०
१९२	१५	न्	ञ्
१९२	२२	ताये क्फौकानीये	ताये फ़ौक़ानीये
१९२	२३	फ़ौक़नीये	फ़ौक़ानीये
१९३	११	फुबार	फ़ुवार
१९३	१४	बिशाल	बिसाल
१९४	२७	च के अध्याय	च का अध्याय
१९५	२६	द्वित्त	द्वित्त्व
१९६	२८	क़स्त्रे	क़स्रे

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१९६	३०	क़स्त्र	क़स्र
१९६	३४	फ़त्हः	ज़त्हः
१९७	२५	अम्मे	ज़म्मे
१९८	२६	कस्त्रे	क़स्रे
१९९	२१	बरासन	बरामन
२०१	१०	द्वित्त	द्वित्त्व
२०१	२५	हफ़े	हर्फ़े
२०१	२५	भी	मी
२०१	२८	ज़रो	ज़ेरो
२०२ २०३	२ १६	एवम्	एवं
२०८	२३	विराचिते	विरचिते
२१३	१७	दैत्यादि	दैत्यारि
२२०	११	मानामलाओं	मानमालाओं
२२०	१३	विशष्टि	विशिष्ट
२२१	२३	वनौषाधि	वनौषधि
२२४	१	लिख्यने	लिख्यते
२२४	१९	आरादिक्रम	अकारादिक्रम
२३०	३०	रुजु	रुजु
२३४	१०	अन्त	अन्य
२३५	४	मेदनी	मेदिनी
२३७	२०	क्रिया, रूप	क्रिया-रूप
२३८	३	ग्रैन	ग़ैन
२४०	७, २३	एवम्	एवं
२४१	१४.	वा	व
२५१	१८	सरह	सरदं
२५२	२४	usua.	usual
२५३	२१	संयम	संयमी
२५४	१५	व्यवह्न	व्यवहृत
२५५	१२	वाला	बाला
२५६	१०	जसोधी	जसोधा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५६	२९	अलहे	अह्ले
२६१	११	एवम्	एवं
२६१	२८	अथनिमित्तक	अर्थनिमित्तक
२६४	१०	एवम्	एवं
२६९	३१	खुशब	खुशबू
२७८	१४	तक हाथी	तक का हाथी
२९४	२२	अव्सामे	अक़्सामें
२९८	१७	३२	२३
३००	८	दुत	दूत
३०३	२७	अम्सले अ०	अम्साले आँ
३०८	५	पृष्भूमि	पृष्ठभूमि
३१०	७	वा	व
३३७	१९	बौध	बोध
३४०	२६	तमान	तमाम
३४१	१	पुष्परेणू	पुष्परेणु
३४३	३१	विदर्श	बिर्दश
३४६	२	अचल	अंचल
३४७	२९	रोटी	रोरी
३४८	१५	जेवर या गहना	जेवर का कहना
३५२	१३	अज्ञापाल	आज्ञापाल
३६८	७	वर्मा	शर्मा
३६९	७	रामशंकर	रमाशंकर
३७०	७	उद्दोत	उद्योत
३७०	२४	Dictionary	Dictionary
३७०	३०	Bragj	Braj
३७२	८	Lonbon	London
३७३	२३	रिशाला	रिसाला

—०—